बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से

पी-एच. डी. (हिन्दी)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

वर्ष- 2008
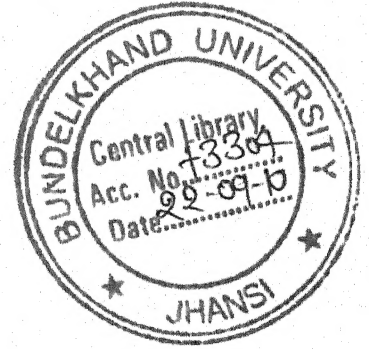
शोध निर्देशक :

डॉ० शशिकान्त अग्निहोत्री

पूर्व रीडर

अतर्रा पी० जी० कालेज, अतर्रा (बाँदा)

शोधकर्त्री :

श्रीमती स्मिता त्रिपाठी

एम० ए० (हिन्दी)

शोध-केन्द्र :

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)

प्रमाण-पत्र

डॉ0 शशिकान्त अग्निहोत्री
एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी), पी-एच०डी०
पूर्व रीडर, हिन्दी विभाग
अतर्रा पी०जी० कालेज, अतर्रा (बाँदा)
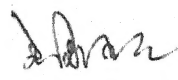
19/102, अत्रि नगर
बाँदा रोड, अतर्रा
बाँदा—210201

मैं यह प्रमाणित करता हूँ कि श्रीमती स्मिता त्रिपाठी (अंश कालिक, हिन्दी-प्रवक्ता, अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा) ने **"रामचरित मानस में सनातन धर्म की अवधारणा का पात्रों पर प्रभाव"** शोध-विषय पर पी-एच0डी0 उपाधि के लिए मेरे निर्देशन में शोध-कार्य किया है।

शोध-कार्य की अवधि में श्रीमती त्रिपाठी दो सौ दिनों से अधिक अवधि तक निरन्तर मेरे निर्देशन का अनुपालन करती रही हैं।

श्रीमती त्रिपाठी का यह मौलिक प्रबन्ध है और शोध-प्रक्रिया की विशेषताओं से युक्त है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय में प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान करता हूँ।

15.12.08

(शशिकान्त अग्निहोत्री)

भूमिका

'चारित्रेणचक्कोयुक्तः' बाल्मीकि के इस प्रश्न के उत्तर में नारद ने 'रामो विग्रहवान धर्मः' कहकर जिस रामकथा का गायन बाल्मीकि से किया था उसका विकास क्रमशः युगीन परिस्थितियों के अनुरूप होता रहा और राम महापुरुष से लोक नायक तथा उससे क्रमशः विष्णु के अंश और कलावतारी होकर तुलसीदास के युग तक पूर्ण ब्रह्म में परिवर्तित हो गये। इस प्रकार विकसित होती हुई रामकथा की अनंत भाव भूमियाँ कवि, भक्त, सहृदय, विद्वान से लेकर साधारण जन समाज के लोग कथा का श्रवण रसास्वादन और आज मीड़िया के विभिन्न साधनों के माध्यम से देख, सुनकर आप्यायित होते रहे हैं, क्योंकि रामकथा में साहित्य, धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान और सांस्कृतिक तत्त्वों का ऐसा समावेश हुआ है कि उससे साधारण धर्म, विशिष्ट धर्म आपद्धर्म से ऊपर उठकर लोक मंगल हेतु सनातन धर्म की ऐसी अवधारणा विकसित हुई है जो सार्वजनीन, सार्वदेशिक, सार्वकालिक, तथा प्रासंगिक है।

तुलसीदास जी की रघुनाथ गाथा, स्वान्तःसुखाय होते हुए भी परान्तः सुखाय लोक हिताय तथा बहुजन हिताय है, क्योंकि उसमें रामकथा का ऐसा विन्यास किया गया है कि अब कवियों द्वारा इस कथा में संशोधन परिवर्तन या परिवर्धन सहसा जन साधारण के गले के नीचे नहीं उतरता। घटनाओं का यह आदर्श रूप रसों का ऐसा हृदयावर्जक रसपेशल चित्रण चरित्रों का ऐसा मर्यादावादी संगुंफन हुआ है कि धर्म का श्रेष्ठ उदात्त उज्जवल रूप प्रोद्भाषित हो उठा है और भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में राम के इस अद्भुत चरित्र का प्रभाव उनके द्वारा किये गये आचरण से निर्मित सनातन धर्मों की जो प्रतिष्ठा हुई है उससे सभी देशीय जन कुछ न कुछ अपने हृदयों के लिए पाते रहे हैं।

शोध के क्षेत्र में कला तथा भक्ति, दर्शन, मनोविज्ञान, सामाजिक तत्त्व सांस्कृतिक तत्त्व विभिन्न काव्य शास्त्रीय मापदण्डों के अनुरूप रामचरित मानस का बहुविधि अध्ययन हुआ है किंतु मेरी दृष्टि में सनातन धर्म संबंधी अवधारणा को लेकर कोई शोध प्रबंध नहीं लिखा गया है। यद्यपि उसमें अन्तर्भुक्त धर्म की चर्चा कुछ शोध प्रबंधों में अवश्य हुई है संभवतः धर्म और सम्प्रदाय को एक मान लेने के कारण संकीर्ण होने के भय से यह पक्ष अधूरा ही रह गया था। इसलिए मैंने धार्मिक या अंग्रेजी पर्याय रिलीजन के विवाद में न पड़कर इससे बचकर "रामचरित मानस में सनातन धर्म की अवधारणा का पात्रों पर प्रभाव" शीर्षक शोध प्रबंध का चयन किया जिसे सप्त सोपानों में विभक्त कर यह कार्य पूर्ण किया गया है।

प्रथम सोपान नाना पुराण निगम आगम सम्मत सनातन धर्म एवं रामावतार से संबंधित है, इसके अंतर्गत मैंने सनातन धर्म का व्युत्पत्ति परक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय दृष्टि से प्राप्त अर्थों की विवेचना की है साथ ही नाना पुराण निगम आगम सम्मत सनातन धर्म के सार्वभौम लक्षणों की चर्चा के साथ सनातन धर्म की संस्थापनार्थ ईश्वरीय अवतारों के परिप्रेक्ष्य में राम के चरित्र में सनातन धर्म के तत्त्वों का सोदाहरण विवेचन किया है।

द्वितीय सोपान रामचरित मानस में सनातन धर्म की विविध भूमियों से संबंधित है, जिसके उपांगों में गृह, कुल समाज, लोक और विश्व धर्म के आदर्श लक्षणों की संस्कृत वाङ्गमय के परिप्रेक्ष्य में उदाहरण देकर स्वरूप का निर्धारण तथा मानस में उसके स्वरूप का निदर्शन कराया गया है।

तृतीय सोपान में रामचरित मानस के देवपात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा प्रस्तुत की गयी है, जिसके अंतर्गत मानस में प्राप्त सभी देव स्वरूपों के कार्यों और

उनके आचरण में प्राप्त सनातन धर्म के प्रभाव एवं स्वरूप का चित्रण किया गया है।

चतुर्थ सोपान रामचरित मानस के मानव पात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा से संबंधित है। इसके अंतर्गत मानस में चित्रित प्रमुख और गौंड़, पुरुष और स्त्री पात्रों के चरित्र के विविध पक्षों का निरुपण विस्तृत रूप से किया गया हैं क्योंकि पात्र अपने क्रिया कलापों से ऊपर उठकर चारित्रिक स्वरूप को प्राप्त करते हैं और इस प्रकार उनके चरित्र में निहित सनातन धर्म के स्वरूप का मूल्यांकन किया गया है।

पंचम सोपान में रामचरित मानस के राक्षस कुलीन पात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा के स्वरूप का उद्घाटन किया गया है। बात यह है कि देव, मनुष्य, असुर, राक्षस, दैत्य ये सभी किसी न किसी कुल से संबंधित हैं जिनकी अपनी सभ्यता और संस्कृति होती है और इन कुलों में कहीं न कहीं विश्वजनीन अवधारणा का कोई न कोई स्वरूप मिलता है इसलिए राक्षस कुलीन स्त्री पुरुषों के प्राप्त चरित्रों का आकलन और उनमें सनातन धर्म की मुख्य अवधारणा के स्वरूप की प्राप्त झलक का विश्लेषण मैंने किया है।

षष्ठ सोपान आलोच्य काव्य में सनातन धर्म का सांस्कृतिक स्वरूप से संबंधित है जिसके अंतर्गत सनातन धर्म विहित विधि निषेधों के साथ प्रमुख संस्कार और मानस के पात्रों में विविध संस्कारों का जो चित्रण मिलता है उसकी समीक्षा सांस्कृतिक दृष्टि से की गयी है। क्योंकि मानस साहित्यिक ग्रंथ होने के साथ–साथ सांस्कृतिक निष्ठा के साथ सनातन धर्म और संस्कृति का प्रतिष्ठापक और उन्नायक चरित काव्य है।

सप्तम् और अन्तिम सोपान "रामचरित मानस-एक धर्म ग्रंथ" से संबंधित है यद्यपि प्रथम अध्याय में मैंने तुलसी प्रोक्त रामकथा के श्रोतों के रूप में नाना पुराण निगमागम, संबंधी ग्रंथों में प्राप्त सनातन धर्म तत्त्वों का उल्लेख किया है अतः पिष्टपेषण

से बचने के लिए सनातन धर्म के विविध ग्रंथों का सामान्य परिचय देकर मानस में प्राप्त उनके प्रभावों का मूल्यांकन इस रूप में किया है कि अब तक प्राप्त भारतीय धर्म ग्रंथों में मानस की महत्ता ही स्थापित न हो अपितु गोस्वामी तुलसीदास सनातन धर्मवेत्ता के रूप में प्रतिष्ठित हों, उनका काव्य विश्व काव्य है। जीवन में जो कुछ भी श्रेष्ठ वरेण्य अनुकरणीय या पारिवारिक संबंधों की आदर्शमयी व्यवस्था हो सकती है, तुलसीदास उसके प्रथम प्रतिष्ठापक हैं, क्योंकि सांप्रदायिक सिद्धांतों में मतवाद किसी न किसी रूप में रूढ़ हो जाता है जबकि मानस सार्वजनीन, सार्वकालिक चरित काव्य है। यही मेरी उपस्थापना है।

इस शोध प्रबंध को मैंने डॉ0 शशिकांत अग्निहोत्री (भूतपूर्व रीडर हिन्दी विभाग, अतर्रा पो0ग्रे0 कॉलेज, अतर्रा) के निर्देशन में पूर्ण किया है। सनातन धर्म संबंधी उनके महत्त्वपूर्ण विश्लेषण की दीर्घ वाक्यावलियों को यथामति समझकर इस कार्य को पूर्ण किया है अतः मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, क्योंकि उनके निर्देशन से ही मेरे लिए यह दुरूह कार्य सुगम बन सका है। सांप्रदायिक संकीर्णता तथा सनातन धर्म के औदार्य के मध्य खिची सूक्ष्म रेखा को अपने अंगुल्यानिर्देश से जो मुझे संकेत किया है उसी का यह शोध प्रबंध परिणाम है।
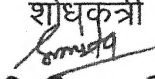
मैं जगज्जनक परम पुरुष एवं प्रकृति को अनन्त प्रणामांजलि प्रस्तुत करती हूँ, क्योंकि उसके प्रतिनिधि माता पिता ने मुझे शिक्षित दीक्षित कर साहित्य के प्रति मेरी अभिरुचि को बढ़ाया है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना बहुत औपचारिक हो जाएगा। मातृ–पितृ स्वरूप श्वसुर और सास का धन्यवाद मैं किन शब्दों में करुँ, क्योंकि गृहकार्यों की भवाटवी से मुझे निकालकर इस कार्य की पूर्ति में अपना कायिक और मानसिक जो सहयोग दिया है वह मेरे लिए सौभाग्य के क्षण हैं उनके प्रति मैं हृदय से

अपना आभार व्यक्त करती हूँ। अपने पति श्री राकेश कुमार त्रिपाठी, पुत्रों चिरंजीव नागेन्द्र और यतीन्द्र एवं पुत्री प्रशंसा के प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ क्योंकि उनके ही अमूल्य क्षणों में कटौती कर मैंने इस कार्य को पूर्ण किया है। सामाजिक रूढ़ियों और मान्यताओं के बावजूद मेरे पति ने मेरा हाथ पकड़कर अपने निजी क्षणों को शोधकार्य के लिए समर्पित किया है यह शोधकार्य उन्हीं के सहयोग का प्रतिफल है। उनके प्रति कृतज्ञता धन्यवाद या प्रणामांजलि शब्द बहुत छोटे लगते हैं। यह तो उन्हीं का कार्य है मैं तो साधन मात्र हूँ।

आदरणीय डॉ0 वेद प्रकाश जी द्विवेदी (पू0 प्रधानाचार्य, हिन्दी विभागाध्यक्ष, अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा) के प्रति कृतज्ञता व्यक्त किए बिना यह लेख अधूरा ही रहेगा क्योंकि जब मैं हताश होने लगी थी कि सम्भवतः यह कार्य अधूरा ही रह जाएगा ऐसी विभ्रम की दशा में उन्होंने स्नेहपूर्ण सहयोग प्रदान कर शोध कार्य को पूर्णता प्रदान करने में मेरा सहयोग किया। मैं श्री राजाराम जी दीक्षित (संस्कृत विभागाध्यक्ष, अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा) को भी हार्दिक धन्यवाद देना चाहूँगी क्योंकि उन्होंने सम्पूर्ण शोध प्रबंध की प्रूफ रीडिंग बड़ी प्रसन्नता और लगन के साथ पूरी कर शोध प्रबंध को शुद्ध स्वरूप प्रस्तुत करने हेतु सहयोगी बन मुझे अनुग्रहीत किया। डॉ0 विश्वम्भर दयाल जी अवस्थी (भूतपूर्व अध्यक्ष, अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा) ने व्यक्तिगत रूप से जो मुझे साहित्यिक समझ दी और शोधकार्य की प्रगति के संबंध में उत्सुकता पूर्ण प्रोत्साहन दिया है एवं डॉ0 महावीर सिंह (रीडर, हिंदी विभाग, अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा) ने मुझे शोध प्रबंध की प्रविधि का ज्ञान कराया है इनका मैं नमन करती हूँ, और अतं में जिन विद्वानों की पुस्तकों के अंश या भाव ग्रहण कर इस सारस्वत यज्ञ को पूर्ण किया है, मैं उनकी अत्यन्त आभारी हूँ क्योंकि शब्द ज्ञान तो मुझे उनके ग्रन्थों से ही प्राप्त हुआ

है। इस कार्य के पूर्ण करने में कुछ विलम्ब हुआ इस हेतु माननीय कुलपति (बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय, झाँसी) ने अपनी कृपा पूर्ण दृष्टि से जो मुझे समय का विस्तार दिया है उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। इस शोध प्रबंध के टंकण में जिस तत्परता से श्रम साध्य कार्य को श्री जितेन्द्र शर्मा ने पूर्ण किया है साथ ही अपने स्वजनों तथा अन्य सुभेच्छुओं के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

शोधकर्त्री

श्रीमती स्मिता त्रिपाठी

नरैनी रोड़, अतर्रा

विषय अनुक्रमणिका

प्रथम सोपान

नाना पुराण निगमागम सम्मत सनातन धर्म एवं अवतार

रामचरित मानस में सनातन धर्म की अवधारणा का पात्रों पर प्रभाव

संत गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस के आरंभ में ईश वन्दना के सन्दर्भ में ही अपने रामचरितपरक चिन्तन की सम्पूर्ण अवधारणा को नाना पुराण निगम–आगम सम्मत स्वीकार किया है। बाल्मीकि रामायाण में भी यही वर्णित है। इतर ग्रन्थों में भी यत्र–तत्र थोड़ा बहुत वही परम तत्व चर्चित हुआ है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी स्वान्तः सुख के प्रयोजन से ही रघुकुल तिलक रघुनाथ राम की गाथा को लोक भाषा में निबद्ध किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी की दृष्टि में यह रघुनाथ गाथा 'रामचरितमानस' मानव के मन और मस्तिष्क (मति) को मंजुलता, चारुता, पवित्रता, और सद्भावना से ओतप्रोत करने में स्वतः सक्षम है ।

जिससे मन और मस्तिष्क पवित्र हो जाते हैं वह निश्चय ही सहज प्राप्त लोक कल्याण हेतु सनातन धर्म ही होगा । धार्मिक जनों में यह उक्ति प्रचलित है–

"येन विश्वमिदं नित्यं धृतं चैव सुरक्षितम् ।

सनातनोऽक्षरो यस्तु तस्मै धर्माय वै नमः ।।"

जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण नाना रूपात्मक विश्व जगत् नित्य रूप में धारण किया गया है और सुरक्षित भी रखा गया है वही कभी नष्ट न होने वाला परम–तत्व अक्षर परमात्मा ही सनातन है । जो सनातन है वही नित्य है अतः नित्य विद्यमान अक्षर सनातन धर्म के लिए हम नमन करते हैं ।

गो० तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के आरम्भ में मंगलाचरण के सात श्लोकों में यद्यपि कहीं भी धर्म या सनातन शब्द का प्रयोग नहीं किया, फिर भी वर्ण और अर्थ की तरह सम्पृक्त रूप में वाणी विनायक के साथ ही श्रद्धा और विश्वास रूप में नित्य विद्यमान भवानी और शंकर की वन्दना की है ।

गो० तुलसीदास जी ने सीतारामगुण ग्राम पुण्यारण्य विहरणशील कवीश्वर और

कपीश्वर की भी वन्दना की है । मेरी समझ में ये सभी वन्दनीय इसलिए हैं क्योंकि इन सब ने चराचर जगत के कल्याणार्थ सनातन (नित्य धर्म) को धारण कर रखा है ।

गोस्वामी तुलसी दास जी की दृष्टि में यह विश्व अत्यन्त विरोधाभाष परक प्रतीत होता है । यहाँ बगुला द्वारा हंस की हँसी होती है, और दादुर द्वारा चातक की हँसी उड़ाई जाती है, उसी तरह प्रभु पद नेह –हीन कविता–रसिक–गण भी रसिक गणों की दृष्टि में गोस्वामी जी अपने रामचरितमानस को हास्य के योग्य समझने वाले लोगों को प्रभु पद प्रीति को न समझने वाला ही मानते हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने बालकाण्ड के दोहा क्रमांक नौ में इसी सनातन धर्म के आधारभूत तत्व की ओर संकेतित किया हैः–

"भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक ।

सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिनके बिमल बिबेक ।।"

वस्तुतः वही लोग विमल विवेक सम्पन्न हैं जिनके मन और मस्तिष्क नित्य अक्षर सनातन से अभिभूत और प्रभावित हो चुके हैं । गो0 तुलसीदास जी ने 'बिस्व बिदित गुण' रूप में सर्व कल्याणकारी श्री राम को अभिव्यक्त किया है । गोस्वामी जी की दृष्टि में इस गुण के धारक नाम से ही उदार रघुपति राम हैं जो मंगलकारक और अमंगलहारी हैं इनकी वंदना में उमा सहित त्रिपुरारी शंकर सतत् संलग्न हैं ।

गो0 तुलसीदास जी का यह भी कथन है कि जो लोग प्रेम सहित इस राम–कथा को जागरूक होकर कहेंगे, सुनेगें ओर समझेंगे, वे निश्चय ही रामचरण अनुरागी होंगे और इसी रामानुराग के प्रभाव से कलिमल रहित हो सकेंगे और सुमंगल के भागी बनेंगे।

इसी सुमंगल में सनातन–धर्म निहित है।

महर्षि वेदव्यास इसी संदर्भ में कहते हैं– **"सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत् सनातनम्"** 1 अर्थात सनातन धर्म का मूल वह सनातन पुरूष है । इसी कारण श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि हे सनातन पुरूष तुम्हारे इस सनातन धर्म की रक्षा तुम्हारे अवतार करते हैं–

"त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव" 2

इन तथ्यों से सिद्ध होता है कि वह परम कल्याणकारी सर्वभूत कारण स्वरूप परमात्मा यदि नित्य, शास्वत है तो उसके द्वारा प्रतिपादित धर्म भी शास्वत हुआ । उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं है ।

प्रश्न यह है कि उस अव्यक्त निराकार ईश्वर ने किस माध्यम से उस सनातन धर्म को ब्रह्माण्ड में स्थापित किया । इस प्रश्न के उत्तर में गोस्वामी जी कहते हैं–

मारूत स्वास निगम निज बानी ।।" (मानस)

अर्थात् वेद ही साक्षात् ईश्वर की वाणी हैं (श्वास निःश्वास) हैं । महर्षि व्यास कहते हैं–

"वेद प्रणहितो धर्मोह्यधर्मस्तद्विपर्ययः" 3

अर्थात् वेद ने जो नियम बनाये हैं वही धर्म हैं उसके विपरीत अधर्म हैं । वेद शास्वत ईश्वरीय ज्ञान हैं ऋग्वेद संहिता में लिखा है–

"त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

अतो धर्माणि धारयन् ।।" 4

अर्थात् परमेश्वर ने आकाश के बीच में त्रिपाद परिमित स्थान में त्रिलोक का निर्माण करके उनके भीतर धर्मो (जगन्निवाहक कर्म समूहों) को स्थापित किया ।

---

1. महाभारत अश्वमेधिक. – 91/34
2. भागवत – 3/16/18
3. भागवत – 6/1/44
4. ऋग्वेद संहिता – 1/22/18

यह तो निर्विवाद सत्य है– धर्म, आचार, नीति और संस्कार समस्त ज्ञान विज्ञान सभी कुछ वेदों के आधार पर ही आज समाज में विद्यमान है । परन्तु वेदों को हमारे जैसे अल्पज्ञ कलियुगी कितने लोग समझ सकते हैं। और विशेष उल्लेखनीय बात यह भी है कि वेदों का अधिकांश भाग इस समय उपलब्ध नहीं है लोप हो चुका है इस बात को बहुत काल पूर्व ही हमारे पूर्वज परम दयालु महर्षियों ने अपनी गहन तपश्चर्या द्वारा प्राप्त ज्ञान से जान लिया था । जिसके फलस्वरूप उन महापुरूषों ने गहन तपश्चर्या द्वारा अनुभूत वेदों के गुह्य ज्ञान के सार तत्व को लेकर इतिहास पुराण, तथा धर्म शास्त्रों की रचना कर दी थी, जिनके स्वाध्याय से समस्त मानव जाति को वास्तविक सत्य का ज्ञान हुआ, और धर्माचरण की प्रेरणा मिली जिससे उनका इस लोक में भी कल्याण हुआ और अंत में मोक्ष को प्राप्त हुए । किन्तु कालान्तर में वेद शास्त्रों में प्रयुक्त देववाणी (संस्कृत) का लोप होने लगा और इतिहास पुराणों की भाषा समझने वाले भी यत्र तत्र ही दिखने लगे जिससे ज्ञान के अभाव में मानव जाति निकृष्टाचरण की ओर अग्रसर होने लगी । किन्तु वह परमपिता अपनी संतानों को अधर्म की ओर अग्रसर होते हुए कैसे देख सकते थे अतः परम कल्याणकारी प्रभु श्री राम के भक्त हनुमान की प्रेरणा से उनके परमभक्त गोस्वामी तुलसीदास जी सनातन पुरूष के सनातन धर्म चरित्र के वर्णन हेतु उद्यत हुए। उन्होंने सनातन धर्म के आधारभूत ग्रन्थों का सार स्वरूप यह परम पवित्र ''नाना पुराण निगम और आगम सम्मत'' रामचरित मानस का सृजन अपनी मातृभाषा में किया। जिससे साधारण व्यक्ति भी उसे समझ सके । इस अभूतपूर्व अलौकिक ग्रंथ में धर्म, कर्म और मोक्ष प्राप्ति के सभी गुप्त एवं प्रकट तत्वों को धर्ममूर्ति भगवान श्रीराम और सीता के पवित्र चरित्र के माध्यम से सर्वसाधारण के लिये सुलभ कराया गया है।

महात्मा तुलसी द्वारा रचित इस महान ग्रन्थ रामचरितमानस में हम सनातन धर्म की झाँकी देखते हुये उन धर्मों को प्रमाण सिद्ध भी करेंगे तथा उस परम सनातन परमात्मा द्वारा विरचि सनातन धर्म का पात्रों पर प्रभाव भी देखेंगे । और यह भी प्रमाणों द्वारा ज्ञात करेंगे कि वह अव्यक्त निराकार ब्रह्म किस कारण साकार रूप धारण करता है ।

नानापुराण निगमागम सम्मत सनातन धर्म एवं रामावतार

हिन्दी भाषी भारतीय लोक जीवन में गोस्वामी तुलसीदास का रामचरित मानस आस्था एवं विश्वास से अनुप्राणित लोक धर्म का ग्रन्थ है, उन्होंने अपने इस पवित्र ग्रन्थ में वही कहा जो वेद शास्त्रसिद्ध, तत्व सिद्ध तथा अनुभव सिद्ध है। मूलतः सनातन धर्म उस परम–सनातन ब्रह्म की दिव्य वाणी स्वरूप वेद द्वारा ही प्रतिपादित होकर परम दयालु ऋषियों के प्रातिभचक्षु से साक्षात्कृत तथ्यों का प्रकाश पुंज धर्म ग्रन्थ बनकर जनमानस तक पहुँचा।

सनातन धर्म परम्परा को संस्कृति के रूप में महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी ने पुराणों के रूप में ज्योतिर्मय बनाकर मानव जाति को धर्ममय होने का परम कल्याणकारी संदेश दिया । वैदिक एवं धर्म शास्त्रीय ग्रन्थ लोकातीत आर्षचक्षुर्मण्डित दृष्टा. ऋषियों की वाणी है । महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्मृति में कहते हैं – कि समस्त विद्याओं एवं धर्म के चौहद स्थान हैं पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्म शास्त्र से मिश्रित छः वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष) तथा चारों वेद धर्म के स्थान हैं ।

"पुराणन्याय मीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः ।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।।"1

इन्हीं विद्याओं को धर्म का प्रमाण भी कहा जाता है, किन्तु धर्म का सार तो वेद एवं धर्मशास्त्र ही बतलाते हैं, अन्य विद्यायें धर्मतत्व ज्ञान में सहायिकायें हैं ।

महात्मा तुलसीदास अपने ग्रन्थ रामचरितमानस को इन्हीं धर्माधारों के अनुकूल सिद्ध करते हैं। तात्पर्य यह है कि महात्मा तुसली सम्पूर्ण समाज, सम्पूर्ण मानव जाति को (जो कि वेदों और धर्मशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित धर्म को विस्मृत कर रही थी) वेद

---

1. या० स्मृति – 1/3

विहित धर्म सम्मत कर्म करने की प्रेरणा देने हेतु सम्पूर्ण धर्म ग्रन्थों के सार तत्व को निचोड़कर इस ग्रन्थ की सरल भाषा में रचना करके अपना परम कल्याणकारी संदेश 'स्वान्तः सुखाय–जगत् हिताय, सिद्ध करते हैं ।

समस्त ग्रन्थ जिस सनातन पुरूष का वर्णन करते हैं उन्हीं पुराण पुरूष के संबंध में महात्मा तुलसी कहते हैं ।

"पुरूष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।"1

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ।"2

जो (सनातन, पुराण) पुरूष प्रसिद्ध है, प्रकाश (ज्ञान) के भण्डार हैं, सब रूपों में प्रकट हैं, जीव, माया, जगत सबके स्वामी हैं । यह जगत उन्हीं श्री राम के प्रकाश से प्रकाशित है वे इस ब्रह्मण्ड के परम प्रकाशक हैं ।

मुण्डकोपनिषद् उसी सनातन पुरूष को समस्त धर्मों एवं समस्त भूतों का मूल कारण मानते हुए कहता है–

"नित्यं विमुंसर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं द्भूतयोनिंपरिश्यन्ति धीराः ।।" 3

वह (सनातन पुरूष) जो नित्य, सर्वव्यापक, सब में फैला हुआ, बहुत ही सूक्ष्म और अविनाशी परब्रह्म है, समस्त प्राणियों के परम कारण उस को ज्ञानी जन सर्वत्र देखते हैं।

महात्मा तुलसी स्वयं कहते हैं– **"सियाराममय– सब जगजानी"** अर्थात् ये समस्त जगत उसी परम पुरूष से आच्छादित है । अब प्रश्न यह है कि क्या श्री राम ही वह पुरूष हैं जिनकी महिमा का वेद बखान करते हैं आखिर राम कौन है ? तो महर्षि

---

1. रा0 च0 मा0 – 1/116
2. रा0 च0 मा0 – 1/117–7
3. मुण्डक0 – 1/1/6

वशिष्ठ जी कहते हैं'

"रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि

इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ।" 1

जिस नित्यानंद चिदात्मा में योगीजन निरन्तर रमण करते हैं, वह परब्रह्म 'राम'– पद से कहा जाता है । महात्मा तुलसी का भी यही कथन है 'जथा भूमि सब बीजमय नरवत निवास अकास । राम नाम सब धर्म मय जानत तुलसीदास ।।

(क) सनातन धर्म का व्युत्पत्ति परक अर्थ, आध्यात्मिक अर्थ, सांस्कृतिक अर्थ एवं मानवीय अर्थ ।

सनातन धर्म का व्युत्पत्तिपरक अर्थ–

'धरति विश्वं इति धर्मः' परम विद्वान महर्षि की यह उक्ति सहज सत्य है कि जो जगत् अथवा जागतिक पदार्थ मात्र को धारण करता है वही धर्म हैं ।

सनातन धर्म का व्युत्पत्तिपरक अर्थ समझने के लिए सर्वप्रथम हम पाणिनि सूत्र द्वारा सनातन शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ समझेंगे । 'सना भव सनातनः'। सना एक अव्यय है जिसका अर्थ है 'सदा' अर्थात् जो आदि से अंत तक तथा अंत से अनंत तक विद्यमान रहे। "सायं–चिरं प्राह्ने–प्रगे अव्ययेभ्यः ट्युटुलौ तुट् च" 2 इस पाणिनीय सूत्र से 'सना' अव्यय को ट्युल प्रत्यय होकर अनुबंध का लोप होकर 'युवोरनाकौ'3 इस सूत्र से 'यु' का 'अन' होकर तुट का आगम होने पर सनातन शब्द बनता है । अतः यह प्रमाणित होता है कि व्याकरण की दृष्टि में सनातन का अर्थ है 'पदार्थ मात्र की सत्ता को रखने वाला यही इस सनातन शब्द का परमार्थ है ।

---

1. योग वा0 नि0 पू0 सर्ग 3
2. पाणिनी सूत्र – 4/3/23
3. पाणिनी सूत्र – 7/1/11

सनातन का अर्थ समझने के पश्चात् अब हम धर्म शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ उणादि सूत्र के द्वारा स्पष्ट करेंगे तथा अन्य प्रकार से भी धर्म का अर्थ स्पष्ट करेंगे ।

"धृञ धारणे (भ्वा0 उ0 अ0) इस धातु से 'अर्ति–स्तु–सु–हु–सृ–धृ'1 इस सूत्र द्वारा मन् प्रत्यय करने पर धर्म शब्द बनता है ।

विद्वान इसकी व्युत्पत्ति तीन अन्य प्रकार से भी करते हैं । 2

1. "ध्रियते लोकः अनेन' अर्थात् धर्म वह है जिससे लोक का धारण किया जाए ।

2. 'धरति धारयति वा लोकम्' अर्थात् धर्म वह है जो संसार को धारण करता है ।

3. 'ध्रियते लोकयात्रा निर्वाहार्थ यः सः धर्मः' अर्थात् धर्म वह है जिसे लोक निर्वाहार्थ सभी धारण करें । इस प्रकार धर्म शब्द अपने स्वरूप का परिचय स्वयं देता है ।

सनातन धर्म का सम्मिलित अर्थ प्रस्तुत करते हुए ब्रह्मलीन स्वामी जी श्री भारती कृष्णतीर्थ जी महाराज जी कहते हैं कि–3

"सदा भव सनातनः, सनातनं करोति इति सनातनयतीति, सनातनयते सनातनः। सनातनश्चासौ धर्मश्च इति सनातन धर्मः । तथा सनातनयति इति सनातनः अर्थात् सनातनं परमात्मरूपं प्रापयति इति । निष्कर्षतः जो हमें परमात्मस्वरूप की प्राप्ति करवाता है, वह सनातन धर्म है । अर्थात् धर्म, सनातन इसलिए नहीं है कि वह सनातन, परमात्मा द्वारा संस्थापित है तथा स्वयं में अविनश्वर है अपितु धर्म, सनातन इसलिये है क्योंकि इस धर्म में विश्वास रखने वाला तथा इस धर्म पर चलने वाला भी सनातन हो जाता है । सनातन धर्म का अनुयायी अपने नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्त सच्चिदानंद स्वरूप का साक्षात्कार करके परमात्मा के साथ एकाकार हो जाता है ।

---

1. पाणिनी सूत्र – 1/40
2. पाणिनी धर्मसूत्र – पृ0 1–2

3 कल्याण धर्मांक वर्ष 40, अंक 1, पृष्ठ सं0 08

यह सनातन धर्म का सत्य स्वरूप है । 1

संस्कृत भाषा में प्रत्येक नाम, सर्वाणि नामानि आख्यातजानि (सब नाम क्रिया से उत्पन्न होते हैं) निरूक्त के इन नियम के आधार पर धातु से बने हुए होते हैं । शब्दों का मूल धातु होता है। अतः उस धातु का जो अर्थ होता है, वह उस शब्द से भी प्रायः अनुस्यूत होता है इस आधार पर धर्म का अर्थ हुआ धारण करना ।

धर्म शब्द का धातुप्रोक्त अर्थ (धारण करना) हैं यदि वह धातुप्रोक्त अर्थ उस शब्द में सर्वांश में घटे, तो वह यौगिक होता है । यदि बिल्कुल न घटे तो रूढ़ होता है अर्थ होकर एक नियमित हो जाए तो वह योगरूढ होता है । चूँकि धर्म शब्द भी अपने धातु प्रोक्त अर्थ को धारण करता है । अतः इसे यौगिक व योगरूढ़ माना जा सकता है । फिर इस धर्म, शब्द का विशेषण 'सनातन' शब्द इस अर्थ को और भी स्पष्ट करता है। अतः अब सनातन धर्म का सम्मिलित अर्थ हुआ पदार्थ मात्र की सदा सत्ता रखने वाला धर्म यही सनातन धर्म है।

शब्दशास्त्र में सनातन धर्म का जो अर्थ है उसका प्रमाण कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय आरण्यक) में भी प्राप्त होता है

"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति ।

धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।

तस्मात् धर्मं परमं बदन्ति ।" 2

धर्म ही सम्पूर्ण जगत अथवा जागतिक पदार्थों को प्रतिष्ठित (धारण) स्थिर करने वाला है। धर्मिष्ठ के पास प्रजाजन जाते हैं धर्म से ही पाप दूर होता है । धर्म में सब (पदार्थ मात्र) की प्रतिष्ठा – स्थिरता व सत्ता है । इसी कारण धर्म को सर्वोपरि कहा गया है ।

---

1. कल्याण धर्मांक पृष्ठ सं0 – 08
2. तैत्तिरीय आरण्यक – 10/63

इस वेद प्रमाण के पश्चात् यह बात शास्त्र सिद्ध, अनुभव सिद्ध और प्रमाणसिद्ध भी हो गई कि सनातन धर्म वह सहज प्राप्य धर्म है, जो पदार्थ मात्र में स्वतः ही स्थिर है। अर्थात् किसी पदार्थ की स्वरूप निष्पादिका सहजा शक्ति ही उस पदार्थ का सनातन धर्म है और यही सहज स्वरूप (धर्म) ही उस पदार्थ का रक्षक भी है। 1

इस सहज स्वरूप (धर्म) के किसी कारण से अभिभूत हो जाने पर विश्व का कोई भी पदार्थ स्वकीय स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं रह सकता । स्वरक्षक धर्म के अभाव में वह सदा के लिए विलीन हो जाता है । धर्म के इस स्वरूप का दर्शन कराते हुए परम विद्वान् महर्षि जन कहते हैं – "धर्मो हि वीर्यं ध्रियेते हि धर्मो धृतो धारयते हि रूपम्, धर्म एक शक्ति है, स्वरूप लाभ तथा स्वरूप की रक्षा के लिए पदार्थ द्वारा धृत होने से वह 'धर्म है । पदार्थों द्वारा धृत धर्म ही पदार्थों का रक्षण करता है, अतः इसी कारण वह (धर्म) विश्व की प्रतिष्ठा है ।

"धर्मो रक्षति रक्षितः" (मनुस्मृति 8/15) ।

महर्षि वेदव्यास का कथन वेद के वचन को और भी प्रमाणित सिद्ध करता है–

"धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः ।

यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्ममिति निश्चयः ।।"2

धारण करने के कारण से धर्म कहते हैं धर्म प्रजा को धारण करता है । जो धारण से संयुक्त है निश्चय ही वह धर्म है ।

पदार्थों की सहजाशक्तियाँ विश्वगत होने के कारण पदार्थों की सहभाविनी हैं और उन पदार्थों में नित्य विद्यमान हैं इसी कारण धर्म को भी नित्य (सनातन) कहा गया है ।

---

1. श्री अनिरूद्धाचार्य जी का लेख – धर्म चक्रप्रवर्तताम् (कल्याण धर्मांक पृ0 17)
2. महाभारत कर्णपर्व ' 69/58

व्याकरण तथा निरूक्त की दृष्टि से प्रमाण सहित यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि धर्म उस नियम या स्वरूप निरूपिका सहजा शक्ति का अभिधान नाम है जिसने विश्वगत पदार्थमात्र को धारण कर रखा है ।

सनातन धर्म के शब्दार्थ के ज्ञान के पश्चात् अब हम इसके मूल उद्‌गम या उत्पत्ति का विवेचन करेंगे, हम यह भी जानेंगे कि सर्वप्रथम धर्म क्या था । तथा किस प्रकार धर्म के ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ।

धर्मसूत्रों एवं महर्षियों की स्मृतियों में धर्म के मूल उद्‌गम का विशद वर्णन है । यहाँ पर मैं गौतम ऋषि के धर्मसूत्र का विवेचन करूँगी– **"ॐ वेदो धर्ममूलम्"**1 पहले सूत्र के रूप में महर्षि गौतम कहते हैं कि चारों वेद धर्म के मूल प्रमाण हैं । दूसरा सूत्र कहता है' "तद्विदां च स्मृति शीले" । अर्थात् वेदों के ज्ञाता मनु आदि की स्मृतियाँ तथा उनके धर्मानुकूल आचरण भी प्रमाण हैं । समस्त विद्वान महर्षियों ने एक स्वर से यही कहा है कि सृष्टि में जितना ज्ञान है, जितने धर्म हैं, उनका मूल स्रोत चारों वेद ही हैं। धर्मशास्त्रों में भी जो कहा गया है, उसका आधार भी वेद हैं, चूँकि वेदों की अक्षर राशि को चार भागों में विभक्त किया गया है । वैदिक संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक और उपनिषद् । इन सभी में निष्कर्षतः 'अग्नि तत्व एवं 'सोम' तत्व की यज्ञमयी (परस्पर अनुस्यूत) अवस्था को ब्रह्म शब्द से अभिहित किया गया हैं।

प्रातिशाख्य (वैदिक व्याकरण) में ब्रह्म शब्द की निरूक्ति भी 'विभर्ति' धातु से की गई है । "अग्नि" को वेद में सृष्टि यज्ञ का होता माना गया है" । यास्क के अनुसार अग्नि के तीन रूप हैं– मित्र (सूर्य), वरूण (विद्युत अंतरिक्ष की अग्नि), अग्नि (पृथ्वी पर वासित)। सर्वप्रथम सूर्य की उत्पत्ति हुई, ऊष्मा उसकी सहजा (स्वरूप निरूपिका) शक्ति है इसलिए उष्णता उसका सहज प्राप्त धर्म है, वह अपने धर्म का पालन कर रहा है, इसीलिए अपने स्वरूप में चिरकाल से स्थित है । तदनुरुप

---

1. गौतम धर्म सूत्र – 1

ही वरूण और पृथ्वी स्थित अग्नि भी अपने स्वरूप में स्थित होकर अपने धर्म का पालन कर रहे हैं। 1 अग्नि के इन स्वरूपों की प्रशंसा में ऋग्वेद कहता है–

"समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ।।

विशां राजानमद्भुतं अध्यक्षं धर्मणामिमम् । अग्निमीडे स उश्रवत" ।। 2

हे अग्नि तुम सहस्रजित हो । प्रज्ज्वलित होकर तुम धर्मों को पुष्ट करते हो और देवों के प्रशंसनीय दूत हो । तुम धर्म के अद्भुत अध्यक्ष हो ।

यहाँ पर धर्म शब्द बहुवचन में प्रयुक्त होता है अतः यह सिद्ध होता है कि भिन्न–भिन्न स्थितियों में धर्म का रूप भिन्न–भिन्न हो जाता है जैसे– अग्नि (सूर्य) का धर्म उष्णता है तो चन्द्रमा का धर्म शीतलता एवं जल का धर्म तरलता उसी प्रकार मनुष्य का धर्म मनुष्यत्व है ।

वेद में धर्म का एकवचन में भी प्रयोग हुआ है–

"विभ्राड्बृहत् सुमृतं वाजसातं धर्मन् दिवोधरूणे सत्यमर्पितम् ।

अमित्रहा, वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्यज्ञे असुरहा सपत्नहा ।।" 3

अर्थात् द्यावा का धर्म एक ही है प्रकाश करना इस प्रकाश को परमात्मा ही जन्म देता है । द्यावा का प्रकाश बाहर एवं प्रज्ञा का प्रकाश अन्दर दोनों मिलकर अविनाशी सत्य को जन्म देते हैं । इसको जो पा गया उसके शत्रु, बाधाएँ एवं असुर नष्ट हो जाते हैं ।

वेद में 'सोम' तत्व को इस प्रकार निरूपित किया गया है– "वृषा सोम द्युमा असि, वृषा–देव वृषब्रतः वृषा धर्माणि दधि से ।" सोम को बलवान एवं धर्म धारण करने

---

1. धर्मद्रुम – पृ0सं0 4
2. ऋग्वेद – 8/43/24
3. ऋग्वेद – 10/170/2

वाला कहा गया है जो बलवान एवं सामर्थ्यवान है वही धर्म की ध्वजा फहरा सकते हैं।

निष्कर्षतः वही परब्रह्म परमेश्वर समस्त जगत् में व्याप्त होकर विभिन्न कार्यमालाओं को धारण करने के कारण 'ब्रह्म' शब्द से अभिहित है । शतपथ ब्राह्मण में ब्रह्म तत्व को 'यजुः' तत्व अथवा आकाश तत्व भी कहा गया है । वही तत्व विश्वगत सब द्रव्यों (धर्मियों) तथा सब गुणों (धर्मों) का मूल कारण है । ब्रह्म अथवा 'यजुः' अथवा 'आकाश' तत्व के आग्नेय भाग से द्रव्यों (धार्मियों) तथा सौम्य भाग से गुणों (धर्मों) की उत्पत्ति होती है ।

उपनिषदों में वैदिक अर्थों के अतिरिक्त धर्म शब्द वर्णाश्रम धर्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ और शब्द से आश्रम के आधार एवं नियमों का बोध होने लगा तदनन्तर धर्म शब्द का अर्थ व्यापक होता गया एवं मानव जाति के आचार विचार का परिचायक बन गया। समस्त मानव जीवन धर्म में समाहित हो गया । किंतु मूलतः उपनिषदों में आत्मदर्शन अथवा तत्वज्ञान को ही सर्वोत्त्म धर्म माना गया, क्योंकि ईश्वर ही तो सर्वभूतों में व्याप्त है । ईशावस्योपनिषद कहती है–

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।।"1

ज्योतिर्मय पात्र के द्वारा सत्य का (अर्थात आदित्य मण्डलस्थ व्याहृति अवयव पुरूष) मुख (मुख्य स्वरूप) आवृत है । हे जगत् के परिपोषक सूर्य देव ! सत्य स्वरूप तुम्हारी उपासना के फलस्वरूप सत्य स्वरूप की मेरी उपलब्धि के लिए उस आवरण को हटा दो ।

---

1. ईश0 – 15

ब्रह्म ही जगन्नियामक कर्म समूहो को धारण करने वाला है उनका पालक, रक्षक भी वही है इसी कारण उसी ब्रह्म के तेज के अंश स्वरूप आत्मा के जान लेने से मनुष्य सब कुछ (समस्त धर्म) जान लेता है क्योंकि वही परमतत्व धर्मों और धर्मियों की सृष्टि, पालन और विनाश का मूल कारण है ।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि समस्त धर्मों का मूल वेद है और वेदों के मूल परब्रह्म परमेश्वर सनातन हैं । और समस्त विश्वगत पदार्थ भी उसी परब्रह्म से आच्छादित हैं यही धर्म की उत्पत्ति का सार है ।

सनातन धर्म का आध्यात्मिक अर्थ–

"न जायते म्रियते वा विपचिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित ।

अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।"1

अर्थात् नित्यचैतन्य रूप आत्मा न उत्पन्न होता है न मरता है' न वह किसी से हुआ है न इससे कोई हुआ है अर्थात् इसका कारण या कार्य ही नहीं है । यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुराण है; शरीर के मारे जाने पर भी यह मरता नहीं है ।

जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाए कि 'मैं' एक आत्मा हूँ, शरीर नहीं, तब उसे यह समझना चाहिए कि उसे सर्वश्रेष्ठ धर्म का ज्ञान हो गया; क्योंकि परब्रह्म के अंश स्वरूप आत्मा को जानकर मनुष्य सब कुछ जान लेता है । वस्तुतः आत्मज्ञान ही अध यात्म है और अध्यात्म ही वह मार्ग है जिससे हम अपने परमार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति कर सकते हैं ।

विश्वव्यापी जीवन के प्रवाह में धर्म का अन्वेषण करने पर दो तथ्य उपलब्ध होते हैं पहला 'गति' दूसरा 'स्थिति'। गति का परिचय जड़–चेतन संयोग में मिलता है ।

---

1. कठ0 – 1/2/18

जगत की गमन शीलता इसी संयोग पर निर्भर करती है । गति के नितान्त अभाव का नाम स्थिति है । जड़ प्रकृति में उसका धर्म विद्यमान रहता है । प्रकृति को इसका ज्ञान नहीं होता कारण, प्रकृति जड़ है । चेतन अपने धर्मभूत ज्ञान के सहारे अपने स्वरूप एवं अपने धर्म का अनुभव कर सकता है । यही अनुभूति उसकी स्वाभाविक स्थिति है।

सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष (चैतन्य) और प्रकृति (जड़) ये दो मूल तत्व हैं। पुरुष (आत्मा) शुद्ध चैतन्य है बंधनमुक्त है । और प्रकृति का संवंध गुण और क्रिया से है । सुख–दुख मन के विकार हैं, आत्मा के नहीं । पुरुष निःसंग होते हुए भी प्रकृति के समस्त धर्मों को अपना ही समझता है । बुद्धि या मन के द्वारा जो सुख या दुख की प्राप्ति होती है, उसे पुरुष (आत्मा) अपना मान लेता है ।

पुरुष और प्रकृति का यही संयोग दुःखों का मूल कारण है । प्रकृति और पुरुष (आत्मा) का पृथक–पृथक ज्ञान ही अध्यात्मिक ज्ञान है । इस विवेकजन्य ज्ञान प्राप्ति से मनुष्य शरीर में रहते हुए भी समस्त बंधनों से मुक्त होकर उस परम धर्म मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । इसी को विद्वान जन जीवन्मुक्ति कहते हैं।

वेदों तथा धर्म शास्त्रकारों ने गति और स्थिति को प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा प्रेय और श्रेय की संज्ञा दी । तथा श्रेयस् अथवा निवृत्ति की चरमावस्था में वास्तविक स्थिति का अनुभव किया । इस प्रकार धर्म के दो रूप हो गये प्रवृत्ति और निवृत्ति प्रवृत्तिपरक (सांसारिक सुखोपलब्धि हेतु किये गये सत्कार्य) धर्म का पालन करने पर मनुष्य को लौकिक आनन्द एवं मृत्यु के उपरानत स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।

निवृत्तिपरक (निष्काम कर्म) धर्म का पालन करने पर मनुष्य को मोक्ष (परमात्मप्राप्ति) प्राप्ति होती है ।

इन्हीं दो प्रकारों को ध्यान में रखकर वेदों ने मानव जीवन को वर्णाश्रम धर्मो द्वारा व्यवस्थित करके प्रवृत्ति से निवृत्ति तक का मार्ग सुनिश्चित कर दिया । इन वर्णाश्रम

धर्मों का विवेचन हम अग्रिम सोपानों में विस्तार से करेंगे । महामुनि कणाद ने तो जैसे इस वैदिक व्यवस्था का सार ही कह डाला–

"यतोऽभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः ।"1

अर्थात वह कर्म जिसके करने से लौकिक सुख भी प्राप्त हो और निःश्रेयस् (मोक्ष) की सिद्वि हो वही धर्म है ।

विद्वानों का यह निर्विवाद मत है कि बुद्धिमान (ज्ञानी) पुरूष सदैव श्रेय मार्ग का ही अनुशरण करता है परन्तु श्रेय मार्ग का अनुसरण किस प्रकार होगा जबकि रहते तो हम इस लौकिक संसार में हैं तो भागवत का कथन है कि–

धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनः कायबुद्धिभिः ।

लोकान् विशोकान् वितरव्यथाऽनन्त्यमसङि्गनाम् ।। 2

जब मन, वाणी, शरीर और बुद्धि से व्यक्ति स्वधर्म का आचरण करता है तब उसका वह धर्म उसे स्वर्गादि शोक रहित दिव्य लोकों में पहुँचा देता है, किन्तु यदि वह धर्म निष्काम (बिना फल प्राप्ति की इच्छा) से करता है तब वह अनन्त निःश्रेयस् को प्राप्त करता है । श्रीमद्भगवतगीता में निष्काम कर्म को भगवान कृष्ण ने सर्वोत्तम कर्म बताया है। यह तभी संभव है जब मनुष्य यह जान ले कि वह एक शरीर न होकर एक आत्मा है और आत्मा उस परमात्मा का एक अंश है अंश का सुख तो परमांश में समाहित होने में ही है । उसी परमांश में समाहित होने के प्रयत्न में ही समस्त कर्मों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का पालन स्वतः ही हो जाता है ।

याज्ञवल्क्य स्मृति में भगवान स्वयं कहते हैं–

अयं तु परमोधर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् । 3

---

1. वैशेषिक दर्शन – 1/2
2. भागवत – 4/14/15
3. या0 स्मृति तथा वृहद्योयिया0 – (1/7 – 1/34)

अर्थात् जिस योग क्रिया द्वारा आत्मा का साक्षात्कार किया जाता है, वही परम धर्म है । अर्थात् आत्मज्ञान ही सर्वोपरि है । इसी कथन को इस रूप में महामुनि आदि कवि बाल्मीकि जी अपने पवित्र ग्रंथ 'रामायण' में कहते हैं–

"सूक्ष्मं परमदुर्ज्ञेयः संता धर्मः प्लवंगम् ।

हृदयस्थः सर्वभूतात्मा वेद शुभाशुभम् ।।"1

महात्मा तुलसी इस आत्मज्ञान रूपी वेद प्रति पादित परम धर्म को धर्म की चरमावस्था बताते हुए कहते हैं–

"सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । दीपसिखा सोई परम प्रचंडा ।।

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा ।। तब भवमूल भेद भ्रमनासा ।।"2

सोहमस्मि (वह ब्रह्म मैं ही हूँ) यह जो अखण्ड वृत्ति (आत्मा) है वही उस परम प्रचण्ड तेज की दीपशिखा है इस प्रकार जब आत्मानुभव के सुख का सुन्दर प्रकाश फैलता है, तब संसार के मूल भेद रूपी भ्रम का नाश हो जाता है ।

वही विज्ञान रूपिणी बुद्धि आत्मानुभव के प्रकाश को पाकर हृदय में बैठकर उस जड़ चेतन की उलझी गांठ को खोलकर उन्हें पृथक कर देती है ।

इस प्रकार प्राणी (आत्मा) अंधकार (अज्ञान) से मुक्त हो जाता है और परम तत्व में विलीन हो जाता है ।

सनातन धर्म का आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार स्पष्ट हो गया । निष्कर्षतः सभी ग्रंथों ने क्रमशः परमार्थ तत्व की प्राप्ति को ही परम धर्म माना है ।

वेदों उपनिषदों, स्मृतियों तथा दर्शन शास्त्रों; पुराणों तथा आगमतन्त्रों में भी आत्मदर्शन आत्मचिंतन को ही विशुद्धतम धर्म माना है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच,

---

1. बा0 रा0 – 7/18 – 15
2. रा0 च0 मा0 7/118–1,2

तप आदि यम–नियम प्राणायामादि योग का भी सार, सर्वस्व गाढ़ सुस्थिर ध्यान समाधि–द्वारा नित्य सर्वत्र भगवत्‌दर्शन या परमात्म साक्षात्कार अथवा आत्म साक्षात्कार है । इसी को वेदान्त सार भी कहा गया है ।

सनातन धर्म का सांस्कृतिक अर्थ – जगद्‌गुरु रामानुजाचार्य के अनुसार सनातन धर्म के सनातन नियम संस्कारित होने के कारण प्रकृति के नियमों से संबंध रखते हैं । सांगोपांग वेद एवं तत्प्रतिपादित धर्म की अविच्छिन्न परम्परा आज भी धरातल पर विद्यमान है इसी परम्परा का नाम संस्कृति है"।[1] सनातन संस्कृति का (जन्म) वेद प्रतिपादित प्रथम धर्म से हुआ–

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्या सन्ति देवाः ।।"[2]

यज्ञ के द्वारा यज्ञपुरुष की देवताओं ने पूजा की वे प्रथम धर्म थे । ऐसा यज्ञ करके या प्रथम धर्म का पालन करके देव महिमा से मण्डित और स्वर्गलोक के वासी हुए, जहाँ पहले से साध्य और देव विद्यमान थे । देवों की प्रेरणा से मनुष्यों ने भी यज्ञ किया ।

प्रथम धर्म में यज्ञ से यज्ञ होता था । सृष्टि रचना के बाद वही प्रथम धर्म सनातन धर्म बन गया। यज्ञ शाश्वत नियम है जिसके नियामक नियन्ता जगत पिता परब्रह्म परमेश्वर हैं । पुरुष सूक्त ने कालयज्ञ की ओर संकेत किया है जिसमें वसन्त–घी ग्रीष्म ईंधन एवं शरद् को हवि का रूप प्रदान किया गया यथा–

"यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।। 3

---

1. धर्माअनुशीलन – लेख (कल्याण धर्मांक पृ0 19)
2. ऋग्वेद पुरूष सूक्त – 10/90/16
3. धर्मद्रुम (धर्म की व्युत्पत्ति) पृ0 4

इस काल यज्ञ में सरस वसन्त सृष्टि रूपी हवन कुण्ड में ग्रीष्म द्वारा प्रज्ज्वलित प्राणाग्नि को घी द्वारा प्रदीप्त करती रहती है । यह काल यज्ञ निरन्तर चल रहा है इसके अभाव में सृष्टि ही समाप्त हो जाएगी । कालान्तर में देवों द्वारा कृत यह यज्ञ सृष्टि निर्माण के उपरान्त पृथ्वी पर मनुष्यों ने संस्कार के रूप में ग्रहण किया । 1

ऋग्वेद में धर्म नियम या व्यवस्था का द्योतक है इसमें आचरण संबंधी नियम भी द्योतित होते हैं ।

"धर्माणि सनता" ऋत (ईश्वरीयनियम) या सदाचार या सत्य के नियमों का पालन ही प्रथम धर्म यज्ञ का उद्‌देश्य है जिसके करने से मनुष्य दिव्य शक्तियों को प्राप्त करता है ।

अथर्ववेद में धर्म का अर्थ धार्मिक संस्कारों से अर्जित गुणों के रूप में प्रयुक्त हुआ है :-

"ऋत सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।

भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं जले ।।"2

अर्थात् ऋत (नियमपालन) सत्य और तप को वैदिक ऋषि बहुत महत्व दे रहा है, इभी प्रकार धर्म के साथ श्रम और कर्म को ऊँचा स्थान प्राप्त है वीरता और धनवल तो बल है ही ।

इसमें धर्म का अर्थ पुण्यफल है । वैदिक साहित्य में धर्म को धार्मिक विधि, धार्मिक क्रिया, निश्चित नियम या आचरण संबंधी नियमों के रूप में अभिव्यक्त किया गया । तत्पश्चात उपनिषद् साहित्य में धर्म वैदिक अर्थों के अतिरिक्त वर्णाश्रम धर्मों के रूप में भी प्रयुक्त हुआ काल क्रमानुसार धर्म शब्द का अर्थ व्यापक हेता चला गया एवं

---

1. ऋग्वेद – 3/3/1
2. अथर्व0 - 11/9/14

मानव जाति के आचार–विचार का परिचायक बन गया ।

मानव जीवन का प्रत्येक क्षण धर्माचार में समाहित हो गया । पुरुषार्थ चतुष्टय के द्वारा मानव जीवन को क्रमशः (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के द्वारा व्यवस्थित रूप में स्थापित कर दिया गया । हमारी सनातन संस्कृति हमें अज्ञान से ज्ञान की ओर जाने की प्रेरणा देती है–

"असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय

मृत्योर्मामृतं गमयेति ।"1

मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अंधकार (अज्ञान) से प्रकाश (ज्ञान) की ओर ले चलो मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो । तात्पर्य यह है कि हमारी सनातन संस्कृति वह है जो मनुष्यों के चरित्र और नैतिक भावनाओं को परिष्कृत कर विकसित करे जिससे प्रत्येक मनुष्य के हृदय में विद्यमान आत्मज्ञानाग्नि प्रदीप्त होकर अन्तर में अद्भुद् प्रकाश भर दे, सद्दिशा दिखाए, सत्गति दे एवं सत्य लक्ष्य तक पहुँचाये।

जैसा कि पूर्व में विदित हो चुका है कि महर्षियों ,द्वारा अनन्त अपौरूषेय वेदों को चार विभागों (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्) तथा छः अंगों (शिक्षा, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प) तथा चार उपांगों (धर्मशास्त्र, पुराणैतिहास, न्याय, मीमांसा) के द्वारा समस्त वेदवाङ्मय को अलंकृत किया । श्री राघवाचार्य जी के अनुसार– भारतो वेदवाङ्मयः सुरक्षित वेद वाणी को रखने का गौरव भारत को प्राप्त है। भारत के धर्मनिष्ठ समाज ने वंश परम्परा तथा गुरुपरम्परा दोनों प्रकार से इसे अक्षुण्ण रखा है । वंशतः जहाँ हम आदि मानव संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं, वहाँ गुरुपरम्परा से हमने गुरुपरम्परागत उपदेश को जीवित रखा है, वेद और धर्म–दोनो का सम्बन्ध गुरू परम्परागत उपदेश से है । गुरुपरम्परागत उपदेश ही सम्प्रदाय हैं वेद की जितनी

---

1. वृहदा0 – 1/3/28

शाखाएं है वेद के उतने ही सम्प्रदाय हैं। ये सम्प्रदाय श्रौत हैं । धर्मशास्त्रों को स्मृति कहते हैं । इनकी भी अलग–अलग परम्परायें हैं। पुराणों और आगमों को भी स्मृति की कोटि में गिन लिया जाता है। इनकी भी अलग–अलग परम्परायें हैं । उपनिषदों में अलग–अलग ब्रह्मविद्यायें मिलती हैं प्रत्येक ब्रह्मविद्या की अपनी परम्परा है । इन समस्त परम्पराओं एवं सम्प्रदायों की गणना धर्म के अन्तर्गत होती है । इस युग के आरम्भ होने से पूर्व ही महर्षि वेदव्यास ने वेदों को व्यस्त तथा वेदान्त को सूत्रबद्ध करके धर्म के प्रवृत्ति परक एवं निवृत्तिपरक समस्त सम्प्रदायों का सामंजस्य स्थापित कर दिया था।''

इस सामंजस्यस्थापन में उन्होनें जिस मीमांसा पद्धति का आश्रय लिया था, उसमें कर्ममीमांसा और दैवत–मीमांसा के बाद उनके सूत्रग्रन्थ को ब्रह्ममीमांसा का पद मिला था । कर्म मीमांसा के सूत्रकार थे महर्षि जैमिनि, दैवत–मीमांसा के सूत्रकार थे महर्षि काशकृत्स्न ।

जैसा कि कहा गया है–

''कर्मदेवता ब्रह्मगोचरा सा त्रिधोद्भभौ सूत्रकारतः ।

जैमिनेर्मुनेः काशकृत्स्नः बादरायणादित्यतः क्रमात् ।।'' 1

महर्षि जैमिनि ने धर्म मीमांसा के बारह अध्यायों में वेदविहित कर्म की मीमांसा की । महर्षि काशकृत्स्न ने दैवतमीमांसा के चार अध्यायों में क्रमशः देवताओं के स्वरूप, उनके भेद, उनकी उपासना तथा उनकी उपासना के फल की मीमांसा की । महर्षि बादरायण व्यास ने चार अध्यायों में ब्रह्म की मीमांसा की । कर्म साध्य धर्म है और ब्रह्म सिद्ध धर्म है । दैवत मीमांसा साध्य धर्म को सिद्ध धर्म से जोडने वाली कड़ी है । इस प्रकार बीस अध्याय के मीमांसा शास्त्र को एक शास्त्र मानकर महर्षि बोधायन, टंकमुनि एवं आचार्य द्रमिण ने कर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड के सामंजस्य का प्रतिपादन

---

1. कल्याण धर्मांक पृ0 – 19

किया । (कल्याण धर्मांक पृ019)।

इस प्रकार हमारे पूर्वज महर्षियों ने प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त किया तथा पुरुषार्थ चतुष्टय को मानव जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया । अर्थ और काम को धर्म नियन्त्रित कर उनहोंने मानव के लिए धर्ममय जीवन का विधान किया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में साध्य धर्म का अनुष्ठान और सिद्ध धर्म का चिन्तन करता हुआ साधक (मनुष्य) अपने धर्मभूत ज्ञान को पूर्ण रूप से विकसित कर अपने स्वरूपगत सनातन धर्म को अनुभव करने में समर्थ होता है।

जैसा कि पूर्व में मैंने उल्लेखित किया कि यज्ञ ही प्रथम धर्म था संस्कारगत उसी भाव को लेकर मनुष्य अपनी जीवन यात्रा में धर्मप्राणित ज्ञान को सर्वाधार, सर्वात्मा, सर्वनियंता, आनंदसिंघु भगवान की ओर अभिमुख करता है, इस आभिमुख्य की पूर्ति आत्मसमर्पण यज्ञ में होती है । जिसके सम्पन्न होने पर मनुष्य उस चेतन बिन्दु परमतत्व का साक्षात्कार कर लेता है जिसके फलस्वरूप प्रभु आनन्द विभु आत्मा को स्वयं में सदा के लिये विलीन कर आनन्दानुभूति रूप धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं ।

यही हमारी सनातन संस्कृति है जिसे चिरकाल तक इसी प्रकार जीवित रखा जाएगा । मानव समाज में सनातन परम्पराओं को अक्षुण्ण रखना ही सनातन धर्म का सांस्कृतिक अर्थ है ।

सनातन धर्म का मानवीय अर्थ – किसी भी पदार्थ की स्वरूप निरुपिका सहजा शक्ति ही उस पदार्थ का सनातन धर्म है पदार्थ के उत्पत्ति काल से ही उसका सनातन धर्म उसमें विद्यमान रहता है । मनुष्य में यह सहजा शक्ति मानवता के रूप में विद्यमान रहती है । मनुष्य के पास जन्म से ही निम्न पदार्थ उपलब्ध रहते हैं:–

(1) मानव शरीर – (स्थूल, सूक्ष्म और कारण)

(2) इन्द्रियाँ – (पांच कर्म तथा पाँच ज्ञानेद्रियाँ)

(3) मन – (विचार और मनन करने का साधन)

(4) बुद्धि – (ज्ञान का संग्रह स्थल)

(5) आत्मा – (संचालक)

(6) परमात्मा – (विश्व संचालक)

ये सभी पदार्थ एक दूसरें में समाहित हैं जैसे परमात्मा आत्मा में आत्मा बुद्धि में बुद्धि मन में मनइन्द्रियों में तथा इन्द्रियाँ शरीर के भीतर विद्यमान रहकर परस्पर संगठित रूप से एक मानव शरीर का निर्माण करते हैं ।

मूलतः सृष्टि में तीन गुण विद्यमान हैं सत्व, रज और तम । सृष्टि की उत्पत्ति रजोगुण से होती है, सत्व गुण से उसका परिवर्धन होता है, तमोगुण से सृष्टि का संहार होता है । अतः जिस कर्म से रजोगुण एवं तमोगुण से निवृत्ति हो और सत्व गुण की वृद्धि हो वही धर्म है ।

इसी धर्म को मानवीय दृष्टिकोण से समझने के लिए हमें मानव चेतना को समझना होगा । मानव के चेतनात्मक अनेक स्तर हैं ।

पौराणिक शब्दावली में ये स्तर दो खण्डों में बाँट दिये गये हैं :– (1) आसुरी (2) दैवी । कहीं–कहीं इन्हें आसुरी, मानवी, एवं दैवी तीन खण्डो में बांटा गया है। तत्वज्ञान की भाषा में उसके तीन रूप तीन स्तर तथा तीन प्रवृत्तियाँ हैं (1) तामसी (2) राजसी सात्विकी आध्यात्मिक दृष्टि से इन्हें तीन अवस्थाएं कह सकते हैं ।

वे तीन अवस्थायें हैं – (1) विकृति (2) प्रकृति (3) संस्कृति ।

इनको हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं –

(1) विकृति – तामसी और आसुरी (2) प्रकृति – राजसी एवं मानवी

(3) संस्कृति – सात्विकी तथा दैवी

जो वृत्तियाँ या कर्म मानव को विकृति से प्रकृति एवं प्रकृति से संस्कृति की

ओर ले जाती हैं, वही यथार्थ धर्म हैं, जो मानव को ईश्वर से जोड़ती हैं वे मानवी वृत्तियाँ मानव का मानव धर्म हैं ।

वस्तुतः ईश्वर एवं मानव (आत्मा) का मिलन जिन गुणों नियमों आचारों एवं प्रवृत्तियों से होता है वही मानव धर्म है।

वैसे तो शास्त्रों पुराणों और धर्मग्रन्थों में मानव धर्म के अनेक लक्षण उपलब्ध हैं जिनका विवरण हम अगली कड़ी में करेंगे किंतु मूलतः मानव धर्म वह है जो हृदय को हृदय से जोड दे मनुष्य के अंदर यह भावना भर दे कि समस्त विश्व और विश्वगत समस्त प्राणी उसी सनातन प्रभु का विग्रह हैं और विश्व की सेवा ही प्रकारान्तर से प्रभु की सेवा है ।

हमारे वेद, उपनिषद्, इतिहास और पुराण तथा महात्मा तुलसी स्वयं यही बात कहते हैं कि परहित ही सबसे बड़ा धर्म है। निम्न श्लोक में व्यास जी अठारह पुराणों का सार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि –

अष्टादश पुराणेशु व्यासस्य वचन द्वयम् ।

परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।" (महाभारत)

अठारह पुराणों का तथा व्यास के दो वचनों का यही सार है कि परोपकार ही पुण्य है और परपीडा ही पाप है–

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई । परपीड़ा सम नहिं अधमाई ।।" (मानस)

परहित ही ईश्वरीय शाश्वत नियम है, वेद कहता है–

"मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।

माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।।" 1

---

1 – यजु0 13/27

ऋृत (ईश्वरीय नियम) का पालन करने के लिये हवायें मधुरतायुक्त बहती हैं । नदियाँ मधुर जलयुक्त होकर प्रवाहित होती हैं हमारे लिए औषधियाँ मधुरतायुक्त हों ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परहित के द्वारा आत्महित ही मानव का शाश्वत धर्म है यही धर्म का मानवीय अर्थ भी है ।

(ख) नानापुराणनिगमागम सम्मत सनातन धर्म के लक्षण

(धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य तथा अक्रोध)

महात्मा तुलसी दास जी द्वारा कथित 'नाना पुराण निगमागम' सम्मत सनातन धर्म के लक्षणों को जानने से पूर्व हमें यह जानना होगा कि वे कौन से ग्रंथ हैं जिनको महात्मा तुलसी ने 'नानापुराण निगमागम' कहा है । संक्षिप्त रूप से उनका क्रमबद्ध विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है–

(1) वेद (2) वेदांग (3) उपवेद (4) इतिहास और पुराण (5) स्मृति (6) दर्शन (7) निवंध तथा (8) आग्रम ग्रंथ ।

वेद – वेदों की संख्या चार है (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) वेदों को छः भागों में विभक्त किया गया है– (मंत्रसंहिता, ब्राह्मण ग्रंथ आरण्यक, सूत्रग्रंथ, प्रातिशाख्य, अनुक्रमणी) ।

जैसा कि पहले विदित हो चुका है कि यज्ञ ही प्रथम धर्म माना गया है तथा यज्ञों में चार मुख्य ऋत्विज होते हैं– होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता, ब्रह्मा,। ऋग्वेद के ऋत्विज को होता, यजुर्वेद के ऋत्विज अध्वर्यु, सामवेद वाले को उद्‌गाता तथा अथर्ववेद के ऋित्विज को ब्रह्मा कहते हैं । ये क्रमशः चारों दिशाओं में बैठते हैं । समाधि की अवस्था में जिस महर्षि ने जिस मंत्र का दर्शन किया वही उस मंत्र का ऋषि कहलाया क्योंकि वेदों का ज्ञान प्राप्त करना कोई साधारण बात नहीं थी अत्यन्त उग्र आराधना के द्वारा ही इनका ज्ञान ऋषियों द्वारा प्राप्त किया गया ।

ब्राह्मण–ग्रंथ– वेदमंत्रों का यज्ञ में कैसे उपयोग हो, ब्राह्मण ग्रंथो में इसी का विवेचन है इस समय जो ब्राह्मण ग्रंथ उपलब्ध हैं उनका विवरण इस प्रकार है – ऋग्वेद से सम्बन्धित (1) ऐतरेय ब्राह्मण और दूसरा सांख्यायन अथवा कौषीतकि ब्राह्मण । यजुर्वेद के दो भाग हैं (1) कृष्ण यजुर्वेद (2) शुक्ल यजुर्वेद ।

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय संहिता का मध्यवर्ती ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेद – शतपथ ब्राह्मण

(3) सामवेदीय – ताणड्य षडविंश, सामविधान, आर्षेय, मंत्रब्राह्मण, दैवताध्य, वंश, संहितोपनिषद्, जैमिनीय ब्राह्मण आदि ।

(4) अथर्ववेदीय – गोपथ ब्राह्मण ।

आरण्यक और उपनिषद् :–

ब्राह्मणों के जो भाग वन में पढ़ने योग्य हैं उनके नाम आरण्यक हैं । आरण्यकों का विस्तृतरूप उपनिषदों में मिलता है । वैसे तो उपनिषदों की संख्या 275 मानी गई है । पर मुख्य रूप से तेरह उपनिषद् हैं । जिन पर आचार्यों ने भाष्य लिखे हैं – ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, कौषीतकि और नृसिंह तापिनी । इनमें ईशावास्योपनिषद्, यजुर्वेद की मूल संहिता का चालीसंवा अध्याय है ।

श्रौत सूत्र ग्रंथ –

सूत्र ग्रंथों का निर्माण युग की आवश्यकता को देखते हुए उत्तर वैदिक काल से प्रारम्भ हुआ। सूत्र ग्रंथ कल्पशास्त्र के अंग माने जाते हैं। विष्णुमित्र ने ऋग्वेद प्रातिशाख्य में कल्प का अर्थ स्पष्ट किया है कि "कल्पो वेद–विहितानां कर्मणामानु–पूर्वकेण कल्पना शास्त्रम्" अर्थात् वेद में विहित कर्मों का क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र है । ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ–यागादि का विधान इतना विस्तृत बन गया कि उनको क्रमबद्ध करना आवश्यक हो गया ।

कल्पसूत्र मुख्यतया चार प्रकार के मिलते हैं । श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, तथा शुल्वसूत्र ।

प्रातिशाख्य :– प्रातिशाख्य एक प्रकार के वैदिक व्याकरण हैं चारों वेदों से सम्बन्धित

चार प्रकार के प्रातिशाख्य व्याकरण उपलब्ध हैं।

अनुक्रमणी :– वेदों की रक्षा तथा वेदार्थ का विवेचन अनुक्रमणी ग्रंथों का प्रयोजन है ।

वेदाङ्ग :– वस्तुतः वेद ज्ञान का शरीर है । शारीरिक अंगों की तरह वेद के हर अंग माने जाते हैं। इन अंगों के बिना वैदिक ज्ञान अपूर्ण रहता है ।

(1) वेद का नेत्र है ज्योतिष (2) कर्ण है निरुक्त (3) नासिका है शिक्षा (4) मुख है व्याकरण (5) हाथ हैं कल्प और (6) पैर है छन्द ।

उपवेद – प्रत्येक वेद का एक उपवेद हैं । ऋग्वेद का उपवेद अर्थवेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है ।

इतिहास ग्रंथ :– इतिहास ग्रंथों तथा पुराणों में वेदार्थ का पूरा विवेचन हुआ है। इतिहास–पुराणों को वेदों का उपांग कहा जाता है । इनमें मुख्य ग्रंथों में महर्षि बाल्मीकि की रामायण तथा वेदव्यास की महाभारत है । इनके अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, योग वाशिष्ठ आदि अनेक ग्रंथ हैं। महाभारत में ही श्रीमदभगवदगीता है जो कि भगवान श्रीकृष्ण की अमृतवाणी के रूप में चिरकाल तक मानव जाति का कल्याण करेगी ।

पुराण :– पुराण चार प्रकार के हैं । (1) महापुराण (2) पुराण (3) अतिपुराण (4) उपपुराण। इनमें से प्रत्येक की संख्या अठ्ठारह बताई जाती है । सर्वसाधारण में महापुराणें को ही पुराणों के नाम से जाना जाता है । इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं –

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुण और ब्रह्मण्डपुराण ।

पुराणों में वेदों के सभी पूर्वोक्त विषय विस्तार से प्रतिपादित हैं ।

दर्शन— दृश्यते यथार्थतया वस्तु पदार्थ ज्ञानमिति दर्शनम्, के अनुसार तत्वज्ञानसाधक, शास्त्रों को दर्शनशास्त्र कहा जाता है ।

इनकी संख्या छः है— (1) वैशेषिक (2) सांख्य (3) योग (4) न्याय (5) पूर्वमीमांसा (6) उत्तर मीमांसा ।

स्मृतियॉ :— सनातन धर्म के लक्षण, कर्म, कर्तव्यों का विस्तृत विवेचन महर्षियों की स्मृतियों में किया गया है । इसीकारण इन्हें धर्मशास्त्र भी कहा जाता है । मुख्य रूप से इक्कीस महर्षियों की स्मृतियाँ प्रकाश में आती हैं — मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हरीत, औशनस, आगिंरस, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, वृहस्पति, पराशर व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वशिष्ठ, प्रजापति आदि ।

निबन्ध ग्रंथ:— ये भी एक प्रकार के स्मृति ग्रंथ हैं । स्मृतियों एवं पुराणों में ध ार्माचरण के जो निर्देश हैं उनका ही इनमें विस्तार से संकलन हुआ है । इसीलिए ध ार्मशास्त्र के विद्वान इन्हें स्मृतियों के समान प्रमाण मानते हैं ।

आगम या तन्त्रशास्त्र:— वेदों से लेकर निबंध ग्रंथों तक की परम्परा को निगम कहा जाता है । इसी के समान जो दूसरी अनादि परम्परा है उसे 'आगम; कहा जाता है । आगम के दो भाग हैं— दक्षिणागम (समयमत) ओर वामागम (कौलमत) सनातन ध ार्म में निगम तथ आगम (दक्षिणागम) दोनों को प्रमाण माना जाता है । श्रुतियों में ही दक्षिणागम का मूल और पुराणों में उनका विस्तार हुआ है इस आगम शास्त्र का विषय है — उपासना । 1

आगम ग्रंथों के तीन प्रकार हैं ।

वैष्णवागम:— देवता का स्वरूप, गुण, कर्म, उनके मंत्रों का उच्चार, मन्त्र, ध्यान, पूजाविधि का विवेचन आगम ग्रन्थों में होता है । वैष्णवागम स्मृति के समान प्रमाण माना

---

1. कल्याण — धर्मांक वर्ष 40 अंक 1 के पृ0 सं0 311—315 से संकलित

जाता है । वैष्णवागम में पंचरात्र तथा बैखानस दो प्रकार के ग्रंथ मिलते हैं ।

शैवागमः– भगवान शंकर के मुख से अठ्ठाईस तन्त्र प्रकट हुए, ऐसा कहा जाता है । उपतन्त्रों को मिलाकर इनकी संख्या 208 होती है ।

शाक्तागमः– इनमें सात्विक ग्रंथों को तन्त्र या आगम राजस को यामल तथा तामस को डामर कहा जाता है । सृष्टि के प्रारम्भ से ही राजस, तामस स्वभाव के प्राणी रहे हैं । दैत्य, दानव, असुर अथवा उनके समान स्वभाव वाले मनुष्यों को भी साधन तो मिलने ही चाहिए । अतः इनके लिए इन राजस, तामस ग्रन्थों का निर्माण हुआ । असुरों की परम्परा का मुख्य शास्त्र वामागम है ।

चूँकि आगम का तात्पर्य 'आगमन' है इसलिए इसके पश्चात जितने ग्रंथों का आगमन हुआ उन्हें आगम ग्रंथों में शामिल कर लिया गया उनमें से प्रमुख हैं – पंचतन्त्र, हितोपदेश, नीतिग्रंथ आदि । अभिप्राय यह है कि रामचरित मानस में जो कुछ कहा गया है, वह उन्हीं समस्त धर्माधार ग्रन्थों के अनुकूल हैं। उपनिषदों तथा दर्शन शास्त्रों में आत्मज्ञान (अध्यात्मविद्या तथा ब्रह्म विद्या) के अतिरिक्त वर्णाश्रम धर्मों के कर्तव्यों का भी उपदेश निहित है । वैदिक धर्म प्रायः आज्ञास्वरूप है । वेद की आज्ञा दो प्रकार की है । पहली विधिपरक दूसरी निषेधपरक । विधिपरक को ग्रहण कर निषेध परक को त्यागने का वेद आदेश करता है । तात्पर्य यह है कि इस सृष्टि में गुण और दोष दोनों विद्यमान हैं विद्वान गुणों को ग्रहण कर लेते हैं तथा दोषों को त्याग देते हैं। वेद की आज्ञा है– "सत्यं वद । धर्मंचर । मातृ वेदो भव । पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव" आदि अर्थात् इनके विपरीत आचरण मत करो । महात्मा तुलसी का भी यही कथन है –

"जड़ चेतन गुन दोषमय विस्व कीन्ह करतार ।

संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार ।।" (मानस)

यहाँ पर संत का अर्थ है सज्जन अर्थात सद्गुणों से युक्त सदाचारी विवेकी मनुष्य विकार रहित गुणों को ग्रहण करते हैं ।

निगम सम्मत सनातन धर्म लक्षण :–

धर्मशास्त्रों में मानव के प्रातः जागरण से लेकर रात्रि में सुषुप्ति तथा स्वप्न तक के सारे विधान निर्दिष्ट हैं। जन्मान्तरीय स्वरूप का परिज्ञान भी इनके अध्ययन से होता है । इनके द्वारा निर्देशित कर्मों के अनुसार आचरण करके मनुष्य के लोक तथा परलोक दोनों सुधर जाते हैं । महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्मृति में कहते हैं कि धर्म के पाँच उपादान हैं ।

"श्रुति स्मृतिः सदाचारः स्वस्यच प्रियमात्मनः ।

सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ।।"1/7/11

(1) वेद (2) स्मृति (3) सदाचार (भद्रजनो के आचार व्यवहार) (4) जो आचरण आत्मा (परमात्म प्रकाश) को प्रिय लगे तथा विवेकसम्मत हो (5) उचित संकल्प से उत्पन्न इच्छा।

इस संदर्भ से यह ज्ञातव्य है कि धर्मशास्त्रों में जो कहा गया है उसका आधार वेद ही हैं । किन्तु काल के साथ–साथ वैदिक कर्मों एवं मान्यताओं में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा किन्तु भावों में व्याप्त सदाचार की परिभाषा मनुस्मृति में इस प्रकार की गई है ।

"तस्मिन देशे य आचारः परम्पर्य क्रमागतः ।

वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्चयते ।।"1

चारों वर्णों, चारों आश्रम, एवं वर्णाश्रम से हीन जाति वालों के लिये निज

---

1. कल्याण – धर्मांक वर्ष 40 अंक 1 के पृ0 सं0 311–315 से संकलित

परम्परागत, प्राचीन सुसंस्कृत कर्तव्य या आचार ही सदाचार है । सदाचार (अहिंसा, शौच, सत्य आदि) को मनु ने शाश्वत धर्मलक्षणों की श्रेणी में रखा है । यही सदाचार वेदों में ऋत (ईश्वरीय नियम) के रूप में प्रयुक्त हुआ है । तुलसीदास जी के राम (परब्रह्म) अपने द्वारा प्रतिपादित नियमों (सदाचरण) से युक्त मनुष्य को ही अपना सच्चा सेवक मानते हैं –

"सोई सेवक प्रियतम मम सोई ।

मम अनुशासन मानै जोई ।।" (मानस)

यहाँ अनुशासन शब्द सचादार मूलक है दर्शन शास्त्रों में प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत् के नियामक धर्म तथा जीवन के अन्तिम लक्ष्य का निरूपण है । न्याय दर्शन के अनुसार धर्म के दो भेद हैं पहला सामान्य धर्म जिनका आचरण सभी को करना चाहिए । और दूसरा विशिष्ट धर्म जिनका संवंध व्यक्ति विशेष द्वारा पालनीय धर्म से हैं।

"निर्विशेषं न सामान्यम् एवं निःसामान्यं न विशेषः ।"

किसी भी सामान्य धर्म का विकास उसके विशेष रूप में सदा हो सकता है । विशेष धर्म की स्थिति भी सामान्य धर्म के बिना असम्भव है । मनुष्य के सामान्य धर्म सदाचार में निहित हैं जैसे– विवेक विचार, सुमति, बीस प्रकार की मर्यादायें, शौच, इन्द्रिय निग्रह, सत्य, अक्रोध, विद्या, दान आदि विशिष्ट धर्म के कुछ उदाहरण हैं । विशिष्ट धर्म है एकपत्नीव्रत, पतिव्रत भ्रातृत्व, मातृभक्ति, पितृभक्ति, सेवकत्व आदि ।

गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में इन दोनों धर्मों के उत्कृष्ट उदाहरण चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किये हैं, जिनमे श्रीराम सामान्य धर्म के अभूत पूर्व आदर्श हैं, तथा लक्ष्मण, सीता, हनुमान आदि विशिष्ट धर्म के अनुकरणीय पात्र हैं ।

योग दर्शन के आचार्य महर्षि पतंजलि यमनियमों द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध को धर्म की संज्ञा देते है। यम नियमों के रुप में धर्म–लक्षणों की परिभाषा देते हुए कहते हैं:–

"अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

शौचसन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमः ।।" (योग वाशिष्ठ)

अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम हैं । इनको सामान्य धर्म कहा जा सकता है। इनका पालन सबको करना चाहिए ।

शौच (बाहर भीतर की शुद्धि), सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर भक्ति ये नियम हैं कुछ अपवादों को छोड़कर इन्हें विशिष्ट धर्मों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

तुलसीदास जी यमनियमों को उल्लेखित करते हुए कहते हैं कि–

भगति निरूपन विविध विधाना। छमा दया दम लता बिताना ।

सम जम नियम फूल फल ग्याना । हरि पद रति रस वेद बखाना ।।" (मानस)

अर्थात् समस्त ज्ञान, विज्ञान भक्ति, यम, नियम, क्षमा, दया आदि धर्मो के फलों का प्रभुपदप्रीति ही मधुर रस है ।

इस प्रकार यम नियम, प्राणायाम समाधि इत्यादि के अभ्यास द्वारा ध्यान की परमावस्था की प्राप्ति को दार्शनिक शास्त्र मोक्ष कहते हैं और तुलसीदास जी हरिभक्ति रस कहते हैं ।

इतिहास ग्रंथों में मूल ग्रंथों के रूप में महर्षि बाल्मीकि रचित रामायण तथा महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत महत्वपूर्ण साक्ष्य ग्रंथ हैं। श्रीराम के चरित्र वर्णन में समस्त कवियों एवं साहित्यकारों ने महर्षि बाल्मीकिकृत रामायण को ही आधार बनाया । तुलसी दास जी ने भी यद्रामायणे निगदितं कहकर इसी तथ्य को प्रकट किया है ।

महर्षि बाल्मीकि राजा के धर्म के लक्षण प्रकट करते हुए कहते हैं –

"सामं दानं क्षमा धर्मः सत्यं धृति पराक्रमौ ।"1

---

1. बा0 रा0 – 4/17/29

साम (समता), दान क्षमा, धर्म, सत्य, धृति और पराक्रम इन लक्षणों से युक्त राजा ही नीच कर्मयुक्त मनुष्यों को दण्ड देता है ।

महाभारत के सम्बन्ध में तो यह लोकोक्ति प्रचलित है कि जो कुछ महाभारत में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। "अर्थात महाभारत में विश्व में व्याप्त समस्त धर्मों का उल्लेख है ।

महर्षि व्यास रचित यह ग्रंथ धर्म के लक्षणों से परिपूर्ण है । यह धर्म का ऐसा समुद्र है जिसमें प्रवृत्ति से निवृत्ति तक के सभी धर्मरूपी रत्न समाहित हैं इसमें डुबकी लगाने वाला अपनी इच्छानुसार रत्न चुनकर यह भवसागर पार कर सकता है । एक छोटा सा रत्न यहाँ भी प्रस्तुत है:-

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।

मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ।।" (महाभारत)

अर्थात् सत्य से धर्म की, योग से विद्या की, स्वच्छता से रूप की तथा सदाचार से कुल की रक्षा होती है ।

श्रीमद्गीता में भगवान कृष्ण ने चारों वर्णों, चारों आश्रमों के समस्त धर्मों को पुरुषार्थ चतुष्टय में निबद्ध करके मानव जाति को दिशा निर्देशित करते हुए 'स्वधर्म' पालन को सर्वोपरि धर्म बताया है इसके अतिरिक्त भगवान श्री कृष्ण सार्वजनिक धर्मों का उल्लेख इस प्रकार करते हैं :-

"अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।

दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।

तेजः क्षमा धृति शौचमद्रोहो नातिमानिता ।

भवन्ति सम्पदं दैवीमाभिजातस्य भारत ।।" (गीता – 16/1–3)

अभय (भय का अभाव), अतःकरण की पवित्रता, तत्वज्ञान के लिए ध्यान योग में निरन्तर दृढ़स्थिति, सात्विक दान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञादि कर्म, वेद शास्त्रों का पठन–पाठन, भगवत्कीर्तन, स्वधर्मपालन हेतु कष्ट सहन, शरीरेन्द्रियों सहित अंतःकरण की सरलता, मन, वाणी तथा कर्म से अहिंसा, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपकारी पर भी अक्रोधभाव, कर्ता होने का अभाव, चित्त की स्थिरता, निंदा न करना, सर्वभूतदया, इन्द्रियों का विषयासक्त होने पर भी अनासक्ति कोमलता, लोकशास्त्र, विरूद्धाचरण मे लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शौच, सर्वभूतों में शत्रुता का अभाव, स्वपूज्याभिमान का अभाव, हे अर्जुन दैवी संपदा प्राप्त पुरूष के ये लक्षण हैं ।

पुराण शास्त्र में धर्म का अन्वेषण करने पर धर्म के अनेक लक्षण, प्रकट होते हैं। अनेक स्थलों पर धर्म अनेक अर्थों में व्यवहृत हुआ है। पुराणों में मुख्य रूप से मनोवृत्तियों को धर्म कहा गया है । जैसे– दयाधर्म, सत्य धर्म, अहिंसापरमधर्म, क्रोध अपकृष्ट धर्म इत्यादि ।

इन्द्रियों के कार्य भी धर्म नाम से कथित हैं जैसे– चक्षु का धर्म – देखना नासिका का धर्म – आघ्राण मन का धर्म चिन्तन आदि ।

गुणों की क्रिया भी धर्म रूप में व्यक्त है – शीत का धर्म संकोचन, ताप, का धर्म सम्प्रसारण आदि ।

कपितय विशिष्ट व्यापारों को भी धर्म की संज्ञा दी गई – जैसे जातिगत धर्म, लौकिक धर्म, सामाजिक धर्म, दैहिक धर्म और मानसिक धर्म आदि ।

किन्तु जो सभी के लिये उपयुक्त हों उनधर्मलक्षणों का विवेचन महर्षि इस प्रकार करते हैं–

अद्रोहोऽप्यलोभश्च दमोभूतदया तपः ।

ब्रह्मचर्यं ततः सत्यमनक्रोशः क्षमा धृतिः ।।

सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतम दुरासदम् ।।"1

अद्रोह किसी का विरोध या ईर्ष्या न करना, लोभ न करना, बाह्येन्द्रिय निग्रह, प्राणिमात्र के प्रति दया, तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य, करूणा, क्षमा और धैर्य ये सनातन धर्म के दुर्लभ मूल हैं।

धर्म के इन दुर्लभ मूलों में तप का सर्वोत्त्म महत्व है, क्योंकि श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार तप ही सृष्टि का आधार है, तप के द्वारा ही ऋषियों ने वेदों का गुह्मज्ञान प्राप्त किया । पुराण मे ऐसाउल्लेख है कि प्रलय समुद्र में एकाकी बैठे सृष्टि के चिंतन में निमग्न परमात्मा के द्वारा उच्चरित वाणी का यह प्रथम उपदेश दो बार सुना गया । व्यंजनों के सोलहवें 'त' तथा इक्कीसवें प से बना यह उपदेश तप वही है जो निष्किंचन त्यागियों का परमधन कहा गया है–

"सचिन्तयन द्वयक्षरमेकदाम्भ स्युपाश्रणोद् द्विर्गदितं वचो विभुः ।

स्पर्शेषु यत्षोडशामेकविशं निष्किंचनानां नृपयद् धनं विदुः ।।"

तप के महत्त्व को तुलसीदास जी व्याख्यायित करते हुए कहते हैं–

"तप बल रचइ प्रपंचु विधाता । तपबल विष्णु सकल जग त्राता ।

तपबल सभुं करहिं संहारा । तपबल सेषु धरइ महि भारा ।।"2

आगम सम्मत सनातन धर्मलक्षण – महर्षि विश्वामित्र अपनी स्मृति में उल्लेख करते हैं। कि –

---

1. श्रीमद् भा. – 2/9/6

2. रा0 च0 मा0 – 1/73/3–4

" यमार्या क्रियमाणां हि शंसन्त्यागमवेदिनः ।।"

स धर्मों यं विगर्हन्ति तम धर्म प्रचक्षते ।।"

अर्थात् आगम तत्व को जानने वाले आर्यजन जिस कर्म की प्रशंसा करके अनुष्ठान करते हैं वह धर्म है। और जिन कर्मों की निंदा करते हैं उन्हें अधर्म कहते हैं।

वेदाज्ञा विधि तथा निषेधपरक है। जो विधि को ग्रहण करते हैं उन्हें दक्षिणागम सम्मत कह सकते हैं, किन्तु जो निषेधात्मक कर्मों की और अग्रसर होते हैं उन्हें वामागम सम्मत कहना उचित होगा । दक्षिणागम का उद्गम स्थल वेद ही है। जिनका उल्लेख संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र, पंचरात्र पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रों में मिलता है। मनुस्मृति का कथन है–

आपो नरा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

ता यदस्यायनं पूर्वं तन नारायणः स्मृतः ।।" 1

नारायण नाम का तात्पर्य निखिलजीव का परम आश्रय है । उसी नारायण के चरणों का आश्रय लेकर वैष्णव भावधारा फैल गई है – जो उत्तर भारत को पल्लवित कर दक्षिण में सुदूर सागर तट तक मानव मात्र के कल्याण के लिये भक्तिबीज का वपन कर रही है। उसी के फलस्वरूप अगणित संत, साधक चूड़ामणि तथा शाश्वत भावना के प्रतीक परम आचार्यों का अभ्युदय हुआ है ।

मनु का यह कथन ऋग्वेद के इस मंत्र की व्याख्या स्वरूप प्रतीत होता है–

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चक्षुराततम् । 2

समस्त रूप, रस गंध में निरवच्छिन्न सर्वाश्रय परमात्मा के आनन्द स्वरूप के

---

1. मनु स्मृ0 – 1/10
2. ऋग्वेद – 1/22/20

अनुस्मरण में विष्णु भावना समुल्लसित होती है। इस सत्य का आश्रय लेकर वैदिक आराधना की प्रवृत्ति है – यही वैष्णव भावधारा या धर्म है। वैष्णव भावधारा रूपी, धर्म, ईश्वर भक्ति, प्रभु शरणागति, यज्ञेश्वर की पूजा, नित्य, नैमित्तिक, काम्य या निष्काम कर्म विष्णु को समर्पित होने पर ही पूर्ण फल प्रदान करते हैं ।

श्री विष्णु के चरणाश्रित भक्तों के लिए यह धर्म नित्य, सनातन सार्व–जनिक, सार्वभौमिक मानव धर्म है । देवर्षि नारद, वेदव्यास बाल्मीकि, श्री शुक देवादि ने साधना से, चिन्तन से, भगवद्भावना से, प्रेरणा से सुरसरि की धारा के समान सर्वलोकपावन इस वैष्णव भाव धारा को मानव के हृदयांगण में अवतरित किया ।

उस परम सनातन विष्णु (परब्रह्म) के मृत्युलोक में अवतरण का संदेश इसी वैष्णव भाव धारा की ही देन है । इस भावधारा से अभिभूत जन भगवान की अनंत लीला, अनन्त धाम, अनन्त प्रकाश और अनंत महिमा के संवंध में संदेहरहित विश्वास का परिचय देकर प्राकृत लोकों में उसके दर्शनार्थ उदग्रदृष्टि होते हैं । ईश्वर की अनेक रूपों में आराधना होती है, द्विभुज, चतुर्भुज, अष्टभुज, सहस्रभुज तथा भू–लीला आदि से परिप्रेक्षित श्री नारायण रूप में ,श्रीराम जानकी, श्री राधा कृष्ण के रूप में । श्री भगवान का यह सगुण रूप नित्य है पार्षद नित्य है, धाम नित्य है और उनकी लीला भी नित्य है, समय–समय पर प्रभु का प्राकट्य–अप्राकट्य होता है ।

शाण्डिल्य विद्या और सूत्र, नारदभक्तिसूत्र महाभारत के नारायणीय और पंचारित्रक व्यूहविचार, गौतमीय तन्त्र तथा तापनी श्रुति आदि में प्रभु की सनातन लीला केजिस वैचित्र्य का विकास हुआ है, वह एक विराट साहित्य है। इस साहित्य को वित्जन पंचरात्रिक, पौराणिक, तान्त्रिक शास्त्र आदि की संज्ञा देते हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी आगम (तन्त्र) शब्द का प्रयोग शायद इसी की

कल्पना के फलस्वरूप किया होगा । भगवान श्री राम को परब्रह्म रूपविष्णु का अवतार मानकर इस तथ्य को और भी प्रमाणित कर दिया–

"भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउतन भूप ।

किये चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ।" (मानस)

प्राचीन दर्शन परमाणुवादी वैशेषिक का 'विशेष' सांख्यदर्शन का तत्व संख्यान, परम नैयायिकों का युक्तियुक्त 'अनुमान' योग साधकों का योग पूर्व मीमांसकों का दैवत खण्ड और वेदान्तियों का सम्बन्धाभिधेय प्रयोजन से सभी वैष्णव भाव धारा में यथायोग्य मर्यादा से युक्त स्थान प्राप्त कर उस परम पुरूषोत्तम के संधान में प्रवृत्त होकर समाहित हो गये । तत्पश्चात उसी भक्ति की धारा प्रवाह में श्री रामनुजाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, बल्लभाचार्य, बलदेव विद्याभूषण आदि आचार्यों ने वेदान्त सूत्रों पर भाष्य करके दार्शनिक विचार को प्रतिष्ठित किया ।

प्रधानतः उनके भाष्यों में अनात्मा, जड़–जीव और जीवात्मा, परमात्मा और उनके नित्य पार्षद भक्तों को लेकर विचार किया गया है । इससे सृष्ट जगत, सृष्टा परमेश्वर और आराधक जीव संबंध निरूपण करने में विभिन्न प्रकार के मतवाद प्रकट हुए । रामानुज का विशिष्टाद्वैत, श्री निम्बार्क का द्वैताद्वैत, श्री माध्वाचार्य का द्वैत, श्री बल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत तथा श्री बलदेवाचार्य का अचिन्त्यभेदाभेदवाद विचारणीय है।

इस सनातन भक्तिभाव की धारा में मुख्य रूप से सनातन धर्म के निम्नलिखित लक्षणों का विवेचन मिलता है । श्रीमद्भागवत में उन परम सनातन धर्मों का उल्लेख करते हुए महर्षि वेदव्यास कहते हैं कि–

"कृपालुरकृतद्रोहसितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ।

सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ।।

कामाक्षुमितधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिंचनः ।

अनीहो मितभुख शान्तः स्थिरोमच्छरणोमुनिः ।

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतियाञ्चितङ्गुणः ।।"

अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारूणिकः कवि ।।" (श्रीमद् भा0–2/9/6)

वैष्णव के शरीर में विष्णु भगवान की गुणावली संक्रमित होती है। वैष्णव क्षमाशील, हिंसा रहित, सहिष्णु, सत्यप्रिय, निर्मल, समभाव, निरूपाधि, कृपालु, अक्षुब्ध, स्थिर बुद्धि, संयतेन्द्रिय, कोमल स्वभाव, पवित्र, अकिंचन, कामना रहित, मिताहारी, शान्त, प्रभुशरणागत, अप्रमत्त, गम्भीराशय, निरभिमानी, सम्मानकारी, बन्धु–भावापन्न, करुण स्वभाव तथा सत्यदृष्टा होते हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस इसी सनातन भाव से ओतप्रोत है ।

नाना पुराण निगम और आगम सम्मत सनातन धर्म के लक्षणों के रूप में हमें जिन गुणों की उपलब्धि हुई है, उनको सामान्य धर्मों (सबके लिये पालन करने योग्य) के रूप में प्रस्तुत करेंगे । सामान्य धर्मों की चर्चा हमारे वैदिक, औपनिषदिक, धर्मशास्त्रों, पुराणों वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत आदि में भिन्न–भिन्न रूपों में उपलब्ध है । वैदिक ऋषि आचार की संज्ञा देते है, तो धर्म शास्त्र तथा महाभारतादि सामान्य धर्म कहते हैं।

जैसे कि वृहस्पति स्मृति कहती है–

"दया क्षमाऽनसूया च शौचानायासमंगलम् ।

अकार्पण्यमस्पृहत्वं सर्वसाधारणानि च ।।

विष्णु पुराण की उक्ति है :–

क्षमा सत्यं दमः शौचं दानमिन्द्रय संयम : ।

अहिंसा गुरुशुश्रुषा तीर्थानुसरणं दया ।।

आर्जवं लोभशून्यत्वं देव ब्राह्मणपूजनम् ।

अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य उच्यते ।।

महाभारत के अनुसार :–

सत्यं दमस्तपः शौचं सन्तोषो ह्वीः क्षमाऽऽर्जवं ।

ज्ञानं दमो दान दया ध्यानमेवं धर्मः सनातनः ।

आनृशंस्यमहिंसा च प्रमादः संविभागिता ।

श्राद्धकर्मातिथेयं च सत्यमक्रोध एव च ।।

स्वेषु दारेषु सन्तोषः शौचं नित्यानसूयता ।

आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्मः साधारणो नृपः ।।"

इसी प्रकार देवलस्मृति कहती है:–

शौचं दानं तपः श्रद्धा गुरु सेवा क्षमा दया ।

विज्ञानं विनयः सत्यमिति धर्म समुच्चयः ।।

सदाचार की शिक्षा देते हुए महर्षि याज्ञवल्य कहते हैं कि–

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्म साधनम् ।।

इन सभी उद्धरणों में कुछ ऐसे लक्षण है, जो सभी महर्षियों की स्मृतियों में एवं पुराणों तथा दर्शन शास्त्रों में समान रूप से मिलते हैं वैसे तो धर्म के लक्षणों को एकत्रित करना साधारण मनुष्य के वश की बात नहीं है किंतु मनु ने अपनी स्मृति में जिन दस धर्मलक्षणों का उल्लेख किया है उनमें प्रायः इन सभी का सार निहित है–

"धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।। 1

महर्षि पंतजलि का योग दर्शन भी यम नियमों सहित इन्हीं दस लक्षणों में समाहित प्रतीत होता हैं । महर्षि यम–नियमों की परिभाषा देते हुए लिखते हैं–

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

शौचसंतोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधान नियमः ।।

इस प्रकार सामान्य धर्मों का जो संग्रह एकत्रित हुआ है उनका विवेचन इस प्रकार है–

"सत्य, ब्रह्मचर्य, दया, अहिंसा, क्षमा, दान, अस्तेय, माधुर्य, यज्ञ, स्वाध्याय, शौच, अक्रोध, इन्द्रिय निग्रह, शम (मनोनिग्रह), दम, समता, तप, विद्या (विज्ञान), धी (तत्वज्ञान), धृति, गीतोक्त दैवी संपदायें तथा भागवत सम्मत 30 धर्म लक्षण, आदि इन समस्त लक्षणों के समुद्र में से कुछ मोतियों को चुनकर हम उनका विस्तार से उल्लेख करेंगे जो निम्न है–

1. धृति 2. क्षमा 3. दम 4. अस्तेय 5. शौच 6. इन्द्रिय निग्रह 7. धी 8. विद्या 9. सत्य 10. अक्रोध ।

धृति धर्म – धृति का अर्थ है धैर्य । इस लक्षण के विषय में अन्य शास्त्रों के उद्गार स्मरणीय हैं । भगवान श्री कृष्ण ने धृति की गणना अपनी विभूतियों में की है । धृति

---

1. मनुस्मृति – 6/92

को धारण करने वाला धीर कहलाता है । आदि कवि बाल्मीकि धृति धर्म का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि –

व्यसने वार्धक्रच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे ।

विभृशंश्च स्वया बुद्धया धृतिमान नावसीदति ।। 1

शोक में आर्थिक संकट में अथवा प्राणान्तकारी भय उपस्थित होने पर जो अपनी बुद्धि से दुख निवारण के उपाय का विचार करते हुए धैर्य धारण करता है । उसे कष्ट नहीं उठाना पड़ता ।

मनुष्य के जीवन में ऐसी अनेक परिस्थितियाँ आ जाती हैं जब भय का वातावरण बन जाता है । किंतु यह तो मनुष्य और पशु दोनों का एक सामान्य लक्षण है, परन्तु धृति (धैर्य) धर्म धारण करके मनुष्य इन परिस्थितियों का सामना करता है। और पशुत्व से मनुष्यत्व की श्रेणी का प्रथम चरण पार कर लेता है ।

श्री मद्भागवात के अनुसार – 'जिह्वोपस्थजयोधृतिः धृति, अर्थात् जीभ तथा जननेन्द्रिय पर जो संयम है वही धृति कहलाता है ।

धीर पुरूष का लक्षण महाकवि कालिदास कुमार सम्भव में बताते हुए कहते हैं–

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।

अर्थात् मनोविकार उत्पन्न होने के कारण उपस्थित होने पर भी जिसका मन विकृत नहीं होता वही धीर है ।

इन्हीं विचारों को तुलसीदास इस प्रकार कहते हैं–

---

1. बा०रा० – 4/7/9

"धीरज धरम मित्र अरू नारी ।

आपत काल परखिए हि चारी ।।" (मानस)

धृति धर्म की साधना करने वाला ही श्री राम और सीता के परम कल्याणकारी संदेश 'मर्यादा' का अर्थ समझ सकता है । क्योंकि श्री राम इसी धर्म को धारण कर 'मर्यादा पुरूषोत्तम' कहलाये ।

क्षमा धर्म –

'क्षमा वीरस्य भूषणं' क्षमा वीर पुरुष का अलंकार है । शक्तिमान होने पर भी जब मनुष्य अपनी शक्ति का अहंकार नहीं रखता और अपराधी के क्षमाप्रार्थी होने पर उसे क्षमा कर देता है । तब वह यथार्थ रीति से क्षमावान कहलाता है । भागवत पुराण के अनुसार क्षमा भगवान श्री कृष्ण की एक महान विभूति है । भगवान राम तो क्षमा के समुद्र हैं । क्षमा दया से उत्पन्न एक भाव है दयावान ही क्षमावान हो सकता है । महर्षि बाल्मीकि का कथन है कि –

"पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा ।

कार्य कारूण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ।।"1

अर्थात पापी को या पुण्यात्मा अथवा वध के योग्य अपराध करने वाले ही क्यों न हों इन सबके उपर श्रेष्ठ पुरूष को दया करनी चाहिए; क्योंकि ऐसा कोई नही जिससे अपराध न होता हो ।

ऋषियों ने क्षमा को परम धर्म कहा है क्योंकि विधाता की यह सृष्टि गुण–दोषों

---

1. बा0 रा0 – 6/113/44

का भण्डार है । तीन गुणों (सत, रज, तम) से जिसका भी निर्माण हुआ है उसके अंदर गुण और दोष दोनों होना स्वाभाविक है । इसी कारण क्षमा श्रेष्ठ धर्म है । महाभारत में क्षमा की महिमा इस प्रकार गाई गई है

"अतियज्ञविदां लोकान् क्षमिणः प्राप्नुवन्ति च ।

क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम् ।।

क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमायज्ञः क्षमा शमः ।

तां क्षमा तादृशी कृष्णे कथमस्मद्विधस्त्यजेत् ।।

यस्यां ब्रह्म च सत्यं च यज्ञा लोकाः प्रतिष्ठिताः ।।

क्षमतव्यमेव सततं पुरूषेण विजानता ।

यदा हि क्षमते सर्वं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।" (महाभारत)

अतः क्षमा धर्म है। क्षमा सत्य है, वही परमेश्वर हैं । क्षमा से ही जगत् की यह स्थिति है । यह तपस्वियों का तेज है एवं उनका ब्रह्म है । ब्रह्म, लोक, सत्य एवं यज्ञ सब क्षमा से ही प्रतिष्ठित है । इस प्रकार इसका त्याग नहीं करना चाहिए ।

महर्षि वेदव्यास तो क्षमावान की प्रतिष्ठा स्वर्ग के ऊपर बताते हैं यथा–

द्वाविमौ पुरूषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।

प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ।। [1]

दो पुरूष स्वर्ग के ऊपर प्रतिष्ठित हैं– एक जो समर्थवान होकर क्षमायुक्त है दूसरा जो दरिद्र होकर भी दान देता है ।

उद्योग पर्व में ऐसा भी वर्णन है कि जिस प्रकार तपस्वियों का बल तप है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानियों का बल ब्रह्म है, दुर्जनों का बल हिंसा है उसी प्रकार गुणवानों का बल क्षमा है। क्योंकि समर्थवान (गुणवान) यदि क्षमा करता है तो धर्म करता है । निर्बल

---

1. उद्धरण पुस्तक कल्पद्रुम के पृ0 सं0 123, 124 से उद्धृत

क्षमा करता है तो अपना कल्याण करता है । किंतु प्रत्येक परिस्थिति में क्षमा श्रेयस्कर नहीं होती, अन्याय सहन कर क्षमा करना एक बार अपने लिये तो ठीक हो सकती है किंतु यदि किसी अन्य असहाय प्राणी पर अन्याय होता देखकर अपराधी को क्षमा करता तो वह कायरता हैं, क्षमा, धर्म नहीं इसी तथ्य को महर्षि वेदव्यास महाभारत में प्रकट करते हैं कि–

"न श्रेयः सततं तेजो न नित्यं श्रेयसी क्षमा ।

तस्मान्नित्यं क्षमा तात पण्डितैरपवादिता ।।"

निरन्तर उग्रता भी श्रेयस्कर नहीं है और नित्य क्षमा भी श्रेयरूप नहीं है । अतः हे तात ! पण्डित जन नित्य की क्षमा का निषेध करते हैं ।

क्षमा धर्म श्रमसाध्य है । जो मनुष्य विवेक पूर्वक इस धर्म का पालन करता है वही आत्मतत्व का अनुभव कर सकता है । गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि रागद्वेष से युक्त मनुष्य को किसी प्राणी को दण्ड देने का अधिकार नहीं है, यह अधिकार तो समदर्शी, सर्वज्ञ, सर्व सृजनहार परमात्मा को ही है ।

विचारणीय तथ्य यह है कि यदि साधारण मनुष्य को यह अधिकार दे दिया जाय तो क्या होगा किसी विद्वान ने सत्य कहा है–

स्खलितः स्खलितो वध्य इति चेन्निश्चितं भवेत् ।

द्वित्रा यद्येव शिष्येरन् बहुदोषा हि मानवाः ।।

अर्थात् जो जो मनुष्य स्खलन करता है या अपराध करता है उस उसका वध कर देना चाहिए –यदि ऐसा निर्णय कर दिया जाए तो केवल दो चार मनुष्य ही शेष रह जाऐगे, क्योंकि मनुष्यों में दोष अनेक होते हैं ।

सामाजिक जीवन को ग्राह्य बनाने के लिए इन सबको साधारणतया सहन कर लेने की शक्ति का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है । अहिंसा धर्म भीक्षमा के बल पर ही जीवित है । क्योंकि क्षमावान व्यक्ति अहिंसाधर्म का पालन कर सकता है । इस क्षमा धर्म का पालन करके ही श्री राम 'शरणागतवत्सल– कहे जाते हैं ।

दम धर्म – **"इन्द्रियाणां जयोलोके दम इत्यभिधीयतते ।**

नादान्तस्य क्रियाः कश्चिद् भवन्तीह द्विजोत्तमाः ।।"1

अर्थात् इस लोक में इन्द्रियों के ऊपर प्राप्त की हुई विजय ही दम है । हे उत्तम ब्राह्मणों ! जो मनुष्य दमयुक्त नहीं है उसकी कोई भी क्रिया सफल नहीं होती ।

ब्रह्मचर्य धर्म के निर्वहन में दम धर्म का अत्यन्त महत्व है । दम ही ब्रह्मचर्य का मूल है । दम धर्म की महिमा का तैत्तिरीयोपनिषद् में विशद विवेचन किया गया है।

महाभारत में भीष्म दम धर्म के उत्कृष्ट उदाहरण हैं वे स्वयं इस धर्म की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं:–

"दमं निःश्रेयसे प्राहुर्वृद्धा निश्चयदर्शिनः ।

ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ।।" (महाभारत)

निश्चय ही दम मोक्ष का कारण है। ब्राह्मण के लिये दम विशेष रूप से सनातन धर्म कहा गया है ।

वैसे तो इन्द्रियों को विषयों की ओर आकृष्ट होने से रोकना ही दम है, किंतु वलात् इन्द्रियों का दमन भी श्रेयस्कर नहीं होता अतः इन्द्रियों के भीतर विद्यमान जो मन है, सर्वप्रथम उसको विषयासक्ति से बचाना ही सच्चे अर्थों में दम है । क्योंकि कर्मेन्द्रियों का दमन करके जो मनुष्य मन से उन विषयों का स्मरण करता है, उसे गीता 'मिथ्याचारी' कहती हे । इसलिये मनोनिग्रह सर्वोच्च दम धर्म है । जिनका मन विषयासक्त नहीं है, वही जितेन्द्रिय कहलाता है ऐसे जितेन्द्रिय के लिये मनुस्मृति कहती है–

"श्रुत्वा स्पृष्टा च दृष्टा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।

न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ।।" (मनुस्मृति)

---

1. मनु0 स्मृ0 – 2/93

जो मनुष्य सुनकर स्पर्शकर, देखकर खाकर एवं सूंघकर हर्ष या ग्लानि का अनुभव नहीं करता वही जितेन्द्रिय कहलाता है ।

अस्तेय धर्म – नारद स्मृति में स्तेय का लक्षण इस प्रकार दिया गया है –

उपायैर्विधैरेषां छलयित्वापकर्षणम् ।

सुप्तमत्तप्रमतेभ्यः स्तेयमाहुर्मनीषिणः ।।

अर्थात सुप्त, पागल और असतर्क मनुष्य से विविध उपायों द्वारा छल करके किसी वस्तु को ले लेना चोरी है" स्तेय है, और ऐसा न करना अस्तेय है । इसीलिए वैदिक काल से ऋषि मुनियों ने वेदों का यही उपदेश मनुष्यों को दिया है– "मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।" (ईशावास्य) अर्थात् किसी के धन की लालसा मत रखो ।

चोरी करने की वृत्ति का जन्म लोभ से होता है किसी प्रिय वस्तु को देखकर उसे प्राप्त करने की लालसा लोभ उत्पन्न करती है और लोभ के हृदय में आते ही व्यक्ति धर्म की सारी मर्यादायें तोड़ देता है ।

महाभारत के एक प्रसंग के अनुसार एक बार युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि पापों का मूल क्या है ? भीष्म ने बतलाया कि – 'एको लोभो महाग्रहों लोभात् पापं प्रवर्तते ।' अर्थात लोभ महाग्राह है जिससे अनेक छोटे–छोटे ग्रह (पाप) पैदा होते हैं । उन छोटे–2 ग्रहों में स्तेय भी एक पाप है जो लोभ रूपी महापाप के भीतर ही पलता है ।

छान्दोग्योनिषद् के अनुसार पाँच प्रकार के महापातक मनुष्य को घोर पतन के गर्त में गिराने वाले होते हैं ।

"स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबँश्च गुरूस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चैते–पतन्ति पंचमश्चा स्तैरिति ।। (5/10/9)

अर्थात् स्वर्ण की चोरी, शराबी, गुरूपत्नीगामी, ब्रह्महत्यारा ये चारों पतित होते हें और जो इन चारों के साथ संसर्ग रखने वाला है वह पाँचवाँ भी महापापी है ।

अस्तेय ही धर्म है मनुष्य यदि अपने मन के संयम द्वारा यह वृत्ति बना ले तो महर्षि पतंजलि के अनुसार उसके पास सब प्रकार के रत्न (धर्म) उपस्थित हो जाते हैं– "अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानाम्।"

शौचधर्म :– यह धर्म ब्राह्मभ्यन्तर धर्म है इसका तात्पर्य बाहर के अंगों की शुद्धि तथा अर्न्तमन की शुद्धि से है । ये दोनों शुद्वियाँ ही शौच धर्म कहलाती हैं।

प्रायः किसी भी अनुष्ठान, यज्ञादि से पूर्व हम भगवान पुण्डरीकाक्ष से बाहर भीतर की शुद्धि की प्रार्थना करते हुए उनका स्मरण सर्वप्रथम करते हैं ।

ऊँ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा ।

यःस्मेरत् पुण्डरीकाक्षः सः वाहाम्यन्तरः शुचि ।।"

शौच दो प्रकार का होता है पहला वाह्य अंगों की शुद्धि दूसरा लोभादि दोषों से अन्तरमन की शुद्धि ।

मनुस्मृति में सभी पवित्रताओं में अर्थ शुचिता श्रेष्ठतम है । क्योंकि–

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।

योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारि शुचिः शुचिः । 5/106

जिसके मन में परधन हरण का लोभ बना रहाता है वह कभी भी आभ्यन्तरिक दृष्टि से शुचि नहीं कहा जा सकता । मृत्तिका और जल से तो बाहरी गंदगी दूर की जा सकती है किंतु मन को निर्मल करने के लिए सत्य, अहिंसा, दमादि सद्गुणों को अपनाकर लोभादि को निकालना होगा ।

अतः सब प्रकार की शुद्धियों में न्याय से प्राप्त किये हुए धन की शुद्धि श्रेष्ठ है। जो मनुष्य न्यायार्जित धन से शुद्ध है । सत्यतः वही शौच धर्म का पालन करता है। शुद्धि की वृत्ति मनुष्य के भीतर दैवी भावनाओं की वृद्धि तथा आसुरी भावनाओं का नाश करती है ।

तन और मन दोनों का संबंध आहार से है इसलिए मनुष्य का आहार शुचिता में महत्वपूर्ण योगदान रखता हे । हम जो आहार ग्रहण करते है, उसका हमारी बुद्धि, स्मृति, धृति आदि मानसिक वृत्तियों से घनिष्ठ संबंध है । मनुस्मृति के अनुसार – दध्‍ नः सौम्यमक्ष्यमानस्य योऽणिमा स उद्ध्र्व, समुदिषतितत्सर्पिर्भवति । ''एवमेष खलु सौम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स उद्ध्र्व समुदौषति तन्मनोभवति''। 5/41 अर्थात जिस प्रकार दधिमंथन करने पर उसका जो अत्यन्त सूक्ष्म एवं लघु भाग ऊपर उठता है वह घृत है । उसी प्रकार भक्ष्यादि पदार्थों को खाने के बाद उसका अत्यन्त सूक्ष्मांश ऊपर उठता है उसी से 'मन' का निर्माण होता है।

इस प्रकार आहर की शुद्वि से मन शुद्ध होता है मन की शुद्धि से बुद्धि शुद्ध होती है बुद्धि की शुद्धता से आचरण में शुद्धता आती है और आचरण की शुद्धि से समस्त मानव जीवन पवित्र एवं शुद्ध हो जाता है ।

मनु इस तथ्य को अन्य प्रकार से भी प्रकट करते हैं–

''अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।

विद्यातपोम्यां भूताम्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ।।'' (मनुस्मृति 5/109)

जल के ,द्वारा शरीर के अवयव शुद्ध होते हैं, सत्य बचन के द्वारा मन की शुद्धि होती है, ब्रह्म विद्या एव तपादिके द्वारा जीवात्मा की शुद्धि होती है और ज्ञान के द्वारा बुद्धि शुद्ध होती है । ये सभी उपाय मनुष्य की भिन्न–भिन्न प्रकार की शुचिता या पविता के साधक हैं किंतु वास्तव में मन की शुद्धि सर्वश्रेष्ठ है । भगवान श्रीराम स्वयं कहते हैं– ''निर्मल मन जन सो मोंहिं पावा । मोंहिं कपट छल छिद्र न भावा'' ।

इन्द्रिय निग्रह :– मनुष्य के शरीर में दस इन्द्रियाँ हैं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच

कर्मेन्द्रियां किंतु एकादश इंद्रिय के रूप में मन इन सभी इन्द्रियों का सारथी है । जब तक मन को संयमित नहीं किया जाता तब तक इन्द्रियाँ विषयों की ओर आकृष्ट होती हैं। मन के विकारहीन होते ही इन्द्रियाँ स्वतः नियंत्रित हो जाती है। मन के द्वारा नियन्त्रित यदि किसी एक इन्द्रिय को भी स्वतन्त्रता मिल जाए तो वह एक छिद्र वाले जलपात्र की भांति शनैः शनैः समस्त जलपात्र को रिक्त करने में सक्षम है । अतः मन के द्वारा इन्द्रियों का नियंत्रण ही इन्द्रियनिग्रह है । मनुस्मृति में इन्द्रिय निग्रह के विषय में वर्णित है कि–

"इन्द्रियाणं विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।

संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ।। (2/88)

जिस प्रकार सारथी घोडों को सम्हालता है तब रथ चलता है उसी प्रकार विद्वान विषयों की ओर दौड़ती हुई इन्द्रियों को सम्हालने का यत्न करता है ।

विषयों के भोग से कभी इच्छा की समाप्ति नहीं होती इसीलिए विषयों की इच्छाओं का त्याग करने को गीता में सबसे बड़ा त्याग कहा गया है । जिस प्रकार अग्नि में घी डालने पर अग्नि और अधिक तेज होती है उसी प्रकार विषयों की अग्नि में भोग रूपी घृत डालने से वह अग्नि और अधिक प्रचंड हो जाती हे । इसीलिये स्मृतिकार का कथन है कि– "विषयेणु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः" विषयों की उपेक्षा से दोनों लोकों में सुख मिलता है।"

गीता में तो मन और इन्द्रियों को भगवान श्रीकृष्ण परस्पर आकृष्ट बताते हैं – "इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।" अर्थात् प्रथम तो यदि इन्द्रियाँ विषयासक्त हैं तो मन को खीचेंगी ही । और दूसरे मन यदि विषयों का मनन करता है तो इन्द्रियाँ विषयासक्ति के लिये विवश हो जाऐंगी ।

इन्द्रियों के विषयरत होने पर दूसरों की तथा अपनी दोनों की हानि होती है। अतः मन के द्वारा इन्द्रियों का वशीकरण ही इन्द्रिय निग्रह है ।

ईसा मसीह अपने गिरि प्रवचन में कहते हैं–

If the right eye scandalize thee pluck it out and cast it From thee. for it is expendient for thee that one of they member should perish rather than that the whole body be cast into hell. (कल्याण धर्मांक – पृ0 218 पर उद्धत)

यदि तुम्हारी दाहिनी आंख तुम्हें नीचा दिखाने का कारण बनती है तो उसे बाहर निकालकर दूर फेंक दो; क्योकि तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर को नरक में झोंका जाए इसकी अपेक्षा लाभ इसमें है कि तुम्हारे शरीर का एक अवयव नष्ट हो जाए ।

ईसामसीह की यह अमृतवाणी इन्द्रिय निग्रह के प्रति गहन सतर्कता का उत्कृष्ट उदाहरण है । किंतु शरीर के अवयव नष्ट करने पर भी यदि मन पुनः उन्हीं विषयों की ओर भागा तो ? इससे तो यही अच्छा है कि मन को नियंत्रित करने का प्रयत्न किया जाए । क्योंकि मन ही वह माध्यम है जिसमें उत्पन्न उत्कृष्ट इच्छायें हमें ब्रह्मज्ञान तक करा सकती हैं और मन की निकृष्टता नरक में झोंक सकती हैं ।

'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'

धी अथवा विज्ञान –

धी अथवा विज्ञान का अर्थ समझाते हुए अष्टावक्र जी अपनी गीता में कहते है। कि –

"मोक्षो विषयवैरस्यं बन्धो बैषयिको रसः ।

एतावदेव विज्ञानं यथेच्छसि तथा कुरू ।।"

विषयों में से रस का चला जाना ही मोक्ष है और विषयों में रस का होना ही बंधन है । विज्ञान इतना ही है । आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें ।

इस संसार में विषयों का चिन्तन मन के भीतर व्याप्त बीज काम का प्रतिफल है किन्तु यह काम ईश्वर के हृदय में संकल्प रूप में सदा विद्यमान है ऐसा ऋग्वेद में वर्णित है–

"कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

सतो बन्धुमसति निरभिन्दन् हृदा प्रतीच्या कवयो मनीषा ।"

तत्वदर्शियों ने सबके बन्धु इस काम का अपने हृदय में दर्शन किया । परमेश्वर के हृदय में सृष्टि की इच्छा की वह संकल्प रूप काम है । किंतु मानव के लिए काम की परिभाषा करते हुए महाभारत के वनपर्व में महर्षि वेदव्यास कहते हैं–

"इन्द्रियाणां च पंचानां मनसो हृदयस्य च ।

विषये वर्तमानानां या प्रीतिरुपजायते ।

स काम इति में बुद्धि कर्माणां फलमुत्तमम् ।।"

पाँच ज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, नासिका, कान, रसना और त्वचा) को पाँच विषयों (रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श) के सम्पर्क में आने से जिस आनन्द की अनुभूति होती है वही काम है ।

किन्तु काम का विषयजन्य आनन्द जीवित निर्वाह के लिये आवश्यक मानकर भोगने का आदेश भगवान कृष्ण गीता में देते है–

"तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञान विज्ञान नाशनम् ।। (3/41)

इन्द्रियों को जीत करके ही ज्ञानः विज्ञान को नाश करने वाले काम का दमन किया जा सकता है । तात्पर्य है कि काम (विषयानंद) जब सृष्टिक्रम में सहयोग के अतिरिक्त जब मन के आनंद का साधन बन जाये तब ज्ञान और विज्ञान दोनों नष्ट हो जाते हैं, फिर इसका जो परिणाम होता है उसको–

बताते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं कि–

"ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते ।

संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ।।

क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रशांद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ।।"1

विषयों का चिंतन करने वाले पुरूष की उन–उन विषयों में आसक्ति होती है, आसक्ति से कामना का उदय होता है, कामना की पूर्ति में बाधा उपस्थित होने पर क्रोध होता है, क्रोध से मूढत्व होता है, मूढत्व से स्मृति विभ्रम उपस्थित होता है, स्मृति का नाश होने पर बुद्धि का नाश हो जाता है एवं बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है ।

ये विषय यदि मन की विकृति बन जायें तो इतने भयानक हैं कि मनुष्य का पतन इनके चिंतनमात्र से ही हो जाता है।

विषयों के निष्काम भाव से भोग का ज्ञान ही विज्ञान है इसी धर्म को धी धर्म भी कहते हैं । (निष्काम का तात्पर्य है किसी भी भोग में आसक्ति का न होना)

अंग्रेजी में एक उक्ति प्रचलित है – The heart is the seat of god.

अर्थात् हृदय ईश्वर का निवास स्थान है । यदि प्रभु के निवास स्थान में मनुष्य विषयों को स्थान दे देता है तब उसका कल्याण कैसे संभव है गोस्वामी तुलसीदास जी भी यही कहते हैं कि–

"जब लगि हृदय बसत खल नाना । काम क्रोध मत्सर अभिमाना ।।

तब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि माथा ।।"

प्रत्येक मनुष्य के हृदय में ईश्वर का वास है परन्तु विषयासक्त मनुष्य को इस सत्य का ज्ञान नहीं होता किंतु जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य को हृदयस्थ ईश्वर की

---

1. गीता

अभिज्ञता होती है वही ज्ञान विज्ञान कहलाता है।

विद्या धर्म – "पावका नः सरस्वती" विद्या ही हमें पवित्र करती है । "नास्ति विद्या समं चक्षुः विद्या के समान कोई नेत्र नहीं विद्या शब्द की निरुक्ति करते हुए बताया गया है–

"विद्याद्यदाभिर्निपुणं चतुर्वर्गमुदारधीः ।

विद्यान्तदासां विद्यात्वं विदिर्जाने निरूच्यते ।।"1

जिन विद्याओं के कारण चतुर बुद्धि वाला मनुष्य धर्म–अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है वे ही विद्यायें कहलाती हैं ।

किंतु केवल अमुक विषयों की जानकारी ही विद्या नहीं है अपितु जो ज्ञान मनुष्य को राग, द्वेष, क्रोध और वैर आदि मानव मन की क्षुद्र वृत्तियों से मुक्ति दिलाये वही ज्ञान विद्या है ।

हितोपदेश में विद्या के संवंध में बड़ी उत्तम बात कही गई है–

"विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।

पात्रत्वाद धनमाप्नोति धनाद् धर्मः ततः सुखम् ।।"

विद्या से मनुष्य विनयी होता है विनयी होने पर समाज में विश्वास भाजन होता है। विश्वास पात्र होने पर स्वतः ही धन लाभ होने लगता है, धन के द्वारा वह धर्माचरण करता है और तब वह सुखी हो जाता है ।

तात्पर्य यह है कि सच्ची विद्या वही है जो मनुष्य को अंहकार के भाव से मुक्त कर विनयशील बना दे विनयशील तो वही होगा जो सत्य को जान जायेगा सत्य तो यह है कि समस्त ज्ञान और विज्ञान का कारणभूत वह परम तत्व है जो सृष्टि के कण–कण में विद्यमान है संसार की समस्त विद्यायें उसी एक तत्व से प्रारम्भ होकर उसी में समाहित हो जाती है अतः जो विद्वान उस समस्त विद्याओं के मूल को प्रकृति के

---

1. गीता – 2/62/63

कण–कण में देखने लगता है वही सच्चा विद्यावान कहलाता है और स्वतः ही प्रेममग्न और विनयी हो जाता है ।

कबीरदास जी का यह कथन स्वतः ही प्रमाणित कर देता है कि विद्यावान कौन है–

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ पण्डित भया न कोय ।

ढ़ाई अक्षर प्रेम का पढ़ै सो पण्डित होय ।।

सम्पूर्ण विद्याओं को जान लेने वाला पण्डित कहलाता है किंतु कबीर दास की दृष्टि में पण्डित वह है जो जीवमात्र को प्रेम करता है अर्थात् 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना रखता है ।

वास्तव में इस जगत् में अनेक ऐसे मनुष्य हैं जो बिना सत्यज्ञान के मात्र वेद पुराणादि बड़े–बड़े ग्रंथों को पढकर अपने को विद्वान मान कर अहंकार करते हैं किंतु उन तथा कथित तत्वज्ञानियों के अंतःकरण में नाना प्रकार की कामनाओं का ताण्डव नृत्य चलता रहता है परंतु बातों और तर्कों में कहीं पर ब्रह्मज्ञान (पाण्डित्य) में त्रुटि नहीं दिखती ।

कठोपनिषद् के अनुसार ऐसे ज्ञानियों के लिये मोक्ष का द्वार सदा बंद रहता है इसी कारण विद्या की निरूक्ति में पुरूषार्थ चतुष्टय के यथार्थ ज्ञान पर बल दिया गया है, आडम्बर करने का नहीं । श्रीमद्भागवत में पुरूषार्थ के यथार्थ को दर्शाते हुए महर्षि सूत्र कहते है। कि–

"धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।

नार्थस्य धर्मेकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ।।

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।

जीवस्य तत्तवजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ।।"[1]

---

1. भागवत – 1/2/9,10

धर्मपालन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है, अर्थप्राप्ति नहीं । अर्थोपार्जन का लक्ष्य धर्मसाधन है कामपूर्ति नहीं । कामपूर्ति का लक्ष्य जीवन यापन है, इन्द्रिय तृप्ति नहीं। जीवन का लक्ष्य तत्वज्ञान है स्वार्थपूर्ति नहीं । ये नियम पुरुषार्थ का यथार्थ ज्ञान कराते हैं । और यही ज्ञान जीवन का मार्ग प्रेय से श्रेय की ओर प्रशस्त करता है । यही यथार्थ विद्या है ।

गोस्वामी तुलसी दास तो उस मनुष्य को विद्यावान मानते हैं जिनका मन प्रभुचरणानुरागी है–

"सोइ सर्वग्य तग्य सोइ पंडित । सोइ गुन ग्रह विग्यान अखंडित ।।

दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाके पद सरोज रति होई ।। 1

सत्य धर्म :– तैत्तिरीय संहिता ने सत्य को साक्षात् परमेश्वर ही माना है – "सत्यं परं ऊँ सत्यं ऊँ सत्येन न सुवर्गाल्लोकाच्च्यवनते कदाचन सत ऊँ हि सत्यं तस्मात्सत्ये रमन्ते ।"

अर्थात् सत्य परमेश्वर है एवं परमेश्वर सत्य है सत्य के कारण लोग स्वर्गलोक से गिरते नहीं । सत्यभाषण संतों का स्वभाव है । अतः वे सत्य में ही रमण करते हैं। उपनिषद् कहते हैं :–

"तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् तेसामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ।।" (प्रश्नोपनिषद्)

प्रश्नोपनिषद् का यह श्लोक कहता है कि वह ब्रह्म रूपी आत्मा उन्हीं लोगों के द्वारा देखी जाती है, जिनमें तप, ब्रह्मचर्य एवं सत्य भरा हुआ है और जिनमें कुटिलता मिथ्या एवं माया नहीं होती ।

इसीलिये तैत्तिरीय उपनिषद् कहता है–

"सत्यंवद । सत्यान्न प्रमदितव्यम् ।"2 सत्यबोलो । सत्य से प्रमाद नही करना चाहिए।

---

1. रा0 च0 मा0 – 7/49–7,8
2. तैत्तिरीय उ0 – 2/11/1

"सत्यमेव जयते नानृतम......... ।।"1

अर्थात् सत्य की विजय होती है असत्य की नहीं । जगत् में सत्य ही ईश्वर है। वेद के इस वाक्य का अनुमोदन करते हुए महर्षि बाल्मीकि समस्त धर्मोका मूल सत्य को मानते हुए कहते हैं कि–

"दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च ।

वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत् ।।"2

दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद, इन सबका आश्रय सत्य है इसलिये सबको सत्य परायण होना चाहिए।

सत्परायणता एवं सत्यभाषण के लिये मनुस्मृति का कथन है कि–

"सत्यम् बूयात्प्रियं ब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेव धर्मः सनातनः ।। (मनुस्मृति)

सत्य बोलें, प्रिय बोलें किन्तु अप्रिय सत्य नहीं बोलें । प्रिय असत्य भी नहीं, बोलना चाहिए । यही सनातन धर्म है ।

तात्पर्य यह है कि मात्र सत्य भाषण से ही सत्य धर्म का पालन नहीं होता, उसके साथ अहिंसा का भाव अवश्य समाहित होना चाहिए । अन्यथा सत्य धर्म की यर्थाथता दूषित हो जाती है । उदाहरण के लिये मृत्यु सबसे अटल सत्य है, किंतु अचानक किसी व्यक्ति को उसके प्रियजनों की मृत्यु का समाचार सुना दिया जाय तो उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है । हमारे सत्यभाषण से किसी की आत्मा को यदि कष्ट पहुँचता है तो हमें मौन रहना चाहिए; क्योंकि असत्य और सत्य के बीच का रास्ता मौन ही है, इसी कारण

---

1. मुण्डक0 – 3/1/6
2. बा0 रा0 – 2/109/14

महर्षियों ने मौन के महत्व का बड़ा बखान किया है ।

महाभारत तो सत्य के उद्धरणों से भरा पड़ा है । भीष्मपितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि–

"नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परं ।

स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात्सत्यं न लोपयेत ।।" (महाभारत)

सत्य से बडा कोई धर्म नहीं और असत्य से बढकर कोई पाप नहीं है । सभी धर्मों का मूल सत्य है । इसीलिए सत्य का लोप कभी न करें ।

राजा हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर इसी धर्म का पालन करके भगवत्स्वरूप हो गये। अतः सत्य साक्षात परमेश्वर है ।

भाव यह है कि सत्य भी ईश्वर की भांति अनन्त है न तो कोई ईश्वर को पूर्णरूप से जान पाया है और ना ही सत्य की महिमा को हम अल्पज्ञ मनुष्यों के लिये तो इसका अंश रूप अपने जीवन में उतारना ही उस परम सत्य तक पहुँचने का मार्ग खोल देता है । सत्य से ही सारे धर्मों की प्रतिष्ठा है । इसका एक अंश भी यदि जीवन में आ जाये तो समस्त धर्मलक्षण स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं । असत्य का अपना कोई अस्तित्व नहीं, उसका आधार भी सत्य है । घोर असत्याचरण करने वाले को भी सत्य का आश्रय लेना पड़ता है जैसे यदि कोई असत्य बोलने की प्रतिज्ञा कर ले तो प्रारंभ उसे अपने माता–पिता के नाम और अपने असली नाम को बदलना होगा । कहाँ–कहाँ असत्य बोलेगा, परिणाम तो यह होगा कि उसकी पूरी दुनिया ही उलट–पलट जाएगी, उसका स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं रह जायेगा ।

महात्मा तुलसीदास भी इन्ही सब ग्रंथों का अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि–

'धरम न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।।

"सत्य मूल सब सुकृत सुहाये । (मानस)

सत्य पर आधारित सभी पुण्य कर्म शोभित होते हैं । असत्य को सबसे बड़ा अधर्म बताते हुए कहते हैं कि–

"नाहिं असत्य समय पातक पुंजा । गिरिसम होइकि कोटिक गुंजा ।।"(मानस)

'अर्थात् असत्य छोटा हो या बड़ा, वह तो पतन का मार्ग है । असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं । अपनी जगह यह तथ्य परम सत्य तथा प्रमाणित है, किंतु इस त्रिगुणात्मक मृत्युलोक में गुण और दोष दोनों का अपना–अपना महत्व है । "यद्भूतहितमत्यन्तम् तत्सत्यमिति धारणा" श्रीमद्भगवतगीता के अनुसार किसी भी कर्म का परिणाम परहित होना चाहिए । अर्थात् यदि हमारे असत्य बोलने से किसी के धर्म की रक्षा होती है तो वह असत्य भी सत्य से अधिक महान है । यह तो मनुष्य के विवेक और तत्वज्ञता पर निर्भर करता है कि कब क्या धर्म है और क्या अधर्म है।

अक्रोध – क्रोध मन का एक ऐसा अहंकार परिणित भाव है जो स्वार्थ के प्रतिहत होने पर उत्पन्न होता है । परिणामतः मन में अपराधी के प्रति हिंसा का भाव उत्पन्न हो जाता है । मन में विकृति आते ही वाणी कटु वचनों से अपवित्र होती है तत्पश्चात् भी क्रोध शांत न हुआ तो शारीरिक हिंसा होती है और जिसका परिणाम निश्चित ही मनुष्य को विनाश की ओर ले जाता है ।

हमारे धर्मशास्त्रों में काम, क्रोध और लोभ इन तीनों दुर्गुणों को नरक का द्वार कहा है इनमें से कोई एक दुर्गुण मनुष्य को स्वर्ग की ऊँचाई से रसातल में गिराने के लिए बहुत है । महाभारत के अनुसार क्रोध मनुष्य का शरीर निहित शत्रु है– "क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणाम् ।"1 किंतु नरक के इस द्वार से मुक्ति पाने का कोई

1. महाभारत वन पर्व – 206/32

तो मार्ग अवश्य होगा, इस शत्रु (क्रोध) पर विजय पाने का एक उपाय वृहस्पति स्मृति में इस प्रकार वर्णित है–

"वृहस्पति परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि सदा ।

"आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्तिता ।।"

अर्थात् दया न करने से असुर निन्दित हैं । प्रजापति ने असुरों को संकट से मुक्ति पाने के लिये दया करने को ही कहा ।

नरक के तीन द्वारों में से एक क्रोध को भी दया से ही जीता जा सकता है । बौद्ध धम्म पद में अक्रोध से क्रोध को जीतने का उपाय बताया गया है ।

भगवान श्री राम अनुज लक्ष्मण को इन तीन खलों का परिचय कराते हुए कहते हैं कि–

"तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरूलोभ ।

मुनि विग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ।।

लोभ के इच्छा दंभबल काम के केवल नारि ।

क्रोध के परूष वचन बल मुनिवर कहहिं बिचारि ।। 1

हे भ्राता काम, क्रोध और लोभ ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं । ये तीनों विज्ञान के धाम मुनियों के मन को भी पल भर में क्षुब्ध कर देते हैं, लोभ की इच्छा और दम्भ का बल है, काम को केवल स्त्री का बल है क्रोध को कठोर बचनों का बल हैं श्रेष्ठ मुनि विचार कर ऐसा कहते हैं ।

तुलसीदास जी का कथन है कि प्रभु श्री राम की कृपादृष्टि स्वरूप यदि ज्ञान का प्रकाश हृदय में व्याप्त हो जाये तो ये तीनों शत्रु उसी प्रकार भाग जाते हैं । जैसे सूर्य का प्रकाश देखकर उल्लू भाग जाते हैं–

"काम क्रोध मत्सर अभिमाना ।।

तब लगि बसत जीव उर माहीं । जबलगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं ।।" (मानस)

---

1. रामचरित मानस – (3/38)

जब प्रभु का प्रताप रूपी सूर्य (आत्म ज्ञान) हृदय में जाग्रत हो जाता है तो मनुष्य स्वतः ही काम क्रोधादि दुर्गुणों से मुक्त हो जाता है । भगवान शंकर माता पार्वती से कहते हैं –

"उमा जे राम–चरण रत विगत काम मद क्रोध ।

निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं विरोध ।।" (मानस)

जब समस्त संसार ही राममय है ऐसा ज्ञान हो जाए तो मनुष्य किस पर क्रोध करे किसका विरोध करे ?

गीता इसी बात को इस प्रकार कहती है–

"आत्मवत सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः ।।"

अक्रोध अहिंसा का ही एक रूप है; किंतु जिस प्रकार सत्य बोलना ही सत्य ध र्म का पालन नहीं है उसी प्रकार क्रोध न करना भी अक्रोध धर्म का पालन करना नहीं, क्योंकि परहित के लिए या न्याय के लिये क्रोध करना धर्म है । अन्याय देखकर या सहकर अपराधी को दण्ड न देना अधर्म है । यदि श्री राम क्रोध न करते तो रावण कैसे मरता ! क्रोध तो वीरों का बल है; परन्तु यह बल तभी तक है जब तक वह नियन्त्रण में है । जैसा कि पूर्व में मैने कहा कि गुण और दोष दोनों ही महत्वपूर्ण हैं परन्तु मनुष्य का विवेक ही इन्हें औषधि अथवा विष बनाने में सक्षम है ।

(ग) सार्वभौमधर्म के सर्वोत्तम लक्षण –

"सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।"

प्राणीमात्र सुखी रहें, सब नीरोग रहें, सबका कल्याण हो, कभी किसी को दुख न हो । भारतीय ऋषियों की यह सनातन भावना सार्वभौमिक है । इसी सनातन विश्वास और पवित्र भावना के आधार पर सम्पूर्ण विश्व टिका हुआ है । सनातन धर्म का यह सार तत्व भाव रूप में स्वयं ईश्वर स्वरूप है, जिस मनुष्य में इस भाव की यथार्थता आ जाती है । वह स्वयं ईश्वर रूप हो जाता है देश बदलता है काल बदलते हैं, परिस्थितियाँ भी बदलती है किंतु यह सर्वकल्याण की कामना भाषा और शब्दों के बदलने पर भी वही रहती है और यही तो सनातन धर्म का सार है ।

सृष्टिकर्ता परब्रह्म परमेश्वर ने सृष्टि की रचना कर अपनी वाणी वेद के द्वारा सचराचर जीव को जो उपदेश दिया उसके आधार पर ही यह समस्त जगत् के कल्याण की भावना प्रस्फुटित हुई–

"समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः ।

समानस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।" 1

अर्थात् तुम सब की चेष्टा निश्चय एक समान हो, तुम सबके हृदय एक समान हों । तुम सबका हृदय एक समान उदारता रखता हो, तुम सबका रहन सहन एक समान हो ।

वेद की इस ऋचा के एक–एक शब्द में वही परहित का भाव अव्यक्त है । हृदय की समानता का अर्थ है प्रेम और दया । जीव मात्र के प्रति प्रेमभाव रखना ही तो यह सिद्ध करता है कि हम स्थूल रूप से भिन्न अवश्य हैं किंतु सूक्ष्म चेतन तत्व रूप में हम सभी जीवों के भीतर विद्यमान है, वह उसी परमतत्व का प्रकाश विन्दु है, इसी कारण हमारे हृदय में एक दूसरे के प्रति उदारता और प्रेम के भाव भी होना चाहिए ।

---

1. ऋग्वेद – 10/91/4

अथर्ववेद में भी यही भाव प्रकट हुआ है । परमपिता अपनी संतानो से कहते हैं कि–

"अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनुचित्तेभिरेत ।

मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि ममयातमनुवर्त्मानसत ।।"1

मैं अपने मन से तुम्हारे मन को ग्रहण करता हूँ अनुकूल बनाता हूँ मेरे चित्त के अनुकूल अपने चित्त बनाकर मेरा अनुसरण करो । मैं तुम्हारे हृदयों को अपने वश में करता हूँ मेरे व्यवहार का अनुसरण करते हुए तुम मेरे साथ आओ ।

परमपिता रमेश्वर ने इस प्रकार समस्त जीव धारियों के लिये जिन विश्वकल्याण भाव मिश्रित एक ही धर्म बनाया, वही धर्म सनातन कहलाया । किंतु धर्म के इस मर्म का ज्ञान केवल मनुष्य को ही प्राप्त हो सकता है; क्योंकि मनुष्य जन्म कर्म प्रधान है । अन्य जितने भी जीव हैं, वे भोग योनियों मे जन्मने के कारण भोग प्रधान कहलाते हैं। इसी कारण मनुष्य जन्म में जीव जैसे कर्म करता है उसका अगला जन्म उसी आधार पर मिलता है । उपनिषदों, पुराणों, रामायणादि में ऐसा वर्णित है कि नीच कर्म करने वाले मनुष्य आत्मघाती होते हैं –

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।

ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।"2

ईशावास्योपनिषद् के इस श्लोक का आशय भी यही है कि जो कोई आत्मघाती (आत्मा को मलिन रखने वाले) लोग हैं वे मरकर उन लोकों (योनियों) में आते हैं जो असुरों (नीच) के लोक (योनियाँ) कहलाते हैं और अंधेरे (अज्ञान) से ढके हुए हैं ।

---

1. अथर्ववेद – 3/8/6
2. ईशावास्य उप0 – मंत्र – 3

किंतु जो सदाचरण युक्त मनुष्य हैं उनके लिए मुण्डकोपनिषद कहता है–

"यं यं लोकं मनसा संविभाति "विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्।

तं तं लोकं जयते तांश्चकामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ।।"

जिनका आचरण (अंतःकरण) शुद्ध है ऐसा आत्मवेत्ता मन से जिस लोक की कामना करता है और जिन–जिन कर्मों को चाहता है वह उस लोक (उत्कृष्टावस्था, स्वर्ग, मोक्ष आदि) को एवं कामों (आदर्शों) को प्राप्त कर लेता है ।

कर्म प्रधान विश्व में मनुष्य के लिए परमपिता ने धर्म का जो आधार प्रकट किया उसे वेद कहते हैं। यह परमात्मा की अनुपम कृपा का ही परिणाम हैं । वेद वेदांगादि में प्रेय से श्रेय तक की यात्रा का समुचित मार्गदर्शन है । जीव जब तक वेदशास्त्रों की आज्ञा के अनुकूल चलता है उसे स्वर्ग का आनंद इस संसार में प्राप्त होता है तथा मृत्युपर्यन्त मोक्ष की प्राप्ति होती है किंतु जब वेदाज्ञा का उल्लंघन कर मान के वशीभूत होकर इन्द्रिय भोग में लिप्त होकर मनुष्य स्वार्थ सिद्धि के लिये परपीडन करने लगता है तब उसका पतन निशचित हो जाता है ।

इस प्रकार पतनोन्मुख मनुष्य अनंत काल तक इसी संसार में एक योनि से दूसरी योनि में भटकता रहता है

गोस्वामी तुलसीदास जी दर्शनशास्त्र के उत्तरमीमांसा का अनुमोदन करते हुए कहते है। कि–

"इस संसार मैं, मेरा, तू और तेरा यही माया है सम्पूर्ण मनुष्य जाति इसी माया के वशीभूत हैं ।"[1]

---

1. मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहिं वस कीन्हे जीव निकाया । (रा0च0मा0)

परन्तु यह कथन तो छोटी बुद्धि वालों के लिये है जिनका हृदय विशाल है जिनका हृदय ईश्वर प्रेम से ओतप्रोत है वे तो यही कहते हैं –

"अयं निजः परोवेति गणनां लघुचेतसाम्।।" (हितोपदेश)

सर्वभूतों के प्रति ऐसी सद्भावना रखने के कारण ही सनातन धर्म सार्वभौम धर्म कहलाता है । इसको मानव धर्म कहना भी न्यासंगत है। सामवेद कहता है कि"मनुः कवि ।।90।।" अर्थात् भविष्य की योजना करने वाला ही वस्तुतः मानव है । इस तथ्य की सत्यता पुरूषार्थ चतुष्टय से प्रकट होती है; भविष्य की ओर एक–एक चरण बढाकर आयु के चार भागों तथा चार पुरूषार्थों के द्वारा प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर बढ़ना ही मानजीवन का परम कर्तव्य, धर्म तथा परम लक्ष्य है ।

इस परम लक्ष्य तक पहुँचने के लिये आरंभ से अंत तक जिन नियमों का आश्रय मनुष्य लेता है वही धर्म के लक्षण कहलाते हैं।

धर्म के प्रति जिज्ञासा मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है । मनुष्य ईश्वर प्रदत्त बुद्धि और विवेक से उस धर्म को जीवन में आचरित कर स्वयं अपना उद्धार करता है ओर उस परमपिता का कृपापात्र बनता है। चूँकि धर्म की धर्मी के साथ एकता होती है इसी कारण धर्म धारण से मनुष्य राग रहित हो जाता है । राग रहित होते ही मनुष्य स्वतः योगवित्, तत्ववित तथा प्रेमवित होकर कृतार्थ हो जाता है ।

धर्म सर्वतोमुखी विकास की भूमि है । राग द्वेष (दोष) रहित भूमि में ही योग रूपी वृक्ष लगता है और योग रूपी वृक्ष में ही तत्वज्ञान रूपी फल लगता है जो परमात्मप्रेम (सर्वभूत प्रेम) के रस से परिपूर्ण है ।

धर्म–बोध से शक्ति (कर्म), मुक्ति (ज्ञान) और भक्ति (प्रेम) उपलब्ध होती है । धर्मात्मा के जीवन में सतत् सेवा, त्याग, प्रेम की त्रिवेणी लहराती है । सेवा से जीवन, जगत के लिये, त्याग से अपने लिये तथा प्रेम से सर्वसमर्थ प्रभु के लिये उपयोगी होता है ।

वैसे तो मानव कल्याणार्थ धर्मलक्षणों का विवेचन पूर्व में किया जा चुका है किन्तु सार्वभौम धर्म के उन तथ्यों को यहाँ प्रकट करेंगे जिनका विवरण धर्म की सार्वभौमिता सिद्ध करेगा– मानवता या मनुष्यत्व मनुष्य का सहजप्राप्त धर्म है मानवता के विशेष रूप तुष्टि, पुष्टि, स्वस्ति, सम्पत्ति, धृति, क्षमा, रति, मुक्ति, दया, प्रतिष्ठा, कीर्ति एवं क्रिया आदि विश्व धारक प्रकृति के अंश होने के कारण सनातन एवं विश्वव्यापी हैं । प्रकृति की कौन सी कला जड़–चेतन पदार्थों की रक्षा करती है इसका सुन्दर विवेचन ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृतिखण्ड में इस प्रकार उपलब्ध है– प्रकृति का पुष्टिधर्म (शक्ति) विश्वगत पदार्थों की क्षीणता से रक्षा करता है ।

तुष्टि धर्म विश्व के पदार्थों की स्वरूप च्युति से रक्षा करता है । सम्पत्ति शक्ति विश्वगत पदार्थों की दारिद्रय (दुर्गति) से रक्षा करती है । धृति धर्म पदार्थों की विकृतियों से रक्षा करता है ।

क्षमा धर्म विश्व के पदार्थों की रोष एवं उन्माद से रक्षा करता है । रति कला पदार्थों की उद्वेग (अरति) से रक्षा करता है ।

मुक्ति धर्म विश्वव्यापी पदार्थों की अनैश्वर्य से रक्षा करता है ।

कीर्ति धर्म विश्व के पदार्थों की संकोच से रक्षा करता है । प्रतिष्ठा कला पदार्थों की उच्छेद से रक्षा करती है । मैत्री कला पदार्थों की द्वेष से रक्षा करती है । मुदिता कला पदार्थों की स्पर्धा से रक्षा करती है । तथा उपेक्षा कला पदार्थों की कलह से रक्षा करती है।"

सनातन धर्म के इन्हीं विभिन्न सार्वभौमिक रूपों की अन्यान्य पुराण भी अपनी प्राञ्जल भाषा में वर्णित करते हैं जिनके अनुसार धर्म की तेरह पत्नियाँ (शक्तियाँ) सदैव धर्म के साथ रहकर धर्मी की रक्षा करती हैं –

"श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ।

बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीमूर्ति धर्मस्य पत्नयः ।।

श्रद्धासूत शुभं मैत्री प्रसादभयं दया ।

शान्ति सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ।।

योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थ बुद्धिरसूयत ।

मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम ।।

मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नारायणवृषी ।"

धर्म की पत्नी (शक्ति) श्रद्धा से विश्व में शुभ (कल्याण) का संचार होता है । कल्याण की प्रतिष्ठा से विश्व में विद्यमान अकल्याण का नाश होता है । धर्म की पत्नी मैत्री से विश्व में प्रसाद (प्रसन्नता) का संचार होता है । प्रसन्नता का संचार उद्वेग को नष्ट करता है । 'दया' शक्ति से विश्व में अध्यात्म और आधिदैवत में अभय का संचार एवं भय का विनाश होता है । शान्ति शक्ति से विश्व में आनन्द का संचार होता है । क्रिया शक्ति से विश्व में क्रिया (उद्योग) का संचार तथा आलस्य का विनाश होता है। उन्नति शक्ति से दर्प (उत्साह) का संचार तथा अनुत्साह का नाश होता है । बुद्धि शक्ति से इष्ट (सुख) की प्राप्ति तथा अनिष्ट (दुख) का नाश होता है । मेधा शक्ति से विश्व में स्मरण का संचार तथा अपस्मार का विनाश होता है । धर्म की पत्नी तितिक्षा से क्षेम का संचार तथा अक्षेम नष्ट होता है । ह्री शक्ति से विनय का संचार होता है। धर्म की शक्ति मूर्ति से विश्व में सब गुणों की उत्पत्ति होती है। मूर्ति माता ने ही पिण्डाविच्छेदेन नर तथा ब्रह्माण्डावच्छेदेन नारायण को जन्म दिया है । अतः जिस मानव में मूर्ति शक्ति का विकास होगा उसके सभी दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं ।

मानवता के सार्वभौमिक रूप – न्याय दर्शनकार मनुष्य के सनातन धर्म को दो भागों में विभक्त करते हैं – (1) सामान्य धर्म (2) विशेष धर्म । सामान्य धर्मों में पूर्व वर्णित समस्त धर्म लक्षण हैं जैसे– धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह ह्री, विद्या अक्रोध, अनुसूया (परगुणों से प्रसन्न होना), मांगल्य (विश्व कल्याण कामना) अनायास, अकार्पण्य, अस्पृहा, दान, रक्षा, सेवा, हितवादिता, स्वाध्याय, माधुर्य, श्रद्धा, आस्तिक्य, मैत्री, करुणा, मुदिता आदि ।

विशेष धर्मों में एकपत्नी व्रत, पतिव्रत, भ्रातृत्व, पितृत्व, मातृत्व, ब्राह्मणत्व, क्षत्रित्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व, सेवकत्व, सेनापतित्व, राष्ट्र सेवा, गुरु सेवा, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, संन्यास आदि प्रधान हैं ।

मानवता का जब भी दर्शन होगा, तब उसके किसी विशेष रूप में जैसे पत्नीत्व, पतित्व, मातृत्व, पितृत्व, करूणा, मैत्री, मुदिता इन्हीं समन्वित रूपों में होगा; क्योंकि ये सारे सामान्य धर्म इन्हीं विशेष धर्मों का आश्रय लेकर आचरित होकर सदाचार कहलाते हैं और सदाचार (ऋत) ही तो ईश्वर प्रणीत, सनातन धर्म है । यही सनातन नियम भी है ।

परब्रह्म परमेश्वर ने सम्पूर्ण मानव जीवन को प्रेय तथा श्रेय धर्मों के आधार पर चार वर्णों तथा चार आश्रमों में विभक्त करके समाज में समुचित मर्यादाओं तथा न्याय संगत व्यवस्था से बद्ध कर दिया, जिसके फल स्वरूप मानव जीवन क्रमबद्ध होकर प्रेयमार्ग से यात्रा आरम्भ कर श्रेय पथ तक पहुँचकर उसी परम तत्व में सदा के लये विलीन हो जाता है । वर्णाश्रम धर्म ही वैदिक या सनातन धर्म के उन लक्षणों को धारण करने वाले धर्मों को उत्पन्न करते हैं यही धर्म का धर्मत्व है । धर्म की यह सार्थकता वेद द्वारा निर्धारित स्वधर्म पालन तथा निष्काम कर्मों से ही सिद्ध होती है । गीता में ऐसा वर्णित है – **"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः" (4 / 13)**

कि ईश्वर निर्मित चारों वर्ण गुण कर्मानुसार विभक्त हैं । यह श्लोक ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में **"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद"** (10/99/12) से उद्धृत है ।

इसी आधार पर स्वायम्भूमनु ने अपनी संहिता में स्पष्ट किया है कि "वर्णाश्रम आचारवता पुरूषेण परः पुमान ।

"विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तोषकारणम् ।।" (मनुसंहिता–10/5)

अपने वर्ण और आश्रम के विहित कर्मों को करते हुए उस परमपुरूष की आरा–धना की जाती है । उनको सन्तुष्ट करने का और कोई उपाय नहीं है । ऐसा ही विष्णु पुराण में भी वर्णित है । वि0पु0 – 3/8/9

वर्ण व्यवस्था का कारण बताते हुए वृहदारण्यक उपनिषद् कहती है कि –

"स नैव व्यभवत । तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्मं ।

तदैतत क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तसमाद्धर्मात परं नास्ति ।

अतोऽबलीयान् बलीयांसमाशसते धर्मेण यथा राज्ञा ।।"

पहले केवल ब्रह्मज्ञानी थे । किंतु वे अकेले सृष्टि संचालन व्यवस्था में सक्षम नहीं थे । तब उन्होंने श्रेयः स्वरूप सबके कल्याण पद उस धर्म की सृष्टि की । यह धर्म ही क्षत्रिय का क्षत्री अर्थात नियन्ता है। अतः धर्म से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं हैं । राजा की सहायता से जैसे कोई दूसरे को जीत लेता हैं उसी प्रकार धर्म की सहायता से दुर्बल मनुष्य सबको जीतने की कामना करता है ।

सार्वभौम व्यवस्था – वर्णाश्रम व्यवस्था युक्ति सह तथा विज्ञान सम्मत तथा अनुभव सिद्ध है । सर्वत्र, सर्वकाल में कुछ व्यक्ति बुद्धिजीवी बल जीवी, व्यापार जीवी तथा श्रम जीवी होते हैं। अतः चारों वर्णों की उपयोगिता स्वतः ही सिद्ध हो जाती है उदाहरणार्थ जिस प्रकार मस्तिष्क का कार्य ज्ञानार्जन हाथों का कार्य कर्म करना उदर का कार्य भरण पोषण तथा पैर सेवा के लिये है । इनमें से किस कार्य का महत्व कम है ये कहना

कठिन है; क्योंकि शरीर का प्रत्येक अवयव अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है । उसी प्रकार चारों वर्ण समाज रूपी शरीर के चार अवयव हैं । इनमें से किसी एक की भी कमी सामाजिक अव्यवस्था के लिये पर्याप्त है । चारों वर्णों के कर्मों का विभाजन कर ईश्वर ने उनका कार्यक्षेत्र भी निश्चित कर दिया है । जैसे ब्राह्मण का कार्य प्रत्येक काल में विद्यार्जन तथा विद्यादान है । इसके अतिरिक्त ब्राह्मण वर्ण में ब्राह्मणत्व तब आता है जब वह सदाचारी हो जैसा कि महाभरत के वनपर्व में कहा गया है कि—

"सत्यं दानं क्षमाशीलं आनृशंस्यं तपो घृणा ।

दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ।।"1

सत्य, दान, क्षमा, शील, मृदुता, तप और दया जिस मनुष्य में दिखाई दे वही ब्राह्मण हैं ।

तात्पर्य यह है कि जन्म, संस्कार, वेदाध्ययन और संतति इनमें से कोई ब्राह्मणत्व का कारण नहीं है । केवल सदाचार ही मनुष्य को ब्राह्मणत्व प्रदान करता है ।

क्षत्रिय का धर्म बताते हुए मनुस्मृति कहती हैं कि—

"प्रजानां रक्षणं दानं इज्याध्ययनमेव च ।

विषयेष्वप्रसक्तिं च क्षत्रियस्य समादिशत् ।।"2

प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना अध्ययन करना विषयों में अनासक्ति होना आदि धर्म क्षत्रियों के लिये निर्धारित किये गये ।

वैश्य वर्ण के लिए निम्नलिखित धर्मों का निर्धारण था —

"पशूनां रक्षणं दानं इज्याध्ययनमेव च ।

वणिकपथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ।।"3

---

1. म0भा0 वनपर्व — 180/21
2. मनु0 — 1/89/90
3. मनु0— 1/91

पशुओं का पालन करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, लेनदेन करना, खेती करना आदि ।

इन तीनों वर्णों के लिये सामान्य धर्म थे यज्ञ, वेदाध्ययन दान इन तीन धर्मों की समानता के कारण तीनों वर्ण मिलकर द्विज कहलाये तथा इन्हीं कर्मों के कारण द्विजत्व की रक्षा तथा राष्ट्र की समृद्धि निर्धारित थी । शूद्र वर्ण का धर्म बताते हुए मनु कहते हैं कि –

"एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।।"1

प्रभु ने शूद्रों के लिये एक ही धर्म बनाया बिना असूया (डाह) के द्विज वर्णों की सेवा करें । भगवान श्री कृष्ण ने गीता मे चारों वर्णों के इन्हीं धर्मों को स्वधर्म की संज्ञा दी हैं । "भगवान श्री कृष्ण तो यहाँ तक कहते हैं कि स्वधर्म पालन करते हुए यदि मनुष्य मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता है । तो वह उसके लिये श्रेयपद की प्राप्ति करा देती है ।" गीता के अनुसार जीव की कोई भी अवस्था ऐसी नहीं जहाँ से उसकी मुक्ति संभव न हो इसलिए स्वधर्म कितना ही विगुण हो तो भी उसी में निर्धारित कर्मो को निष्ठापूर्वक करके मनुष्य को अपना विकास करना चाहिए । क्योंकि किसी दूसरे का स्वधर्म किसी दूसरे के लिए श्रेष्ठ होने पर भी भयानक परिणाम देता है ।

इस प्रकार वर्ण का सिद्धान्त सम्पूर्ण समाज के लिये था । सामाजिक दृष्टि से एक व्यक्ति के अधिकार एवं कर्तव्य की शिक्षा देना वर्ण धर्म था । किन्तु आश्रम का सिद्धान्त व्यक्ति के निजी जीवन के लिए था । मनुष्य अपना व्यक्तिगत जीवन किस प्रकार जिये तथा उसका आध्यात्मिक लक्ष्य क्या है ? आश्रम धर्म इन शंकाओं एवं समस्याओं का समाधान करता था । विभिन्न आश्रमों के अन्तर्गत जीवन की विभिन्न

---

1. मनुस्मृति – 1/92

अवस्थाओं के लिये स्पष्ट कर्तव्य निर्दिष्ट हैं जो मनुष्य पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं । पुरूषार्थ चतुष्टय के आधर पर आश्रमों की संख्या चार निर्धारित की गई –

(1) ब्रह्मचर्य (2) गृहस्थ (3) वानप्रस्थ (4) संन्यास आश्रम ।

जीवन का प्रथम चतुर्थांश ब्रह्मचर्याश्रम कहलाता था । यह जीवन का प्रारंम्भिक काल है । सम्पूर्ण जीवन की अट्टालिका की नींव इसी आश्रम में रखी जाती थी । अनुशासन एवं संयमों का पालन करते हुए अक्षय ज्ञानार्जन करना इस आश्रम का उद्देश्य था ।

ब्रह्मचर्य शब्द "वृहत्वाद बृंहणत्वात् वा, आत्मैव ब्रह्म इति गीयते" से बनता है ।

आत्मा ही ब्रह्म है । ब्रह्म आत्मा के रूप में ही समस्त संसार का वृंहण या प्रसारण करता है । आत्मज्ञान ही सभी प्रकार के अंधकारों का उन्मूलन कर सकता है।

एतदर्थ ब्रह्मचर्याश्रम में गुरूगृह में शास्त्रज्ञान प्राप्त किया जाता था । ज्ञान के द्वारा ब्रह्मलीन होने का मार्ग यही आश्रम दिखाता है शुक्रब्रह्म के द्वारा ज्ञान ब्रह्म की प्राप्ति इसका मुख्य उद्देश्य है । अन्न से शुक्र बनता है इसलिए अन्न को भी ब्रहा कहा गया है । मनु कहते हैं कि अन्न की पूजा करें तथा बिना निन्दा किये हुए भोजन करें तब शरीर में बल उत्पन्न होगा । – "पूजते अशनं नित्यं.......। ऐसे अन्न से उत्पन्न शुक्र ब्रह्मशुक्र कहलाता है–

"पाके रसस्तु द्विविधः प्रोच्यतेऽन्नरसात्मकः रससारमयोभागः शुक्रं ब्रह्म सनातमन् ।

ब्रह्मचर्याश्रम में आहार शुद्धि का विशेष महत्व है इसके अतिरिक्त समता, गुरू सेवा, परिश्रम, योगासन, ध्यान आदि नियमों का पालन भी आवश्यक है ।

ब्रह्मचर्याश्रम में विद्याध्ययन के पश्चात व्यक्ति समाज में पदार्पण करता है सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन के निर्वहन तथा पितृ ऋण से उऋण होने के लिये

उसे विवाह करना पडता है । विवाह के द्वारा अपने पिता के वंश को बढाने के लिये संतानोत्पत्ति इस आश्रम का एक आवश्यक धर्म है ˙ जीवन का आधा अंश इसी आश्रम में व्यतीत होता है । यौवनकाल का आश्रम होने के कारण मनुष्य को अभ्युदय अर्थात् प्रेय वस्तुओं के समस्त सुख इसी आश्रम में उपलब्ध होते हैं । मनुस्मृति के अनुसार– "गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः सन्नेतान्विभर्तिहि" (6/9) सभी आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ है क्योकि अन्य सभी आश्रम इसी पर आश्रित हैं । महर्षि गौतम भी कहते हैं कि– "एकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाः गार्हस्थस्येव" अर्थात् सभी आचार्य गृहस्थाश्रम को ही प्रधान मानते हैं क्योंकि सभी आश्रमों का यह उपजीव्य है । ऐतरेय ब्राह्मण में गृहस्थ के धर्मों का वर्णन इस प्रकार मिलता है–

"किं नु मलं किमजिनं किंमु श्मश्रुणि किं तपः ।

पुत्रं ब्रह्मण इच्छध्वं सर्वलोको वदावदः । (33/11)

अर्थात् देव, पितृ, मनुष्यर्षि पूजन ही इस आश्रम का मुख्य धर्म है। संतानोत्पत्ति भी आवश्यक धर्म है । किंतु अर्थार्जन करना गृहस्थ कर्मों के सम्पादन हेतु आवश्यक है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार–

आचारेत्सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा ।"

अर्थात् गृहस्थ को स्वधर्मानुकूल, सरल और शठताहीन जीविकोपार्जन करना चाहिए ।

गृहस्थाश्रम में ही विशिष्ट धर्मों तथा सामान्य धर्मों के पालन का अवसर प्राप्त होता है ।

मनुस्मृति गृहस्थों के लिये ऐसी व्यवस्था करती है कि ऋषि, पितर, देव, भूत, तथा अतिथि सब लोग कुटुम्बी गृहस्थ से आशा करते हैं इसलिये जानने वाले को यह सब करना चाहिए । कि ऋषियों को वेदाध्ययन से देवों को हवन से पितरों को

पिण्डदान तथा तर्पण से मनुष्यों को भोजन से और भूतों (सर्वभूत जीव–जन्तु आदि) को वलिकर्म से सन्तुष्ट करना चाहिए । तत्पश्चात जीवन का तृतीय अंश प्रारम्भ होता है इसकी पहचान करते हुए मनु बताते हैं कि–

"गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलिपलितामात्मनः ।

अपत्यस्यैवापत्यं तदारण्यंसमाश्रयेत् ।।"1

गृहस्थ जब अपने शरीर पर झुर्रियाँ, बालों में सफेदी और पुत्र का पुत्र देखे, तब अरण्यप्रस्थी हो जाना चाहिए ।

विष्णु पुराण में पत्नी का सहवास ऐच्छिक उद्घोषित करता है । किंतु याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार पत्नी को पुत्रों के पास रखा जा सकता है । यह आश्रम प्रेय से श्रेय की ओर बढ़ने वाला प्रथम पग है अतः इस आश्रम में ब्रह्मचर्याश्रम में अर्जित समस्त विद्याओं का पूर्वाभ्यास आवश्यक है अर्थात् गृहस्थ और ब्रह्मचर्य का समन्वित रूप इस आश्रम में प्रकट होता है । इसी कारण मनु, याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों में इस आश्रम के प्रमुख धर्मो, में संयम, अतिथिसेवा, दान, संध्योपासन, हवनादि का विधान है । वानप्रस्थी के लिये भिक्षा दान मुख्य दान है । यथाशक्ति दान देना वन में रहकर स्वार्थ के स्थान पर परार्थ की चिंता करना श्रेयस्कर है । विषयों का चिंतन तथा उनका त्याग करने के लिये शम, दम, यम, नियमादि धर्मों का निर्वाह करके संन्यासाश्रम की तैयारी करना चाहिए ।

जीवन के तीन चरण बीत जाने पर चौथे चरण में संन्यासाश्रम का विधान धर्मशास्त्रों में किया गया है । वानप्रस्थाश्रम में मनुष्य सम्पूर्ण भोग तथा भोगफल की इच्छा से प्रायः मुक्त हो जाता है ऐसे त्यागी के लिए गीता कहती है कि –

---

1. मनुस्मृति – 6/2

"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्मकरोति यः ।

स सन्यासी च योगी च न निरग्निः नचाक्रियः ।।"

कर्म के फल का विचार न करके जो अपने कर्तव्य का पालन करता है वही संन्यासी है, वही योगी है वानप्रस्थाश्रम द्वारा अभ्यस्थ त्याग की भावना तथा परमार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति का चरमोत्कर्ष ही संन्यासाश्रम का उद्‌देश्य है । इसीलिये इस आश्रम को परमाश्रम कहते हैं ।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने इस आश्रम के धर्मलक्षणें को अपनी स्मृति में प्रकट करते हुए लिखा है कि–

"सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः ।

संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः ।।"1

सत्य, अस्तेय, अक्रोध, लज्जा, शौच, धी, धृति, दम, संयम (इन्द्रिय संयम) आत्मज्ञान आदि गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को ही संन्यासाश्रम के लिये उपयुक्त माना जाता है।

इस प्रकार वेद पुराणों तथा धर्मशास्त्रों में वर्ण तथा आश्रम धर्मो का वर्णन प्राप्त होता है जिसका सूक्ष्म निरूपण सार्वभौम धर्म एवं सनातन धर्म के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया।

गौतम मुनिप्रणीत न्यायदर्शन का भाष्य करते हुए वात्स्यायन मुनि ने लिखा है कि–"येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत् प्रयोजनम् । यमर्थमभीत्सन् जिहासन् वा कर्मारभते । तेनानेन सर्वे प्राणिनः सर्वाणि कर्माणि सर्वाश्च विद्या व्याप्ताः ।

तदाश्रयश्च न्यायः प्रवर्तते । समीहमानसतमर्थमभीप्सन् जिहासन् वा

---

1. याज्ञ0 स्मृ0 – 3/66

तमर्थमाप्नोतिजहाति वा ।" 1

भाव यह है कि सभी प्राणी, सभी कार्य तथा सभी विद्यायें प्रयोजन से परिपूर्ण है। प्रयोजन होने पर ही मनुष्य किसी वस्तु को छोड़ता या ग्रहण करता है । प्रयोजन का इतना महत्व होने पर सिद्ध है कि धर्म का भी कोई प्रयोजन अवश्य होगा । तभी तो जीवन का चतुर्थांश ब्रह्मचर्य और अध्ययन के तप में तपाकर आचार्य शिष्य से यही कहता है कि–

सत्यं वद । धर्मंचर । मातृदेवो भव । पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव । धर्मान्नप्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यं।"2 आदि । अर्थात् सत्य बोलो । धर्माचरण करो । माता पिता को अतिथि तथा आचार्य को देव तुल्य मानो । धर्म से प्रमाद मत करो । देव तथा पितृकार्य (यज्ञ) से कभी मत चूको ।

तथा मुण्डकोपनिषद कहती है कि –"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः" अर्थात् धन से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता । चूँकि धन भोग का एक साधन है अतः परोक्ष रूप से कहा गया है कि भोगों से कभी मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता इसलिये इनको एक निश्चित अवधि के लिये भोगकर इनको त्यागने की इच्छा करनी चाहिए ।

हमारे शास्त्रों ने आदेश दिया है कि –"युवैव धर्मशीलः स्यात्' अर्थात् समस्त धर्म कार्य (प्रेय संबंधी, पृवृत्तिपरक) युवावस्था में ही कर डालने चाहिए । क्योंकि आयु बढ़ने के साथ ही मनुष्य की बौद्धिक तथा शारीरिक क्षमताओं का ह्रास होने लगता है।

इन सभी तथ्यों से धर्म का वर्णाश्रम संबंधी प्रयोजन सिद्ध हो जाता है । दर्शनकार महामुनि कणाद धर्म का प्रयोजन इस प्रकार सिद्ध करते हैं कि–"यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः ।" जिस कर्म से इस लोक में भी उन्नति हो तथा परलोक (मोक्ष) की प्राप्ति हो वही धर्म है । क्योंकि एक धर्म ही ऐसा साथी है जो मृत्युपर्यन्त भी मनुष्य का साथ नहीं छोडता क्योंकि–

---

1 + 2. तैत्तिरीय उ० – 1/11/1

"अन्योधनं प्रेत गतस्य भुङ्क्ते ।

वयांसि चाग्निश्च शरीर धातून् ।।

द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र ।

पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः ।।"(महाभा० उ०प० – 40 / 16)

महाभारत के इस श्लोक के अनुसार मरने के बाद धन किसी दूसरे के काम आता है, शरीर अग्नि में भष्म हो जाता है, इसके साथ न धन जाता है न शरीर साथ जाता है तो केवल पाप तथा पुण्य, धर्म तथा अधर्म । अन्य विद्वानों ने भी यही भाव प्रकट किया है ।

किंतु संभवतः कोई नास्तिक या कुतर्की व्यक्ति ऐसा कह सकता है कि मृत्यु के पश्चात धर्म की क्या आवश्यकता है ? परमात्मा हमारे प्रत्येक कर्म का साक्षी नहीं हो सकता । ऐसे कुतर्कियों को सावधान करते हुए वेद कहता है– 'न किल्विषमत्र'– इस कर्मफल में कोई त्रुटि नहीं हो सकती । क्योंकि कर्मों का साक्षी परमात्मा जिन–जिन रूपों में कर्मदृष्टा है उनको बताते हुए महाभारत में वेदव्यास जी कहते हैं कि–

"आदित्यचन्द्रावनिलनलौ च

द्यौर्भूमिरापो ह्रदयं यमश्च ।

अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये

धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम ।"[1]

अर्थात् सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, स्वर्ग, पृथ्वी, जल, ह्रदय, यम, दिन, रात, दोनो संध्याएँ और धर्म– ये सभी मानव के चरित्र को जानते हैं ।

इनसे बचकर ऐसा कौन सा कर्म है जो मनुष्य कर सकता है । इन सभी रूपों में परमात्मा दृष्टा बनकर कर्मों को देखता है । क्योंकि कर्म करने के लिये जीव स्वतन्त्र है किंतु फल भोगने के लिये तो उसे सर्वथा परतन्त्र बनना ही पड़ेगा ।

---

1. महा० भा० आदि प० 74 / 30

इसीलिये हमारे वेद, पुराण, धर्मशास्त्र सभी मनुष्य को धर्माचरण की प्रेरणा देते हैं क्योंकि मनुष्य और पशु जन्म से एक समान होते हैं । एक धर्म ही वह अधिक तत्व है जो मनुष्यों को पशुओं से भिन्न करता है ।

पशुओं में ही यह धर्म बुद्धि नहीं होती कि माता कौन है पिता कौन है स्त्री कौन है ? इसी धर्मबुद्धि की परिभाषा करते हुए पंचतंत्र कहता है–

"मातृवत् परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत् ।

आत्मवत् सर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः ।।"1

धर्म बुद्धि वाले परस्त्री को माता के समान, परधन को मिट्टी के समान और सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखते हैं ।

महर्षि व्यास का भी यही कथन है कि–

"श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।"2

धर्म का सार सुनकर उसे धारण करें जो अपने लिये प्रतिकूल है वैसा व्यवहार दूसरों के साथ न करें।

इसी एक वाक्य में समस्त मानवधर्म का सार निहित है। यही सार्वभौम धर्म है यही सनातन धर्म है ।

---

1. पंचतंत्र – 1/435
2. महाभा0 अनु0 प0 – 113/8 शांति प0 – 259

(घ) धर्म संस्थापनार्थ अवतारवाद एवं रामावतार का आधार सनातन धर्म–

"अवतार शब्द अव उपसर्ग पूर्वक 'तृप्लवनतरणयोः' धातु से धञ् प्रत्यय का योग करने पर निष्पन्न होता है। अवतार शब्द का धातुगत अर्थ होता है, उतरकर नीचे आना।"1 "अव् धातु में अच् प्रत्यय का योग करने पर अव शब्द बनता है । अव् धातु अनेकार्थक है।"2 अतः अव् धातु के मुख्य अर्थ ग्रहण करने पर अवतार शब्द का अर्थ होगा, करुणावरुणालय ।"3 भगवान का भक्तों से प्रेम होने के कारण उनकी रक्षा के लिए वैकुण्ठ से उतकर4 मृत्युलोक में जन्म धारण करना । भगवान् का अवतार उनकी इच्छा से होता है ।"5 भगवान् के अवतार धारण करने का उद्देश्य बतलाते हुए गीता में कहा गया है कि साधुजनों की रक्षा तथा धर्म की स्थापना के लिए युग युग में भगवान् अवतार धारण करते हैं ।"6 शास्त्रों में भगवान के अवतार धारण करने का एक प्रयोजन लीला का विस्तार करना ही बतलाया गया है।"7 भागवत के अनुसार प्रभु का अवतार जीवों का कल्याण करने के लिये होता है ।"8

---

1. अतवरणं अवतारः । अवतरणं वैकुण्ठादत्रागमनम् । सुबोधिनी 1/1/2 पर टिप्पणी अवेतृस्त्रोर्धञ् । अष्टाध्यायी 3/3/120 अवतार कूपादेः ।
2. अव् रक्षणगतिकान्तिप्रीति तृप्त्यवगम प्रवेश श्रवणस्वाम्यर्थयाचन क्रियेच्छादीप्तयवाप्त्या–लिंगनहिंसादान भागवृद्धिषु । सिद्धान्त कौमुदी – धातु संख्या 600
3. मुख्यं तस्य हि कारुण्यम् । शाडिल्य भक्तिसूत्र । 49
   तादृशकरुणाजनयेच्छायां तु फलेच्छा न हेतुः । भक्ति चन्द्रिका – पृ0 126
4. अवतारो नाम वैकुण्ठस्थानादिहागमनम् । तत्त्वार्थदीप निबन्ध पृष्ठ 238 में उद्धृत ।
5. इच्छागृहीताभियतोरुदेहस्संसाधिताशेश जगद्धितायः । विष्णुपुराण 6/5/84
6. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
   धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। गीता 4/8
7. लोकवन्तु लीला कैवल्यम् । वेदान्त दर्शन 2/1/33
   लीलानाम विलासेच्छा । आनन्दे तदुल्लासेन कार्य जननी सदृशी क्रिया क्वाचिदुत्पद्यते । सुबोधनी (भागवत तृतीय स्कन्ध) 3/7/2
8. विभर्षि रूपाण्यवबोध आत्माक्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।
   सत्वोपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् । भागवत 10/2/29

वेदों में अवतारवादः–

वामनावतार – ऋग्वेद में कहा गया है कि विष्णु ने वामनावतार में तीनों लोकों को नापा था । उन्होनें तीन बार पाद–निक्षेप किया था– त्रीणि पदा विचक्रमें विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । (ऋग्वेद – 1/22/18)

यदा ते विष्णु रोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे ।(" 8/12/27)

श्रीरामावतार – ऋग्वेद में दुःशीम पृथवान् ओर वेन के साथ एक अतिशय प्रतापी नरेश के रूप में राम का उल्लेख हुआ है'

प्रतद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचममुरे मद्यवत्सु ।

ये युक्तां युक्त्वाय पंचशतास्मयुपथा विश्राव्येषाम् ।। (10/93/14)

अर्थात् जैसे देवता पाँच सौ रथों में घोड़े जोतकर यज्ञ में जाने के लिये मार्ग में जाते हैं वैसे ही मैने दुःशीम, पृथवान, वेन और बली राम आदि धनपति राजाओं के पास उनके प्रशंसा स्तोत्र का पाठ किया है ।

'परन्तु इस मंत्र में प्रयुक्त राम शब्द से अयोध्या नरेश राजा दशरथ के पुत्र राम का बोध नहीं होता । (रामकथा–)

सीता– ऋग्वेद में सीता को कृषि की अधिष्ठात्री देवी (4/57/6) तथा सीता शब्द को सीताधार (लांगल पद्धति) (4/56/7) एवं मार्ग आदि के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। किन्तु जनकात्मजा से इन सीताओं का कोई संबंध स्थापित नहीं होता ।

कृष्ण– वैदिक साहित्य में कृष्ण नाम वाले तीन व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है– (1) असुर कृष्ण (2) मंत्रदृष्टा कृष्ण (3) देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण ।

असुर कृष्ण का अवतार से कोई संबंध नहीं है । ऋग्वेद अनुक्रमणी का लेखन यह तथ्य अवश्य प्रकट करता है कि 8/85, 8/86, 8/87, 10/42, 10/43 तथा 10/44 के मंत्रों के दृष्टा ऋषि आंगिरस कृष्ण ही थे । कृष्णोनामांगिरस ऋषि–(ऋ0 8/85/1)

के सायण भाष्य का ऋषि उपोद्घात ।

वासुदेव कृष्ण का उल्लेख आरण्यकों तथा उपनिषदों में प्राप्त होता है जिसका उल्लेख आगे करेंगे ।

वेदों में अवतारवाद – डॉ0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी के अनुसार–वैदिक संहिताओं में 'अवतार' शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं है । किन्तु अवतृ से बनने वाले 'अवतारी' 'अवत्तर' और अवतर आदि शब्दों के प्रयोग मिलते हैं । 1

"अभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विश्वोऽवतारीर्दासीः ।" ऋग्वेद 6/25/2

इस मंत्र में अवतारी शब्द सायण के मतानुसार विघ्न के रूप में प्रयुक्त हुआ है– यज्ञादि कर्म कृते यजमानायावतारीः विनाशाय ।

शुक्ल यजुर्वेद में भी अवतर शब्द का प्रयोग हुआ है–

उपज्यन्नुपवेतसेऽवतरः नदीष्वाः (यजुर्वेद 17–6) महीधर भाष्य के अनुसार अवतर का अर्थ आगमन होता है–

पृथिव्यामवावतार आगच्छ ।

अथर्ववेद में भी अवतर शब्द प्रयुक्त हुआ है–

उपद्यामुप वेदसम् अवतरो नदी नाम् ।

अग्ने पित्तयामसि । (अथर्ववेद 18/3/5)

सायण के अनुसार रक्षण समर्थ को अवत्तर कहा जाता है ।

अवत्तरः अतिशयेन अवन्रक्षण समर्थः सारभूतांशोंविद्यते ।

ब्राह्मण ग्रंथों तथा आरण्यकों में अवतारवाद –

शतपथ ब्राह्मण में विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक मत्स्यावतार की कथा मिलती है– जब अत्यधिक बाढ में मनु की नौका डूब रही थी, तब मनु की आर्तपुकार

---

1. गोस्वामी तुलसीदास दर्शन और भक्ति पृ0 188

पर भगवान ने मत्स्य रूप में अवतरित होकर मनु की रक्षा की थी। 1

मनवे ह वै प्रातः । अवनेग्यमुदकमाजहुर्यथेदं पाणिभ्याम्वने जनायाहरन्त्येवं तस्यावने निजायस्य मत्स्यः पाणी आपेदे (शपतथ ब्राह्मण 1/6/3/1) ।

स हो वाच । अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वामा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्याबदुदकं............। गिरेर्मनोख सत्पर्णमित्यौषौ ह ताः सर्त्वाः प्रजा निरूवाहाथेह मनु रैकः परिशिशिये (शतपथ ब्राह्मण 1–6–3–6) साधुजनों की रक्षा के लिये इस प्रकार ईश्वर अवतार ग्रहण करते हैं । इस अवतार के अतिरिक्त अन्य अवतारों का भी उल्लेख मिलता है–

बराहावतार–"स वराहो रूपं कृत्वा असुन्यमज्जत् । स पृथ्वीमधः आर्च्छत् ।" (तैत्तिीय ब्राह्मण 1/1/6) अर्थात् "प्रजापतिनेवराह का रूप धारण कर जल के भीतर निमज्जन किया । वे पृथ्वी को नीचे से ऊपर ले आये ।" सतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक में भी वराहावतार का उल्लेख है–

"इतीयतीह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेश मात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान । सोऽस्याः पतिः ।" (शतपथ ब्रा0 14/1/2/11)

अर्थात् पृथ्वी के स्वामी प्रजापति वराह का रूप धारण कर पृथ्वी को नीच से ऊपर ले आये ।

वराह के द्वारा पृथ्वी का उद्धार हुआ–

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।

भूमिर्धेनुर्धरणी लोक धारणी इति (तैत्तिरीय आरण्यक – 1/1/30)

कूर्मावतार – शतपथ ब्राह्मण मे कूर्मावतार का सूत्र उपलब्ध होता है ।

"स यत् कूर्मो नाम । एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत् ।

---

1. गोस्वामी तुलसीदास दर्शन और भक्ति पृ0 189

यत् असृजत् अकरोत् तत्, यत् अकरोत् तस्मात् कूर्म्मः । कश्यपो वैकूर्म्मः । तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः इति । (7/5/1/5)

तैत्तिरीय आरण्यक में भी कूर्मावतार का संकेत मिलता है– 'अन्तरतः कूर्मभूतः तमब्रवति मम वै तवङ्मांसात् समभूत् । नेत्यब्रवीत् पूर्वमेवाहमिहासम् । इति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्। स सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद् भूत्वोदतिष्ठत् ।'' (123/3)

नृसिंहावतार – तैत्तिरीय आरण्यक में नृसिंह अवतार का संकेत मिलता है– वज्रनखाय विध्नहे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमही तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात् । (1/1/31)

वामनावतार– शतपथ ब्राह्मण में वामन और उनको यज्ञ में प्राप्त होने वाली भूमि का वर्णन किया गया है –

वामनो ह विष्णुरास । तद्देवा न जिहीडिरे महद्वैनोदुर्येनो यज्ञ सम्मितमदुरिति । (1/2/3/5)

राम– ब्राह्मणों तथा आरण्यकों में विष्णु के अधोलिखित अवतारों का उल्लेख स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है किन्तु राम सीता तथा कृष्ण नाम तो प्रयुक्त हुआ है जैसे ऐतरेय ब्राह्मण में (7/26–34) में जन्मेजय के समकालिक भृगुवंशी श्यापर्ण कुल के ब्राह्मण भार्गवेय राम का उल्लेख हुआ है । तथा शतपथ ब्राह्मण (4/5/3/7) में अंशुग्रह यज्ञ के संबंध में उपतस्विन् के पुत्र औपतस्विनि राम के मत का वर्णन किया गया है ये राम याज्ञवल्क्य के सामकालिक थे । किन्तु ब्राह्मण ग्रंथों में उल्लिखित औपस्विन् राम तथा भार्गवेय राम का दाशरथि राम से कोई संबंध नहीं है । तैत्तिरीय आरण्यक में सायण के मतानुसार रमणीय पुत्र के अर्थ में राम शब्द का प्रयोग हुआ है–

संवत्सरं न मांसमश्नीयात् । न रामामुपेयात् । न मृष्मयेनपिबेत् । नास्य राम उच्छिष्टं पिबेत् । तेज एव तत्संश्यति । (तै० आ० 5/8/13) ।

सीता– ऋग्वेद की तरह ही शतपथ ब्राह्मण में भी सीता शब्द का प्रयोग कृषि की अधिष्ठात्री

तथा लांगल पद्धति के रूप में प्रयुक्त हुआ है–

प्रतीचीं प्रतिमां सीतां कृषति वायुः पुनात्विति सविता । (13/8/2/6) तथा – चतस्र सीता यजुषा कृषति । (श0 ब्रा0 13/8/2/7) किंतु कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रजापति की कन्या सीता सावित्री की कथा आयी है । यह सीता सावित्री अंगराग का प्रयोग कर सोम को अपना पति बनाती हैं । (तै0ब्रा0 3/3/10)

किंतु इस सीता का भी जनकात्मजा सीता से संबंध स्पष्ट नहीं होता ।

कृष्ण– तैत्तिरीय आरण्यक में वासुदेव कृष्ण का नाम आया है–

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमही तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । (तै0 आ0 10/1/6)

उपनिषदों में अवतारवाद – छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि आंगिरस घोर नामक ऋषि ने देवकी पुत्र कृष्ण को अन्य विद्याओं के विषय में तृष्णाहीन बनाने वाला यज्ञदर्शन सुनाया । इस यज्ञदर्शन में दक्षिणा प्रधान द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा अहिंसा प्रधान यज्ञ का प्रपिादन किया गया है और तप, दान तथा सत्य को इसकी दक्षिणा कहा गया है–

अथ यन्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः । (छां0उप0 3/17/4) इस यज्ञ दर्शन को सुनाकर घोरऋषि ने कृष्ण से कहा कि अंतकाल में निम्नांकित तीन मंत्रों का जप करना चाहिए –

"तद्वैतद् घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वो वाचापिपिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसंशितसीति । (छांदोग्योपनिषद 3/17/6)

1. "तू अक्षय है
2. तू अच्युत है
3. तू अति सूक्ष्म प्राण है ।" (गोस्वामी तुलसीदास दर्शन और भक्ति पृ0 – 196)

आंगिरस घोर मंत्र दृष्टा ऋषि थे – (ऋग्वेद 3/36/10 के मंत्र दृष्टा)

वेद में भगवान् को सोलह कलाओं से युक्त बतलाया गया है–

"प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते च षोडशी । (शुक्ल यजुर्वेद 8/36)

महाँ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । (शुक्ल यजुर्वेद 26/1)

प्रश्नोपनिषद् में भगवान् की सोलह कलाये इस प्रकार वर्णित है–

"सः प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं

मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मंत्राः कर्म लोकाः लोकेषु च नाम च । (प्रश्नोपनिषद् 6/4)

1.प्राण 2.श्रद्धा 3.व्योम 4.वायु 5.तेज 6.जल 7.पृथ्वी 8.इन्द्रियाँ 9.मन 10. अन्न 11. वीर्य 12.तप 13.मन्त्र 14.कर्म 15.लोक 16.नाम ।

पुराणों में ईश्वर तथा भगवान् की व्याख्या – डॉ0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी के अनुसार–

"ईश ऐश्वर्ये, धातु से वरच प्रत्यय का योग करने पर ईश्वर शब्द निष्पन्न होता है। ईश्वर का अर्थ होता है, ऐश्वर्य से युक्त ।" (गोस्वामी तुलसीदास दर्शन और भक्ति पृ0 186) ईश्वर संकल्पमात्र से ही सम्पूर्ण जगत् का उद्धार कर सकते हैं ।

"ईशनशील इच्छामात्रेण सकल जगदुद्धरणक्षमः ईश्वरः ।"

तथा

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरण ।। विष्णु पुराण 6/5/74

ईश्वर के षड भग होते हैं अतः उन्हें भगवान् कहते हैं ये षड् भग है–"

"ज्ञान शक्ति वलैश्वर्य वीर्यतेजो महोदधिः ।

भगवानेव विश्वात्मा मन्तव्यः प्रविवक्ष्यते ।। (अहिर्बुध्न्य संहिता 53/2,3)

धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य और भूति । इन भगों की आंशिक स्थिति जीवों में

भी होती है; किन्तु भगवान् में ये सभी भग निरतिशय होते हैं । भगवान को सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय, जीवों के जन्म और मरण विद्या माया अविद्या माया का ज्ञान होता है । (गोस्वामी तुलसीदास दर्शन और भक्ति पृष्ठ 187)

उत्पत्ति प्रलयं चैव जीवानामागतिं गतिम् ।

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ।। (विष्णु पुराण 6/5/78)

शांडिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार भगवान के जन्म और कर्म, दोनों दिव्य होते है–

तच्च दिव्यं स्वशक्तिमात्रोदभवात् । (48)

गीता में भी ऐसा ही वर्णित है –

जन्म कर्म च मे दिव्यम् । (गीता 4/9)

पुराणों में अतवारवाद –

अवतार की प्रक्रिया – भगवान के अवतार धारण करने के संबंध में पुराणों में निम्नांकित चार मतों का उल्लेख किया गया है । 1

(1) प्रथम्मत – इस मत के अनुसार विष्णु भगवान् अपनी दिव्य मूर्ति का परित्याग कर भूतल पर अवर्तीर्ण होते हैं ।

"त्यक्त्वा दिव्यं तनुं विष्णुर्मानुषेस्वहि जायते ।

युगे त्वथ पराकृते काले प्रशिथिले प्रभुः ।।" 2

द्वितीयमत– भगवान् अपने केवल एक अंश में ही इस धरातल पर अवतीर्ण होते हैं उनका पूर्ण अंश अपने मूल स्थान पर निवास करता है । भागवत में कहा गया है कि मृत ब्राह्मण पुत्रों को लाने के लिए श्री कृष्ण और अर्जुन ने परम लोक में जाकर परम पुरूषोत्तम के दर्शन किये थे ।

---

1. पुराण – विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय – पृ0 163–166
2. मत्स्यपुराण – 47/34

"ददर्श तद्भोगसुखाननं विभुं महानुभावं पुरूषोत्तम ।।" श्री मद भागवत पुराण के अनुसार तब भूमा परमेश्वर ने उन दोनों से कहा था कि धर्म की रक्षा करने के लिए ही तुम दोनों ने मेरी कलाओं से पृथ्वी पर अवतार धारण किया है । अतएव असुरों का संहार कर तुम दोनों शीघ्र ही मेरे पास वापस आ जाओ ।"1

"द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ।
कलावतीर्णाव वनेर्भरासुरान् हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ।।" भागवत–

2. अयनं तस्यं ताः पूर्व तेन नारायणः स्मृतः ।
स देवो भगवान्सर्व व्याप्त नारायणो विभुः ।।
चतुर्धा संस्थितो ब्रह्म सगुणो निगुर्णस्तथा ।
एका मूर्तिसुद्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः ।।
वासुदेवामिधसाऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते ।
द्वितीयां पृथिवीं मूर्ध्नाशेषाख्या धारयत्यधः ।।
तृतीया कर्म कुरूते प्रजापालनतत्परा ।।
चतुर्थी जलमध्यास्था शेते पन्नगतल्पगा ।।
या तृतीया हरेमूर्ति प्रजापालन तत्परा ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मनं सृजत्यसौ ।।
(ब्रहा पुराण – 180/17–27)

3. एतेचांशकलाः पुराः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
(भागवत – 1/3/28)

तृतीय मत :– इसके अनुसार भगवान की दो मूर्तियाँ हैं । उनकी पहली मूर्ति स्वर्गलोक नं नित्य रूप से स्थित होकर दुष्कर तपस्या करती है तथा दूसरी मूर्ति योग–निद्रा में

1. भागवत – 10/89/59

लीन बनी रहती है । और आवश्यकता होने पर अवतार धारण करती है ।

तस्य ह्येका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तमा ।।

नित्यं दिविष्टा या राजन् तपश्चरति दुष्करम् ।।

द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपाययौ ।

प्रजासंहार सर्गार्थं किमध्यात्मविचिन्तकम् ।।

सुप्त्वा युगसहस्रं स प्रादुर्भवति कार्यवान् ।

पूर्णे युगसहस्रे तु देवदेवो जगत्पतिः ।।"1

चतुर्थ मतः– ब्रह्म पुराण के अनुसार नारायण की चार मूर्तियाँ हैं । वे सगुण और निर्गुण दोनो हैं । नारायण की प्रथम मूर्ति त्रिगुणातीत हैं और वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध है । दूसरी मूर्ति शेष नारायण के नाम से प्रसिद्ध है । और वह पृथ्वी को धारण करती है । उनकी तृतीय मूर्ति प्रजा पालन का कार्य करती है । नारायण की चतुर्थ मूर्ति शेष–शैया पर आसीन होकर शयन करती है । और सृष्टि करती है । उनकी तृतीय मूर्ति ही अवतार धारण कर असुरों का संहार करती है ।"

उपर्युक्त चारों मतों के अतिरिक्त ब्रह्ममपुराण एवं अध्यात्म रामायण में क्रमशः साक्षात् भगवान तथा सच्चिदानन्द परब्रह्म के अवतार धारण करने का भी उल्लेख हुआ है । भागवत पुराण में कहा गया है कि अन्य अवतार तो भगवान के अंशावतार तथा कलावतार हैं; किन्तु श्री कृष्ण तो साक्षात् भगवान ही हैं ।

पुराणेतिहास ग्रंथों में अवतारवाद :– इतिहास तथा पुराणों में भगवान के अवतारों की दो परम्परायें प्रसिद्ध हैं; प्रथम दशावतार की परम्परा तथा द्वितीय चौबीस अवतारों की परम्परा । महाभारत तथा लिंग पुराण में भगवान के दशावतारों का उल्लेख है ।

---

1. हरिवंश पुराण – 1/41/18–20

"हंशः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावो द्विजोत्तम ।

वाराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च ।

रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च ।।

(महाभारत शान्ति पर्व 339 / 101)

लिंग पुराण में दशावतारों का कारण भृगु ऋषि का विष्णु को दिया श्राप बताया गया है–

भृगोरपि च शापेन विष्णुः परमवीर्यवान् ।

प्रादुर्भावान् दश प्राप्तो दुःखितश्च सदा कृतः । (अध्याय 29)

भृगुश्राप की कथा के प्राचीनतम रूप में किसी अवतार विशेष का उल्लेख नहीं किया गया है ।

मत्स्य पुराण में भी भृगुश्राप का उल्लेख मिलता है–

"तस्मात्वं सप्तकृत्वेह मानुषेषुपत्स्यसे"

(अध्याय 47 / 106)

मत्स्यपुराण में उल्लेखित कथा के अनुसार भृगु की पत्नी का वध करने के कारण भृगु ने विष्णु को सातबार मनुष्यावतार लेने का श्राप दिया ।

वायुपुराण (अध्याय 97), ब्रह्माण्ड पुराण (2, अध्याय 72) और देवीभागवत पुराण (4, अध्याय 12) में ऐसी ही कथा मिलती है ।

बाल्मीकि रामायण के अनुसार भृगु ने विष्णु को बहुत वर्षों तक पत्नी का वियोग सहने का शाप दिया था इस शाप के फलस्वरूप रामावतार में सीता त्याग की घटना हुई थी (दाक्षिणात्य पाठ–उत्तरकाण्ड, सर्ग 51) । वह्निपुराण में भृगुश्राप रामावतार का कारण माना गया है ।

अन्य पुराणों में भगवान के चौबीस अवतारों का उल्लेख किया गया है, श्रीमद्भागवतपुराण में भगवान के अवतारों का तीन बार उल्लेख किया गया है । तीनों प्रसंगों में पुरुषावतार को आदि अवतार माना गया है । इसी पुरुषावतार से अन्य अवतारों का होना बतलाया गया है–

"जगृहे पौरूषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।

सम्भूतं पोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ।। (भागवत 1/3/1)

भागवत के द्वितीय स्कन्ध में चौबीस अवतारों का उल्लेख किया गया है जो निम्नलिखित है–

1. चतु:सन 2.शूकर (बराह) 3.नारायण 4. कपिल 5. दत्तात्रेय
6. यज्ञ 7.ऋषभ 8.मत्स्य 9.कच्छप 10. पृथु
11. धनवन्तरि 12.नृसिंह 13.वामन 14.परशुराम 15.ध्रुवप्रिय हरि
16. राम 17.कृष्ण 18.बलराम 19.व्यास 20.बुद्ध
21.कल्कि 22.हयग्रीव 23.गजेन्द्रोद्धारक हरि और 24. हंस ।

प्रस्तुत सभी अवतारों का हेतु पृथ्वी, गो, ब्राह्मण साधुजन, धर्म, देव, दीनों आदि की रक्षा ही माना गया है ईश्वर का प्रत्येक अवतार किसी न किसी रूप में इन सभी का रक्षण करता है तथा जीव मात्र की ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास को प्रगाढ़ बनाता है ।

ईश्वर की सोलह कलायें:–

वेद में ईश्वर को षोडशकलात्मक कहा गया है– प्रजापतिः प्रजया संरराणास्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ।

(यजुर्वेद 8/36)

महाँ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्मयच्छतु । (यजुर्वेद 26/10)

प्रश्नोपनिषद् में पुरुष की सोलह कलाओं के नाम इस प्रकार बतलाये गये हैं–

स प्राणमसृजत । प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः ।

पृथिवीन्द्रियंमनोअन्नमन्नादवीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोका ।

लोकेषु च नाम च । एक मेवास्य परिद्रष्टुरिमाः पोडश कलाः ।

(प्रश्नोपनिषद 6/4,5)

1.प्राण 2.श्रद्धा 3.व्योम 4.वायु 5.तेज 6.जल 7.पृथ्वी 8.इन्द्रियाँ 9.मन 10.अन्न 11.वीर्य 12.तप 13.मन्त्र 14.कर्म 15.लोक और 16.नाम ।

वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि वह संवत्सर प्रजापति सोलह कलाओं वाला है । रात्रियाँ ही इसकी पंद्रह कलाये हैं ओर सोलहवीं कला ध्रुव (नित्य) है । अमावस्या की रात्रि में प्रजापति इस सोलहवीं कला से इन सब प्राणियों में अनुप्रविष्ट होकर फिर दूसरे दिन प्रातः काल के समय उत्पन्न होता है "स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलस्तस्यरात्रय एवं पंचदश कला ध्रुवैवास्य षोडशीकला.........सोऽमावस्यां रात्रिमेतया षोडश्या सर्वमिदं प्राण.........ततः प्राजर्जायते । (वृ0 उ0 1/5/14)

श्रीमद्भागवत के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में भगवान ने सोलह कलाओं से युक्त विराट पुरुष का रूप धारण किया –

"जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।

सम्भूतं षोडकलमादौ लोकसिसृक्षया ।। (भागवत 1/3/1)

लघुभागवतामृत में इस मंत्र की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि–

"षोडशैव कला यस्मिंस्तत् षोडशकलं मतम् ।

ता षोडशकलाः प्रोक्ता विषणवैः शास्त्रदर्शनात् ।।

शक्तित्वेन च ता भक्तिविवेकादिषु सम्मताः ।

श्रीर्भूः कीर्तिरिला लीला कान्तिर्विद्येति सप्तकम् ।

विमलाद्या नवेत्येता मुख्याः षोडश शक्तयः ।।

(लघुभागवत / पूर्वखण्ड / श्रीकृष्णामृतखण्ड 68,69)

भगवान का पुरुषावतार सोलह कलाओं से युक्त था । यद्यपि भगवान अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं, तथापि उनमें से सोलह शक्तियाँ प्रमुख हैं और इन्हीं सोलह शक्तियों को सोलह कलाओं के नाम से उल्लिखित किया जाता है । टीकाकार बल्देव विद्याभूषण की विमलाद्यानवेत्येता' की व्याख्यानुसार–

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा तथैव च ।

प्रह्वीः सत्या तथेशानुग्रहेति नवस्मृताः ।।

सोलह कलायें निम्नलिखित हैं – 1.श्री 2.भू 3.कीर्ति 4.इला 5.लीला 6.कान्ति 7.विद्या 8.विमला 9.उत्कर्षिणी 10.ज्ञाना 11.क्रिया 12.योगा 13.प्रहू 14.सत्या 15. अनुग्रहा 16. ईशाना ।

आदि रामयण 'महारामायण' अध्यात्म रामायण और ब्रह्मबौवर्तपुरौण में भगवान राम को पूर्णावतार माना गया है ।

किंतु पद्म पुराण में भगवान राम तथा कृष्ण दोनों को असुर विनाशक, जगद् रक्षण इत्यादि कार्यों की दृष्टि से पूर्णावतार माना गया है ।

1. **कृष्णोंऽशाशं एवास्य वृन्दवन् विभूषणः ।**

   एते चांश्कलाश्चैव रामस्तु भगवान् स्वयम् ।।

   (आदि रामायण / पूर्व खण्ड आठवाँ अध्याय)

2. **ऐश्वर्येण च धर्मेण यशसा च श्रियैव च ।**

   वैराग्य मोक्षषटकोणैः संजोता भगवान् हरिः ।। (महारामायण 48 / 36)

   भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः ।

   करुणः षडगुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम् ।। (महा रामायण)

3. रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् । (अध्यात्म रामायण 1/1/32)

4. पूर्णो नृसिंहो रामश्च । (ब्रह्मवैवर्त पुराण/श्रीकृष्ण जन्म खण्ड/पू0 अ0 9)

5. राम कृष्णावतारो हि परिपूर्णो हि सद्गुणैः । (पद्मपुराण 6/241/88)

श्रीमद् भगवद् गीता में अवतारवाद :– श्रीमद्भगवत् गीता में ब्रह्म के अवतार रूप में अवतीर्ण होने की प्रक्रिया निर्दिष्ट करते हुए कहा गया है कि यद्यपि ब्रह्म रूप में कभी भी व्यय या विकार नहीं होता तथापि अपनी ही प्रकृति में अधिष्ठित होकर ब्रह्म अपनी माया से जन्म लेता है–

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।

प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।। (गीता 4/6)

संसार में धर्म की स्थापना के लिये तथा सामान्य जीवों में धर्म की सुदृढ़ आस्था की अविरल धारा के प्रवाहन के हेतु ब्रह्म को भी साधारण जीवों की भाँति पंचमहाभूतो एवं कर्मबद्धता का आश्रय लेना पड़ता है । इस बद्धता के कारण परब्रह्म का ब्रह्मत्व सीमाबद्ध हो जाता है । परन्तु गीता कृष्णावतार में किसी प्रकार की सीमा स्वीकार नहीं करती । गीता में भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि–

"अवजानन्ति माँ मूढ़ा मानुषिं तनुमाश्रितम् ।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।।" (गीता 9/11)

मूढ़जन मेरे परम स्वरूप को नहीं जानते, जो सब भूतों का महान् ईश्वर है । वे मानव तनुधारी समझकर मेरी अवहेलना करते हैं । गीता में भगवान के अवतार धारण करने का उद्देश्य भी वर्णित है–

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।" (गीता 4/7–8)

अर्थात् जब जब धर्म की हानि और अधर्म की प्रबलता होती है तब–तब परब्रह्म परमेश्वर साधुसंरक्षणार्थ दुष्ट विनाशार्थ युग युग में जन्म धारण करता है ।
इस प्रकार गीता में धर्म संस्थापनार्थ अवतारवाद की धारणा प्रतिपादित की गई है ।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार अवतारवाद –

'भागवत महापुराण' मध्ययुग का सर्वाधिक प्रभावशाली ग्रंथ है । इसमें अवतार का प्रसंग अनेक स्थलों पर वर्णित है । "गीता की भाँति भागवत में भी कृष्णावतार को ब्रह्म का सीमित प्रकटीकरण नहीं माना गया है" (इंडियन फिलॉसिफी Vol I पृ0 – 54) तथा श्री कृष्ण को परब्रह्म का पूर्णावतार माना गया है –

"एते चांशकलाः पुंसः कष्णस्तु भगवान् स्वयं" (भागवत 1/3/28) ।

भगवान् के पाँच रूप– भागवत के अनुसार भगवान पाँच रूपों में सगुण रूप धारण करते हैं– 1. पर 2.व्यूह 3.विभव 4.अन्तर्यामी 5. अर्चा ।

"पर रूप– में भगवान वैकुण्ठ में निवास करते हैं । वे मर्यादा आदि चार चरणों से युक्त एक सिंहासन पर स्थित शेषशैय्या पर विराजित रहते हैं" (तत्वत्रय पृ0 101) साथ ही श्री, पुष्टि, गिरा, क्रान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, आह्लादिनी और संवित् इत्यादि शक्तियाँ मूर्तिमान होकर सदैव प्रभु की सेवा करती हैं–

"श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ।
विद्ययाविद्यया शक्त्या ममया च निषेवितम् ।।" (भागवत 10/39/55)

प्रभु शंख, चक्र एवं अन्य दिव्य आयुध धारण किये रहते हैं । पर रूप में भगवान ज्ञान और शक्ति इत्यादि असंख्य गुणों के भण्डार हैं । अनन्त गरुड़ तथा विष्वक्सेन इत्यादि अविनाशी एवं मुक्त आत्मायें उनके सामीप्य का आनन्द–लाभ करती हैं । भगवान् का पर रूप श्रेष्ठ होता है । वह कालातीत एवं नित्य उपास्य रूप है ।

व्यूह – भगवान् सृष्टि–रचना आदि उद्देश्यों से प्रेरित होकर वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न

एवं अनिरूद्ध इत्यादि चार रूप धारण करते हैं ।

"वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ।

अनिरूद्धं इति ब्रह्मन्मूर्ति व्यूहोऽभिधीयते ।"1

इनमें वासुदेव ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, एवं तेजादि छः भागों से युक्त भगवान् होते हैं ।

"ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजांस्यशेषतः ।

उन्मिषन्ति यदा तुल्यं वासुदेवस्तदोच्यते ।।"2

संकर्षण ज्ञान और बल, प्रद्युम्न ऐश्वर्य और पराक्रम तथा अनिरुद्ध में शक्ति और तेज का प्राकट्य होता है ।

"तेषां ज्ञानं बलोन्मेषे संकर्षण उदीच्यते ।

वीर्येश्वर्यसमुन्मेषे प्रद्युम्न परिकीर्तितः ।

शक्ति तेजः समुन्मेषे ह्यनिरूद्धः स इरितः ।।"3

ईश्वर का व्यूह रूप जगत् के उद्भव पालन तथा संहार का कार्य करता है । अनिरुद्ध जगत की सृष्टि करते हैं प्रद्युम्न उसका पालन तथा संकर्षण उसका संहार करते हैं –

"सृजतेह्यनिरूद्धोऽत्र प्रद्युम्नः पाति तत्कृतम् ।

सृष्टं तद्रक्षितं चात्ति स च संकर्षणः प्रभुः ।।"4

विभव–रूप– भगवान का विभव रूप ही अवतार धारण करता है । गौंड़ तथा मुख्य इन दो प्रकार के विभव से भगवान के क्रमशः गौण तथा मुख्य अवतार होते है। गौण अवतार आवेशावतार कहे जाते हैं तथा–

---

1. भागवत – 12/11/21
2. लक्ष्मीतन्त्रम् – 4/13
3. लक्ष्मीतन्त्रम् – 4/14–16
4. लक्ष्मीतन्त्रम् – 4/19

मुख्य अतवार साक्षात् अवतार के रूप में प्रसिद्ध है । आवेशावतार दो प्रकार के होते हैं; 1.सहावेश 2.शक्त्यावेश । ब्रह्मा और शिव शक्त्यावेश अवतार कहलाते हैं तथा परशुराम सहावेश अवतार कहलाते है। विभव से 39 अवतार होते हैं

"विभवाः पद्मनाभाद्यस्त्रिंशच्च नव चैव हि ।"1

इनमें भगवान के चौबीस अतवार विशेष प्रसिद्ध हैं । जिनका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है।

अन्तर्यामी – "परमात्मा जीवों के हृदय में अर्न्तयामी रूप में निवास करते हैं; केवल योगी ही अपने हृदय में स्थित अन्तर्यामी परमात्मा के दर्शन कर सकते हैं"2 अन्तर्यामी के रूप में जीवों के हृदय में स्थित परमात्मा सभी परिस्थितियों – स्वर्ग– नरक, गर्भावस्था इत्यादि में उनकी रक्षा करते हैं । 3

अर्चा– गृहों, ग्रामों तथा नगरों में उपासना के द्वारा चुने गये दृव्य से निर्मित प्रतिमाओं से तात्पर्य भक्ति– भावना से भावित देव–विशेष की मूर्ति अथवा ईश्वर भावना से अनुप्राणित पदार्थ–विशेष की अनुकृति से होता है । अर्चा रूप में ईश्वर विभिन्न द्रव्यों मे देश, काल तथा अधिकारी के भेद से रहित होकर भक्तों की उपासना के लिए स्थित रहते हैं । 4

मेरे विचार से उपनिषदों में वर्णित कलायें मानव शरीर की पूर्णता से संबंधित है। ईश्वर के अंश तथा पूर्ण कला अवतारों की आधारभूत षोडशी कलायें इनसे सर्वथा भिन्न हैं।

---

1. अहिर्बुध्न्य संहिता – 5/50
2. व्योमवच्च । वेदान्त दर्शन 1/2/7
3. तत्वत्रय – पृ0 116/117
4. रामचरित मानस में महाकाव्यत्व, भक्ति और दर्शन, पृ0 224 (डॉ0 वी0डी0 अवस्थी)

भगवान् के अवतारों का वर्गीकरण करते हुए सात्वतन्त्र में कहा गया है कि–

किन्तुज्ञानेप्रभावदेः पूर्णांशाशानुदर्शनात् ।

पूर्णमंशकलाभाग वदन्ति जगदीशितुः (सत्वतंत्र 3/5)

अवतारों में ज्ञान, प्रभाव आदि के पूर्ण अथवा अंश रूप में प्रकट होने के आधार पर उन्हें भगवान का पूर्णावतार या कलावतार कहा जाता है ।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि असुर विनाशक जगद्रक्षण आदि कार्यों के लिये भगवान् अपनी पूर्णता तथा अंशता के साथ उसी प्रकार रूप धारण करते हैं । जिस प्रकार सरोवर में सहस्रों छोटे–छोटे स्रोत निकलते है। (भागवत 1/3)

पद्मपुराण के अनुसार श्री राम तथा श्री कृष्ण दोनो ही अवतार महान तथा पूर्णावतार थे–

"राम कृष्णावतारौ हि परिपूर्णौ हि सद्गुणैः (6/241/88) मेरे विचार से श्री राम तथा कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतार अपना कार्य पूर्ण होने के पश्चात् निज धाम चले गये किन्तु श्री राम कृष्ण ने पृथ्वी पर अपना सम्पूर्ण जीवन बिताया । अर्थात् आंशिक रूप से अवतरण को अंश तथा पूर्णरूप से अवतरण को पूर्णावतार कहना न्यायोचित होगा । यत्र तत्र कलाओं की विद्यता को भी अंशता और पूर्णता की संज्ञा दी गई है ।

अवतार निर्गुण निराकार ब्रह्म की सगुण साकार अभिव्यक्ति है, इसीलिए अवतार को ब्रह्म का सीमित प्रकटीकरण कहा गया है–

The avatars are generally limited manifestations of the suprme.

(Indian philosophy vol I, Page. 544)

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार धर्म संस्थापनार्थे अवतारवाद – संत कवि तुलसी ने पुराणों में वर्णित दोनों परम्पराओं – (1) चौबीस अवतारों की परम्परा तथा (2) दशावतारों की परम्परा का उल्लेख करते हुए तुलसी दास जी कहते हैं कि कृपानिधि

भगवान जिनका नाम लेते ही प्राणी भव भय से मुक्त हो जाता है उन्हीं दया निधान ने अम्बरीष को दुर्वासा के शाप से मुक्त करने के लिये दस बार अवतार धारण किया–

"जाको नाम लिये छूटत भव जनम मरन दुख भार ।

अम्बरीष हित लागि कृपानिधि सो जनमें दस बार ।। (विनय पत्रिका 98/5)

भगवान मे मत्स्य रूप धारण कर महाप्रलय के समय जीवों से युक्त मनु की नौका की रक्षा की, शूकर रूप धारण कर जलमग्न पृथ्वी का उद्धार किया, कच्छप बनकर समुद्रमंथन के समय मंदराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किया और नृसिंह रूप धारण कर हिरण्य–कश्यप का वध कर भक्त प्रहलाद की रक्षा की ।

उन्होनें वामन रूप धारण कर राजा बलि से दान में तीन पग भूमि मांगकर सारा ब्रह्माण्ड तीन पगों में नापकर देवताओं की रक्षा की । परशुराम के रूप में अवतरित होकर उन्होनें सहस्रार्जुन जैसे आततायी क्षत्रियों का वध कर ब्राह्मणों की रक्षा की तथा राम रूप में रावणादि राक्षसों का संहार कर पृथ्वी को भार मुक्त किया तथा भगवान कृष्ण के रूप में कंस वध शिशुपालादि दुष्टों का मान–मर्दन किया और बुद्धावतार में हिंसा प्रधान यज्ञों का विरोध कर अंहिंसा धर्म की प्रतिष्ठा की । पुराणों का अनुमोदन करते हुए महात्मा तुलसी कहते है। कि भगवान का दशम अवतार कल्कि का होगा जिसमें वे म्लेच्छों का विनाश करेंगे–

वारिचर वपुष धरि भक्त निस्तार पर, धरणि कृत नाव महिमातिगुर्वी ।

सकल यज्ञांशमय उग्र विग्रह क्रोड, मर्दि दनुजेश उद्धरण उर्वी ।।

कमठ अति विकट तनु कठिन पृष्ठोपरी, भ्रमत मंदरकुण्ड सुख मुरारी ।

प्रकट कृत अमृत गो इन्दिरा, इन्दु वृन्दारकावृन्द आनन्दकारी ।।–

मनुज मुनि सिद्ध सुर नाग त्रासक, दुष्ट दनुज द्विजधर्म मरजाद हर्ता ।।

अतुल मृगराज वपु धरति, विद्धरित अरि, भक्त प्रहलाद अहलाद कर्ता ।।

छलन वलि कपट वटु रूप वामन, ब्रह्म भुवन पर्यन्त पद तीन करणं ।

चरण नख नीर त्रैलोक पावन परम, विवुध जननी दुसह शोक हरणं ।।

क्षत्रियाधीश करि निकर नवकेसरी परशुधर विप्र सस जलदरूपं ।

बीस भुजदण्ड दस सीस खंडन चंड बेग सायक नौमि राम भूपं ।।

भूमि भर भार हर प्रकट परमातमा ब्रह्म नर रूप धर भक्त हेतू ।

वृष्णि कुल कुमुद राकेश राधारमण कंस वंसावटी धूमकेतू ।।

प्रबल पाखण्ड महि मण्डलाकुल देखि निंद्यकृत अखिल मख कर्मजालं ।

शुद्ध बौधेकघन ज्ञानगुणधाम अजबौद्ध अवतार वंदे कृपालं ।।

काल कलि जनित मलमलिन मन सर्व नर मोह निशि निबिड़यवनांधकारं ।

विष्णु यश पुत्र कलकी दिवाकर उदित दास तुलसी हरण विपत्तिभारं ।।

(विनय पत्रिका 52/2–9)

इस प्रकार संत तुलसी ने धर्म की स्थापना हेतु भगवान के अवतार को विनय पत्रिका के इस कवित्त के द्वारा सिद्ध किया ।

अब हम रामावतार के वर्णन से श्री राम का सनातन धर्म सम्मत अवतार सिद्ध करेंगे ।

"वृहद्धर्मपुराण के अनुसार जब विष्णु देवताओं को आश्वासन देते हैं कि मैं दशरथ के पुत्र राम के रूप में अवतार लूँगा, उसी अवसर पर शिव जी हनुमान के रूप में राम की सहायता करने की प्रतिज्ञा करते हैं । (वृहद्धर्म पु0 पूर्व खण्ड, अ0 18)

"अध्यात्म रामायण का वृतान्त इस प्रकार है:– रावण आदि राक्षसों के अधर्म के भार से व्यथित होकर पृथ्वी गौ का रूप धारण कर देवताओं तथा मुनियों के साथ बह्म की शरण लेती हैं ।" (रामकथा–उत्पत्ति और विकास – पृ0 317) ।

इसी प्रकार विष्णु पुराण में कृष्णावतार की कथा भी वर्णित है । विष्णपुराण (अंश 5,

अध्याय 1) के अनुसार पृथ्वी ने दैत्यगण के भार से पीडित होकर देवताओं तथा ब्रह्म के साथ विष्णु की शरण ली तथा कृष्णावतार का आश्वासन प्राप्त किया। (वही.......... रामकथा 318) अध्यात्म रामायण में भी रामावतार के समय भी ब्रह्मा जी समस्त देवताओं तथा धेनु रूप पृथ्वी को ले जाकर क्षीरसागर के तट पर विराजित विष्णु भगवान से उन सभी के कष्ट निवारण की प्रार्थना करते हैं ।

उन पर प्रसन्न होकर भगवान विष्णु कश्यप तथा अदिति को प्रदत्त वर का उल्लेख करते हुए लक्ष्मी सहित अवतार लेने की प्रतिज्ञा करते हैं । तब बाल्मीकि रामायण के अनुसार ब्रह्मा जी देवताओं को अपने–अपने अंश से वानर वंश में पुत्र उत्पन्न करने का आदेश देते हैं (बालकाण्ड, अध्याय 2)

संत कवि तुलसीदास भी इन्हीं तथ्यों की समानता प्रकट करते हैं किन्तु रामचरितमानस में देवता, पृथ्वी, सिद्ध मुनिजन तथा भगवान शंकर की सलाह के आधार पर जहाँ एकत्रित हैं। वहीं भगवान का आवाहन करते हैं क्योंकि –

प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेमते प्रगट होहिंहमजाना ।।

भगवान श्री राम के अवतार के पूर्णता को गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस में इस प्रकार सिद्ध किया है; जैसा कि पूर्व में मैंने उल्लेख किया है कि भगवान षड्भगों से युक्त होता है तुलसी दास जी ने भी राम को षड्भग सिद्ध किया है ।

(1) ऐश्वर्य – अमर नाग किन्नर दिसिपाला । चित्रकूट आये तेहि काला ।।

(2) धर्म – धरम धुरीन धरम गति जानी । कहेउमातु सन अति मृदुबानी ।।

(3) यश – भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ।।

(4) श्री – श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई ।।

(5) ज्ञान – ज्ञान सभा जनु तनु धरें , भगति सच्चिदानन्द ।

(6) वैराग्य – सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे ।

इस प्रकार श्री राम भगवान सच्चिदानन्द के अवतार सिद्ध होते हैं इस तथ्य को और अधिक पुष्ट करने के लिए कुछ अन्य तथ्यों को भी प्रकट करेंगे–

गोस्वामी तुलसीदास जीने पंचतत्वों पर श्री राम की विजय का उल्लेख किया है–

(1) क्षिति तत्व पर विजय –"परसत पद पावन सोक नसावन प्रगटभई तप पुंज सही ।।"

अहिल्या का उद्धार क्षिति तत्व पर विजय को सिद्ध करता है ।

(रा0च0मा0 1/211 – छंद)

(2) जल तत्व पर विजय–"संधानेउप्रभु बिसिख कराला । उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ।।"

वाणसंधान करते ही समुद्र में ज्वाला उठना जलतत्व पर विजय का ही प्रमाण है–

(रा0च0मा0 5/58/3)

(3) अग्नि तत्व पर विजय – "श्री खण्ड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।।"

अग्नि परीक्षा में सीता की रक्षा अग्नि तत्व पर विजय का संकेत हैं। –

(रा0 च0 मा0 6/109/1)

(4) वायुतत्व पर विजय – हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरूत उनचास

श्री राम की प्रेरणा से उनचास पवनों का प्रवाहन वायु तत्व पर विजय प्रकट करता है (रा0च0मा0 5/25)

(5) आकाश तत्व पर विजय – कौशल्या को विराट दर्शन तथा काकभुशुण्डि को उदर में अनेक ब्रह्माण्डों के दर्शन आदि आकाश तत्व की विजय के प्रमाण हैं –

देखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड ।

रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ।। (रा0च0मा0 1/201)

रामावतार का आधार सनातन धर्म :– प्राकृत विश्वरचना के पूर्वाह्ण में ही परम पुरूष की तपस्या, कामना ईक्षण की बात, श्री भगवान के आविर्भाव के संबंध में कल्पान्तर कथा तथा पुराण संहिता में नित्य आविर्भाव की सूचना मिलती हैं । सृष्टि के प्राक'काल में मनु–शतरूपा की तपस्या में श्री भगवान आनन्दकंद परब्रह्म विष्णु रूप का आविर्भाव, श्री भगवान के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति, प्रलयपयोधि में श्री कृष्ण का प्रवाहित होना आदि से अनंत देव की अनंत लीलाओं का प्राकट्य होता हैं भगवान आनंदसिंधु की इन्हीं लीलाओं का गुणगान करते हुए ऋग्वेद कहता है –

"ऊँ तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन । आस्य जानन्तो नाम चिद् विविक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं ।।"1 अर्थात हे विष्णु (परब्रह्म)। तुम्हारी अनन्त महिमा को हम कितना सा जानते है। और क्या कह सकते हैं । तुम्हारे नाम की महिमा जानकर हम नाम भजन ही कर सकते हैं । इसी से हमें सुमति प्राप्त होगी ।

भजन के द्वारा सुमति प्राप्त करके ही मनुष्य अपना उद्धार कर सकता है । यथार्थतः जब तक इस भूमण्डल में व्याप्त जीव जन्तु मानवादि, सुमति सदाचार के नियमों का पालन करते रहते हैं, तब तक प्रकृति और पुरूष का संतुलन बना रहता है। किंतु जब मनुष्य वेद विहित कर्मों का उल्लंघन कर निषिद्धाचरण करने लगता है, तब इस दुराचार के फलस्वरूप अभ्युदायिनी शक्तियों का ह्रास होने लगता है तथा आसुरी शक्तियाँ वर्द्धित और बलशाली होकर क्रूरता और स्वार्थी अहंकार से दसों दिशाओं का आच्छादन कर देती है । फलस्वरूप वसुन्धरा पाप और अत्याचार से दग्ध हो व्याकुल हो जाती है, तब पृथ्वी त्राहि–त्राहि करती है। तब वह अनीश्वर ईश्वर का रूप ग्रहण करना प्रारम्भ करता है, तथा भारार्त पृथ्वी का दुख कम करने के लिये भगवान के अवतार या विभूति मानव शरीर में प्रकट होकर पुनः धर्म पथ को निष्कण्टक बनाते हैं। सनातन धर्म जगत के सनातन स्वभाव पर आश्रित है ।

---

1. गोस्वामी तुलसीदास दर्शन और भक्ति– पृ0 210

और ये नाना प्रकार के सामाजिक (वर्ण, धर्म, सामान्य धर्म) धर्म तथा व्यक्तिगत (आश्रम धर्म, विशिष्ट धर्म, आपद्धर्म) आदि नानाविध आधारगत स्वभाव का ही प्रतिफल हैं। चूँकि ये सभी धर्म अनित्य तथा परिवर्तनशील हैं देशकाल अथवा वातावरण के अनुसार इनमें यथासंभव परिवर्तन संभव है किंतु इनमें निहित सद्भावो में परिवर्तन संभव नहीं; इसीकारण इनको अपेक्षणीय अथवा वर्जनीय नहीं कहा जा सकता बल्कि इन्हीं अनित्य और परिवर्तनशील धर्मों के द्वारा सनातन धर्म विकसित और अनुष्ठित होता है ।

ईश्वर की सम्पूर्ण सन्तुलन व्यवस्था की अवहेलना कर मनुष्य जब जब अपना स्वधर्म त्यागकर पथभ्रष्ट हो जाता है तथा धर्म के आधार स्तम्भों पर कुठाराघात करने लगता है तब आर्तजनों की करूण पुकार से करुणानिधान का हृदय द्रवीभूत हो जाता है । अपने भक्तों के प्रेम तथा उनके दुःखों का निवारण करने तब तब प्रभु निर्गुण से सगुण रूप धारण करते हैं । जैसा कि गीता में भगवान स्वयं कहते हैं कि–

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।" 4/7,8 ।।

हे भारत ! जब–जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का प्रादुर्भाव होता है, तब–तब मैं अपना सृजन करता हूँ । साधुजन की रक्षा और दुष्कर्मी लोगों के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिए मैं युग–युग (तत्तत् काल में) अवतीर्ण होता हूँ ।' जिस धर्म की ग्लानि होने पर अवतार होता है रामचरित मानस में संसार की उस स्थिति का सजीव चित्रण किया गया है जब प्रभु का अवतार ग्रहण करना आवश्यक हो जाता है–
रावण अपने अनुचरों को आदेश देता है–

"द्विजभोजन मख होम सराधा । सब कै जाइ करहू तुम्ह बाधा ।।
ब्रह्मसृष्टि जहँ लग तनुधारी । दसमुख बसवर्ती नरनारी ।।

जेहि बिध होई धर्म निर्मूला । सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ।।

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाउँ पुर आग लगावहिं ।।

शुभ आचरन कतहुँ नहिं होई । देव विप्र गुरू मान न कोई ।।

नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना । सपनेहुँ सुनिअ न वेद पुराना ।।

जप जोग बिराग तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा ।

आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा ।।

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना ।

तेहि बहुविधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना ।।

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जेलम्पट परधन परदारा ।।

मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ।।"1

अर्थात् अत्याचारी रावण वेद विहित जितने धर्म कर्म हैं सबके प्रतिकूल आचरण करता था प्रजा को भाँति–भाँति की यातनायें देता था । परिणाम स्वरूप अधर्मी राजा की प्रजा भी वेदविहित मर्यादाओं का त्याग कर अधर्माचरण करने लगती है ।

धर्म के आधार स्थानों का विवेचन करते हुए ब्रह्मवैवर्त पुराण कहता है– सारे वैष्णव, यति, ब्रह्मचारी पतिव्रतानारी, प्राज्ञव्यक्ति, वानप्रस्थी, भिक्षु, धर्मशील नृप, सद्वैद्य, द्विजसेवापरायण शूद्र, तथा सज्जनों के संसर्ग में रहने वाले लोग सभी में धर्म सर्वदा अवस्थित रहता है ।"2 इन धर्म के स्थानों पर कुठाराघात होते ही पृथ्वी व्याकुल होकर कहती है ।

"गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही । जस मोहि गरूअ एक परद्रोही ।।"3

पर्वतों, नदियों और समुद्रों का बोझ इतना भारी नहीं जान पड़ता जितना कि एक परद्रोही (दूसरों का धर्मनष्ट करने वाला, अहित करने वाला) का भार असहनीय होता है ।

---

1. रामचरित मानस – 1/183
2. ब्रह्म0 वै0 पु0 अ0 32 (कृष्णजन्म खण्ड)
3. राम0च0मा0 – 1/184

परहित ही तो धर्म का मूल तत्व है और यदि मूल तत्व ही नष्ट होने लगे तो धर्मरूपी वृक्ष स्वतः ही नष्ट हो जाएगा । परहित धर्मतत्व इस कारण है क्योंकि सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी आदि जो जगजीवन के आधार हैं निरंतर परहित निरत हैं । सूर्य अपने लिये नहीं तपता, चन्द्रमा अपने लिये अमृत वर्षा नहीं करता, जलद अपने लिये जलवृष्टि नहीं करते, पृथ्वी अन्न पुष्प अपने लिये उत्पन्न नहीं करती सभी परहित में संलग्न होकर स्वलक्षणानुकूल स्वधर्म का पालन कर जगत धारण का कारण बने हुए हैं किंतु मनुष्य अपने स्वधर्म (परोपकार) को भूलकर जब गो, ब्राह्मण और स्त्री आदि पर अत्याचार करने लगता है तब अपने आचरण के द्वारा सम्पूर्ण समाज में अपने उस परम सनातन धर्म की स्थापना हेतु प्रभु को अवतार धारण करना पड़ता है ।

मनुष्य रूप में ईश्वर मानवोचित वृत्ति के अनुकूलजब धर्माचरण करते हैं तो साधारण मनुष्य के लिए एक आदर्श बन जाता है । श्री राम ने अपने मर्यादानुकूल चरित्रों द्वारा सिद्ध कर दिया कि कोई भी मनुष्य ऐसा आचरण करके उस श्रेणी तक पहुँच सकता है जिसे परमधाम (मोक्ष) कहते हैं ।

महर्षि बाल्मीकि कहते हैं। कि श्री राम का जन्म केवल रावणादि राक्षसों का वध करने के लिये ही नही हुआ हैं अपितु मनुष्यों को धर्म की शिक्षा देने के लिये भी हुआ है– **"मर्त्यावतारस्वित्वह मर्त्य शिक्षण रक्षोवधायते न केवलं विभोः ।"** 1

श्री राम के अवतार के कारण प्रभुनिर्मित वही सनातन धर्म है । वह सनातन ध र्म ही है जो ईश्वर को शरणागत वत्सल, धर्म वत्सल, लोक वत्सल, रिपुवत्सल, मातृ–पितृ वत्सल बनाता है प्रभु की यही करूणामय वत्सलता अवतार का हेतु है ।

---

1. बाल्मीकि रा0 – 5/19/5

अपने भक्तों की तपस्या द्वारा आर्त पुकार भक्त का श्राप, दीन दुखियों का दुख आदि अनेक ऐसे कारण हैं जिसके फलस्वरूप वह अव्यक्त परब्रह्म साकार होकर इस मृत्युलोक में प्राकृत नर के समान लीलायें करते हैं । तभी तो संत तुलसी मग्न होकर कहते हैं–

"व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत विनोद ।

सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद ।।"1

जो सर्वव्यापक, निरंजन (मायारहित), निर्गुण, विनोद रहित और अजन्मा ब्रह्म है वही प्रेम और भक्ति के वश होकर कौशल्ला की गोद में खेल रहे हैं ।

भगवान के अवतार के संबंध में रामचरित मानस में जो जो तथ्य दिये गये हैं उनका एक एक करके वर्णन करना न्यायसंगत होगा ।

1. गो का अर्थ है, पृथ्वी, रावण के अत्याचारों के जब धरती व्याकुल हो गई तब वह गाय का रूप बनाकर भगवान के पास अपनी करुण व्यथा सुनाने गई प्रभु ने समस्त देवता, सिद्ध मुनि, ब्रह्मा शंकर भगवान और पृथ्वी सभी को अभय करते हुए कहा–

"जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहिं लगि धरिहउँ नर वेसा ।।

हरिहउँ सकल भूमि गरूआई । निरभय होहु देव समुदाई ।।" (1/187/17)

2. **"गो द्विज धेनु देव हितकारी । कृपासिंधु मानुषतन धारी ।।**

जन रंजन खंजन खल ब्राता । वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता ।।"

गो (पृथ्वी) द्विज (ब्राह्मण) धेनु (गौ) के अर्थों में प्रयुक्त हैं ।

धेनु (गौ) रक्षा सनातन धर्म सम्मत है क्योंकि–

---

1. रा0च0मा0 – 1/198

"हरि हर विधि, शशि सूर्य, इन्द्र, वसु, साध्य, प्रजापति वेद महान ।

गिरा, गिरि सुता, गंगा, लक्ष्मी, ज्येष्ठा, कार्तिकेय भगवान ।।

ऋषि, मुनि, ग्रह, नक्षत्र, तीर्थ, यम, विश्वदेव, पितर, गन्धर्व ।

गोमाता के अङ् अङ् रहे विराज देवता सर्व ।।"1

भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान तथा कृषि प्रधान है । गाय ही एक ऐसा जीव है जिसके द्वारा धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष सभी प्राप्त होते हैं। । मृत्यु के समय गोदान करना हमारे धर्मशास्त्रों द्वारा प्रणीत एक संस्कार है ।

गौ के भीतर हरि (पालन कर्ता) हर (रोग प्रतिरोधक शक्ति सम्पन्न) विधि (सृजन, यज्ञादि कार्यों में सहायक) शशि (शीतल मधुर दुग्ध प्रदान करने वाली), सूर्य (यज्ञादि कार्य हेतु घृत दात्री) इन्द्र (कृषि कार्य में सहायक) प्रजापति (प्रजा का पोषण करने वाली) इसी प्रकार अनेक ऐसे लाभ हैं जो गाय से प्राप्त होते हैं ।

ऋग्वेद गौ की महत्ता का वर्णन करते हुए कहता है–

माता रूद्राणां दुहिता वसूनां ।

स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः ।।

महाभारत में गौ की महिमा के संबंध में वर्णित है कि–

"गावो लक्ष्म्याः सदामूलं गोषु पाप्मा न विद्यते । अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हवि ।।

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम् । विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षती ।। 2

गौएँ लक्ष्मी की जड़ हैं उनमें पाप का लेश भी नहीं है। गौएँ मनुष्यों को अन्न तथा देवताओं को श्रेष्ठ हविष्य प्रदान करती हैं । गौओं का समुदाय जहाँ वैठकर निर्भयता पूर्वक श्वास लेता है उस स्थन की शोभा बढ़ जाती है और वहाँ का सारा

---

1. कल्याण धर्मांक से उद्धृत

2. महाभा0 अनु0 प0 – 51/28, 32

पाप नष्ट हो जाता है ।

गृहस्थ के दरवाजे की तो शोभा ही गाय है । वह भौतिक समृद्धि का सर्वाधिक उत्तम साधन माना जाता है । गोधन हमारी समस्त ऐहिक समृद्धि का मूल तथा गोपुत्र (बैल) कृषि के आधार थे ।

हमारे पूर्वजों ने गो सेवा से अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की उनमें से प्रमुख हैं । महाराजा दिलीप, पृथु आदि तथा संत शिरोमणि समर्थ गुरू रामदास जी आदि ने उसी परम्परा का निर्वाह किया ।

भगवान श्री राम के अवतार का कारण ही परहित संलग्नों की रक्षा करना है ।

ब्राह्मण रक्षा भी समाज में धर्म का संतुलन बनाये रखने के लिये आवश्यक है क्योंकि हमारे स्वस्तिवचन स्वयं कहते है–

"गो ब्राह्मणेभ्यं शुभमस्तु नित्यं लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु" ।

समस्त विश्व के कल्याणार्थ गो तथा ब्राह्मण की रक्षा आवश्यक है ।

क्योंकि– **"देवाः परोक्ष देवाः प्रत्यक्षदेवा ब्राह्मणाः ।**

ब्राह्मणैंलोका धारयन्ते । ब्राह्मणानां प्रसादेन दिवि तिष्ठति देवताः ।[1]

ब्राह्मण ही इस लोक को धारण करते हैं ।

ब्राह्मण की कही बात कभी मिथ्या नहीं होती ।

मनु हो या याज्ञवल्क्य, महाभारत हो या रामायण तथा पुराण सभी ब्राह्मणों की महिमा का वर्णन करते हैं।

तुलसीदास जी ब्राह्मण को तप के बल से बली बताते हैं–

"तपबल विप्र सदा बरिआरा । (मानस)

---

1. विष्णु ध0 सू0 – 19/20–22

वह ब्राह्मण का श्राप ही था जिसने परम धर्मात्मा राजा प्रतापभानु को राक्षस बना दिया । वह ब्राह्मण (नारद) का ही श्राप था जिसकी मर्यादा को स्वयं सच्चिदानंद भगवान ने रखा ।

निरूक्त में विद्यासूक्त नामक चार मंत्र हैं जिनमें प्रथम सूक्त के अनुसार विद्या ब्राह्मणों के पास आई और अपनी रक्षा के लिये उसने प्रार्थना की । मनुस्मृति में भी ऐसा ही वर्णित है–

"विद्या ब्राह्मणमित्याह शेव धिष्टेऽस्मि रक्ष माम् ।

असूयकाय मां मादास्तथास्यां वीर्यवत्तमा ।।"1

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार विधाता ने वेदों की रक्षा तथा देवों, पितरों की तुष्टि एवं धर्म की रक्षा के लिये ब्राह्मणों को उत्पन्न किया है–

"तपस्तप्त्वऽसृजदब्रह्मा ब्राह्माणान्वेदगुप्तये ।

तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्म संरक्षणाय च ।।"2

परमेश्वर अपने द्वारा सृजित इस धर्मरक्षक का संकट कैसे सहन कर सकते हैं ।

देवों का हित तो परमेश्वर के लिये परमावश्यक है क्योंकि देवों के परोपकार से तो सृष्टि का संचालन होता है। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, वरुण इन्द्र आदि देवताओं की कृपा से ही मृत्युलोक वासी जीवित हैं ।

संतों की रक्षा का भी वर्णन मानस में अवतार का हेतु है–

"विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।"3

संतों का तो जीवन ही प्रभु चरणार्पित होता है संतों के लक्षण बताते हुए मानस में श्रीराम कहते हैं ।

---

1. निरूक्त – 24 मनुस्मृति – 2/114
2. याज्ञव0 – 1/198
3. रा0 च0 मा0 – 1/198

"संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता । अगनित श्रुति पुरान विख्याता ।।

संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ।।

काटइ परसुमलय सुनुभाई । निजगुन देह सुगंध बसाई ।। 1

अर्थात अपना अहित करने वाले का भला करना संत का स्वभाव है । अन्य लक्षण हैं:–

"विषय अलंपट सील गुनागर । परदुख दुख सुख सुख देखे पर ।।

सम अभूत रिपु विमद बिरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ।।

कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मनबच क्रम ममभगति अमाया ।।

सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ।। 2

हे भ्राता भरत वे सब प्राणी मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं जो विषयासक्त न हो, शील स्वभाव वाले, दूसरों के दुख में दुखी तथा सुख में सुखी हो, कोमल ह्रदय वाले जो सभी दीनों (दुर्बलों) पर दया भाव रखें, दूसरों को मान दें पर स्वयं अमानी (मान न चाहने वाले) हों तथा निरन्तर मेरी भक्ति में रत हों । **तथा–**

सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ।।

समदम नियम नीतिनहिंडोलहिं । परुष वचन कबहूँनहिं बोलहिं ।। 3

शीतलता, सरलता, मैत्री, ब्राह्मण सेवा, धर्मज्ञ, शम, दम, नियम नीति आदि मानव धर्मों से जो कभी विचलित नहीं होते ऐसे मधुर वाणी युक्त संतों की रक्षा करना प्रभु अपना धर्म समझ कर अवश्य कृपा करते है ।

---

1. रा0 च0 मा0 – 7/37–6–8
2. रा0 च0 मा0 – 7/38–1–4
3. रा0 च0 मा0 – 4/6–8

महाभारत में जैसा कि महर्षि वेदव्यास कहते है। कि –

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।"

अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है धर्म स्वयं उसकी रक्षा करता है किंतु जो धर्म को नष्ट धर्म की रक्ष करता है निश्चित ही नष्ट किया हुआ धर्म उसका विनाश कर देता है ।

कहा भी गया है कि ईश्वर सत्य है और सत्य ही धर्म है ।

प्रभु श्री राम केअवतार का कारण यही सनातन सत्य रूपी धर्म है इन तथ्यों से पूर्णतः स्पष्ट है ।

दूसरा कारण प्रभु की भक्त वत्सलता है । रामचरित मानस में भगवान शंकर माता पार्वती से प्रभु के अवतार के हेतु बतलाते हुए कहते हैं कि–

"राम जनम के हेतु अनेका । परम विचित्र एक तें एका ।।"1

रामावतार का भक्त वत्सल हेतु प्रकट करने के लिए दो प्रमाण उपलब्ध होते हैं–

(1) दोवरदानों की कथा (कश्यप अदिति तथा मनु शतरूपा)

(2) दो श्रापों की कथा (जय–विजय को विप्रश्राप तथा नारद श्राप)

दो वरदान – मानस में कश्यप अदिति के वरदान की कथा के संकेत मात्र मिलते हैं–

"कस्यप अदिति महातप कीन्हा । तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ।।"2

दूसरा वरदान मनु और शतरूपा को दिया–

"स्वायंभू मनु अरू सत रूपा । जिन्हते भै नर सृष्टि अनूपा ।।

भगत बछल प्रभु कृपा निधाना । विस्ववास प्रगटे भगवाना ।।"3

प्रभु से वरदान स्वरूप आदि नर दम्पति ने उन्हें अपने पुत्र रूप में माँग लिया तब प्रभु ने वरदान स्वरूप उनका पुत्र बनना स्वीकार किया–

---

1. रा0 च0 मा0 – 1/122–2
2. रा0 च0 मा0 – 1/187–3
3. रा0 च0 मा0 – 1/142–1–146/8

"होइहउं अवध भुआल, तब मैं होबतुम्हार सुत ।।"1

"पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा । सत्य सत्य पन सत्य हमारा ।।"2

रामचरित मानस में मनु और शतरूपा को दिये इस वरदान की कथा विस्तार से मिलती है ।

श्रीमद्भागवत के आठवें स्कंध के अध्याय 16–17 में कश्यप की समाधि तथा अदिति के पयोव्रत की कथा कही गई है ।

मनु–शतरूपा के वरदान की कथा प्रद्मपुराण के सातवें अध्याय में आई है । वहाँ एक हजार वर्ष तपस्या के फलस्वरूप भगवान ने उन्हें तीन जन्मों तक उनके पुत्र बनने का वरदान दिया था ।

अब शाप की कथाओं के आधार पर श्री रामावतार का विवेचन करते हैं । रामचरित मानस में जिन शापों का विवेचन है उनमें नारद जी के द्वारा भगवान विष्णु को श्राप–

"नारद श्राप दीन्ह एक बारा । कलप एक तेहि लगि अवतारा ।। 3

भगवान विष्णु ने अपने परमभक्त नारद के धर्म की रक्षा के लिये तथा उन्हें अहंकार रूपी प्रवल शत्रु से बचाने के लिये अपनी माया के वशीभूत नारद जी द्वारा दिया हुआ श्राप भी ग्रहण किया ।

दूसरा श्राप असुरराज जालंधर की पत्नी द्वारा भगवान विष्णु को दिया गया–

एक कलप सुर देखि दुखारे । समर जलंधर सन सब हारे ।।

परम सती असुराधिप नारी । तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी ।। 4

---

1. रा0 च0 मा0 - 1/1/151

2. रा0 च0 मा0 - 1/1/152/5

3. रा0 च0 मा0 – 1/124/5

4. रा0 च0 मा0 – 1/123

छल करि टारेउ तासु व्रत । प्रभु सुर कारज कीन्ह ।।

जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह ।

तासुश्राप हरि दीन्ह प्रमाना । कौतुक निधि कृपालुभगवाना ।।

तहाँ जलंधर रावन भयउ । रन हति राम परम पद दयऊ ।। 1

(ङ) सनातन धर्म सम्मत श्री राम का स्वरूप – श्रीमद्भागवत में भगवान राम की वंदना स्वरूप उनके गुणों का वर्णन है ।

ॐ नमो भगवते उत्तम श्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन महापुरूषाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरूषाय महाराजाय नम इति ।।"

अर्थात् हम ऊँकार स्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान श्री राम को नमस्कार करते हैं । आपमें सत्पुरूषों के लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं; आप बडे ही संयत चित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुता की परीक्षा के लिये कसौटी के समान और अत्यन्त ब्राह्मण भक्त हैं । ऐसे महापुरूष महाराज राम को हमारा पुनः–पुनः प्रणाम है ।

भगवान श्री राम विश्वगत समस्त मर्यादाओं के रक्षक हैं । वे भारतीय संस्कृति की सामाजिक विशिष्टाताओं के प्रतीक हैं । जैसा कि श्री मद्भागवत में वंदन है बाल्मीकि आदि सभी रामायणों में भी स्वीकृत है कि श्री राम अनन्तकोटि ब्राह्मण्डनायक परमपिता परमेश्वर के अवतार थे और धर्म की मर्यादा रखने के लिये भारत भूमि अयोध्या में राजा दशरथ के पुत्र रूप में अवतरित हुए थे । भगवान श्री राम ने इस पवित्र भारत भूमि पर उस समय अपने अंशों सहित (लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) अवतार लिया जब राक्षसों का नग्न वीभत्स रूप इतना प्रचण्ड हो गया था कि ऋषि मुनियों गौ एवं ब्राह्मणों

---

1. रा० च० मा० – 1/124

के जीवन में त्राहि–त्राहि मच गई थी । जहाँ–जहाँ कोई वेदशास्त्र विहित यज्ञादि कर्म किये जाते थे, राक्षसगण रावण की आज्ञानुसार उन्हें विध्वंस करने के लिये सदा तत्पर रहते थे ।

राक्षसों का राजा रावण सम्पूर्ण भूमण्डल पर एकछत्र राज्य करने की इच्छा से नाना प्रकार के मायाजाल रच रहा था ।

देव, मानव, पशु, पंक्षी, सभी व्याकुल हो उठे तब करुणानिधान ने दया करके सभी का दुःख दूर करने की प्रतिज्ञा करते हुए– "निसिचर हीन करौं मही । भुज उठाइ पनु कीन्ह" पृथ्वी पर मानव शरीर धारण किया ।

महर्षि बाल्मीकि स्वयं श्री राम के सनातन धर्म सम्मत स्वरूप के दृष्टा हैं उन्हीं के कथनानुसार –"रामो विग्रहवान धर्मः" श्री राम स्वयं मूर्तमान धर्म हैं । वे जो कहते हैं वह धर्म है जो करते है वह धर्म है तथा जहाँ जाते हैं वह भी धर्म का ही मार्ग है। रामायण के युद्धकाण्ड में महर्षि बाल्मीकि कहते हैं कि–

"यस्मिन न चलते धर्मो यो धर्म नातिवर्तते ।

यो ब्राह्ममजस्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ।। 1

जिनसे धर्म कभी अलग नहीं होता और जो धर्म का कभी परित्याग नहीं करते, जो वेदों के साथ धनुर्वेद के भी पूर्ण मर्मज्ञ हैं, वे इक्ष्वाकुओं के अतिरथी ये ही राम हैं। सभी सुलभ प्राप्त ग्रंथों के आधार पर श्री राम का सनातन धर्म सम्मत स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं ।

1. सामान्य धर्म सम्मत स्वरूप

2. विशिष्ट धर्म सम्मत स्वरूप

सामान्य धर्म सम्मत स्वरूप – सर्व सम्मति से सनातन धर्म के जिन दस धर्म लक्षणों का प्राकट्य हुआ है उन्हीं सामान्य धर्म लक्षणों के आधार पर हम श्री राम का सामान्य

---

1. बा0 रा0 यु0 का0 – 28/19

धर्म के अनुकूल चरित्र प्रकट करेंगे वैसे तो महात्मा तुलसी ने ठीक ही कहा है–

"सब जानत प्रभु प्रभुता सोई । तदपि कहे विनु रहा न कोई ।।"1

इसी भावना के साथ प्रभु के चरणारविन्द में कुछ श्रद्धा पुष्प अर्पित करना चाहती हूँ । धर्म के लक्षण हैं –

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम् ।"

मनुस्मृति में उद्घोषित इन्ही दस धर्म के सनातन लक्षणों का किस प्रकार प्रभु के चरित्र में निरूपण हुआ है यह हम तथ्यों के माध्यम से पूर्णतः स्पष्ट करेंगे ।

1. धृति धर्म का निरूपण – महर्षि बाल्मीकि के अनुसार श्री राम धैर्य में हिमालय के समान थे "धैर्येण हिमवानिव' । धृति धर्म के अनेक उदाहरण श्री राम के चरित्र में दृष्टव्य हैं ।

यथा–

"सुनि गुरू वचन चरन सिरू नावा । हरषु विषाद न कछु उर आवा "2

श्री राम इतने धैर्यवान हैं कि विश्वसुन्दरी सीता के स्वयंबर में धनुषभंग का अवसर प्राप्त होने पर भी उनके ह्रदय या मुख मण्डल पर कोई उत्तेजक भाव भंगिभा नहीं थी ।

उनका यह धृति धर्म ही उन्हे अत्यन्त विनम्र बना देता है ।

धर्म के एक–एक लक्षण उनके चरित्र रूपी मुकुट में मणियों की तरह जटित हैं।

2. क्षमाधर्म निरूपण – 'क्षमया पृथिवीसमः' बाल्मीकि रामायण में भगवान श्री राम को पृथ्वी के समान क्षमावान बताया गया है । प्रभु की शरणागत वत्सलता क्षमा धर्म का ही उत्कर्ष है ।

---

1. रा0 च0 मा0 – 1/13–1
2. रा0 च0 मा0 – 1/254/7

श्री राम स्वयं कहते हैं कि "आर्तोवा यदि वा द्रप्तः परेषां शरणं गतः ।

अरिप्राणान् परित्यज्यरक्षित्य कृतात्मा ।।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो वदाम्येतद् व्रतं मम ।।"1

शत्रु दुखी हो अथवा अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षी की शरण में आजाए तो शुद्धचित्त वाले सत्पुरुष को अपने प्राणों का मोह छोडकर उसकी रक्षा करनी चाहिए । मेरा यह नियम है कि जो एक बार शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे रक्षा की प्रार्थना करता है उसे मैं समस्त प्राणियों से अभय कर देता हूँ ।

दम धर्म तथा इन्द्रिय निग्रह का निरूपण – महर्षि बाल्मीकि कहते है। कि राम बडे दयालु क्रोध को जीतने वाले, ब्राह्मणों के पूजक, दीन, दयालु, धर्मज्ञ, इन्द्रियों, को सदा वश में रखने वाले और भीतर बाहर से पवित्र थे–

"सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मण प्रतिपूजकः ।

दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवांछुचिः ।।"2

श्री राम का दम धर्म उनके एकपत्नी व्रत से ही सिद्ध हो जाता है । उस काल में जब राजा–महाराजा अनेक विवाह करते थे । तब राम ने एक पत्नीव्रत रहकर एक आदर्श स्थापित किया । यहाँ तक कि सीता का त्याग करने के पश्चात भी उन्होनें अश्वमेध यज्ञ के समय सीता की स्वर्णप्रतिमा के साथ यज्ञ सम्पन्न किया । यह उनके दृढचरित्र तथा दम धर्म का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है ।

दम धर्म की इतनी साधना थी कि श्री राम स्थितप्रज्ञ हो गये थे–

"दृढ भक्ति स्थित प्रज्ञो नासद्ग्राहीनदुर्बचः' ।

'प्रसन्नतां या न गताभिषेकस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः" ।। 3

1+2. बा0 रा0 7 6/18– 28–33

3. रा0 च0 मा0 2/2

अर्थात् गुरूजनों के प्रति दृढभक्ति रखने वाले और स्थित प्रज्ञ थे । उन्हें राज्यप्राप्ति से प्रसन्नता नहीं तथा वनवास से दुख नहीं था ।

राजा बनकर भी धर्म पालन करना था तथा बनवास भी कर्तव्य पूर्ति के लिये स्वीकार्य था ।

अस्तेय धर्म का निरूपण – अस्तेय धर्म को हम निर्लोभता के रूप में श्री राम के चरित्र में दृष्टिगोचर करेंगे उनकी निश्छलता सरलता मृदुता सहजता ही अस्तेय धर्म बनकर उनके चरित्र में सद्गुणों के रत्नों में से एक है ।

महर्षि बाल्मीकि ने तो सम्पूर्ण व्यक्तित्व का चित्रांकन अपनी सुन्दर भाषा में किया है–

> **"स हि रूपोपन्नश्च वीर्यवानसूयकः ।**
>
> **भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः।**
>
> **स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते ।**
>
> **उच्चायमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ।।**
>
> **कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।**
>
> **न स्मत्यपकाराणां शतमव्यात्वमत्तया ।।**
>
> **शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः ।**
>
> **कथयन्नास्त वै नित्यमस्रयोग्यान्तरेष्वपि ।।**
>
> **बुद्धिमान् मधुरभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः ।**
>
> **वीर्यवान च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ।।" (21/1/9–13)**

अर्थात् वे बडे रूपवान एवं पराक्रमशील थे । किसी का दोष नहीं देखते थे ।

संसार में अनुपम थे; दशरथ के समान ही योग्य पुत्र थे । प्रशान्तात्मा और मृदुभाषी थे। कठोर वचनों का उत्तर नहीं देते थे । उपकार को सदैव याद रखते थे, सदैव संतुष्ट रहते थे, क्षमावान इतने थे कि कोई सैकड़ों अपराध करे तो भी क्षमा कर देते थे । अस्त्राभ्यासकाल में भी समय निकाल कर शील, ज्ञान एवं आयु में श्रेष्ठजनों का सत्संग करते थे । वे बुद्धिमान तथा मृदुभाषी थे । मिलने वालों से पहले स्वयं प्रिय वचन बोलते थे । बल और पराक्रम में अद्वितीय होने पर भी कभी गर्व का अनुभव नहीं करते थे । विद्वान होते हुए भी बड़ो बूढ़ो की भक्ति करते थे । उनका प्रजा के प्रति तथा प्रजा का उनके प्रति बड़ा अनुराग था ।

शौच धर्म का निरूपण– तन और मन की पवित्रता ही शौच है । श्री राम तो परम पवित्र थे–

'सरल सुभाव छुअत् छल नाहीं । छल कपट तो छू कर भी नहीं निकला था ।

श्री राम की दिनचर्या के कुछ अंशों के द्वारा हमें उनके शौचधर्म का ज्ञान हो जायेगा । महर्षि बाल्मीकि अपने शिष्य को उपदेश करते हए कहते हैं–

"श्रृणु शिष्य वेदाम्यश्च राम राज्ञः शुभावहा ।

दिनचर्या गायकैर्गीतैर्बोधितो रघुनन्दनः ।

नववाद्यनिनांदाश्च सुखं सुश्राव सीतया ।।

ततो ध्यात्वाशिवं देवीं गुरूं दशरथं सुरान् ।

पुण्यतीर्थानि मातृश्च देवतायतनानि च ।।

स्नात्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुरःसरम् ।।"[1]

अर्थात् हे शिष्य श्री राम की दिनचर्या तुम्हें सुनाता हूँ उसे धारण करो । भगवान श्री राम चार घड़ी रात्रिशेष रहते ही मंगलगीत आदि को श्रवण कर के जागते थे । फिर

1. बा0 रा0 – राज्य का0 19/2–3–10

शिव, देवी, गुरू, देवता, पिता, तीर्थ, माता, देव मन्दिर दर्शन के पश्चात दन्तशुद्धि करते थे । तदुपरान्त ब्राह्मणों के वेद घोष के साथ विधिवत स्नान करके प्रातः संध्या तथा ब्रह्म यज्ञ करते थे । ब्राह्मणों को प्रतिदिन दान देते थे और कौशल्यादि माताओं का पूजन करते थे, फिर गौ, तुलसी, पीपल तथा शिव आदि का पूजन एवं सूर्य नारायण को अर्ध्य देते थे । इसके पश्चात सद्ग्रन्थों तथा पुराण कथा (ब्रह्म विज्ञान) श्रवण करते थे ।

धी धर्म का निरूपण – धी का अर्थ है 'धर्म विषयक बुद्धि नीति (सदाचार) से युक्त रहकर किस प्रकार अपनी बुद्धि को मानवता की चरम सीमा तक पहुँचाया जाय । इसका सुन्दर आदर्श भगवान श्री राम ने अपने जीवन में प्रस्तुत किया इस सौन्दर्य की मधुर झाँकी उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आलोकित करती हैं ।

मानवधर्म का परम विशेषण "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना उनके विशाल हृदय की परिचायक बनकर कण–कण (सर्वत्र) में उभरती है। उनसे छोटे से छोटे जीव का दुख भी देखा नहीं जाता स्वयं के लिये किसी वस्तु की इच्छा नहीं थी उनका सर्वस्व उनके प्रियजनों का था । पराज्ञान इतना था कि क्षण भर में सांसारिक दुख से दुखी मनुष्यों का कष्ट हर लेते थे । बालि की मृत्यु के पश्चात तारा को विज्ञान देते हुए कहते हैं–

"क्षिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ।।

प्रगट सो तनु तव आगे सोवा । जीव नित्य केहिलगि तुम्हरोवा ।। [1]

अर्थात् हे तारा! पंचतत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु) से निर्मित यह अधम शरीर तो तुम्हारे पास पड़ा है जो नहीं है वह तो नित्य (आत्मा) है फिर दुख किस लिये ?

विद्या धर्म का निरूपण – श्री राम के बाल जीवन से ही उनकी प्रखर बुद्धि का परिचय

---

1. रा० च० मा० – 4/11, 4/5

मिलता है । जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास का कथन है कि "गुरुगृह पढ़न गये रघुराई। अल्पकाल विद्यासब पाई ।।

विद्या विनय निपुन गुन सीला । खेलहिं खेल सकल नृप लीला ।।"1

विद्यावान, विनयशील सभी सद्‌गुणों से निपुण भगवान श्री राम मानव शरीर की मर्यादा की रक्षा के लिये खेल करते हैं अल्प समय में ही उन्हानें सभी विद्याओं (धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि) के यथार्थ का ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

सत्य धर्म का निरूपण – श्री राम का समस्त जीवन सत्य धर्म के लिये ही समर्पित था। जिस वंश में उन्होनें जन्म लिया था उसमें सत्यधर्म की साधना करने वाले अनेक महापुरुष हुए – हरिश्चन्द्र, दिलीप रघु और राजा दशरथ स्वयं सत्यसंघ थे इस वंश का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने लिखा है ।

"सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदय कर्मणाम् ।

आसमद्रक्षितिशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।।

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभषिणाम् ।"2

अर्थात् मैं उन प्रतापी रघुवंशियों का वर्णन करने बैठा हूँ जिनके चरित्र जन्म से लेकर अन्त तक शुद्ध और पवित्र रहे, जो किसी काम को उठाकर उसे पूरा करके ही छोडते थे । जिनका राज्य समुद्र के ओर छोर तक फैला था, जिनके रथ पृथ्वी से सीधे स्वर्ग तक आया जाया करते थे जो दान देने के लिए ही धन का संग्रह करते थे तथा सत्य के लिये मितभाषी थे अर्थात् वाणी से जो कहते थे उसे कर दिखाते थे। तुलसीदास जी ने भी यही कहा कि–

"रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाय बरू वचनु न जाई ।।" (मानस)

ऐसे श्रेष्ठ वंश में जन्म लेने के कारण सहज ही शुभ संस्कार उनके आचरण में विद्यमान थे ।

---

1. रा0 च0 मा0 1/209–7,8
2. रघुवंश 7 1/5,7

आक्रोध धर्म का निरूपण – श्रेष्ठ वंश विभूति, माता पिता का अनुपम वात्सल्य, लोक प्रियता, अनुगत बन्धु, गुरूजनों का स्नेह और आशीर्वाद असीम पौरुष, अलौकिक सौन्दर्य एवं पराक्रम ये समस्त विभूतियाँ मिलकर भी लेशमात्र अहंकार का भाव श्रीराम के हृदय में उत्पन्न नहीं कर पाती थीं । 'भूत दया' की भावना ही उनके अक्रोध का कारण थी । स्वयं श्री राम के द्वारा उपदिष्ट नीति स्वयं आचरित होकर उनके चरित्र की अक्रोध भावना का प्रमाण देती है–

ऐसे शील स्वभाव श्री राम भला किसके प्रति क्रोध कर सकते हैं जिसने अपनी पत्नी पर अत्याचार करने वाले को भी एक बार क्षमा करने का विचार किया हो ।

तभी तो महात्मा तुलसी द्रवित होकर कह उठते है।

ऐसो को उदार जगमाहीं ।

बिनु सेवा जो द्रवैदीन पर । राम सरिस कोउ नाहीं ।।

विशिष्ट धर्मों का निरूपण –

महर्षि बाल्मीकि श्री राम के कुछ विशिष्ट धर्मों का वर्णन करते हुए कहते हैं–

"कुलोचित मतिः क्षात्रं स्वधर्म बहु मन्यते ।

मन्यते परयाप्रीत्या महत स्वर्ग फलं ततः ।।"

न श्रेयसि रतो यश्च न विरूद्ध कथा रुचिः ।1

श्री राम कुलोचित आचार के पालनकर्ता एवं स्वधर्म (क्षात्रधर्म) को बहुत महत्व देने वाले थे और उनके द्वारा महान स्वर्गफल पाने के प्रति विश्वासी थे । किसी अश्रेयकार्य में उनकी कभी प्रवृत्ति नहीं होती थी । नहीं कभी शास्त्र विरोधी बातें सुनने में रुचि रखते थे ।

---

1. बा0 रा0 – 2/1 – 16,17

पारिवारिक जीवन की दृष्टि से देखा जाए तो श्रीराम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति तथा आदर्श स्वामी थे ।

माता पिता के परम भक्त थे तभी तो विमाता की इच्छा पूर्ति के लिए तथा पिता के वचन का मान रखने के लिये क्षण भर में राज्य त्यागकर अपने को धन्य समझते हुए कहते हैं–

"धन्य जनम जगतीतल तासू । पितहिं प्रमाद चरित सुनि जासू" ।। 1

मित्र धर्म के उच्चतम आदर्श थे । श्री राम की सुग्रीव के साथ मित्रता होने पर वे कहते हैं– **"सखा सोच त्यागहु बल मोरे । सब विधि घटब काज मैं तोरे ।।"**

मित्र का दुख पहले दूर करते हैं तत्पश्चात अपने दुख का निवारण करते हैं। बालसखा निषाद राज को ह्रदय से लगाकर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि मानव की एक ही जाति है वह है मानवजाति न कोई नीच है न कोई ऊँच वेद का भी तो यही कथन है–

"सं गच्छध्वं संवदध्वं" तो वेद धर्म के रक्षक श्रीराम क्यों न इस धर्म का निर्वाह करेंगे ।

गुरूभक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण तो उनका सम्पूर्ण जीवन ही है। गुरू वशिष्ठ के उनके महल में पधारने की सूचना मिलते ही वे संकोच से उठकर उनके स्वागत के लिए दौड़ते हैं ।

"सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगल मूल अमंगल दमनू ।।

तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती । पठइअ काज नाथ असनीती ।।"2

यद्यपि गुरू का सेवक के घर आना सभी प्रकार से मंगलदायी है, परन्तु सेवक को बुला लिया होता आपने कष्ट क्यों उठाया ?

---

1. रा0 च0 मा0 – 2/9–5,6
2. रा0 च0 मा0 – 7/25/3

आदर्श राजा के रूप में तो पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं जिससे उनकी तुलना की जा सके । शुक्राचार्य जी अपने नीति शास्त्र में कहते हैं। कि– "न राम सदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत।।"1 इस वसुधा पर राम के समान नीतिमान राजा नहीं हुआ । तुलसी दास जी भी इसी तथ्य का अनुमोदन करते हैं–

"नीति प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न राम सन जान जथारथु ।।"

सत्य संध पालक श्रुति सेतू । राम जनम जग मंगल हेतू ।।

गुरू पितु मातुवचन अनुसारी । खल दल दलन देव हितकारी ।।"2

राजा धर्म का पालक होता है और धर्म के मूल वेद हैं इसी कारण राजा राम को श्रुति सेतु अर्थात् वेद की मर्यादा का रक्षक कहा गया है।

श्रीराम अपने धर्म रथ का स्वयं वर्णन करते हुए विभीषण से कहते हैं–

सौरज धीरज तेहिरथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ।।

बल विवेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ।।

ईस भजनु सारथी सुजाना । विरति चर्म संतोष कृपाना ।।

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर विग्यान कठिन कोदंडा ।।

अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ।।

कवच अभेद विप्र गुरू पूजा । एहि सम विजय उपाय न दूजा ।।

सखा धर्ममय अस रथ जाके । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ।।

धर्म रथ के रूप में स्वयं श्री राम ने अपने धर्म सम्मत स्वरूप का ज्ञान करा दिया। शौर्य और धैर्य रथ के पहिए हैं । (भाव यह है कि जैसे पहिये के बिना रथ नहीं चलता उसी प्रकार धर्म का निर्वाह भी बिना शौर्य और धैर्य के नहीं हो सकता) । अर्थात

---

1. शुक्रनीति – 5/57

2. रा० च. मा. – 2/254/5,4,5

धर्म रथ पर सवार वीर रण में कभी पीछे नहीं हटता । गीता में भगवान कृष्ण क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण बताते हैं कि– "शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।। (18/43)

शूरता, तेज, धैर्य, कुशलता, रण से विमुख न होना, दान और ईश्वर भावना ये सब क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण हैं । इन गुणों से युक्त होने के कारण श्री राम निःशंक विजय से आश्वस्त हैं ।

श्री राम के धर्म रथ तथा युद्धभूमि में प्रयुक्त रथ का तुलनात्मक वर्णन करने से धर्मरथ की महत्ता स्वतः ही प्रकट हो जाऐगी–

युद्धरथ	**धर्मरथ**
1. दो पहिए	सौरज (शौर्य) धीरज (धैर्य)
2. ध्वजा – पताका	सत्य – शील
3. घोड़े (चार)	बल, विवेक, दम, परहित
4. रस्सी (घोड़ों को बांधने वाली)	क्षमा, कृपा, समता
5. सारथी	ईश्वर भजन
6. ढाल	वैराग्य
7. तलवार	संतोष
8. फरसा	दान
9. शक्ति	बुद्धि
10. कोदण्ड	वर विज्ञान
11. तरकश	निर्मल अचल मन
12. वाण	शम यम नियम
13. कवच	विप्रपूजा और गुरू पूजा

तात्पर्य यह है कि स्थूल वस्तुओं से बना रथ तो शत्रु के आरूढ प्रहार से नष्ट होने की सम्भावना है, किन्तु जो धर्म रथ पर है उसकी विजय तो निश्चित है । श्री राम तो धर्म की स्वयं प्रतिमूर्ति थे इसी कारण प्रजानन भी धर्मी थे ।

श्री राम के राज में धर्म चतुष्पाद होकर प्रजा की रक्षा करता था । श्री राम के एक पत्नी व्रत का प्रभाव भी ऐसा पडा कि– "एक नारि व्रतरत सब झारी" (7/22–8) समस्त प्रजाजन एक पत्नी ब्रती हो गये ।

बाल्मीकि रामायण में भी राम राज्य की महिमा वर्णित है–

श्री राम का अश्वमेध यज्ञ यह सिद्ध करता है कि समस्त भूमण्डल के राजा स्वतः ही श्री राम का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे । ऐसे धर्मशील पुरुष के लिए ही वेद कहता है ।

"ओजश्च तेजश्च सहश्च वलं च वाक्चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च।"

अर्थात् जहाँ धर्म है वहाँ–

ओज है, तेज है, सहनशीलता है, बल (पौरुष) है वचन बद्धता है, इन्द्रिय निग्रह है, लक्ष्मी (श्री, शोभा, सौन्दर्य) है ।

वैसे तो श्री राम का चरित्र अपार है जिसकी महिमा को वेद भी वर्णित न कर सके उसको कोई तुण्छ प्राणी क्या वर्णित कर पायेगा फिर भी मुझे मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ स्मरण हो रही हैं कि–

"राम तुम्हारा चरित स्वयं एक काव्य है ।

कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है ।"

द्वितीय सोपान

रामचरित मानस में सनातन धर्म की विविध भूमि

रामचरित मानस में सनातन धर्म की विविध भूमि

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की संरचना के समय ही सनातन धर्म की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को स्वीकार किया है। विस्तृत राम गुण गाथा का वर्णन करने के लिए शिव को सादर नमन करना और हरि चरणों का स्मरण कर विक्रम सम्बत् 1631 मधुमास चैत्र शुक्ल पक्ष नवमी मंगलवार को उमा संभु संवाद में (बालकाण्ड दो0क्र047) तक की कथा सनातन पुरुषोत्तम राम के लिए ही गोस्वामी जी द्वारा चयनित और समर्पित हो गई। कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि भौमवार नवमी तिथि को त्रेता युग की रामजन्म काल की सम्पूर्ण ग्रह–नक्षत्र–स्थिति विद्यमान थी। अर्थात् त्रेता युग की जिस विशेष ग्रह स्थिति में राम जन्म सुलभ हुआ था उसी विशेष ग्रह–नक्षत्र की स्थिति में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रामचरितमानस का आरम्भ सनातन धर्म प्रेमियों के लिए सहज सुलभ हो सका है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने सनातन धर्म की अवधारणा के अनुरूप ही मानस के मंगलाचरण में सरस्वती, गणेश, भवानी, शंकर, गुरु, बाल्मीकि, हनुमान, सीता, राम, ब्रह्म, सुजन–समाज और संत समाज के साथ–साथ निश्छल भाव से खल–जनों की भी वन्दना की है।

"बहुरि बंदि खल गन सति भाए।

जे बिनु काज दाहिनेहु बाऐं।।"1

गोस्वामी तुलसीदास जी का चिंतन किसी भी दृष्टि से किंचित मात्र भी संकीर्ण नहीं है। उन्होंने 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' के रूप में ही सनातन–धर्म के व्यापक स्वरूप का रामचरित मानस में यथा अवसर समावेश किया है। सनातन धर्म का कोई एक ही रूप नहीं है। चराचर चगत में चौरासी लाख योनियों में समस्त जीव परमात्मा

1. रामचरित मानस– 1/4

की सनातन प्रक्रिया में विचरण कर रहे हैं। गृहस्थ लोगों के गृह–धर्म का पालन करते हुये सनातन–धर्म की महत्ता को आदर्श लक्षण के रूप में स्वीकार किया है। इसी प्रकार रामचरित मानस में ऋषिकुल, रघुकुल, पुलस्त्य–कुल, राक्षस–कुल तथा वानर–कुल आदि का उल्लेख हुआ है।

(क). गृहधर्म के आदर्श लक्षण–

विद्वानों के अनुसार– **"अथोच्यन्ते गृहस्थ धर्माणि च यथाविधि।**

तदनुष्ठानतः सम्यक् पदवीं महतामियात्।।"

अर्थात गृहस्थाश्रम सब आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है। ब्रह्मचर्याश्रम के विधिपूर्वक पालन के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए; क्योंकि उस समय तक मनुष्य की बुद्धि परिपक्व हो जाती है और शरीर बलवान, वीर्यवान एवं आरोग्य सम्पन्न होता है, मन शुद्ध और सत्कार्यों की ओर प्रवृत्त होता है। जैसे प्राणिमात्र वायु का आश्रय लेते है, वैसे सब आश्रमों के लोग गृहस्थाश्रमियों से ही आश्रय पाते हैं।

गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ विवाह संस्कार के पश्चात होता है। वस्तुतः संसार में मनु और सतरूपा प्रथम स्त्री पुरुष थे। विवाह की मर्यादा उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेत केतु ने प्रारम्भ की, विवाह का तात्पर्य गृह्यसूत्रों में स्त्री और पुरूष की एकात्मता से है, तभी तो विवाह के समय पति कहता है–

"सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं त्वावेहि विवहावहै,

सह रेतो दधावहै, प्रजां प्रजनयावहै, पुत्रन्विन्दावहै बहून्,

ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ, रोचिश्ण, सुमनस्यमानौ,

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रुणुयाम शरदः शतम्।"[1]

---

1. पारस्कर गृह्यसूत्र – 1/6/3

मै साम हूँ तुम ऋक् हो; मैं आकाश हूँ तुम पृथिवी हो; (अर्थात् हम एक दूसरे के बिना कुछ नहीं हैं) इसलिए आओ, हम विवाह करें अर्थात् (एकाकार हो जाऐं) एक साथ तेज को धारण करें, पुत्र उत्पन्न और प्राप्त करें; तुम बहुत वर्षों तक जीवित रहो (अर्थात् धर्माचरण कर दीर्घायु प्राप्त करें) हम लोग प्रेम से आनन्दपूर्वक सौ शरद देखे, सौ शरद जियें, सौ शरद सुनें।'

तात्पर्य यह है कि पुरूष और स्त्री का विवाह संस्कार के द्वारा परस्पर सौहार्दपूर्ण रहते हुए स्वधर्म का पालन करना ही गृहधर्म के आदर्श की ओर संकेत करता है।

समाजशास्त्र के अनुसार समाज का गठन स्त्री और पुरूष दोनों को लेकर हुआ है और समाजरूपी विराट् शरीर के लिए हाथ–पैर बनकर उत्तम संतान उत्पन्न करना उनका प्रमुख कर्तव्य है। परमेश्वर ने स्त्री और पुरूष की रचना दो स्वतन्त्र प्राणियों के रूप में की है, जिनका महत्व एक समान है; जीव शास्त्र के अनुसार नर और नारी सम्पूर्ण रूप से कभी पृथक नहीं रह सकते; क्योंकि इनके पृथक रहने का तात्पर्य है सृष्टि रचनाक्रम में सामञ्जस्य का अभाव! इस अभाव से सृष्टि का अस्तित्व भी संभव नहीं।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के (2/6/13/16–17) में यही तथ्य स्पष्ट है– **"जायापत्योर्नविमागो विद्यते।"** अर्थात स्त्री पुरुष का विभाग नहीं हो सकता।

अतः इस नैसर्गिक प्रक्रिया को प्राचीन महर्षियों ने विवाह संस्कार द्वारा धर्म तथा सुसंस्कृति से आबद्ध कर एक सुदृढ़, सुसंस्कृत समाज के निर्माण की परिकल्पना की। इस परिकल्पना के फलस्वरूप महर्षियों नें गृहस्थों के लिए जो आचार निर्धारित किये उनको गृहधर्म की संज्ञा दी गई।

स्मृतियों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि आदर्श गृह वही है जिसमें– नित्य

आनन्दमंगल होता हो, बच्चे पढ़े लिखे एवं सभ्य हों, स्त्री मृदुभाषी हो, सच्चे मित्र हों, सन्मार्ग से प्राप्त धन हो, अपनी ही भार्या से प्रेम हो, नौकर आज्ञापालक हों और प्रतिदिन भगवान शंकर तथा अतिथियों का पूजन तथा सत्कार होता हो। इसके विपरीत घर नर्क के समान है–

> **"सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता न दुर्भाषिणी**
> **सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः।**
> **आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे**
> **साधोः सङ्गमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।।"1**

गृहस्थाश्रम धर्म प्रधान है भारतीय मनीषियों के अनुसार इसकी तेरह विशेषतायें हैं–

(1) मानवता	(2) विभव	(3) दीर्घायु
(4) आरोग्य	(5) सच्चे मित्र	(6) सुन्दर पुत्र
(7) साध्वी स्त्री	(8) ईश्वर में अगाध भक्ति	(9) विद्वत्ता
(10) सुजनता	(11) जितेन्द्रियता	(12) धर्म में आस्था
(13) सत्पात्र को दान		

ये विशेषतायें जिस गृहस्थ के पास हैं वही सद्गृहस्थ है।

अब हम रामचरित मानस के आधार पर गृह धर्म के आदर्श लक्षणों का विवेचन करेंगे।

उक्त विवेचना से स्पष्ट हैं कि पति और पत्नी अर्थात् स्त्री और पुरुष मिलकर जिस धर्म का निर्वाह विवाह संस्कार के पश्चात् करते हैं वही गृहधर्म है। पति और पत्नी

---

1. कल्याण धर्माङ्क– वर्ष 40 अंक। पृ0सं0 586 में उद्घृत

दोनों के एक साथ रहने पर भी दोनों के स्वधर्म भिन्न–भिन्न हैं। पुरुष संग्रह करता है और स्त्री उसे ग्रहण करती है तथा सुव्यवस्थित करती है।

पति तथा पत्नी के धर्मों का विवेचन हम अलग–अलग करेंगे।

1. पति का धर्म :–

रामचरितमानस में श्रीराम ने एक आदर्श पति का चरित्र प्रस्तुत किया है। श्री राम और सीता का आदर्श दाम्पत्य–प्रेम युगों–युगों तक पति–पत्नियों के लिये आदर्श रहेगा। श्री राम आजीवन एक पत्नीव्रती रहे। सीता का त्याग करने के पश्चात् भी उन्होंने विवाह नहीं किया।

"समझकर पत्नी को अर्धाङ्ग। धर्म में रखता संतत संग।।

दीन दासी गुलाम सी जान। न करता कभी भूल अपमान।।

निरन्तर सुहृद् मित्र निजमान। सदा करता विशुद्ध सम्मान।।

पूर्ण करती त्रुटियों को नित्य। मिटाती दुविधा सभी अनित्य।।

हरण करती दुश्चिन्ता क्लान्ति। चित्त को देती सुखकर शान्ति।।

देख यों–पत्नी सद्गुण रूप। हृदय का देता प्रेम अनूप।।

उसे गृह–रानी कर स्वीकार। समझ उसका समान अधिकार।।

सलाह सम्मति ले सदा ललाभ। चलाता घर बाहर के काम।।

मधुर वाणी सुमधुर व्यवहार। सदा करता आदर सत्कार।।

शुद्ध सुख पहुँचाता अविराम। यही पति–धर्म अमल अभिराम।।"[1]

इस कविता के अनुरूप यदि मानस के राम का पति रूप में चारित्रिक अध्ययन किया जाए तो वे एक आदर्श पति के रूप में उभरकर आते हैं। आदर्श गृहस्थ तो अनेक

---

1. कल्याण धर्माङ्क– पृ0सं0 616 में उद्घृत कविता

मिल सकते हैं, किन्तु आदर्श पति तो मानस के नायक श्री राम ही हैं। श्री राम का सीता के प्रति पवित्र प्रेम का सुन्दर उदाहरण देखें–

"एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निजकर भूषन राम बनाए।

सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।"1

अर्थात् जिस प्रकार सीता का हृदय प्रसन्न हो राम वन में वैसा ही आचरण करते। पत्नी की प्रसन्नता के लिए श्री राम जानते हुए भी कि यह राक्षसी माया है स्वर्ण मृग के पीछे भागे–

"सुनहु देव रघुवीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला।।

सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही।।

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रूचिर सर साँधा।।"2

पत्नी की इच्छापूर्ति के साथ–साथ श्री राम उनकी सुरक्षा के लिए सदा सजग रहते हैं। इसी कारण स्वर्ण–मृग की छाल लाने जाते समय लक्ष्मण को उनकी सुरक्षा हेतु आज्ञा देते हैं–

"सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिवेक बल समय बिचारी।।"3

और यदि उनकी पत्नी को कोई भी कष्ट देता है तो उसे दण्ड भी देते हैं। इन्द्रपुत्र जयन्त, रावण आदि दुष्टों को यथायोग्य दण्ड दिया–

"सीता चरण चोंच हति भागा। मूढ मंदमति कारन कागा।।

चला रूधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना।।"4

---

1. रामचरित मानस– 3/1 – 3, 4
2. रामचरित मानस– 3/27 – 4, 5, 7
3. रामचरित मानस– 3/27 – 9
4. रामचरित मानस– 3/1 – 7, 8

इसके अतिरिक्त जब राम राजा बने तब उन्होंने अपनी पत्नी को राजसिंहासन में समान अधिकार दिया–

"सिंहासन पर रघुकुल साईं। देखि सुरन्ह दुंदभी बजाई।।

श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।"1

मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम का अपनी पत्नी सीता के प्रति जो अनन्य प्रेम था उसको वे स्वयं व्यक्त करते हैं–

"तत्व प्रेम का मम अरू तोरा। जानत प्रिया एक मनु मोरा।।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेही माहीं।।"2

इतना प्रेम होने पर भी श्री राम कभी अपनी पत्नी के प्रेम के लिए अपने धर्म से विमुख नहीं हुए। राजधर्म के निर्वाहन हेतु जब उन्हें सती सीता का त्याग करना पड़ा तब उन्होंने अपना पतिधर्म स्वयं ऋषियों का सा जीवन यापन करके निभाया तथा हृदय से कभी सीता का त्याग नहीं किया। श्री मद्भागवत में श्री राम के आदर्श गृहधर्म का उल्लेख इस प्रकार मिलता हैं–

"एक पत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचि।

स्वधर्म गृहमेधीयम् शिक्षयन् स्वयमाचरत्।।"3

अर्थात् श्री राम पवित्र और एकपत्नीव्रतधारी होकर जिस गृहस्थ धर्म का राजर्षियों ने आचरण किया, उसका उपदेश देने के लिए आचरण करने लगे।

अतः स्पष्ट है कि श्री राम पत्नी के संग होने पर आदर्श पति तथा पत्नी की अनुपस्थिति में ऋषियों के समान संयमपूर्वक अपना धर्म निभाते रहे।

---

1. रामचरित मानस– 7/12 – 8, – छंद – 5
2. रामचरित मानस– 5/15 – 6, 7
3. श्रीमद्भागवत् – 9/10/55

पत्नी धर्म के आदर्श लक्षण–

> **"नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञों न व्रतं नाप्युपोषणम्।**
>
> **पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते।।"1**

अर्थात स्त्रियों के लिए अलग न यज्ञ है, न व्रत हैं, न उपवास हैं। केवल पति सेवा के द्वारा ही उनको उत्तम गति उपलब्ध हो जाती है।

धर्मशास्त्र वर्णित यही पतिव्रत धर्म का सार तथा रहस्य है। गोस्वामी तुलसीदास भी इसी सार को प्रस्तुत करते हैं–

> **"सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।**
>
> **जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय।"2**

तुलसी (वृंदा) जोकि जालंधर नामक राक्षस की पत्नी थी, जिसके पातिव्रत्य के प्रभाव से वह अजेय था। तात्पर्य यह है कि पतिव्रता स्त्री भगवान को सहज ही प्राप्त कर लेती है।

धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाहोपरान्त नारी का गृह–धर्म प्रारंभ होता है, जिसमें पति ही पत्नी के लिए अनुकरणीय है और समस्त गृहपरिचर्या परोक्षरूप से पति की ही सेवा है। उसी सेवा में शरीर, मन तथा प्राण समर्पण करना पतिव्रता स्त्री का सर्वोपरि धर्म है। पत्नी के इसी गृह–धर्म के विषय में सीता को लक्ष्य करके श्रीराम, लक्ष्मण से कहते हैं–

> **"कार्येषुमन्त्री करणेषु दासी, धर्मेषु पत्नी क्षमया धरित्री।**
>
> **स्नेहेषु माता शयनेषु रम्भाः रङ्गे सखी लक्ष्मण सा प्रिया में।3**

---

1. मनु स्मृति – 5/155
2. रामचरित मानस– 3/5
3. बाल्मीकि रामायण– (कल्याण धर्मांक पृ0 616 में उदघृत)

अर्थात हे लक्ष्मण! सती सीता परामर्श देने में मन्त्री के समान, कार्य करने में दासी सदृशी, धर्मकार्य में अर्द्धांगिनी और क्षमा तथा सहनशीलता में पृथ्वी के समान, स्नेह में माता के समान, प्रणय में अप्सराओं के समान तथा कौतुक के समय सखी की तरह आरचण वाली है। सीता सती स्त्री के समस्त दिव्य गुणों वाली है।

रामचरित मानस में गृहधर्म के रूप में पत्नी के धर्म का उल्लेख करते हुए माता अनुसूया सीता से कहती हैं–

"मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी।।

अमित दानिभर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।"1

समस्त कुटुम्बीजन हित चाहने वाले तथा सुखदायक होते हैं किंतु ये सब एक सीमा तक सुख देते हैं, पति तो अपरिमित सुखदायी होता है अतः जो स्त्री पति को अपनी सेवा द्वारा सुख प्रदान नहीं करती वह अभागी होती है। माता अनुसूया तो शारीरिक तथा मानसिक विकृतियुक्त पति को भी सेव्य बतलाती हैं–

"वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध वधिर क्रोधी अति दीना।।

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।"2

इस प्रकार धर्मपूर्वक पति–पत्नी उत्तम संतान की कामना करते हुए यज्ञ के फलस्वरूप संतान की प्राप्ति करते हैं तब उनका गृह पूर्णता को प्राप्त होता है तथा पितृ ऋण से मुक्ति भी मिलती है।

स्मृतियों तथा गृह्यसूत्रों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि उत्तम संतान को जन्म देना प्रत्येक गृहस्थ का गृह–धर्म है।

---

1. रामचरित मानस – 3/5 – 5, 6
2. रामचरित मानस – 3/5 – 8, 9

तुलसीदास जी के अनुसार समस्त लौकिक सुख संतान के अभाव में व्यर्थ जान पड़ते हैं–

"अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ। वेद विदित तेहि दसरथ नाऊँ।।

धरम धुरंदर गुन निधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारँगपानी।।"1

संसार के समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न राजा दशरथ धर्मात्मा तथा ईश्वर में अगाध भक्ति रखने वाले थे उनकी तीनो रानियाँ भी सदैव पति के अनुकूल आचरण वाली थीं–

"कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।

पति अनुकूल प्रेम दृढ हरिपद कमल बिनीत।।"2

किंतु राजा दशरथ के मन में पुत्र न होने पर अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न हुआ–

"एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं।"3

समाजशास्त्रियों के मतानुसार पति–पत्नी तथा बच्चे इन तीनो से ही परिवार पूर्ण होता है। हम यहाँ गृह–धर्म का अध्ययन कर रहे हैं तो हमें पुत्र का धर्म तथा पुत्री के धर्म का भी विवेचन करना होगा।

1. पुत्र का धर्म–

पुत्र धर्म की व्याख्या वैदिक ऋषि इस प्रकार करते हैं–

"अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनः"4

अर्थात पुत्र–पिता के व्रतों (श्रेष्ठ कर्मों के संकल्प) का अनुसरण करे और माँ जैसे पवित्र, कोमल मन वाला बने।

---

1. रामचरित मानस – 1/188 – 7, 8
2. रामचरित मानस – 1/188
3. रामचरित मानस– 1/189–1
4. अथर्ववेद – स्वामी अवधेषानंद गिरि के उपदेश से गृह्य

मनुस्मृति में पुत्र को शिष्टाचार की शिक्षा दी गई है।

"अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोऽपिसेविनः।

चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम्।।"1

श्रीमद्भागवत पुराण में महाराज पुरू पुत्रधर्म का विवेचन करते है कि–

"उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः

अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः।।"2

उत्तम पुत्र पिता के चिन्तित विषय की पूर्ति करता है। पिता के आदेश का पालन करने वाला मध्यम कोटि का पुत्र तथा आज्ञा पालन अश्रद्धा से करने वाला मल–मूत्र के समान होता है।

तात्पर्य यह है कि माता–पिता को ईश्वर तुल्य समझकर उनके सुख के लिए जो पुत्र अपने सुखों का बलिदान कर दे वही आदर्श पुत्र है।

पिता की आज्ञापालन के कारण ही श्री राम, भीष्म पितामह तथा श्रवण कुमार जैसे महान पुरूषों का स्मरण आज भी श्रद्धापूर्वक किया जाता है। रामचरित मानस मे श्री राम स्वयं कहते है–

"धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहिं प्रमाद चरित सुनिजासू।।

चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें।।"3

वह पुत्र जिसका चरित्र सुनकर पिता को प्रसन्नता हो, (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चारों पदार्थ उसकी मुट्ठी में रहते हैं।

मानस में आदर्श पुत्र के रूप में श्री राम, मेघनाथ आदि अनेक पात्र हैं।

---

1. मनुस्मृति – स्वामी अवधेषानंद गिरि के उपदेश से गृह्य
2. श्री मद्भागवत पुराण – 9/18/44
3. रामचरित मानस – 2/46/1, 2

महर्षि वशिष्ठ आदर्श पुत्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं– "जिस पुत्र का मन सर्वदा पुण्य में लगा हो, जो सर्वदा सत्य पालन में तत्पर हो, जो बुद्धिमान, ज्ञानी, तपोनिष्ठ, श्रेष्ठ वक्ता, कुशल, धीर, वेदाभ्यासी सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता, देव, ब्राह्मणों का सेवक, अनुष्ठान कर्ता, ध्यानी, त्यागी, प्रियवादी, ईश्वर भक्त, शान्त, जितेन्द्रिय, जापक, पितृ–मातृ भक्त, स्वजन प्रेमी, कुलभूषण और विद्वान हो तो ऐसा पुत्र ही यथार्थ रूप से सुख देने वाला होता है। अन्य भाँति के पुत्र तो संबध जोड़कर केवल शोक तथा संताप ही देते हैं।"

पद्मपुराण भूमिखण्ड के अध्याय ग्यारह में तो उपर्युक्त गुणों से युक्त एक ही पुत्र की कामना की गई है–

"एकपुत्रो वरं विद्वान बहुभिनिर्गुणेस्तु किम्।

एकस्तारयते वंशमन्ये संतापकारकाः।।"1

अर्थात् गुणहीन अनेक पुत्रों से क्या लाभ? गुणी एक ही पुत्र पित्रकुल का उद्धार कर देता है।

आदर्श पुत्री का धर्म–

पुत्री अर्थात् कन्या रूप नारी जीवन का आदिकाल है जैसा कि कहा गया है–

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।

पुत्राश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।"2

नारी सदैव ही रक्षणीय है जन्म से लेकर युवावस्था तक उसकी रक्षा पिता करता है युवावस्था में विवाहोपरान्त पति के द्वारा तथा वृद्धावस्था में पुत्र के द्वारा रक्षित होती है।

माता पिता कन्या को बचपन से ही पातिव्रत्य की शिक्षा देते हैं तथा गृह धर्म के

---

1. पद्मपुराण, भूमिखण्ड – 11/39
2. मनुस्मृति

आदर्श लक्षणों से अवगत कराते हैं। विद्वत्जनों के अनुसार कन्या को गृह–सुव्यवस्था, विविध कलाओं (संगीत, साहित्य) आदि, पाकविद्या, शिष्टाचार, आदि का ज्ञान होना चाहिए। पुत्री का धर्म है कि वह अपने माता–पिता, गुरूजनों की आज्ञापालन एवं सेवा करे, भाई बहनों के प्रति स्नेहमयी हो, सेवक तथा सेविकाओं तथा अपनी सखियों के प्रति नम्रव्यवहार युक्त हो। अतिथि सत्कार में माता के साथ तत्पर हो, प्रिय वादिनी तथा गृह देवता तथा कुल देवता के प्रति भक्तिभाव से युक्त हो। तथा स्वाध्याय में रुचि हो। इन सभी गुणों से युक्त कन्या ही आदर्श पुत्री कहलाती है जिसके आचरण से माता–पिता गर्व का अनुभव करते हैं।

रामचरित–मानस में सीता एक आदर्श पुत्री हैं अपने पति का अनुगमन उन्होंने अपनी माता द्वारा दी गई शिक्षा के फलस्वरूप ही किया तभी तो राजा जनक अपनी पुत्री से गर्वपूर्वक कहते हैं कि –

"पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबुकोऊ।।"[1]

हे पुत्री तूने अपने धर्मपालन से दोनों कुल (पितृ तथा पति कुल) पवित्र कर दिए। पतिव्रता स्त्री के धर्म रूपी तेज से ही सारा संसार कान्तिमय प्रतीत होता है। ऐसी कान्तिमयी पुत्री थी सीता।

आदर्श लक्षणों से युक्त पुत्री ही भविष्य में आदर्श पत्नी, वधु तथा माता हो सकती है, इसी कारण मातायें अपनी पुत्री की विदाई के समय उन्हें पूर्व संस्कारित सद्‌गुणों का स्मरण दिलाती है तथा भविष्य में आने वाले धर्मों का ज्ञान भी कराती है। रामचरित मानस में माता मैना पार्वती जी को तथा माता सुनयना सीता जी को इसी गृहधर्म का उपदेश करती हैं जिसके पालन में उनकी कीर्ति सारे विश्व में फैली है, तथा

---

1. रामचरित मानस – 2/287 – 2

समस्त नारी जाति के लिए आदर्श बन गई हैं

नारी धर्म के उपदेश—माता मैना द्वारा—

"जननी उमा बेलि तब लीन्हीं। लै उछंग सुंदर सिख दीन्हीं।।

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारि धरम पति देउ न दूजा।।"1

अर्थात् सदैव पति की सेवा करना, क्योंकि पति सेवा के अतिरिक्त नारी का अन्य कोई धर्म नहीं है। यहाँ पर एक तथ्य और स्पष्ट करना ठीक होगा कि 'पतिसेवा' शब्द का अर्थ केवल पति की ही परिचर्या नहीं है बल्कि पति के गृह, अतिथि, माता—पिता तथा समस्त कुटुम्बी जनों की सेवा भी पति की ही सेवा है।

माता सुनयना द्वारा उपदेशित नारीधर्म—के अनुसार—

"सासु ससुर गुर सेवा करेहु। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू।।

अति सनेह बस सखी सयानी। नारिधरम सिखवहिं मृदु बानी।।"2

यहाँ पर नारी धर्म का स्पष्ट रूप प्रस्तुत किया गया है।

मेरे विचार से नारी पुत्री, पत्नी तथा माता बनने से पहले एक मानवी है, अतः इन सभी धर्मों का निर्वहन मानव धर्म को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

सेवक तथा स्वामी का धर्म :—

सेवा की भावना भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। सेवक केवल शूद्र ही नहीं होता सेवक पुत्र भी होता है सेवक लघु भ्राता भी होता है तथा पत्नी भी पति की सेविका ही होती है।—तुलसीदास जी तो यहाँ तक कहते हैं कि—

"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।"

सेवक का कर्तव्य है कि वह अपने सेव्य व्यक्ति की मन, वाणी तथा कर्म से सेवा

---

1. रामचरित मानस — 1/104 — 2,3
2. रामचरित मानस — 1/334 — 5, 6

करे और सेव्य का यह कर्तव्य है कि सेवक के प्रति स्नेह भाव रखते हुए उसका यथोचित ध्यान करे। यही सेवक–सेव्य भाव है।

भगवान श्री राम सेवक के संदर्भ में कहते हैं–

"सेवक पद कर नयन सो। मुख सो साहिव जानि।।"

अर्थात् जिस प्रकार भोजन मुख से ग्रहण किया जाता है किंतु उससे सारा शरीर पोषित होता है उसी प्रकार स्वामी को अपने सेवकों का पालन पोषण करना चाहिए।

गृह के सदस्यों के अतिरिक्त रामचरित मानस में गृह धर्म के अन्य आदर्श लक्षणों का भी उल्लेख मिलता है जैसे कि एक आदर्श गृहस्थ को गुरु माता–पिता, देव, बंधु आदि सभी हितकारी परिजनों की प्राणों के समान सेवा करनी चाहिए–

"गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।।"[1]

ईश्वर को समर्पित करके भोजन, वस्त्रादि ग्रहण करें, मंत्र राज (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का जाप करें, पंच महायज्ञ करे, प्रभु से अधिक गुरु का सम्मान करे–

"प्रभुहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं।।

सीस नवहिं सुर गुर द्विज देखी। प्रीति सहित करि विनय विसेषी।।"[2]

गुरू, ब्राह्मण तथा संत पुरुषों का विशिष्ट सम्मान करे।

"कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस ह्रदय नहिं दूजा।।

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माही।।"[3]

ऐसे सद्गृहस्थ के ह्रदय में श्री राम का निवास होता है अर्थात् (आत्मतत्व का

---

1. रामचरित मानस – 2/74 – 5
2. रामचरित मानस – 2/129 – 2, 3
3. रामचरित मानस – 2/129 – 4, 5

ज्ञान) होता है।

"मंत्र राज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा।।

तरपन होम करहिं विधि नाना। विप्रजेवाँइ देहिं बहु दाना।।"1

इन कर्मों के अतिरिक्त तुलसीदास जी कहते हैं कि आदर्श गृहस्थ को गुरु माता–पिता तथा स्वामी की हित वाणी का आदर पूर्वक निःसंदेह पालन करना चाहिए–

"गुरू पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।।"2

क्योंकि आज्ञा पालन में ही हमारा हित निहित है।

ख. कुल धर्म के आदर्श लक्षण–

कुल का अर्थ है अनेक परिवारों का समूह जब एक पिता के पुत्रों तथा पुत्रियों का विवाह हो जाता है तब उन सभी का एक अलग परिवार बन जाता है जिस प्रकार एक ही वृक्ष की अनेक शाखायें और प्रशाखायें मिलकर एक सम्पूर्ण वृक्ष का निर्माण करती हैं उसी प्रकार एक ही पिता की संतानें विवाह द्वारा संतानोत्पत्ति करके एक भरे–पूरे कुल का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार यह क्रम चलता रहता है और कुल के द्वारा मनुष्य सदैव नाम रूप में जीवित रहता है। प्रत्येक कुल के कुछ नियम तथा रीतियाँ होती हैं जैसा कि रामचरित मानस में श्री राम के कुल का नाम राजा रघु के नाम पर पड़ा रघु के काल से यह रीति थी कि प्राण भले ही चले जाएँ पर वचन मिथ्या नहीं होना चाहिए–

"रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहिं बरु बचन न जाहीं।।"3

किंतु रघु–कुल, राजा रघु से प्रारम्भ होने वाला कुल नहीं था अपितु वह तो

---

1. रामचरित मानस – 2/129 – 6, 7
2. रामचरित मानस – 2/177 – 3
3. रामचरित मानस

आदि देव सूर्य के वंशज थे–राजा दशरथ तथा राम को अनेक प्रसंगों में सूर्यवंश का सूर्य कहा गया है सीता का परिचय देते हुए कहा गया है–

"पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।

पति रबिकुल कैरव विपिन विधु गुन रूप निधान।।"1

इनके पिता जनक जी राजाओं के शिरोमणि हैं, ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्यकुल रूपी कुमुदवन को खिलाने वाले चन्द्रमा तथा गुण और रूप के भण्डार हैं।

इस उद्धरण में वंश को ही कुल कहा गया है। विद्वानों के अनुसार जिस वंश में कोई अत्यन्त प्रभावशाली चरित्रवाला तथा कीर्तियुक्त व्यक्ति होता है उसकी आगे आने वाली पीढ़ी को समाज उसी के नाम से जानने लगता है तथा उनसे भी वैसा ही परोपकारी अथवा धर्मपूर्ण कार्य की आशा करता है। यदि वंशज अधर्मी है तो समाज अधर्म की ही आशा रखता है। जैसे राक्षस वंश आदि।

अन्य प्रसंगों में वर्ण को कुल की संज्ञा दी गई है जैसे परशुराम जी क्रोधयुक्त होकर कहते हैं–

"बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व विदित छत्रिय कुल द्रोही।।"2

क्षत्रिय वर्ण को क्षत्रिय कुल कहा गया है इसी प्रसंग में श्री राम परशुराम जी को विप्रवंश अर्थात् विप्रकुल का महत्व बतलाते हैं–

"विप्रवंश कै अस प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई।।"3

इन प्रमाणों से कुल धर्म के तीन प्रकार स्पष्ट होते हैं–

1. एक पिता के पुत्र–पुत्रवधु, पोते–पोतियाँ आदि

---

1. रामचरित मानस – 2/58
2. रामचरित मानस – 1/272 – 6
3. रामचरित मानस – 1/284 – 5

2. वंश अर्थात् पीढी दर पीढ़ी उसी परिवार के सदस्य जैसे पोते–पोतियों के पुत्र, फिर उनके पुत्र आदि।

3. वर्ण कुल जैसे ब्राह्मण कुल, क्षत्रिय कुल, वैश्य कुल तथा शूद्रकुल यह कुल का अत्यन्त विस्तृत रूप है।

भरतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि इसके अनुयायी सूक्ष्मता से विशालता की ओर अग्रसर होते हैं। जन्म के समय व्यक्ति केवल एक परिवार का सदस्य होता है किंतु जैसे–जैसे वह बड़ा होता है उसको सम्बन्धों का ज्ञान होता है कि वह किस कुल अथवा वंश का है। एक–एक कुल मिलकर सारा समाज बन जाता है। गृहधर्म से कुल धर्म बड़ा होता है इसमें त्यागभाव की प्रधानता होती है। कुल धर्म में कुल का एक मुखिया होता है तथा अन्य सदस्य उसके अनुशासन में रहकर स्वधर्म का पालन करते हैं। कुल धर्म के सदस्यों के आधार पर उनके धर्म इस प्रकार हैं–

1. मुखिया का धर्म
2. माता–पिता का धर्म
3. सास–ससुर का धर्म
4. कुल वधू का धर्म
5. कुल की मर्यादा के प्रति सभी का धर्म

इन तथ्यों के आधार पर हम कुल धर्म के आदर्श लक्षणों को जानेंगे।

1. मुखिया का धर्म–

गोस्वामी जी के अनुसार मुखिया को मुख की तरह निष्पक्ष होना चाहिए जिस प्रकार मुख द्वारा ग्रहण किया गया भोजन समस्त शरीर का पोषण करता है उसी प्रकार मुखिया को कुल के सभी सदस्यों का पालन पोषण करना चाहिए। यहाँ पर स्वार्थ सिद्धि के लिये कोई स्थान नहीं है–

"मुखिया मुख सो चाहिए खान पान सम एक।

पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।"

कुल का मुखिया यदि विवेकी है तो वह समस्त कुल को एक सूत्र में बाँधकर रखता है।

समाजशास्त्रियों के अनुसार परिवार समाज की इकाई है जिस देश में परिवार के सदस्य एक दूसरे के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं तथा त्यागभाव से युक्त होते हैं वह देश अवश्य उन्नति करता है। इसीलिए हमारी संस्कृति में सर्वप्रथम पति–पत्नी के परस्पर समर्पणभाव को महत्ता दी गई है। पति–पत्नी का प्रगाढ़ प्रेम, समर्पण और त्याग भाव बच्चों में भी वैसी ही भावनायें उत्पन्न करता है और वे भी आगे चलकर वैसा ही करते हैं इस प्रकार ये संस्कार परिवार से कुल में आ जाते हैं, तथा कुल से समाज और समाज से देश में तथा देश से विश्व में आकर मानव धर्म रूप में विकसित हो जाते हैं।

2. माता–पिता का धर्म–

माता–पिता का सर्वोपरि धर्म अपनी संतान को उच्च संस्कार देना तथा कुल, समाज, लोक तथा विश्वधर्म का ज्ञान कराना है। अपने पूर्वजों द्वारा किये गये धर्म–कार्यों का अनुसरण करके माता–पिता बालकों को शिक्षा दें।

रामचरितमानस में राजा दशरथ ने अपने कुल की मर्यादा रखते हुए अपने प्राण न्योछावर कर दिये उन्हीं के चरित्र से शिक्षा प्राप्त कर उनके चारों पुत्र एक से बढ़कर एक धर्मनिष्ठ हुए। रामचरितमानस के आधार पर कुलधर्म की आदर्शभूता मातायें माता कौशल्या, माता सुमित्रा हैं। दोनों ही त्याग की साक्षात प्रतिमाएं है। एक के पुत्र को विमाता वनवास दे देती है तो दूसरी अपने पुत्र को उसे अग्रज को स्वेच्छा से सेवा हेतु समर्पित कर देती है। इन दोनों माताओं के धर्म पालन की निष्ठा को देखकर पाषण

हृदय भी पिघल जाएगा। माता कौशल्या अपने पुत्र से कहती है–

जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।"1

हे पुत्र माता का स्थान पिता से ऊँचा है अतः यदि तुम केवल पिता की आज्ञा से वन जा रहे हो तो मैं कहती हूँ कि मत जाओ किंतु माता और पिता (कैकई और दशरथ) दोनों ने यदि आज्ञा दी है तो वन भी तुम्हारे लिए सौ अयोध्याओं के समान होगा। माता कौशल्या इतना कठोर धर्मपालन से पूर्व धर्म संकट में पड़ जाती हैं। एक ओर पुत्र मोह दूसरी ओर पति के वचन का मान तथा बंधुओं में विरोध–

"धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी।।

राखहुँ सुतहिं करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू।।"2

माता के इस अन्तर्द्वन्द्व में धर्म की ही विजय होती है और वे ऐसा विचार करती हैं मातृधर्म से कुल धर्म बड़ा है राम और भरत दोनों ही मेरे पुत्र है–

"बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी।।"

इसी प्रकार माता सुमित्रा का प्रसंग देखें–

"धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी।।

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।।"3

कुअवसर का विचार कर बड़े धैर्य के साथ माता सुमित्रा अपने प्राण प्रिय पुत्र लक्ष्मण को अपने भाई तथा भाभी की सेवा में समर्पित करते हुए यही शिक्षा देती हैं–

---

1. रामचरित मानस – 2/56 – 1, 2
2. रामचरित मानस – 2/55 – 3, 4
3. रामचरित मानस – 2/55 – 6

"रागु रोष इरिषा मदु मोहू। जनि सपने हुँ इन्ह के बस होहू।।

सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम वचन करेहु सेवकाई।।

सभी प्रकार के राग, द्वेष, ईर्ष्या, अहंकार, मोह आदि दुर्गुणों से रहित होकर अपने माता और पिता समान भाई—भाभी की सेवा करना।

धन्य है वे मातायें जो अपने बालकों को ऐसे संस्कार देती हैं शायद इसी कारण भारतीय संस्कृति आज तक जीवित है।

सास—ससुर का वधू के प्रति धर्म—

राजा दशरथ सर्वप्रथम वधू के प्रति अपना धर्म समझाते हुए पत्नी कौशल्या से कहते हैं—

"बधू लरिकनी पर घर आई। राखेहु नयन पलक की नाई।।"[1]

बधुऐं अभी छोटीं और अज्ञान (कुल तथा गृह धर्म आदि में निपुण नहीं हैं) अतः इनकी समस्त भूलों को क्षमाकर उन्हें उसी प्रकार रखना जैसे पलकों द्वारा आँखों की पुतलियों की रक्षा की जाती है।

तीनों मातायें राजा की आज्ञा का अक्षरशः पालन करते हुए अपनी वधुओं को बड़े प्रेम से रखती हैं। वनवास जाते समय जब राम के साथ सीता भी जाने लगती हैं तब राजा दशरथ तथा रानी कौशल्या अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं कौशल्या जी सीता से अत्यन्त प्रेम करती थीं—

"मैं पुनि पुत्र वधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई।।

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई।।"[2]

---

1. रामचरित मानस — 1/355 — 8
2. रामचरित मानस — 1/59 — 1, 2

माता कौशल्या सीता जैसी शील, सुन्दर तथा गुणों की खान तथा धर्मज्ञ पुत्र वधू को पाकर उन पर अपना सारा स्नेह लुटाती रही–

"पलंग पीठ तजि गोद हिंडोला। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा।।

जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।।"1

उन्होंने सीता को सचमुच आँखों की पुतली बनाकर रखा सदा संजीवनी जड़ी के समान उनकी रक्षा करती रहीं। वधू के प्रति अपनी पुत्री के समान स्नेह रखना यही तो सास का कुल धर्म है।

कुलवधू का धर्म–

ऋग्वेद में वधू को ससुराल की साम्राज्ञी कहा गया है– 'साम्राज्ञी श्वसुरे भव'। अथर्व वेद वधू रूपी नारी के लिए कहता है–

"यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।

एवा त्वं सम्राज्येधि पत्युरस्तं परेत्य य।।"2

जैसे नदियों में सिन्धु, वैसे ही उनके कथन का सम्मान होता था और उसकी आज्ञा का सभी पालन करते थे।

इस मंत्र में नारी के सम्मान की बात कही गई है जिसे वह अपनी सेवा तथा सुमति से प्राप्त करती है। रामचरितमानस में सीता एक आदर्श कुल–वधू थी। यद्यपि वे स्वयं राजरानी थीं जिनके महल में अनेक सेवक–सेविकाएं थीं किन्तु अपने गुरुजनों तथा सासुओं की सेवा वे स्वयं करती थीं और सदा अपने पति के अनुकूल आचरण करती थीं–

---

1. रामचरित मानस – 1/59 – 5, 6
2. अथर्ववेद – 14/1/43

"पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता।।

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा विधि गुनी।।

निज कर गृह परिचर जा करई रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।

कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवई सबहिं मान मद नाहीं।।"1

सीता के इसी सेवा भाव के कारण श्री राम ने उन्हें अपने राजसिंहासन पर अपने समान स्थान दिया। सीता को उनकी माता ने कुलधर्म की शिक्षा देते हुए कहा था–

"सास ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनसरेहू।।"2

विद्वानों में ऐसी धारणा है कि पुरुष तो केवल एक कुल का तारक अथवा नाशक होता है किंतु नारी तो दो कुलों की कीर्ति को उज्जवल अथवा कलंकित कर सकती है। यदि स्त्री पतिव्रता, सदाचरण युक्त तथा स्वधर्मज्ञ है तो दोनों कुल (पितृकुल, पतिकुल) उसके सदाचरण से पवित्र हो जाते हैं। वाराह मिहिर कृत वृहत्संहिता में ऐसा वर्णन आया है कि–

"पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री च समुद्धरेत।

पतिः पतिब्रतानां च मुच्यते सर्वपातकात्।।

नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा।

सतीनां च पतिः साध्वी पुत्रो निःशंक एव च।

पतिब्रताप्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा।।"3

सती स्त्री सहस्रों पुरुषों का उद्धार कर देती है। पतिव्रता का पति सभी पातकों से मुक्त हो जाता है सतियों के व्रत के प्रभाव से उनके पति को कर्मों का भोग नहीं

---

1. रामचरित मानस – 7/24 – 3, 5, 6, 8
2. रामचरित मानस – 1/334 – 5
3. कल्याण (नारी अंक) – पृ0सं0 8 (वाराहमिहिर कृत वृहत्संहिता से उद्घृत)

भोगना पड़ता। (रामचरित मानस में जलंधर उद्धार, रावण उद्धार, मेघनाथ तथा बालि उद्धार इसी पतिव्रत धर्म के प्रभाव से सम्पन्न हुए और उन्हें परब्रह्म श्री राम ने अपने तेज में समाहित कर लिया)

पतिव्रता का पति तथा पुत्र सदा निःशंक (निर्भय) रहते हैं। सती स्त्री की माता पवित्र है तथा पिता जीवन्मुक्त है। सीता जी इस सती धर्म की उत्कृष्ट प्रमाण है।

कुल की मर्यादा के प्रति सभी का धर्म–

एक कुल में अनेक परिवारों का समावेश होता है किन्तु उस कुल के प्रति सामूहिक रूप से निभाये जाने वाले विशिष्ट धर्म ही कुल धर्म कहलाते हैं जैसे विवाह के अवसर पर कुल के सभी सदस्यों का एकत्र होकर कुल देवता का पूजन करना आदि।

इसी प्रकार यदि इसका विस्तृत रूप देखें तो ब्राह्मण कुल के धर्म, क्षत्रिय कुल के धर्म, वैश्य कुल के धर्म तथा शूद्र कुल के धर्म भी इसी के अन्तर्गत सम्मलित हैं।

रामचरित मानस में इन चारों वर्णों के कुल धर्मों के आदर्श लक्षण विद्यमान हैं।

ग. समाज धर्म के आदर्श लक्षण–

मानव और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त गहरा है। यदि मानव समाज की इकाई है तो समाज मानव की समष्टि का बोधक है। बाल्यकाल से युवावस्था तक गृह तथा कुल धर्म के ज्ञान का जब विस्तार होता है तभी व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह एक विशाल समाज का ही अंग है और समाज में रहकर ही अपने चरित्र, बल, और बुद्धि में सहायक बनकर समाज के उत्तरोत्तर विकास का सोपान बनता है। एक ओर व्यक्ति समाज से ग्रहण करता है तो दूसरी ओर वह अपने धर्म पालन द्वारा युग–युग का संदेश दे जाता है। इस प्रकार व्यक्ति और समाज एक दूसरे को उदात्त

उत्कर्ष देते हैं, जिससे व्यक्ति सामाजिक जीवन को ही नहीं, व्यक्तिगत जीवन को भी सुखमय बनाता है। भारतीय समाज के सन्दर्भ में पुतांबकेश्वर महोदय का कथन है "हिन्दुओं ने समाज को एक चेतना के रूप में ग्रहण किया है, यंत्र के रूप में नहीं।"1 "श्रेष्ठ जीवन समाज का सूत्र है और समाज पारस्परिक निर्भरता साहाय्य और सहयोग का जीवन है।"2

सामान्यतः धर्म के दो रूप मुख्य हैं।

1. सामान्य अथवा व्यापक धर्म 2. विशिष्ट अथवा सामयिक धर्म

इन दोनों में व्यापक धर्म तो स्थिर व स्थायी रूप रहते हैं किन्तु सामयिक धर्म समय और परिस्थिति के अनुसार रूप बदलते रहते हैं। यथार्थतः सामयिक धर्म किसी भी व्यापक धर्म के विरोधी नहीं होते। महर्षियों के अनुसार व्यापक धर्म दस हैं–धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य तथा अक्रोध।

इन दस धर्म के लक्षणों में पाँच व्यक्तिगत धर्म के लक्षण हैं (धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच) तथा पाँच सामाजिक धर्म के आदर्श लक्षण हैं (इन्द्रिय निग्रह, घी, विद्या, सत्य, अक्रोध)। इनमें व्यक्तिगत धर्म कर्ता से संबंधित हैं किन्तु सामाजिक धर्मों का संबंध समाज के अन्य घटकों के साथ होता है इन्हीं धर्मों की रक्षा के लिए समाज नियम–उपनियम् तथा दण्ड का विधान कर सकता है। किन्तु वेदों, उपनिषदों तथा धर्मशास्त्रों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि अधर्माचरण करने वाला मनुष्य समाज द्वारा निर्धारित कानून से दण्ड पाये अथवा न पाये कर्मफल अवश्य पाता है–

---

1. An Introduction to civics & Politics - S.V.P. Untan Baker (Page No.- 13)
2. An Introduction to civics & Politics - S.V.P. Untan Baker (Page No.- 18)

बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार–

"प्राप्यान्तं कर्मजस्तस्य यत्किञ्चेह करोत्ययम्।

तस्माल्लोकात् पुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मणे।।"1

मनुष्य इस लोक में जो कर्म करता है परलोक में उसका भोगफल समाप्तकर पुनः इस लोक में कर्म करने के लिये आ जाता है।

यहाँ परलोक का तात्पर्य मृत्यु के बाद भोग योनियों में जन्म से है। मनुष्य योनि ही एक मात्र श्रेष्ठ कर्म योनि है। अतः प्राणी कर्म फल भोगकर पुनः मनुष्य जन्म कर्म करने के लिए धारण करता है।

भारतीय संस्कृति के अनुयायी इस प्रमाणित सत्य को अंतरात्मा से स्वीकार करते हैं इसी कारण उनका विश्वास है कि अधर्म करने की इच्छा रखने वाला मनुष्य समाज द्वारा निर्धारित दण्ड के भय से भले ही अधर्म न करे, किन्तु मन में अधर्म का विचार आते ही वह अधर्मी हो जाता है और मानसिक पाप का दण्ड पाता है। इसी कारण महात्मा तुलसी ने मन के रोगों का रामचरितमानस में विस्तृत वर्णन किया है तथा मन, वाणी कर्म तीनों प्रकार से अधर्म न करने का उपदेश दिया है। तुलसीदास जी के अनुसार सारा विश्व कर्म प्रधान है प्रत्येक मनुष्य के उसके द्वारा ही किये गये कर्मों के आधार पर सुख और दुख प्राप्त होता है–

"कर्म प्रधान विश्वकरि राखा। जो जस करई सो तस फल चाखा।।"2

मनुष्य के सभी अच्छे–बुरे कर्मों से समस्त समाज प्रभावित होता है। समाज शास्त्र के अनुसार– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज का निर्माण एक–एक व्यक्ति रूपी मोती पिरोकर माला के रूप में होता है। वस्तुतः समाज अमूर्त है। जब

---

1. वृहदारण्यक उपनिषद – (4/4/6)
2. रामचरित मानस – (2/219 – 4)

मनुष्य रूपी मोती परस्पर मिलकर एक रूप होते है तभी एक सुन्दर माला की तरह मानव समाज का निर्माण होता है।

अतः समाज निर्माण के लिए मैत्री भाव (परस्पर सहयोग) की अत्यन्त आवश्यकता है।

समाज–धर्म के आदर्श लक्षणों को हम निम्न–लिखित दो तथ्यों द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं–

(क) समाज के सामान्य धर्म लक्षण–

1. मैत्री भाव   2. सत्य निष्ठा   3. परदोष अरूचि (क्षमा भाव)

4. दानशीलता   5. परदुख कातरता   6. निःस्वार्थता।

(ख) समाज के विशिष्ट धर्म लक्षण–

1. ब्राह्मण धर्म   2. क्षत्रिय धर्म   3. वैश्य धर्म

4. शूद्र धर्म

मैत्री भाव–

"मैत्री संस्थापको यश्च विश्वशान्ति विधायकः।
सनातनाय धर्माय तस्मै नित्यं नमो नमः।।"

विश्व शान्ति विधायक, मैत्री संस्थापक उस सनातन धर्म को नित्य नमस्कार है। मित्र का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ होता है– दुःखों से बचाने वाला (प्रमीते त्रायते)। दुःखों से त्राण पाने के लिए तथा एकान्त जीवन में किसी की समीपता पाने के लिए मित्रता की जाती है। यह मित्रता का भाव ही है जिसमे एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के लिए अपने प्राणों का भी बलिदान कर देता है। दो सच्चे मित्र परस्पर एकात्मा हो जाते है, जैसे कि भगवान् श्री कृष्ण तथा अर्जुन की मैत्री–

"आत्मा हि कृष्णः पार्थस्य कृष्णस्यात्मा धनंजयः।।

यद ब्रूयादर्जुनः कृष्णं सर्वं कुर्यादसंशयम्।

कृष्णो धनंजयस्यार्थे स्वर्गलोकमपि त्यजेत्।।

तथैव पार्थः कृष्णार्थे प्राणानपि परित्यजेत्।"1

अर्थात् श्री कृष्ण अर्जुन की आत्मा हैं और अर्जुन श्री कृष्ण की आत्मा हैं। अर्जुन श्री कृष्ण को जो करने के लिए कहते हैं निःसंदेह कृष्ण वही करते हैं। कृष्ण अर्जुन के लिए दिव्य धाम का त्याग कर सकते हैं और अर्जुन भी श्री कृष्ण के लिए अपने प्राण भी त्याग सकते हैं।

एक मनुष्य की दूसरे मनुष्य से ऐसी एकात्मता ही समाज धर्म का केन्द्र बिन्दु है। यही एकात्मता जब व्यापक होने लगती है तब प्राणी को "ईसावास्यमिदं" की अनुभूति हो जाती है और यही मोक्ष का द्वार है।

रामचरित मानस में मित्र धर्म के विषय में विस्तृत व्याख्या दी गई है

"धीरज धर्म मित्र अरूनारी। आपतकाल परखिअहिं चारी।।"2

अर्थात धैर्य, धर्म, मित्र और नारी की पहचान आपत्ति काल में करनी चाहिए। सच्चे मित्र की पहचान बतलाते हुए श्री राम कहते हैं–

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।।

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रजमेरू समाना।।"3

जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कस हठि करत मिताई।।

---

1. महाभारत, सभापर्व – 52/31 – 33
2. रामचरित मानस – 3/5–7
3. रामचरित मानस – 4/7–1, 2, 3

अपने बड़े से बड़े संकट को मित्र के संकट से छोटा समझना मित्र के दुख में दुखी होना ऐसे भाव जिनके मन में हैं वही सच्चे मित्र हैं।

ऋग्वेद भी मित्र के सन्दर्भ में यही कहता है–

"न सखा यो न ददाति सख्ये।"1

जो मित्र की सहायता नहीं करता, वह मित्र नहीं है। अर्थात मित्रता समाज धर्म का महत्वपूर्ण अंग है।

सत्य निष्ठा–

"नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।

स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात्सत्यं न लोपयेत्।।"2

महाभारत के प्रस्तुत श्लोक के अनुसार सत्य से भिन्न कोई धर्म नहीं तथा असत्य से बड़ा कोई पाप नहीं अतः सत्य का कभी लोप न करें।

वेद का मूल और धर्म तथा न्याय का आधार भी सत्य है। समाज धर्म का आधार भी सत्य है। अतः समाज के प्रत्येक सदस्य को सत्य धर्म का पालन करना चाहिए।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो0 मैक्समूलर ने अपने ग्रंथ (what can India teach us) में सनातन धर्म की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि– इसके अंतर्गत न केवल पूजा एवं प्रार्थना आती है बल्कि वह सब भी आता है जिसे हम दर्शन, नैतिकता, कानून और शासन कहते हैं। भारतीयों का सम्पूर्ण जीवन उनके लिए एक धर्म के समान है और अन्य चीजें मानो इस जीवन की भौतिक आवश्यकताओं के लिए निर्मित सुविधा मात्र हैं, हिन्दू (सनातन) धर्म की यह विशेषता रही है कि वह यथार्थवादी, आदर्शवादी, लौकिक,

---

1. ऋग्वेद – 10/117/4
2. धर्मद्रुम – आचार्य राजेंद्र प्रसाद पाण्डेय (पृ0सं0 121 में उद्धृत)

पारलौकिक एवं आध्यात्मिक गुणों से विभूषित है। यदि इस धर्म में चिरन्तन सत्य एवं चिरस्थायी तत्व नहीं होते तो हजारों वर्षों से यह उज्जवल संस्कृति को प्रकाशित नहीं करता।"1

वस्तुतः सामाजिक और व्यक्तिगत सभी संबंधों का आधार भी सत्य है संबंध चिरस्थायी तभी होते हैं, जब उनमें छल, कपट और असत्य न हो, फिर वह पति और पत्नी का संबंध हो अथवा मित्र का, पिता–पुत्र का हो अथवा राजा और प्रजा का। सत्य धर्म के पालन से विश्वास उपजता है जिसके अंकुरण से मनुष्य सम्बन्धों में पूर्णतः समर्पित हो जाता है जैसे श्री राम अपने मित्र सुग्रीव से कहते हैं–

"सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब विधि घटब काज मैं तोरे।।"2

हेमित्र मेरे ऊपर विश्वास करो और निश्चिन्त हो जाओ। सुग्रीव को यह विश्वास था कि श्री राम सत्यव्रतधारी हैं वे अपना वचन अवश्य पूरा करेंगे। इस प्रकार परस्पर विश्वास से उनकी मित्रता दृढ़ हो गई। अतः रामचरित मानस में सत्य ही समाज धर्म का आधार है।

परदोष अरूचि एवं तितिक्षा (क्षमा भाव)–

"सकल सृष्टि गुणदोषमय विश्व कीन्ह करतार" ऐसे भाव मन में रखकर जो मनुष्य क्षमाशील रहता है उसकी कीर्ति संसार में फैलती है। गुण और दोष प्रत्येक प्राणी में हो सकते हैं अतः दूसरे के गुण तथा अपने अवगुण देखना चाहिए। श्री राम ने नवधा भक्ति में समाज धर्म का यह उपदेश इस प्रकार दिया है–

"आठँव जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखहिं परदोषा।।"3

---

1. What India teach us - (प्रो0 मेक्समूलर)
2. रामचरित मानस – 4/7–10
3. रामचरित मानस – 3/35–4

अर्थात् कर्मफल में संतुष्टि तथा स्वप्न में भी किसी का दोष न देखना, क्यों कि सभी अपने–अपने कर्मानुसार भोगफल के अधिकारी हैं।

दानशीलता–

प्रकट चारि पद धर्म के कलि मँह एक प्रधान।

जेन केन विधि, दीन्हे दान करइ कल्यान।।1

धर्म के चार पद हैं– तप, ज्ञान, यज्ञ एवं दान, तप सतयुग में, ज्ञान त्रेता युग में, यज्ञ द्वापर में तथा दान कलियुग का प्रधान धर्म है–

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।।2

इस प्रकार कलिकाल के समाज धर्म में दान की अत्यधिक महत्ता है। दान किसी भी प्रकार का हो– विद्या दान, अभयदान, क्षमादान, कन्यादान, धन दान, अन्न दान, रक्तदान आदि किन्तु सुपात्र को दान देना चाहिए अन्यथा समाज में विकृति आ सकती है।

गोस्वामी जी का उपर्युक्त वचन कि "येन केन विधि दीन्हे दान करै कल्यान" उपनिषद् के प्रसिद्ध वचन 'श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया देयम्, श्रियादेयम्, ह्रियादेयम्, भिया देयम्[3] आदि पर आधारित है। कहने का तात्पर्य है कि तुलसीदास जी ने जो कहा वह पूर्णतः प्रामाणिक सत्य कहा। कि दान दे फिर श्रद्धा से दे अथवा अश्रद्धा से दें क्योंकि समाज में मनुष्य कभी सम्पूर्ण सुख–साधन सम्पन्न नहीं रहता, उसे कभी न कभी दूसरे की सहायता की आवश्कयता होती है, ऐसी स्थिति में दान धर्म समाज के लिए सर्वोत्तम

---

1. रामचरित मानस –
2. मनुस्मृति – 1/86, पद्मपुराण सृष्टि खण्ड – 18/440, पराशर स्मृति–1/23 तथा श्रीमद्भागवत्–12/3 में भी आया है
3. तैत्तिरीयोपनिषद् (समार्तन सं0)

एवं हितकर है।

परदुख कातरता—

समाज धर्म के पालन का आदर्श वह होता है जिसको अपने परिवार और कुटुम्ब के सदस्य ही नहीं समाज का प्रत्येक प्राणी अपना लगने लगे। उनका सुख तथा दुख दोनों अपने लगें। जो दूसरों का दुख देखकर तत्काल सहायता के लिए तत्पर हो जाए वही यथार्थ रूप से परदुख कातर कहा जाएगा। श्री राम, दशरथ, लक्षमण, हनुमान, निषाद आदि पात्र समाज धर्म के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। ये पात्र अपने स्वजनों अपने मित्रों तथा समाज के प्रति अति संवेदनशील हैं।

निःस्वार्थता—

निःस्वार्थता धर्म की कसौटी है। मित्रता का भाव भी हो सत्य निष्ठा भी हो क्षमा तथा दानशीलता भी हो परदुख कातरता भी हो, किंतु निःस्वार्थता न हो तो वह कर्म धर्म न होकर एक व्यापार की भाँति होता है जिसमे देने वाले को पाने की इच्छा भी होती है।

तभी तो महर्षि बाल्मीकि श्री राम से कहते हैं—

"जिन्ह के कपट दम्भ नहिंमाया। तिन्ह के ह्रदय बसहु रघुराया।।

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।

बसहु निरन्तर तासु उर सो राउर निज गेहु।।"[1]

यहाँ पर 'तुम्ह सन सहज सनेह' का तात्पर्य प्रत्येक मनुष्य से स्वाभाविक निःस्वार्थ प्रेम से है। उपर्युक्त सभी लक्षण सर्वजनों के लिए पालनीय हैं।

---

1. रामचरित मानस – 2/138 एवं 2, 131

(ख). समाज धर्म के विशिष्ट लक्षण–

वर्ण आश्रम धर्म समाज के विशिष्ट धर्म हैं। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि **"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।"**1 गुण, कर्मों के विभाग द्वारा चारों वर्णों का निर्माण मेरी ही रचना है। यह विधान विज्ञान तथा शास्त्र सम्मत भी है। प्रत्येक वर्ण स्वधर्म पालन करते हुए मोक्ष का अधिकारी है। चारों वर्णों से मिलकर एक विशाल जनसमूह नियमों से आबद्ध है। भारतीय ज्योतिष में भी नक्षत्रानुसार चार वर्ण हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

(1). ब्राह्मण का समाज धर्म–

"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।

दानं प्रतिगृहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।"2

विद्या–अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ कराना तथा यज्ञ करना, दान लेना और देना ये ब्राह्मण के समाज धर्म हैं अर्थात् यदि वह समाज से लेता है तो उसे देना भी उसका धर्म है।

(2). क्षत्रिय का समाज धर्म–

"प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समादिशत।।"3

अर्थात् क्षत्रिय को समाज धर्म निर्वहन हेतु प्रजा की रक्षा, दान, अध्ययन तथा भोग विलास से मुक्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

---

1. गीता – 4/13
2. मनुस्मृति – 31
3. मनुस्मृति – 88

(3). वैश्य का समाज धर्म–

"पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।

वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।"1

वैश्य का स्वधर्म तथा समाज धर्म पशुओं की रक्षा करना, दान देना, भूमि जोतना, व्यापार एवं लेन देन का कार्य करना यज्ञ करना एवं अध्ययन करना कहा गया है।

(4). शूद्र का समाज धर्म–

"एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।

एतेषामेव वर्णानां सुश्रूषमनसूयया।।"2

शूद्रों का एकमात्र समाज धर्म तीनों वर्णों की सेवा करना कहा गया है।

निष्कर्ष रूप में शूद्र ही सबसे महान होते हैं क्योंकि वे सबसे कठोर धर्म का निर्वहन करते हैं। "सबसे सेवक धर्म कठोरा"।

सेवक धर्म की महत्ता–

सामान्य मानव जीवन के लौकिक क्रियाकलापों से लेकर आध्यात्मिक/भक्ति जीवन तक गोस्वामी तुलसीदास आदर्श सेवक धर्म के परिपोषक थे। सबसे सेवक धर्म कठोरा का डिंडिम घोष करने वाले तुलसीदास ने मानस मे हनुमान, भरत, निषाद राज, राज–परिवार के सदस्यों में सुमंत्र, अनेक किंकर, किंकरियों की चर्चा की है।

घ. लोकधर्म के आदर्श लक्षणः–

प्रकृति की निर्माण कला का परिचायक सबसे उत्तम प्राणी मानव ही है। वह समाज के बिना नहीं रह सकता। अकेले बैठकर सोच विचार करते समय भी इन्द्रिय

---

1. मनुस्मृति – 90
2. मनुस्मृति

समूह से अलग नहीं हो सकता। मानव और अन्य प्राणियों में अत्यधिक अन्तर है। पशु–पक्षी अन्तःप्रेरणा से एक सीमित क्षेत्र में ही कार्य करते हैं। उनमें जो परिवर्तन होता है, वह प्रकृति द्वारा है, विचार–बुद्धि द्वारा नहीं। मानव बुद्धि–बल में श्रेष्ठ है। इसी बौद्धिक विकास तथा शारीरिक बल द्वारा मनुष्य इह लोक तथा पारलौकिक अनन्त सुखोपार्जन की क्षमता रखता है।

मानव अपने बुद्धि बल से अनेक प्रकार के भौतिक साधनों का निर्माण करता है जिनके द्वारा मानव–जीवन सुरक्षित तथा समृद्धशाली बनता है। विज्ञानसम्मत साधनों के द्वारा वह आने वाली पीढ़ी को भी सुख साधन विरासत के रूप में देता है। मानव प्रकृति के रहस्यों का अन्वेषण सभी जड़–चेतन की सृष्टि में तर्क–वितर्क के द्वारा करता है, जिससे मानव की विचार धारा बदलती रहती है।

मानव की विशेषता है–'आत्मवत्सर्वभूतेषु', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' स्वयं जीकर दूसरों को भी सुख से जीने देना। प्राणिमात्र को अपनी तरह समझना सभी के कल्याण हेतु कार्य करना यही लोक धर्म है आश्रम व्यवस्था को ध्यान में रखकर यदि देखा जाए तो वानप्रस्थाश्रम लोक–धर्म के अन्तर्गत आता है। मनुष्य गृहधर्म का पालन करते हुए जब अपने बौद्धिक विकास की ओर अग्रसर होता है, तब उसका कार्यक्षेत्र बढ़कर कुल अथवा सगे संबंधियों के सुख–दुख तक पहुँचता है। इस अवस्था में वह अपने कुटुम्बीजनों के लिए धर्म–कार्य करता है। तत्पश्चात् उसका सामाजिक स्तर बढ़ जाता है और वह समाज अर्थात् मित्र, पड़ोसी, पहचान वालों आदि के सुख–दुख का अनुभव कर उनका भागीदार बनने की इच्छा रखता है तथा उनके हितार्थ आचरण करता है। इस प्रकार समाज धर्म का निर्वाह करते हुए मनुष्य गृह धर्मों से निवृत होकर अनासक्त भाव से गृह में निवास करते हुए लोक कल्याण के लिए कर्म करता है। जैसे यज्ञ करना, कुँए तालाब

बनवाना, वृक्ष लगाना, पाठशाला बनवाना आदि। अर्थात् ऐसे कार्य जिससे लोक अर्थात् प्राणिमात्र लाभान्वित हो। श्री राम के द्वारा राक्षसों का संहार उनका लोक धर्म था।

लोकधर्म के आदर्श लक्षणों को निम्नलिखित तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1. मातृभूमि के प्रति निष्ठा।
2. राजा तथा प्रजा के कर्तव्यों का ज्ञान।
3. मन, वाणी तथा कर्म से लोक कल्याण।
4. साहित्य, संगीत आदि कलाओं के माध्यम से लोक कल्याण।

1. मातृभूमि के प्रति निष्ठाः–

मातृभूमि के प्रति निष्ठा तथा लोक कल्याण कामना हेतुक यजुर्वेद का यह मंत्र कहता है कि–

"आ ब्रह्मण ब्राह्मणों ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्य शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथी जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठा, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न औषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्।।"[1]

अर्थात् 'विश्व भावन ब्राह्मण ब्रह्मतेज से सम्पन्न हों। राष्ट्र में क्षत्रिय–शूरवीर धनुर्धर, रोगमुक्त और महारथी हों। गायें दुधारु, बैल भार वहन में सक्षम, अश्व शीघ्रगामी, स्त्रियाँ शोभामयी, रथी विजयशील हों और इस यजमान का युवा पुत्र निर्भय वीर हो। आवश्यकतानुसार वर्षा हो, वनस्पति फलवती हो। हमारा योग–क्षेम हो।' इसी भावना से ओतप्रोत होकर तथा मातृ–भूमि के प्रति अनन्य प्रेम दर्शाते हुए श्री राम कहते हैं–

---

1. यजुर्वेद – 22/22

"जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान बिदित जगु जाना।।

अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।।

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी।।"1

अर्थात् अयोध्यापुरी मेरी मातृभूमि है इसलिए मुझे बैकुंठ से भी अधिक प्रिय है। यहाँ के निवासी मुझे बहुत प्रिय हैं। श्री राम के इस निश्छल प्रेम के कारण ही अयोध्यावासी वन गमन के समय उनके साथ ही चल दिए थे—

"जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अबध नहिं काजू।।

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई।।"2

देवताओं के लिये भी दुर्लभ सुखों से परिपूर्ण गृहों को त्यागकर श्री राम के प्रेम में विवश लोग श्री राम को ही सम्पूर्ण सुखधाम मानकर उनके संग लच दिये।

राजा तथा प्रजा के कर्तव्यों का ज्ञान—

शुक्रनीति राजा के लोक धर्म के संदर्भ में कहती है—

"स्वयं धर्म परोभूत्वा धर्मे संस्थापयेत प्रजाः।

धर्म नीति परो राजा चिरं कीर्तिं स चाश्नुते।।"3

राजा को चाहिए कि वह स्वयं धर्म परायण रहकर प्रजा को धर्म में लगाये। इस प्रकार धर्म नीति में तत्पर राजा चिरस्थायी कीर्ति प्राप्त करता है।

राजा का लोकधर्म रामचरितमानस में वेदप्रतिपादित तथ्यों के आधार पर इस प्रकार वर्णित है—

---

1. रामचरित मानस — 7/4—3, 4, 5
2. रामचरित मानस — 2/84—6, 7
3. शुक्रनीति — 4/8, 4/5

"भूपधरम जे वेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने।

दिन प्रति देइ बिबिध विधदाना। सुनइ सास्त्रबर बेद पुराना।।

नाना वापी कूप तड़ागा। सुमन वाटिका सुन्दर बागा।।

विप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए।।"1

अर्थात् वेद में राजा के निम्नलिखित लोकधर्म कहे गये हैं–दान करना, वेद, शास्त्रों का श्रवण, स्वाध्याय राजकोष का सदुपयोग करते हुए प्रजा के हितार्थ कूप, बावड़ी, वाटिका तथा बगीचे लगवाना, मंदिर तथा तीर्थ स्थानों का जीर्णोद्धार तथा निर्माण कराना।

"जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।

बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग।।"2

राजा प्रतापभानु का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए राजा के धर्म कहे गये हैं कि वेद–पुराणों में जितने यज्ञ कहे गये हैं (श्रौत, स्मार्त्त) आदि राजा ने सहस्रों बार निष्काम भाव से (फल की इच्छा के बिना) यज्ञ किया।

"हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप विवेकी परम सुजाना।।

करई जे धरम करम मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी।।"3

अर्थात् राजा को विवेकी तथा अहंकार मुक्त होना चाहिए।

इस प्रकार जब राजा धर्म कार्य लोक हित को ध्यान में रखकर करता है तब राजा के धर्म का बल पाकर भूमि भी कामधेनुवत हो जाती है–

---

1. रामचरित मानस – 1/155–5, 8
2. रामचरित मानस– 1/155
3. रामचरित मानस – 1/156–1, 2

"भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई।।

सबदुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुन्दर नर नारी।।"1

भूमि कामधेनु (अन्न तथा रत्न देने वाली) बन जाती है प्रजा जन भी राजा की भाँति रूप और गुण से परिपूर्ण होकर धर्मज्ञ हो जाते हैं। श्री रामराज्य की प्रजा परम धर्मशील राजा राम के धर्म के प्रभाव से उन्हीं का अनुसरण करने वाली हो गई–

"सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।"2

राजा प्रजा के लिये आदर्श होता है। महाभारत आदि ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि जैसे आचरण वाला राजा होता है, प्रजा भी वैसे ही आचरण वाली होती है। यथा राजा तथैव प्रजाः।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के लोकधर्म व्यक्तिगत अथवा विशिष्ट लोकधर्म कहे जा सकते हैं किंतु जो सामान्य जनों के लिए आवश्यक लोकधर्म है वे निम्नलिखित हैं–

मन, वाणी तथा कर्मों द्वारा लोक कल्याण–

"अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते

वयांसि चाग्निश्च शरीर धातून्।

द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र

पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः।।"3

अर्थात् मरने के बाद धन किसी और के काम आता है, शरीर अग्नि में भस्म हो

---

1. रामचरित मानस – 155–1, 2
2. रामचरित मानस – 7/20–8, 21–7
3. महाभारत उद्योग पर्व – 40/16

जाता है, जीव के साथ न धन जाता है न शरीर। साथ तो केवल पाप–पुण्य तथा धर्म और अधर्म ही जाते हैं।

इसीलिये महात्मा कणाद का कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है–

"यतोऽभ्युदयः निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।"

अर्थात् प्राणी को ऐसे कर्म करने चाहिए जिसके फलस्वरूप इस मृत्युलोक में भी कल्याण हो तथा परलोक (मोक्ष) की प्राप्ति हो–

वैदिक संस्कृति मनुष्य को एक–एक सोपान चढ़ाते हुए अंधकार से पूर्ण प्रकाश की ओर ले जाती है–

'असतो मा सद्गमय' के आधार पर जैसे–जैसे प्राणी अहंकार मुक्त होता जाता है वह सबके कल्याण की कामना हेत प्रयत्नशील होता जाता है। रामचरितमानस में श्री राम के द्वारा राक्षसों का संहार उनका लोक धर्म था–

"निसिचर हीन करौं मही। भुजउठाइ पनु कीन्ह।

सकल मुनिन्ह के आश्रमन्ह। जाइ जाई सुख दीन्ह।।"[1]

लोक कल्याण हेतु पाप–विरति–

धर्म शास्त्रों में तीन प्रकार के पाप कहे गये हैं–

1. मानसिक पाप
2. वाणी के द्वारा पाप
3. कर्म के द्वारा पाप

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार जप, तप, ब्रत, दान और यज्ञादि कर्म यद्यपि धर्म

---

1. रामचरित मानस

हैं किन्तु यदि इन्हें तामस भाव (परपीड़ा निमित्त) से किया जाये तो इन्हें अधर्म की श्रेणी में रखा जाएगा

"तामस धर्म करहिं नर जप तप व्रत मख दान।

देव न बरसहिं धरनीं बए न जामहिं धान।।"1

इस प्रकार मन में द्वेष भाव रखते हुए शरीर द्वारा किये गये धर्म कार्य शुभ फलदायी नहीं होते, उदाहरणार्थ मेघनाथ तथा रावण द्वारा शक्ति प्राप्ति के लिए किये गये यज्ञ। अतः मनुष्य को सर्वप्रथम मन में लोक कल्याण की भावना जाग्रत करनी चाहिए संसार में प्रसिद्धि पाने के लिए किये गये शुभ कार्य भी लोक धर्म के अंतर्गत नहीं आते बल्कि धर्म कार्यों (परहितार्थ) से तो लोक–प्रियता उसी प्रकार मिलती है जैसे–

"जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं।

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाए। धमरसील पहिं जाहिं सुभाए।।"2

नदी अपने स्वभाव से चलती जाती है और एक दिन कामना न होते हुए भी समुद्र से जा मिलती है उसी प्रकार धर्मशील मनुष्य निष्काम भाव से कर्म करते हुए सहज ही मानवता प्राप्त कर मोक्ष पा लेता है।

एक छोटा सा उद्धरण इस प्रकार है कि एक व्यक्ति आम का वृक्ष लगाता है और यह जानता है कि फल कोई और खाएगा किन्तु जीवनपर्यन्त उस वृक्ष को पालता रहता है। यह उस व्यक्ति का लोक धर्म कहा जाएगा इसी प्रकार पर्यावरण की शुद्धि हेतु किये गये यज्ञ भी लोकधर्म हैं।

---

1. रामचरित मानस – 7/101
2. रामचरित मानस – 1/294–2, 3

साहित्य, संगीत आदि कलाओं के माध्यम से लोक कल्याण–

आचार्य आनन्द वर्धन ने कवि (साहित्यकार) की तुलना प्रजापति से की है, क्योंकि वह अपनी रचना के द्वारा सम्पूर्ण विश्व के मानस पटल को परिवर्तित कर सकता है– **"अपारे काव्य संसारे कविरेको प्रजापतिः।**

यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तिते।।"[1]

इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि कवि कोई साधारण व्यक्ति नहीं बल्कि अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न ऐसा मनुष्य है जो अपनी लेखनी के माध्यम से समाज का नेतृत्व करता है। उसकी लेखनी से निकले अक्षर–ज्योतिस्फुलिंग बनकर मोह निशा से भ्रान्त प्राणियों को सन्मार्ग की दिशा का संकेत देते हैं। कवि की कल्पना शक्ति से अमृत का वह अक्षय उत्स फूटता है, जो दुःख–दाव–दग्ध ह्रदयों को अनन्तकाल तक शीतल सुधा–रस से सींचता रहता है। वह अपने प्रातिभ नेत्रों से तीनों कालों का साक्षात्कार कर जिन मान्यताओं और आदर्शों की सृष्टि कर देता है, समाज युग–युग तक उसका अनुवर्तन करने में गौरवान्वित होता है।

प्राचीन आर्यों की सभ्यता और संस्कृति के प्रचारक साहित्यकार ही हैं। समाज में जो तप, त्याग, अहिंसा, दया, धर्म, नीति एवं बलिदान आदि की भावना है, उसको जीवित रखने का श्रेय भी साहित्य और संगीत को है। महर्षि बाल्मीकि और वेदव्यास जैसे महान कवियों ने ही मानव को ऊँचे आदर्श और उज्जवल परम्परायें तथा धर्म तत्त्व प्रदान किये। इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए महाकवि तुलसी कहते हैं–

"कीरति भनिति भूति भलि सोई।

सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

---

1. कल्याण धर्मांक – पृ0 660 में उद्धृत

साहित्य धर्मतत्त्व तक पहुँचने का प्रथम सोपान है, और धर्म ऐहिक एवं मानवीय आत्मिक सुखों का निष्पादक है, परन्तु जब साहित्य धर्म की उपेक्षा कर मनमाने मार्ग पर चलने लगता है तब उसमें लोक कल्याण की भावना नहीं रह जाती, ऐसा साहित्य समाज को पतन की ओर ले जाता है, अतः साहित्य पर धर्म का नियन्त्रण रहना अनिवार्य है कवि के लोक धर्म को स्पष्ट करते हुए महर्षि वेदव्यास महाभारत में कहते हैं–

"धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च पुरुषर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।"1

अतः धर्म नियंत्रित तथा लोक कल्याण भाव के निमित्त साहित्य की रचना ही कवि का धर्म है। धर्मभाव से ओतप्रोत साहित्य ही समाज में फैली कुरीतियों और अंध विश्वासों के जाल को काटकर ज्ञान का प्रकाश फैलाकर समाज को विश्व धर्म का पाठ पढ़ा सकता है।

ङ. विश्व धर्म के आदर्श लक्षण–

जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक मनुष्य गृहधर्म, कुल धर्म, समाजधर्म, तथा लोकधर्म का निर्वाह करते हुए स्वयं को इस अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परमेश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप में समाहित करने के प्रयत्न में एक–एक सोपान पार करता हुआ जीवन के अन्तिम सोपान तक पहुँच जाता है। और यदि वह सच्चे हृदय से तथा अनासक्त भाव से जीवन के सारे धर्म निभाता हुआ चलता है तो इस अन्तिम सोपान में निश्चय ही वह अनन्त तथा कर्म बन्धनों से मुक्त होकर सारी वसुधा को अपने कुटुम्ब तथा प्राणि मात्र को कुटुम्बीजन की तरह देखने लगता है, और इस प्रकार उसे समस्त

---

1. कल्याण धर्मांक – पृ0 661 में उद्धृत

जगत के एक–एक कण में ईश्वर के दर्शन होने लगते हैं। तब वह यही कहता है–

"निर्गुणस्य शरीरस्य प्रतिक्षण विनाशिनः।

गुणोऽस्ति सुमहानेकः परोपकरणाभिघः।।"1

अर्थात् यह शरीर तो प्रतिक्षण नाश हो रहा है और जीवात्मा निकलने के बाद इसे जला दिया जाएगा। अतः यह गुण रहित है इससे जो भी दूसरों की भलाई हो जाए वही अच्छा है। इस शरीर से परोपकार रूप महान गुण प्राप्त कर लेना ही शरीर धारण की सार्थकता है प्रकृति भी तो यही धर्म सिखाती है बस दूसरों का हित हो अपने लिये बदले में कोई इच्छा न हो–

"पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।

खादन्ति सस्यं न च वारिवाहाः

परोपकाराय सतां विभूतयः।।"2

क्योंकि जिस प्रकार नदियाँ स्वयं अपना जल नहीं पीतीं, वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाते, मेघ अन्न नहीं खाते उसी प्रकार सत् पुरुषों की सम्पत्ति भी दूसरों के हित के लिये होती है क्योंकि–

"परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः

परोपकाराय वहन्ति नद्यः।

परोपकाराय दुहन्ति गावः

परोपकारार्थमिदं शरीरम्।।"3

---

1. कल्याण धर्मांक – पृ0 409 में उद्धरण
2. कल्याण धर्मांक – पृ0 409 में उद्धरण
3. कल्याण धर्मांक – पृ0 409 में उद्धरण

परहित के लिए वृक्ष फल देते हैं, नदियाँ बहती हैं, गाय परहितार्थ मधुर दूध प्रदान करती है, अतः मनुष्य को भी अपना शरीर परहित में ही संलग्न कर देना चाहिए। महापुरुषों तथा भारतीय वाङ्मय के अनुसार मानवधर्म ही विश्व–धर्म है जब मनुष्य जगत् के कण–कण में परम तत्व परमात्मा को देखने लगता है तब वह एक सच्चा मानव बन जाता है फिर वह जिस धर्म का निर्वाह करता है, वही विश्व धर्म कहलाता है। वस्तुतः विद्वानों के मतानुसार मानवधर्म की ओर ले जाने वाले सद्गुण निम्नलिखित हैं–

1. सर्वत्र भगवद् दर्शन
2. परोपकार
3. अहिंसा
4. सत्य
5. ब्रह्मचर्य
6. अपरिग्रह
7. सात्विकता
8. सेवाभाव
9. विनय
10. क्रिया दक्षता
11. समता
12. त्याग
13. प्रेम
14. शान्ति
15. सदाशयता
16. सद्विचार
17. क्षमा

इसी सन्दर्भ में ऋग्वेद में कहा गया है–

"विश्वदानीं सुमनसः स्याम"[1]

अर्थात् हम सर्वदा प्रसन्न रहें, क्योंकि मनःप्रसाद से समस्त आपदायें शान्त हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में विश्व कल्याण में लगे रहना ही मनःप्रसाद का हेतु है, जो कि

---

1. ऋग्वेद – 6/52/5

सच्चा मानव धर्म है। ऋग्वेद का यह मंत्र भी है "पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः" अर्थात् मानव, मानव की रक्षा करे मानव–धर्म का मूल मन्त्र है इसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में अनेक सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं

"यावानात्मनि वेदात्मा तावानात्मा परात्मनि।

य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते।।"1

जिस प्रकार स्वयं के शरीर में ज्ञान–स्वरूप आत्मा है, वैसे ही दूसरों के शरीर में भी है–ऐसी विचारणा जिस व्यक्ति की बन जाती है वह सुधातत्व को सुलभता से प्राप्त कर सकता है।

गोस्वामी तुलसीदास इन सभी तथ्यों का अनुमोदन करते हुए रामचरितमानस में दो लक्षणों पर विशेष बल देते हैं– 1. परोपकार 2. अहिंसा

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।"

मानव वही है जो सदैव परहित में संलग्न रहे यदि मनुष्य शरीर पाकर भी वह परपीड़क बनता है तो वह मानव नहीं अमानव कहलाता है। महर्षि व्यास तो परोपकार को समस्त पुराणों का सार बतलाते हैं–

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।"2

तात्पर्य यह है कि अट्ठारह पुराणों का सार सुनकर भी यदि कोई मनुष्य स्वार्थभाव का त्याग नहीं करता तो वह मनुष्य विद्याहीन, परोपकारी मनुष्य से सदैव निम्न कोटि का ही रहेगा, अतः मनुष्य बनने के लिए पर दुःख कातरता परहित संलग्नता आवश्यक है न कि वेद पुराणों का शब्दार्थ ज्ञान।

---

1. कल्याण धर्मांक – पृ0 99 में उद्धृत

2. महाभारत

वेद कहता है "अहिंसा परमोधर्मः"। गोस्वामी जी भी यही कहते हैं "परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा।"

योग की पहली सीढ़ी भी अहिंसा है अतः अहिंसा मानव–धर्म का अनिवार्य लक्षण है। यह अहिंसाभाव का ही प्रभाव था कि प्राचीन महामुनियों के आश्रम में शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते थे–

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः।"1

प्रश्न यह है कि अहिंसा की प्रतिष्ठा कैसे की जाए? इसका उत्तर देते हुए एक कवि कहता है कि प्रेम ही अहिंसा का व्यावहारिक रूप है प्रेम अर्थात् निरहंकारता–

"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।

सीस उतारै भुई धरै, तब पैठे एहि माहिं।।"2

प्रेम का जीवन में पदार्पण ही अहिंसा धर्म लक्षण है।

देवर्षि नारद भगवान की पूजा के लिए गुण पुष्पों की चर्चा करते हुए कहते हैं–

"अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं करणग्रहः।

तृतीयकं भूतदया चतुर्थं क्षान्तिरेव च।।"3

अर्थात् अहिंसा प्रथम पुष्प है, दूसरा पुष्प है इन्द्रिय निग्रह, तीसरा पुष्प जीव दया और चौथा क्षमा है।

गोस्वामी तुलसीदास अहिंसा का मूल प्रेम को ही मानते हैं क्योंकि श्री राम को वही प्रिय है जिसके हृदय में जीव मात्र के लिए प्रेम है–

"रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा।।"4

---

1. कल्याण धर्मांक – पृ0 74 में उद्धृत
2. कल्याण धर्मांक – पृ0 75 में उद्धृत
3. कल्याण धर्मांक – पृ0 79 में उद्धृत
4. रामचरित मानस – 2/137–1

वेद प्रतिपादित आश्रम–व्यवस्था तथा पुरुषार्थ चतुष्टय के अनुसार सन्यासाश्रम तथा मोक्ष–प्राप्ति ही विश्व–धर्म है, जीवन के तीन पुरुषार्थों तथा तीनों आश्रमों के समस्त कर्तव्यों का निर्वाह कर जब व्यक्ति सन्यासाश्रम में मोक्ष–प्राप्ति हेतु प्रविष्ट होता है, तब पूर्व के सारे नाते टूट जाते हैं, वह व्यक्ति किसी का सम्बन्धी नहीं होता, वह सारे विश्व का हो जाता है, और सारा विश्व उसका हो जाता है। संसार से मोह टूट जाता है। तब न उसका कोई अपना रहता है और न ही कोई पराया रहता है। इसी को कोई मानव धर्म कहता है कोई विश्वधर्म तथा कोई संत–धर्म कहता है।

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार सन्तों के लक्षण इस प्रकार हैं–

> **"बिषय अलंपट सील गुनागर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।।**
> **सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।।**
> **कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया।।**
> **सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।**
> **विगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन।।**
> **सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।।**
> **ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर।।**
> **सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।**
> **निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।**
> **ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज।।"**[1]
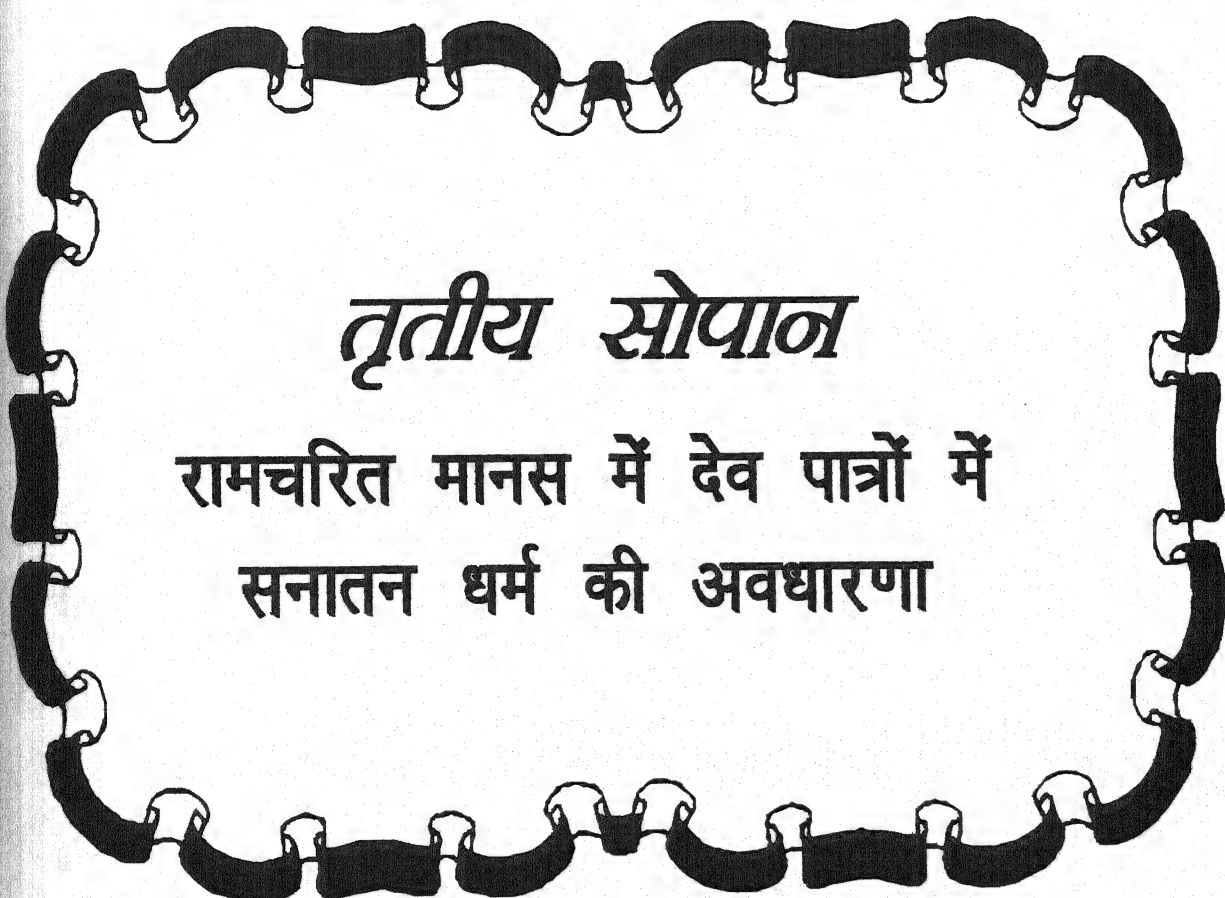
वस्तुत संतविषयों में अनासक्त, शील (मर्यादा) और सद्‌गुणों की खान होते हैं, दूसरों के दुख में दुखी तथा पर सुख में सुखी होते हैं। संत जन सर्वत्र, सब में, सदा

---

1. रामचरित मानस – 7/38–1–8

समता का भाव रखते हैं वे शत्रुहीन, मदहीन, वैराग्यवान तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भयहीन होते हैं। उनका चित्त बड़ा कोमल होता है, दीनों पर दया तथा मन, वचन, कर्म से निष्कपट ईश्वर–भक्त होते हैं। सबका मान रखते हैं किंतु स्वयं मानरहित होते हैं। संत पुरुषों की समस्त कामनाओं का नाश हो जाता है, उनके हृदय में शान्ति, वैराग्य, विनय, प्रसन्नता, शीतलता, सरलता तथा सबके प्रति मित्रभाव रहता है। सभी धर्मों को उत्पन्न करने वाली ब्राह्मण भक्ति तथा शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रिय निग्रह) नियम और नीति से जो कभी विचलित नही होता वही मनुष्य सच्चा संत तथा मनुष्य होता है यही विश्वधर्म के आदर्श लक्षण हैं।

तृतीय सोपान

रामचरित मानस में देव पात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा

रामचरितमानस के देव पात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा

देव एवं देवत्व–

देव शब्द "श्रीअर्थक, द्युत्यर्थक स्तुत्यर्थक, मोदार्थक इत्यादि अर्थ करने वाले "दिवु धातु" से निष्पन्न है, दीव्यतीति आनन्देन क्रीडतीति"। अर्थात् आनन्द पूर्वक जो क्रीडा करे वह–देव है। अथवा दीव्यति–द्यौतते प्रकाशते वेति देवः (अर्थात् जो प्रकाश रूवरूप हो वह–देव है) अथवा दीव्यति स्तौतिवः देवः = (जो स्तुति करता है) यथा ऋग्वेद (9–96–6) के अनुसार– 'ब्रह्मादेवानां पदवीः कवीनाम्" इस मंत्र की सायणभाष्य में इस प्रकार व्याख्या करते हैं– "देवानां स्तोत्रकर्तृणांमित्यर्थः कृतः। तथा दीव्यति सदा मोदते यः सः देवः– अर्थात् जो सर्वदा प्रसन्न रहता है वह भी देव है।

निरुक्तकार देव शब्द की परिभाषा करते हुए कहते हैं– "यो ददाति सः देवः" अर्थात् जो दातृत्व शक्ति सम्पन्न होता है वह देव होता है। जैसे ऋग्वेद के (1/1/1) "अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्, का सायण भाष्य कहता है–देव शब्द दान दीपन द्योतनानामन्यतममर्थमाचष्टे। यथा "यज्ञस्य दाता दीपयिता, द्योतयिता यमग्निरित्युक्तं भवति। अर्थात् जो यज्ञ का दाता, प्रकाशयिता होता है वही अग्नि होता है।

उक्त देव शब्द "दिवु धातु से "नन्दि ग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यचः" इस पाणिनि–सूत्र द्वारा अच प्रत्यय प्रयोग और लघूपधक गुण होकर निष्पन्न होता है।

इस प्रकार देव शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ हुआ 'दाता' अर्थात् श्री (कीर्ति, धन, वैभव), यज्ञ (धर्म) आनन्द आदि देने वाला।

गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही देवाधिदेव महादेव भगवान शंकर और देवी पार्वती की वंदना करते हुए कहते हैं–

"भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।

याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।

श्रद्धा और विश्वास स्वरूप श्री पार्वती और भगवान शंकर की मैं वन्दना करता हूं, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते। तात्पर्य यह है कि मनुष्य का कल्याण देवों की कृपा पर ही निर्भर है। देव दाता हैं, जीव मात्र भिक्षुक हैं सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण आदि देवों की दानशीलता के कारण ही प्राणि समूह जीवित है। इसी कारण 'देव' को दाता कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी परमदानी महादेव शंकर और माता पार्वती का वंन्दन करते हुए अपने लिए आशीर्वाद माँगते हैं–

"गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।

सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के।।"

अर्थात् नित्यदानी भगवान शंकर, पार्वती जो श्री राम के स्वामी, सेवक और सखा भी हैं वही मेरा सच्चा हित करने वाले हैं। भगवान शंकर के अतिरिक्त रामचरितमानस में नारद, पार्वती, इन्द्र, कामदेव, रति, वृहस्पति, ब्रह्मा, विष्णु, जयन्त, अग्नि देव आदि देव पात्रों का उल्लेख मिलता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने इन देवपात्रों के माध्यम से शास्त्रानुमोदित देवत्व की परिकल्पना रामचरितमानस में की। गोस्वामी जी ने यह सिद्ध कर दिया कि जो सतत् लोक कल्याण में प्रयत्नशील है वही देव है।

मानस के बालकाण्ड में राक्षसों के अत्याचारों से व्याकुल पृथ्वी जब धेनुरूप में ब्रह्मा जी के पास पहुँचती है तब समस्त देवता पृथ्वी के दुख से दुखी हो जाते हैं

"धेनु रूप धरि हृदय बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी।।"1

---

1. रामचरित मानस – 1/184–7

इसी प्रकार जनकल्याण हेतु कामदेव यह जानकर भी कि शिव कोप से उनका विनाश निश्चित है वे शिव जी की समाधि भंग करने पहुँच जाते हैं–

"सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार।

संभु विरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार।।"

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा।।"1

देवराज इन्द्र की महिमा का वर्णन करते हुए वेद कहता है–"देवराज इन्द्र की शक्ति की कोई इयत्ता नहीं है। जब राहु के उपराग से सूर्यदेव प्रकाश हीन हो जाते हैं तब देवराज इन्द्र उसे पराजित करके सूर्य को पुनः प्रकाशयुक्त कर देते हैं" (ऋग्वेद–8/3/6)–2

महाभारत में वेदव्यास मुनि इसी कथन का अनुमोदन करते हैं–

"असूर्ये च भवेत सूर्यस्तथा चन्द्रे च चन्द्रमाः।

भवत्यग्निश्च वायुश्च पृथिव्यापश्च कारणैः।।"3

अर्थात इन्द्रदेव सूर्य के न रहने पर सूर्य बनकर तपते हैं और चन्द्रमा के न रहने पर स्वयं चन्द्रमा बनकर जगत् को आप्यायित करते हैं। आवश्कता पड़ने पर पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु आदि बनकर विश्व की स्थिति को बनाये रखते हैं। तात्पर्य यह है कि इन्द्र ही समस्त देवों के धारक हैं, नियन्त्रण तथा सन्तुलनकर्ता हैं।

---

1. रामचरित मानस– 1/83–84–1
2. कल्याण नीति सारांक–पृ0 36
3. महाभारत वन पर्व –

(क). रामचरित मानस के देव पात्रों का सनातन स्वरूप–

रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने मुख्य तीन देवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) को सृष्टि का रचयिता, पालक तथा संहारक बताया है। किंतु इन तीनों देवों की शक्ति का आधार तप है–

"तपबल रचइ प्रपंचु विधाता। तपबल विष्णु सकल जग त्राता।

तपबल संभु करइ संहारा। तपबल सेष धरइ महिभारा।।"1

अर्थात तप के द्वारा शक्ति प्राप्त कर ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना करते हैं, विष्णु सृष्टि का पालन करते है, शेषनाग उसी की शक्ति से पृथ्वी का भार उठाते हैं तथा परम कल्याण कारी भगवान शंकर तप द्वारा उसी परम शक्ति से संहारक महाकाल कहलाते हैं।

वेद कहता है कि जो बलवान एवं शक्तिशाली है, जो समर्थवान है, वही धर्म की पताका फहरा सकता है और सर्वसमर्थ तो वही एक परमात्मा है–

"विश्वा धर्मानि विश्वचक्ष ऋभवसः प्रमोस्ते सतः परियन्ति

केतवः व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजति।"2

अर्थात हे विश्वचक्षु! तुम संसार भर को देख रहे हो तुम प्रभु, ऋभु (दीप्तिमान) हो तुम्हारी ध्वजा समस्त संसार में फैल रही है। तुम व्यापक हो, धर्मनिष्ठ व्यक्तियों के धर्मों से द्रवित होते हो। समस्त भुवनों के पालक के रूप में दीप्तिमान हो रहे हो।

गोस्वामी तुलसीदास श्रीराम को ही ओंकार स्वरूप परमात्मा आनन्दसिंधु का अवतार मानते हैं–

---

1. रामचरित मानस – 1/73–3, 4
2. ऋग्वेद – 9/86/5

"जो आनन्दसिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।।

सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा।।"1

श्रीमद्भागवत में भी रामकथा प्रसंग में श्रीराम को सच्चिदानन्द स्वरूप माना गया है–

" ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नमः........................."2

वास्तव में रामचरित मानस भारतीय पौराणिक परम्परा का ग्रंथ है। भारतीय पुराण वस्तुतः रूपक काव्य ग्रंथ हैं, जिनके अन्तर्गत प्रतीकात्मक शैली में तत्व ज्ञान का निरूपण किया जाता है। इसलिए पौराणिक पात्र व्यक्ति न होकर चेतना–विकास के विभिन्न स्तरों का प्रतीक होता है। प्रत्येक पात्र का नामकरण चेतना–विकास के स्तर विशेष का द्योतक होने के कारण अभिप्राय गर्भित है।

गोस्वामी जी के अनुसार राम प्रत्येक परमाणु में व्याप्त चेतना शक्ति है। शिव लोक–कल्याण के प्रतीक हैं। पार्वती पर्वत पुत्री होने के कारण भौतिक समृद्धि की प्रतीक हैं। भौतिक समृद्धि जब लोक कल्याण के प्रति उन्मुख होती है, तभी विश्वव्यापी चैतन्य स्वरूप लोक रंजक राम का प्रादुर्भाव होता है।

वैज्ञानिक मतानुसार मनोविज्ञान के आधार पर मानव चेतना को विकास क्रम से स्थूलतः चार स्तरों में विभाजित किया जा सकता है–

1. मूल वृत्ति (Instinct) 2. आवेग (Impulse)

3. बौद्धिकता (Inteligence) 4. अंतःज्ञान (Intiution)

इन चारों के अनुरूप ही मानव समाज की श्रेणी भी निर्धारित की जा सकती है।

---

1. रामचरित मानस– 1/197–5, 6
2. श्रीमद्भागवत् – 5/19/3

गोस्वामी तुलसीदास के चार रामकथा वक्ता इन्हीं चार श्रेणियों के प्रतीक हैं–

वक्ता– 1. मूलवृत्ति– भगवान शंकर– (विश्वास रूप)

श्रोता– मूलवृत्ति– पार्वती– (श्रद्धा रूप)

वक्ता– 2. आवेग (जिज्ञासाशमन)– याज्ञवल्क्य मुनि

श्रोता– जिज्ञासु– भरद्वाज मुनि

वक्ता– 3. बौद्धिकता– तर्कों के आधार पर ज्ञान– काकभुशुण्डि (ज्ञानरूप)

श्रोता– बौद्धिकता– गरूण

वक्ता– 4. अंतःज्ञान– भक्ति (सेवा)– संत तुलसीदास

श्रोता– अंतःज्ञान– सेवक– संतगण

इस प्रकार गोस्वामी जी ने समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये मानस का प्रणयन किया तथा अंत में यह भी सिद्ध किया कि–

"जगत् प्रकाश प्रकाशकरामू"

राम सनातन पुरूष हैं। समस्त जीव उन्हीं से प्रकट होते हैं और उन्हीं में विलीन हो जाते हैं, यही सृष्टि का सनातन स्वरूप है। सृष्टि सनातन है किंतु इस सनातन सृष्टि का रूप कालावधि पर आधारित एवं परिवर्तनशील है। सनातन सृष्टि के एक मात्र नियन्ता राम स्वयं सनातन हैं। सनातन राम का चरित्र भी सनातन है इसी लिए सनातन राम चरित्र के प्रथम वक्ता के रूप में भगवान शंकर सर्वमान्य हैं, और उनकी अर्धांगिनी पार्वती प्रथम श्रोत्री हैं। राम के विश्रुत चरित्र से ज्ञान बोध, कर्म बोध और भक्ति बोध अत्यन्त सहज एवं सनातन हैं। इसी तथ्य से ओतप्रोत देव पात्रों को स्वरूप भी सनातन हैं।

मानस के देव पात्र–

1. ब्रह्मा
2. विष्णु
3. शंकर
4. वृहस्पति
5. इन्द्र
6. कामदेव
7. नारद
8. अग्नि
9. गरूण
10. पार्वती (सती)
11. रति
12. सरस्वती
13. गणेश

1. ब्रह्मा जी का सनातन स्वरूप–

गोस्वामी तुलसीदास ने सगुण और निर्गुण दोनो आधार दिये हैं जिनके माध्यम से हम प्रत्येक पात्र के सनातन स्वरूप को जान सकते हैं जिस प्रकार शरीर सगुण और आत्मा निर्गुण है। उसी प्रकार किसी भी पात्र के सम्पूर्ण स्वरूप को इन्ही दो आधारों पर समझा जा सकता है ऋग्वेद में ऐसा वर्णन मिलता है कि आनन्द सिंधु सच्चिदानंद परमात्मा के हृदय में सृष्टि की रचना रूपी काम (इच्छा) जाग्रत हुई–

"कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।"1

श्री मद्भागवत के अनुसार उन परमात्मा अनन्त अपार कारणाब्धि कारण द्रव्य और उसमें सृष्टि के मूल अधिदेवता का उद्भव मात्र इसी को पौराणिक भाषा में कहते हैं– कि 'कारणार्णवशायी' श्री नारायण की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ और उस कमल पर सृष्टिकर्ता चतुर्मुख अरूणवर्ण ब्रह्मा जी प्रकट हुए और सृजनोन्मुख प्रकृति की साम्यावस्था भङ्ग हुई थी। सत्व के अधिदेवता की योगनिद्रा टूटी और उन्होंने ही रजोगुण को स्वीकार कर ब्रह्मा का रूप लिया। अतः स्वयं नारायण की ही दूसरी मूर्ति हैं ब्रह्मा जी। प्राकट्य के पश्चात ब्रह्मा जी सृष्टि करने की इच्छा से विचार करने लगे, किन्तु सृष्टि निर्माण के लिये वाञ्छित ज्ञानदृष्टि उन्हें प्राप्त नहीं हुई–

"स आदिदेवो जगतां परो गुरूः

स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत।

तां नाध्यगच्छद् दृशमत्र सम्मतां

प्रपञ्चनिर्माणविधिर्यया भवेत्।।"2

प्रलय समुद्र में चिंतामग्न ब्रह्मा जी को उस अव्यक्त परमात्मा के द्वारा उच्चरित वाणी का वह उपदेश दो बार सुनाई पड़ा।

"स चिन्तयन् द्वयक्षरमेकदाम्भस्युपाशृणोद् द्विर्गदितं वचोविभुः।

स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किञ्चनानां नृप यद् धनं विदुः।।"3

व्यञ्जनों में सोलहवें 'त' तथा इक्कीसवें 'प' से बना वह उपदेश 'तप' वही है जो निष्किञ्चन योगियों का परम धन हैं।

---

1. ऋग्वेद
2. श्रीमद् भागवत् – 2/9/5
3. श्रीमद् भागवत् – 2/9/6

गोस्वामी तुलसीदास के "तपबल रचइ प्रपंचविधाता" कहने का यही आधार है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार दूध में घृत छुपा है किंतु वह प्रयत्न किये बिना प्राप्त नही होता उसी प्रकार ज्ञान रूप परमात्मा भी अन्तरात्मा में विद्यमान हैं उसे प्राप्त करने के लिये अन्तःकरण की शुद्धता एवं एकाग्रता अपेक्षित है।

अतः उस अव्यक्त परमात्मा के प्रथम उपदेश का पालन करके ही ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना की और सत्व के प्रतीक कहलाये।

पद्मपुराण में ब्रह्मा के सनातन स्वरूप की स्तुति इस प्रकार की गई है–

"नमोऽस्त्वनन्ताय विशुद्धचेतसे स्वरूपरूपाय सहस्रबाहवे।

सहस्ररश्मि प्रभवाय वेधसे विशाल देहाय विशुद्धकर्मणे।।

समस्त विश्वार्तिहराय शम्भवे समस्त सूर्यानलतिग्मतेजसे।

नमोऽस्तु विद्यावितताय चक्रिणे समस्तधीस्थानकृते सदा नमः।।"1

अर्थात् वे अनन्त, विशुद्धचित्त, आत्मस्वरूप हैं उनकी हजारो भुजाये हैं जो सहस्रों किरणों वाले सूर्य की भी उत्पत्ति के कारण है। विशाल शरीर वाले अत्यन्त शुद्ध कर्मयुक्त सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी को नमस्कार है।

विष्णु का सनातन स्वरूप–

भगवान विष्णु को 'रज' तत्त्व के प्रतीक स्वरूप माना गया है रजोगुण क्रियोन्मुख है इसी कारण विष्णु सृष्टि का पालन करते हैं तथा जब–जब अनाचार बढ़ता है और धर्म की हानि होती है तब–तब भगवान विष्णु विभिन्न अवतार धारण कर धर्म की स्थापना करते हैं। भगवान विष्णु अनन्तानन्त कोटि ब्रह्माण्डो की पालनात्मक शक्ति के अधिष्ठाता हैं, सृष्टि के समस्त प्राणियों के पालन–पोषण और योग क्षेभ का दायित्व उन

---

1. पद्मपुराण – सृष्टि खण्ड – 34/98/9

पर है। ये सभी देवों के अधिदेव और सभी के उपास्य हैं।

श्री मद्भागवत के अनुसार विष्णु भगवान सद्धर्म की प्रतिष्ठा तथा साधु पुरूषों का परित्राण तो करते ही हैं साथ ही अपने सच्चरित्र से लोक को सदाचार की शिक्षा देने के लिये पृथ्वीलोक में जन्म लेकर मर्त्यधर्म भी स्वीकार करते हैं–

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं

रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।

कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः

सीता कृतानि व्यसनानीश्वरस्य।।"1

हे प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसों के वध के लिये नही है, इसका मुख्य उद्‌देश्य तो मनुष्यों को शिक्षा देना है। अन्यथा, अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वर को सीता जी के वियोग में इतना दुख कैसे हो सकता था।

विष्णु सहस्रनाम में ऐसा उल्लेख है कि भगवान विष्णु सदाचार और नीति के मूर्तिमान स्वरूप हैं। शास्त्रों में जितने प्रकार के धर्म बताये गये हैं उनमें 'आचार' प्रथम है। उसके पालन से ही धर्म की उत्पत्ति होती है तथा धर्म के स्वामी भगवान अच्युत–विष्णु ही है–

"सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते।

आचारप्रभवों धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।।"2

परलोक–ज्ञान तथा लोक–ज्ञान की जितनी विद्याये एवं शास्त्र है उनके मूल रूप

---

1. श्रीमद् भागवत् – 5/19/5
2. विष्णु सहस्रनाम – 137

नारायण ही हैं। विष्णु सहस्रनाम में इनके लिये निम्न शब्द प्रयुक्त हुए हैं 'गुरु और गुरुतम' अर्थात सभी के गुरु। ब्रह्मादि देवताओं को भी ब्रह्मविद्या प्रदान करने वाले। 'नेता' (वि0स0 56) अर्थात् जगतरूपी यन्त्र को चलाने वाला।

'नयः' (वि0स0 56)1 अर्थात् सबको नियम में रखने वाला और 'अनयः' (वि0स0 56) अर्थात् स्वतन्त्र। अतः स्पष्ट है कि देवों में विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं। विष्णु ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विधान करने वाले हैं। आपका उदात्त चरित्र नीति–शिक्षा–धर्म का शाश्वत वाङ्मय है।

गोस्वामी तुलसीदास मानस के बालकाण्ड में भगवान विष्णु की वंदना देवताओं सहित ब्रह्मा जी से करवाते हैं–

"जय जय सुरनायक जन सुख दायक प्रनत पाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रिय कंता।।
पालन सुर धरनी अदभुत करनीमरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई।।
जय जय अविनासी सब घट बासी व्यापक परमानंदा।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुंदा।।"2

यहाँ पर रावणादि राक्षसों के पापाचारों से व्याकुल देवता, ऋषि–मुनि आदि भगवान विष्णु की स्तुति कर उनसे दुःख निवृत्ति की प्रार्थना करते हैं। प्रस्तुत स्तुति में भगवान विष्णु को देवताओं का स्वामी, सेवकों के सुखदाता, शरणागत रक्षक, गो ब्राह्मणों के रक्षक, असुरविनाशक, लक्ष्मी पति, पृथ्वी पालक, अविनाशी, आत्मस्थ ईश्वर, सर्वव्यापी, परमानंद स्वरूप, मोक्षदाता आदि कहा गया है।

---

1. (विष्णु – वि0) (सहस्रनाम – स0)
2. रामचरित मानस – 1/186–छंद –1–6

इस प्रकार स्पष्ट है कि विष्णु ही एक मात्र सच्चिदानंद परमात्मा के सगुण रूप हैं जो अवतार भी ग्रहण करते हैं। यही उनका सनातन स्वरूप है।

भगवान शंकर का सनातन स्वरूप–

गोस्वामी तुलसीदास ने रुद्राष्टक के माध्यम से भगवान शंकर के सनातन स्वरूप को बडे सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है–

> **"निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।**
>
> **करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।**
>
> **प्रचंडं प्रकष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटि प्रकाशं।।**
>
> **त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं।।**
>
> **कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।।"**[1]

अर्थात् निराकार, ओंकार के मूल स्वरूप, तुरीय तीनों गुणों से अतीत (सत, रज, तम) वाणी, ज्ञान, इन्द्रियों से परे, विकराल, महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणों के धाम, प्रचण्ड (तेज स्वरूप), श्रेष्ठ, अखण्ड, अजन्मा (कभी जन्म न लेने वाला) तीनों प्रकार के शूलों (दैहिक, दैविक, भौतिक) को निर्मूल करने वाले, त्रिशूलधारी, भगवान शंकर आद्याशक्ति भवानी पति को नमस्कार है।

वे शिवशंकर कलाओं से परे कल्याण स्वरूप तथा कल्प का अन्त करने वाले हैं। कल्प का अर्थ विद्वानों के अनुसार चारो युगों की कल्प की समाप्ति होने पर भगवान शंकर प्रलय द्वारा सृष्टि का विनाश करते हैं। अतः इन्हे तमोगुण प्रधान माना गया है। तीनों तत्व सत (ब्रह्मा) रज (विष्णु) और तम (शंकर) सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और विनाश के प्रमुख कारण हैं। इन्हीं तीनों तत्वों के सगुण रूप ये तीनो देव माने गये है।

---

1. रामचरित मानस – 7/108 – छं – 2, 3, 6, 7, 8

बृहस्पति देव का सनातन स्वरूप–

"बृहस्पति देवताओं के भी गुरु हैं। भगवान ब्रह्मा जी के छः मानस पुत्रों में अंगिरा ऋषि के तीन पुत्र हुए–बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त। इनमें बृहस्पति सबसे ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ हुए।"1

महाभारत में भीष्मपितामह आचार्य बृहस्पति के संदर्भ में कहते हैं–

"वक्ता बृहस्पतिसमो न ह्यन्यो विद्यते क्वचित्।।"2

आचार्य बृहस्पति के समान वक्तृत्वशक्ति सम्पन्न और कोई दूसरा नहीं है। वे देवताओं को सदा धर्म तथा भगवद्भक्ति में लगाये रखते हैं। किंतु जब जब देवताओं ने उनकी सुनीति की अवहेलना की तबः तब वे श्री हीन हो गये–

"बचन सुनत सुरगुरू मुसकाने। सहसनयन बिनु लोचन जाने।।

मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुर राया।।"3

मानस के इस प्रसंग में गुरु बृहस्पति सुरेश इन्द्र को सुनीति की शिक्षा दे रहे हैं। यदि गुरु बृहस्पति का सनातन स्वरूप देखा जाये तो प्रकृति के कण–कण में देवत्व के वे संचालक हैं–

"देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चनसंनिभम।

बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि वृहस्पतिम्।।"4

अर्थात् जो सभी देवताओं और ऋषियों को ज्ञान प्रदान करते हैं जिनकी कान्ति सुवर्ण के समान पीत है जो बुद्धि के अधिष्ठाता एवं तीनों लोकों के स्वामी हैं उन

---

1. कल्याण (नीतिसार अंक पृ0 9)
2. महाभारत अनुशासन पर्व – 111/5
3. रामचरित मानस – 2/219–1
4. धर्माधिष्ठातृ देव वंदना – पुस्तक–लेखक (राधेश्याम खेमका – पृ0 15)

बृहस्पति को नमस्कार है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार वृहस्पति सनातन से नक्षत्र मण्डल में एक ग्रह के रूप में प्रतिष्ठित हैं। बृहस्पति ग्रह के प्रभाव से मनुष्य अभ्युदय की ओर उन्मुख हो जाता है इनकी कृपा से जीव की बुद्धि शुद्ध होकर सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त हो जाती है। यही इनका सनातन रूप भी है।

इन्द्र का सनातन स्परूपः—

महाभारत में देवराज इन्द्र की वंदना करते हुए महर्षि वेदव्यास कहते हैं—

"वज्रस्य भर्ता भुवनस्य गोप्ता

वृत्रस्य हन्ता नमुचेर्निहन्ता।

कृष्णे वसानो वसने महात्मा

सत्यानृते यो विविनक्ति लोके।।

यो वाजिनं गर्भमपां पुराणं

वैश्वानरं वाहनमभ्युपैति।

नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय

लोकत्रयेशाय पुरन्दराय।।"1

अर्थात् जो महात्मा वज्र धारण करके तीनों लोकों की रक्षा करते हैं, जिन्होंने वृत्रासुर, नमुचि आदि दानवों का संहार किया है, श्याम वस्त्र धारी लोक में सत—असत का विवेक करने वाले जल से प्रकट हुए प्राचीन वैश्वानर रूप अश्वारोही त्रिलोक शासक उन जगदीश्वर को मेरा नमस्कार है।

ऋग्वेद में देवताओं के राजा इन्द्र की महिमा का विशेष रूप से गान हुआ है लगभग 300 सूक्तों में इन्द्र की स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें उन्हें असुर विनाशक,

---

1. महाभारत आदि पर्व — 3/148—149

महान् समर्थ तथा शक्तिमान्, महाप्रज्ञावान् कहा गया है।

इन्द्र वर्षा के अधिनायक हैं संतुष्ट हो जाने पर इन्द्र समस्त प्राणियों को बल, तेज, संतान और सुख प्रदान करते हैं–

"इन्द्रो ददाति भूतानां बलं तेजः प्रजाः सुखम्।

तुष्टः प्रयच्छति तथा सर्वान् कामान सुरेश्वरः।।"1

महान सुकृतों के फलस्वरूप इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है। देवराज इन्द्र अन्तरिक्षस्थानीय देवता कहे गये हैं। पृथ्वी पर सम्पन्न समस्त यज्ञों के मुख्य भाग अधिकारी हैं। धनाध्यक्ष कुबेर, वरुण, वायु, सूर्य तथा चन्द्र आदि देव इनकी आज्ञा का पालन करते हैं।

कामदेव का सनातन स्वरूपः–

कामदेव के स्वरूप का वर्णन गोस्वामी जी इस प्रकार करते हैं कि वे पाँच वाण धारण करने वाले मछली के चिन्ह युक्त ध्वजा वाले अति मोहक रूप वाले हैं–

"अस्तुति सुरन्ह कीन्ह अति हेतू। प्रगटेउ विषमबान झष केतू।।"2

वस्तुतः देवताओं की आकृति, प्रकृति, आयुध, वाहन आदि अनेकानेक प्रकार दृष्टि गोचर होते हैं वास्तव में ये सभी रूप उसी एक ब्रह्म के ही अनेक रूप हैं वेद कहता है–"एक ब्रह्म ही बाह्य अभिव्यक्ति स्वरूप देवताओं का रूप धारण करता है"3

वास्तव में काम मन का या चित्त का बीज है, वह परमात्मा के निष्काम हृदय में पहले सदा से ही वर्तमान है। तत्त्वदर्शी मनीषियों ने अपने हृदय में सबके बन्धु इस काम का दर्शन किया–

---

1. महाभारत वन पर्व
2. रामचरित मानस – 1/83–8
3. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। (ऋग्वेद – 1/164–43)
   एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः

"कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

सतो बन्धुमसति निरभिन्दन् हृदा प्रतीच्या कवयो मनीषा।।"1

अर्थात् काम मन का एक संकल्प है जो सर्वप्रथम सृष्टि रचना की इच्छा स्वरूप परमेश्वर के हृदय में प्रकट हुआ जिसके संपर्क में आने पर महर्षियों ने जिस आनन्द की अनुभूति की वह भूलोक मे काम कहलाया जिसको पंचज्ञानेन्द्रियों– रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श (नेत्र, रसना, नासिका, कान, त्वचा) द्वारा अनुभव किया गया–

इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च।

विषये वर्तमानानां या प्रीतिरूपजायते।

स काम इति मे बुद्धिः कर्माणां फलमुत्तमम्।।"2

पौराणिक साहित्य में कामदेव को तीन रूपों में जाना गया–

1. सुख 2. सुख के साधन 3. सुख की कामना इस प्रकार काम स्वयं सुख स्वरूप है, सुख का प्रधान साधन है, तथा सुख के लिये अभीप्सित पदार्थ भी है। परमात्मा की सृष्टि क्रम को आगे बढ़ाने का कार्य भी कामदेव का ही है। मानस में शंकर जी द्वारा कामदेव को भस्म कर अनंग रूप में सबके हृदय में व्याप्त रहने का आशीर्वाद दिया गया–

"अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।

बिनु बपु ब्यापिहि सवहिं पुनि सुनुनिज मिलन प्रसंग।।"3

---

1. ऋग्वेद
2. महाभारत वनपर्व – (पुस्तक धर्मद्रुम – लेखक–राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय, पृ0 297 पर उद्धृत)
3. रामचरित मानस – 1/87

अग्नि देव का सनातन स्वरूपः—

अग्नि देव को वेद मे सृष्टि यज्ञ का होता माना गया है। अर्थात् यह सृष्टि एक यज्ञ है जिसे वह सनातन परमात्मा निरन्तर सम्पन्न कर रहा है वेद में इसे काल यज्ञ कहा गया है—

"यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।"1

अर्थात् इस कालयज्ञ में सरस वसन्त सृष्टि रूपी हवन कुण्ड में ग्रीष्म द्वारा प्रज्वलित प्राणाग्नि को घी द्वारा प्रदीप्त करती है तथा शरद ऋतु शस्य सम्पदा की हवि से इसका संवर्धन करती रहती है। यह काल यज्ञ निरन्तर चल रहा है। इसके अभाव में सृष्टि ही समाप्त हो जाएगी।

यास्क के अनुसार अग्नि के तीन रूप हैं, मित्र (सूर्य), वरुण (विद्युत अन्तरिक्ष की अग्नि), अग्नि (पृथ्वी पर निवास करने वाली)

सर्वप्रथम सूर्य की उत्पत्ति हुई तत्पश्चात अन्तरिक्षीय अग्नि एवं पृथ्वी स्थित अग्नि का प्राकट्य हुआ—

"समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि। देवानां दूत उक्थ्यः।।

अर्थात् हे अग्नि तुम सहस्रजित हो। प्रज्वलित होकर तुम धर्मो को पुष्ट करते हो और देवताओं के प्रशंसनीय दूत हो। अग्नि को धर्म का अद्भुत अध्यक्ष भी कहा गया है (ऋग्वेद 8/43/24) एक स्थान पर अग्नि को द्यावा कहा गया है। द्यावा का एक ही धर्म है— प्रकाश करना। इस प्रकाश को परमात्मा ही जन्म देता है। द्यावा का प्रकाश बाहर एवं प्रज्ञा का प्रकाश अन्दर दोनो मिलकर अविनाशी सत्य को जन्म देते हैं। इसको

---

1. ऋग्वेद – पुरुष सूक्त

जिसने प्राप्त कर लिया उसके शत्रु, बाधाएँ एवं असुर नष्ट हो जाते हैं–

"विभ्राड् बृहत् सुमृतं वाजसातमं धर्मन् दिवो धरुणे सत्यमर्पितम्।

अमित्रहा, वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्यज्ञे असुरहा सपत्नहा।।"1

अग्निदेव धर्म के अध्यक्ष हैं इसलिए धर्ममूर्ति श्री राम ने अपनी भार्या सीता को राक्षसों का वध करने से पूर्व ही अग्नि देव की सुरक्षा में रख दिया था–

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला।

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा।।

इस प्रकार अग्नि देव सनातन धर्म के अध्यक्ष और देवताओं के दूत हैं।

देवी लक्ष्मी, सरस्वती तथा उमा (सती, पार्वती) का सनातन स्वरूप–

सती का एक नाम उमा भी है जिसका वर्णन करते हुए शास्त्रों में कहा गया है–

"उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावर जङ्गमा।

व्यक्तं सर्वमुमारुपमव्यक्तं तु महेश्वरः।।

अर्थात् यह स्थावर, जंगम समूची सृष्टि उमा और रुद्र का ही रूप है। इसमें जो व्यक्त रूप है वही उमा है और अव्यक्त रूप भगवान महेश्वर का है। वेदों में भी कहा गया है कि संसार में जो कुछ देखा और सुना जाता है स्मरण किया जाता है सभी शिव–शक्ति है शिव नर और उमा नारी है। शिव ब्रह्मा है उमा वाणी है। रुद्र विष्णु है उमा लक्ष्मी है। शिव सूर्य है उमा छाया है। शिव सोम है उमा तारा। इस प्रकार प्रकृति के प्रत्येक कण में शिव अपनी शक्ति उमा के साथ विद्यमान हैं। शक्ति की अभिव्यक्ति को तन्त्र ग्रन्थों में बहुधा बतलाया गया है–

---

1. ऋग्वेद – 10/170–2

"सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।

आसीछक्ति...।। (शारदा तिलक)

तस्माद्विनिर्गता नित्या सर्वगा विश्वसम्भवा। (प्रयोग सार)"1

सच्चिदानन्द स्वरूप, कला (सूक्ष्म अविद्या) समेत परमेश्वर से शक्ति निकली। उससे सर्वव्यापी, नित्य, विश्व सम्भवा (विश्व की जन्मदात्री) बाहर निकली। इसने ही ब्रह्मादि सभी जीवों को जन्म दिया। इसकी ही सन्निधि से ब्रह्मात्व, विष्णुत्व, इन्द्रत्व की सिद्धि होती है। जैसा कि ऋग्वेद के दशम मण्डल के देवी सूक्त में वाक् कहती है–

"यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।"2

अर्थात् जिस पर प्रसन्न होती हूँ उसको उग्र, उसको ब्रह्मा, उसको ऋषि, उसको सुमेधा बना देती हूँ। जन्म देने के कारण परमात्मा की इसी शक्ति को जन्मदात्री माता तथा पालन करती है इसलिये विश्वम्भरी, धात्री (धारण करने वाली) हैं। परन्तु जीव के वश में रहती है उसकी कामना पूर्ति करती है इसलिए पुरुष रूपी जीव की साध्वी पत्नी है। सप्तशती के प्राधानिक रहस्य में यह बात समाधिभाषा में निर्दिष्ट है–

"सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्रिगुणा सकलेश्वरी।

लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याव्य कृत्सनं व्यवस्थिता।।"3

अर्थात् सबसे पूर्ववर्ती महालक्ष्मी त्रिगुणस्वरूपा, अनन्तकला–(शक्ति)–समुच्यरूपा, ईश्वरी, लक्ष्यालक्ष्य स्वरूपा सबको भीतर बाहर से व्याप्त करके स्थित थीं।

महाशक्ति ने अपने को त्रिधा विभक्त करके महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती रूप धारण किये। फिर इन तीनों विग्रहों ने अपनी–अपनी देह से स्त्री पुरुषात्मक

---

1. कल्याण – नारी अंक (बाईसवें वर्ष का विशेषांक) पृ0 49
2. ऋग्वेद – 10/देवी सूक्त
3. दुर्गा सप्तशती

एक–एक जोड़ा उत्पन्न किया। इस प्रकार महादेव–सरस्वती, ब्रह्मा, लक्ष्मी, विष्णु और गौरी का जन्म हुआ और फिर विष्णु–लक्ष्मी, ब्रह्मा–सरस्वती, और रुद्र (शंकर)–गौरी का पति–पत्नी सम्बन्ध स्थापित हुआ।

श्वेताश्वतरोपनिषद् कहती है। कि ध्यान के द्वारा योगियों ने परमात्मा की जिस आत्मशक्ति को देखा वह अपने गुणों से निगूढ़–आच्छादित थी–

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नर और नारी दोनों में आदि पुरुष और आदि शक्ति विद्यमान है। नारी में भगवती आदि शक्ति की जो अभिव्यक्ति है उसी को लक्ष्य कर शुम्भवध के उपरान्त देवों ने महाकाली की स्तुति करते हुए कहा था–

"तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।"[1]

हे देवि! जगत् की स्त्रियाँ समष्टि और व्यष्टि से आपके ही भेद हैं आपकी ही विभिन्न मूर्तियाँ है।

गोस्वामी तुलसीदास सीता रूप में उसी आद्या शक्ति का परिचय देते है–

"बामभाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला।।

जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।

भ्रकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।।"[2]

वाम भाग में स्थित सीता से संत कवि का तात्पर्य है कि आद्याशक्ति परमेश्वर की ही स्वरूप शक्ति है अर्थात अभेद्य शक्ति है जिनको माया भी कहते है यही माया जगत की उत्पत्ति की कारण हैं इन से ही उमा, रमा, ब्रह्माणी आदि प्रकट होती हैं।

---

1. कल्याण नारी अंक – पृ0 89 में उद्धृत
2. रामचरित मानस – 1/148 – 2–4

रामचरित मानस में हिमालय सुता पार्वती को प्रकृति (माया) रूप माना गया है तथा शिव को पुरूष (परमात्मा) प्रकृति और पुरूष के मिलन से ही आसुरी शक्तियों का विनाश होता है तथा ज्ञान स्वरूप प्रकाश मिलता है।

नारद, गरूण, गणेश आदि देवताओं का सनातन स्वरूप :–

नारद विश्वव्यापी संत भावना के प्रतिनिधि हैं रामचरित मानस में नारद प्रसंग संतो के लिये प्रेरणादायक है। तुलसीदास जी का मत है कि कितना भी उच्च कोटि का संत हो यदि लेशमात्र अहंकार आया तो उसका सर्वनाश हो जाता है, किन्तु परम दयालु परमात्मा अपने भक्त का पतन नही देख सकते इसीलिए नारद ऋषि की भाँति उनका उद्धार करते हैं–

"करूनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरू भारी।

बेगि सो मैं डारिहंउं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी।।"1

नारद ऋषि के मन में अहंकार आ गया कि उन्होंने काम को जीत लिया ऐसा जानकर करूणा निधान ने उस मद रूपी अंकुर को जड़ से उखाडने का प्रण कर लिया तथा स्वयं शापग्रस्त होकर नारद को स्वधर्म की शिक्षा दी।

गरूण–

रामचरित मानस में गरूण को जिज्ञासु भक्त बतलाया गया है सदैव से संसार में ऐसे प्राणी होते है। गरूण पुराण में ऐसा प्रसंग मिलता है कि गरूण भगवान विष्णु के वाहन तथा विनता पुत्र हैं, जो परम ज्ञानी पक्षियों में श्रेष्ठ तथा विष्णु भगवान को अति प्रिय है। उन्होंने ही गरूण पुराण का प्रणयन किया– भगवान विष्णु कहते हैं–

---

1. रामचरित मानस – 1/4, 5

"यथाहं देवदेवानां श्रीः ख्यातो विनतासुत।

तथा ख्यातिं पुराणेषु गारूडं गरूडैष्यति।।

यथाहं कीर्तनीयोऽथ तथा त्वं गरूणात्मना।

मां ध्यात्वा पक्षिमुख्येदं पुराणं गद गारुड़म्।।"1

हे विनतासुत! जिस प्रकार देवदेवों के मध्य मैं ऐश्वर्य और श्रीरूप मे विख्यात हूँ उसी प्रकार तुम्हारा पुराण ख्याति सम्पन्न होगा तथा जिस प्रकार मेरा नाम संकीर्तन होता है वैसे ही तुम्हारा संकीर्तन होगा।

पक्षिराज गरूण ने तपस्या द्वारा भगवान विष्णु को प्रसन्न कर अपनी माता विनता की नागमाता कद्रू की दासीत्व से मुक्ति की प्रार्थना कर नागों पर विजय का वरदान मागा था तथा अपार ज्ञान का वरदान पाकर पुराण संहिता गरूण पुराण की रचना की। (रामचरित मानस में कद्रू विनता का प्रसंग सांकेतिक रूप में आया है) –(कद्रू विनताहि दीन्ह दुख तुम्हहि कौसिलाँ देब) (1/19)

गणेश–

रामचरित मानस में शिव–पार्वती विवाह प्रसंग मे दूल्हा शिव दुल्हन पार्वती द्वारा गणेश पूजन की बात कही गयी है। जिससे यही सिद्ध होता है कि गणेश जी अनादि देव हैं जो सदैव से विद्यमान है तथा प्रथम पूज्य हैं–

"मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।

कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि सिय जानि।।"2

इस प्रकार देवताओं के सनातन स्वरूप का विवेचन करने के बाद यह निष्कर्ष

---

1. गरुण पुराण – 1/2/56–47
2. रामचरित मानस – 1/100

निकलता है कि वास्तव में सभी देवता इसी परमतत्व की शक्तियाँ हैं।

भारतीय संस्कृति में देवताओं के निवास स्थान स्वर्ग की अवधारणा स्पष्ट है। इसका एक गुह्य और गहन पक्ष भी है जो आर्य ऋषियों के चिन्तन में ध्वनित होता है। ऋषियों–दृष्टाओं ने परिमार्जित , परिष्कृत एवं परिशोधित मनःस्थिति को स्वर्ग की उपमा से अलंकृत किया है। मनःस्थिति निकृष्ट होने पर पशु प्रवृत्तियों के दासत्व को जीवन में नरक के रूप में अनुभव किया जाता है।

स्वर्ग देवताओं का आवास है इस धारणा का भी गहन अर्थ है। देवता अर्थात् देने की उदात्त वृत्ति, जो सतत् देने में आस्था रखता है जिसके विचार उत्कृष्ट एवं भावना परिष्कृत होती है, वही देवता है। परिमार्जित व्यक्तित्व के ऐसे धनी व्यक्ति जहाँ निवास करते होंगे वह भूमि अवश्य ही पावन–पवित्र एवं स्वर्गतुल्य होगी। महाकवि कालिदास ने हिमालय क्षेत्र को देव भूमि माना है–

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयों नाम नगाधिराजः"

ऋग्वेद और पुराणों के अनुसार इन्द्रादि, देवताओं का निवास स्थान गंधमादन और अलकनंदा का तटवर्ती क्षेत्र था। हिमालय ऋषियों की तपस्थली भी है। भगवान शंकर का निवास कैलाश पर्वत भी तो यहीं है। साधकों योगियों को यहीं भूःतत्त्व की अनुभूति होती है। भुवः तत्व की अनुभूति इसके निम्न और उच्च स्तरों के अनुसार प्रेत, पिशाचों की भयंकरता–विकरालता और यक्ष आदि प्राणिक शक्तियों के दर्शन भी होते है। स्वः तत्त्व जिसे मन कहा जाता है। यह मन ही जीव अपनी अपरिमार्जित–अपरिष्कृत स्थिति में पशु प्रवृत्तियों के दासत्व का नर्कवास भुगतता है और वही परिशोधित–संस्कारित होने पर उसके समक्ष देवलोक, स्वर्गलोक का राज वैभव खोल देता है, और देवी देवताओं की स्पष्ट अनुभूति होने लगती है।

(ख). देव पात्रों के आचरण मे सनातन धर्म का प्रभाव–

वेद कहता है–

"आ प्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे।"1

अर्थात उस देव ने स्वधर्म के लिए दिव्य लोकों की रचना की अथवा देवो ने स्वधर्म से लोकों (जीवों) को धर्म की प्रेरणा दी। तथा–

"धर्मणा मित्रा वरूणा विपश्चिता ब्रता रक्षेथे असुरस्य मायया।"2

असुरों की माया से विद्वान मित्र और वरूण अपने धर्म की रक्षा करते है। तात्पर्य यह है कि देवता मनुष्य को स्वधर्म की प्रेरणा देते हैं जैसा कि अथर्ववेदीय पिप्लाद संहिता के 'प्राणसूत्र' में निर्भयता का संकल्प दिया गया है–

"यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न विभीतो न रिष्यतः।

ऐवा मे प्राण मा विभेः एवा मे प्राण मा रिषः।।

यथा मित्रश्च वरूणश्च न विभीतो न रिष्यतः।

यथेंद्रश्चेन्द्रिय च न बिभीतो न रिष्यतः।

एवा मे प्राण मा विभेः एवा मे प्राण मा रिषः।।"3

अर्थात जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, मित्र, वरूण, इन्द्र तथा इन्द्रियाँ न तो किसी से डरते हैं न क्षीण होते हैं उसी प्रकार हे प्राण! (जीव) न तू किसी से डर न क्षीण हो।

इस प्रकार सभी देवता मनुष्यों को स्वधर्म पालन की प्रेरणा देते हैं। जैसे– शिव का साकार रूप है मस्तक पर चन्द्रमा जो कि संतुलित मनः स्थिति अर्थात् शान्त, शीतल मन का प्रतीक हैं, श्मशान में निवास चिताभस्म मुण्डमाला का अर्थ मृत्यु का स्वागत

---

1. ऋग्वेद – 4/53/3
2. ऋग्वेद – 5/63/7
3. अथर्ववेद संहिता – पित्लादमुनि – प्राण सूत्र 3/6/8

करना है। भूत, पिशाचों, प्रेतों का संग पतितों और दुखियों को अपनाने का संकेत देता है। विष को कण्ठ में धारण करने का अर्थ अवांछनीयता, कटुता को समाज मे व्याप्त न होने देना नही स्वयं कटुता अपनाना बल्कि मध्यवर्ती मार्ग बना लेना। सर्पधारण का तात्पर्य स्वयं को इतना सहज बना लेना कि विषधर भी अपना स्वभाव छोड़कर सहज दयालु हो जाए। शिव का आहार है भंग अर्थात् जीव और माया के एकत्व को भंग कर मस्त हो जाना। शिव वाहन बृषभ स्वयं धर्म का प्रतीक है। पुराणों मे धर्मरूपी बृषभ के चार पैर बतलाये हैं– 1. सत्य, 2. तप, 3. दया, 4. दान। अर्थात शिव चारों युगों के प्रधान धर्मों के स्वामी हैं। इसी प्रकार सूर्य देव सतत् प्रकाश युक्त (ज्ञानयुक्त) रहने का संदेश देते हैं। रामचरित मानस के देव पात्र भी अपने आचरण से जीवों को स्वधर्म रूपी सनातन धर्म की प्रेरणा देते है।

देवपात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा–

देव पात्र– 1. शिव 2. पार्वती 3. नारद 4. गरूण 5. कामदेव

रामचरित मानस में मुख्य रूप से इन्हीं पाँच देवताओं के आचरण को दृष्टिगोचर किया गया है अन्य देवपात्र जैसे– इन्द्र, अग्नि, बृहस्पति, सरस्वती, गंगा, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता कथा के गौंड़ पात्र हैं जो मुख्य पात्रों के सहायक अथवा आराध्य हैं।

1. शिव के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

विद्वानों के मतानुसार रामचरित मानस की रचना में जिन ग्रंथों का आधार लिया गया है उनमें शिव चरित का आधार अध्यात्म रामायण तथा शिव पुराण है। और **"अध्यात्म रामायण की कथा ब्रह्माण्ड पुराण उत्तर खण्ड में मिलती है जिसे सूत जी ने ऋषियों से कहा और उसी कथा को शिव ने पार्वती के शंका समाधानार्थ कहा।"**[1]

---

1. तुलसी मानस रत्नाकर – लेखिका– डॉ0 भाग्यवती सिंह – पृ0 94

गोस्वामी तुलसीदास ने शिव–पार्वती प्रसंग में सती मोह तथा सती देह त्याग, पार्वती जन्म, कामदेव का भस्म होना, तारकासुर वध हेतु शिव–पार्वती विवाह का सुन्दर वर्णन किया तथा शिव–पार्वती के आचरण में सनातन धर्म की जो प्रतिष्ठा अपने काव्य कौशल से की है वह अद्वितीय है।

रामचरित मानस मे शिव के समान श्री राम का कोई भक्त नही है ऐसा कहा गया है तभी तो स्वयं राम कहते हैं–

शिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावा।। (मा० 6/2)

किसी पात्र के आचरण में सनातन धर्म की परीक्षा करने के लिये धर्म के तीन रूपों का आधार लेना पड़ता है–

1. सामान्य धर्म   2. विशिष्ट धर्म   3. आपद्धर्म।

भगवान शिव का सामान्य धर्म पालन–

रामचरित मानस के शंकर भगवान बड़े ही सहज तथा श्रीराम के परम भक्त हैं। एक बार जब सती के साथ दण्डक वन होते हुए कैलाश लौट रहे थे तब वहाँ श्री राम को सीता के वियोग में व्याकुल देखा तब इष्ट दर्शन से बड़े आनन्द का अनुभव किया और जय सच्चिदानन्द कहकर अपने इष्ट का नमन किया–

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन।।

यहाँ पर उन्होंने वेदवर्णित शिष्टाचार का परिचय दिया क्योंकि–**"आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः"**1 धर्म आचार से जन्म लेता है, जिसकी रक्षा स्वयं प्रभु अच्युतानन्द करते हैं। शिष्टाचार सुसंस्कारित व्यक्तित्व का परिचायक है। पवित्र अंतश्चेतना ही बाह्य व्यवहार में विनम्रता एवं शिष्टाचार के रूप में मुखरित होती है।

---

1. धर्म द्रुम – लेखक डॉ० राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय (पृ० 11 में उद्धत)

बाल्मीकि रामायण में और पुराणों में विस्तार पूर्वक वर्णन आता है कि भागीरथ जब गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाये तो उनके प्रबल वेग को शिव ने पहले अपनी जटाओं में धारण कर लिया वस्तुतः यह एक अलंकारिक वर्णन है। शिव के मस्तक से गंगा का प्रवाहन उत्कृष्ट धवल उज्जवल विचारधारा के प्रवाह का संकेत है इसी प्रकार शिव के जटाजूट रूपी आभूषणों की शास्त्र इस प्रकार व्याख्या करते हैं–

"विश्रामोऽयं मुनीन्द्राणां पुरातन वटो हरः।

वेदान्त सांख्य योगाख्यास्तिस्नस्तज्जटयः स्मृताः।।"1

अर्थात् मुनीन्द्रो के विश्राम स्थान पुरातन वटवृक्ष हर (शिव) ही है। उस वट वृक्ष की जटाओं के रूप में सिर के आभूषण हैं–वेदान्त, सांख्य और योग। शिव के जटा–जूटों का यह दर्शन जो करता है उसका कल्याण हो जाता है– **"श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभम्।"2** अर्थात् श्वः–श्रेय शिव–भद्र–कल्याण–मंगल और शुभ ये सभी समानार्थी शब्द हैं।

विश्वकोष में भी शिव शब्द का प्रयोग मोक्ष रूप में, वेद रूप तथा सुख के प्रयोजन रूप में किया गया है यथा– शिवं च मोक्षे क्षेमे च महादेवे सुखे। अतः शिव वह है जो सबका कल्याण करने वाला है।

जब–जब तीनो लोकों में देव–दानव–मानवादि पर संकट आता है तब सभी शिव की शरण में जाते हैं। तारकासुर के अत्याचारों से जब तीनो लोकों में त्राहि–त्राहि मच गई तब भगवान शिव ने अपनी अखण्ड प्रतिज्ञा भी जन कल्याण हेतु तोड़ दी (सती मरण के पश्चात आजीवन अविवाहित रहने की)–

---

1. अखण्ड ज्योति (पत्रिका) – लेखक तथा प्रकाशक – आचार्य श्रीराम शर्मा वर्ष 1998– पृ0 11
2. अमरकोष

"सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी।।

पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव रामहिं प्रिय भाई।।"1

पुराणों में ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि समुद्र मंथन के समय जब कालकूट विष समुद्र से निकला तब उसके प्रभाव से सब कुछ भस्म होने लगा तब देवों की याचना पर शिव ने जीव कल्याणार्थ उस विष को स्वयं अपने कण्ठ में धारण कर लिया था। जगदीश्वर शिव, सत्य, तप, दया, दान धर्म के इन चारों रूपों के साक्षात् स्वरूप हैं सत्य के लिए उन्होंने सती जैसी नारी का मन से त्याग कर दिया। तप ऐसा कि जिसकी अखण्डता को देवता भी भंग नहीं कर पाये तब कामदेव को जगहितार्थ अपने प्राणों का भय त्याग कर पंचवाण संधान करना पड़ा–

"छाड़े विषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे।।"2

समाधि बलात् भंग किये जाने पर शिव–शंकर क्रोधित हुए जिसके फल–स्वरूप कामदेव उनकी क्रोधाग्नि से जलकर भस्म हो गया–

"तब सिव तीसर नयन उधारा। चितवत काम भयउ जरि छारा।।"3

किंतु शिव का दयालु रूप देखिये कि अपराधी की पत्नी (रति) के अनुनय विनय करने पर उन्हें दया आ जाती है तब करुणानिधान शिव रति से कहते हैं–

"अति प्रेम करि बिनती विविध बिधि जोरि कर सनमुख रही।

प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही।।

अब ते रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।

बिनु बपु व्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु।।"4

---

1. रामचरित मानस – 1/104–7, 8

2.–3. रामचरित मानस – 1/87 – 88 – 1–2

4. रामचरित मानस – 1/87–88–1–2

रति! तेरा पति अब बिना अंग (देह) से सभी के हृदय में बसेगा। (दानशिरोमणि प्रभु शिव ने एक बार एक दानव को वरदान दे दिया कि तू जिसके सर पर हाथ रखेगा वही भस्म हो जाएगा। इस वरदान का अनुचित प्रयोग कर वह दानव भगवान् शिव को ही भस्म करने दौड़ पड़ा तब विष्णु भगवान ने मोहिनी रूप से उस दानव को मोहित कर भस्म किया था) प्रसन्न होने पर शिव ने रति को पति के पुनर्मिलन का वरदान भी दे दिया–

"जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा।।

कृष्ण तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा।।"1

शिव का विशिष्ट धर्म–

विशिष्ट धर्म में शिव के दो रूप मानव में दृष्टिगोचर हुए (1). रामभक्त (2). आदर्श पति

रामभक्त शिव–

प्रभु श्री राम के अनन्य भक्तों में भगवान् शिव अग्रणी हैं इनके समान संसार में राम को कोई प्रिय नहीं भगवान् राम ने स्वयं को शंकर भगवान से अभेद माना है अर्थात दोनो एक ही है–

"संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।

ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।।"2

शिवपुराण मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि प्रभु श्रीराम को दण्डकारण्यवन में पत्नी वियोग से बिलखते देख सती भ्रमित हो गई–

---

1. रामचरित मानस – 1/87–88–1–2
2. रा0म0च0 – 6/2

"एकस्मिन समये रूद्रः स्त्या त्रिभगो भवः।

अगस्त्य दण्डकारण्यं पर्य्यटन सागराम्बरम्।।

तत्र राम ददर्शासौ लक्षमणेनान्वितं हरः।

अन्विष्यन्तं प्रियां सीता रावणेन ह्रतां छलात्।।

इतोदृशी सती दृष्ट्वा शिवलीला विमोहनीम्।"1

अर्थात् ऐसा दृश्य देखकर शिवमाया से सती मोहित हो गई तब शिव ने उन्हे बहुत समझाया कि ये प्रभु की लीला है किंतु उनका ह्रदय विस्मित हो गया। तब शिव ने कहा कि तुम स्वयं परीक्षा कर के देख लो–

"शृणु मद्वचनं देवि न विश्वसति चेन्मनः।

तव राम परीक्षणं हि कुरू तत्र स्वया धिया।।"2

सती मन में संदेह भरकर परीक्षा लेने पहुँची और सीता का रूप धारण कर लिया–

"इत्थं विचार्य सीता सा भूत्वा राम समीपतः।

अगमत् तत्परीक्षार्थं सती मोहपरायणा।।"3

इसी प्रसंग को गोस्वामी तुलसीदास ने ज्यों का त्यों रामचरित मानस में प्रस्तुत किया है। जब शिव को ज्ञात हुआ कि सती ने उनके आराध्य श्रीराम की पत्नी सीता का रूप धारण कर लिया तब उनका ह्रदय अत्यन्त ग्लानि से भर उठा–

---

1. रुद्र संहिता (शिव पुराण) – 24/22–23
2. रुद्र संहिता (शिव पुराण) – 24/37
3. रुद्र संहिता (शिव पुराण) – 24/47

"सती कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ विषाद बिसेषा।।

जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती।।"1

यहाँ पर आपद्धर्म के दर्शन होते हैं आपद्धर्म वह है जब दो धर्मों में टकराव की स्थिति हो जाए। एक तरफ निर्दोष पत्नी है तो दूसरी ओर उनका भक्ति धर्म किसका त्याग करें—

"परम पुनीत न जाइ तजि किए प्रेम बड़ पापु।"2

परन्तु जो धर्म तत्व को जानता है वह परम धर्म (भक्ति) को ही चुनता है—

"तब संकर प्रभु पद सिरू नावा। सुमिरत रामु हृदय अस आवा।

एहि तन सतिहि भेंट मोहिनाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं।।"3

इस प्रकार भगवान शंकर ने राम भक्ति धर्म के निर्वह्न हेतु पति धर्म का त्याग कर दिया।

ऐसा अनन्य प्रेम और अविरल भक्ति देखकर स्वयं श्री राम ने प्रकट होकर उनकी सराहना की—

"नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अविचल हृदय भगति कै रेखा।।

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला।।

बहु प्रकार संकरहिं सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा।।"4

श्रीराम के विनयपूर्वक अनुरोध पर उन्होंने पार्वती रूप में सती से विवाह करना भक्ति धर्म समझकर स्वीकार कर लिया—

---

1. रामचरित मानस – 1/56–7, 8
2. रामचरित मानस – 1/56
3. रामचरित मानस – 1/57–1, 2
4. रामचरित मानस – 1/76–4–6

"कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं।।

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा।।"1

इस प्रकार भगवान् शंकर ने स्वयं को भक्त शिरोमणि सिद्ध किया।

पतिधर्म के आदर्श–

पतिरूप मे उन्होंने अपनी पत्नी सती का प्रत्येक पग पर मार्ग दर्शन किया और उन्हें धर्म की शिक्षा दी। पार्वती रूप में उन्हें परम धर्म का ज्ञान कराया जिसके फल स्वरूप सम्पूर्ण जगत् को धर्म का ज्ञान मिला।

सती ने जब भगवान् शिव के समझाने के बाद भी सीता रूप धर कर श्री राम की परीक्षा ली तब भगवान् शिव ने मन से उनका त्याग कर दिया, परन्तु पत्नी को त्याग प्रताड़ना नही दी वे मौन हो गये–

"जदपि सतीं पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती।।"

तत्पश्चात् पितृगृह के उत्सव में जाने के लिए सती ने हठ किया तब पुनः अपने पतिधर्म का निर्वाह करते हुए शंकर जी ने उन्हें समझाया–

"जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी।।

कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलएँ। नहिं भलि बात हमारे भाएँ।।"2

भगवान शिव ने सब प्रकार से सती को समझाया किंतु जब वे नहीं मानी तब दो मुख्य गणों को संग भेजकर उन्होंने सती को विदा कर दिया। किंतु सती का मरण सुनकर वे बहुत व्याकुल हो गये। (पुराणों के अनुसार सती की मृत देह लेकर वे विलाप करते हुए इधर–उधर भागने लगे तब भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र से सती की मृत

---

1. रामचरित मानस – 1/77–1, 2
2. रामचरित मानस – 1/62–4, 8

देह को काट कर उनका मोह भंग किया था) इस प्रकार भगवान शंकर का धर्ममय स्वरूप स्पष्ट होता है।

शिव सनातन धर्म के रक्षक हैं। उनका मूल रूप कल्याणकारी है। उत्तर काण्ड में शिव का रौद्र रूप भी दिखाई देता है। वे विप्र, गुरू का अपमान नहीं सह सकते। अपने पूर्व जन्मों की कथा बताते हुए उज्जयिनी में शिव मंदिर में शिव मंत्र का जाप करते हुए शिष्य द्वारा गुरू आगमन पर सम्मान न करने के कारण शिव ने कठोर शाप दिया था।

तदपि साप सठ दैहउँ तोही। नीति विरोध सोहाइ न मोहीं।

जौ नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा। 1

गुरू की प्रार्थना से द्रवित शंकर ने अपनी कृपा दृष्टि के विषय में कहा–

"जदपि कीन्ह एहि दारून पापा। मैं पुनि दीन्ह कोप करि सापा।।

तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा विसेषी।।"2

शिव ने क्षमाशीलता, ऋजुता पर विशेष बल दिया है।

---

1. रामचरित मानस – 7/107
2. रामचरित मानस – 7/109

सती–पार्वती के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

पतिव्रता स्त्रियों में सबसे पहले दक्ष–कन्या सती का नाम लिया जाता है। पतिव्रता साध्वी स्त्रियाँ उन्हीं के नाम पर 'सती' की उपाधि से विभूषित हुईं। धर्म शास्त्रों के अनुसार सती धर्म वही है जिसका भगवती सती ने पालन किया। उनके द्वारा स्वीकृत और पालित धर्म ही शास्त्रों में 'सतीधर्म' के नाम से संकलित है।

सती, पार्वती का सामान्य धर्म–

सती–पार्वती दोनो रूपों मे ही सती ने भगवान शिव को अपनी उग्र आराधना तथा तप के द्वारा प्रसन्न करके प्राप्त किया "शिव पुराण के अनुसार सती का हृदय बचपन से ही भगवान शिव की ओर आकृष्ट था वे बाल्यकाल से ही नियमपूर्वक महादेव जी की आराधना करती थीं उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने अपना अखण्ड वैराग्य त्यागकर उनसे विवाह करना स्वीकार किया। विवाह के पश्चात् सती मन, वाणी और कर्म से शिव की आराधना मे लगी रहती थीं।"1

दक्ष कन्या भगवती सती का पति के सम्मान की रक्षा के लिए देहत्याग उनकी अद्भुत तेजस्विता एवं पतिप्राणा होने का ज्वलन्त प्रमाण है। दक्ष प्रजापति शिव से बैरभाव रखता था। (क्योंकि ब्रह्मा की सभा में एकबार भगवान शंकर दक्ष के आगमन पर ध्यानस्थ होने के कारण सम्मान में उठकर खड़े नही हो पाये थे)2 समय बीता किंतु दक्ष के मन का क्रोध नहीं गया इसी कारण दक्ष ने महायज्ञ में भगवान शिव को आमन्त्रण नहीं दिया। गगनमार्ग से विमानों में देवांगनाये अपने पतियों के साथ जा रही हैं यह

---

1. कल्याण नारी अंक (पृ0 322) में प्रस्तुत लेख से
2. रामचरित मानस – 1/62–3

देखकर सती ने भगवान शंकर से उत्सुकतावश पूछा– **"पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी।।"**1 प्रसन्न होकर सती यज्ञ में जाने की पति से आज्ञा माँगती हैं–

"पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।

तौ मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ।।"2

यहाँ पर पितृगृह जाने के लिए पति से आज्ञा माँगना उनका पत्नी धर्म था। क्योंकि स्त्री का सर्वस्व उसका पति ही होता है इसलिए पति की आज्ञा स्त्री के लिए सर्वोपरि है–

"भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरूरेव च।"3

स्वधर्म निरतपति की आज्ञा की अवहेलना करने पर पत्नी का कभी कल्याण नहीं होता सती के साथ भी यही हुआ भगवान शंकर के समझाने के बाद भी वे पिता के घर गई वहाँ उनके पिता दक्ष ने उनका किंचित भी सत्कार नहीं किया। दक्ष के भय से अन्य किसी ने भी उन्हें सम्मानित करने का साहस नही किया–

"पिता भवन जब गई भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी।।"4

किंतु जब सती को यज्ञ में अपने पति शिव जी का भाग न दिखलाई दिया तब इस घोर अपमान से सती का हृदय जलने लगा। क्योंकि पतिव्रता स्त्री के लिए पति का अपमान सबसे बड़ा दुख है। इस महासंताप की घड़ी मे उन्हें पति द्वारा कही नीतिपूर्ण शिक्षा का ध्यान आया–

---

1. रामचरित मानस – 1/61–5
2. रामचरित मानस – 1/61
3. ब्रहन्नारदीय पुराण – उत्तर भाग 14/40
4. रामचरित मानस – 1/63–1

"तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ।।"1

सती को अपने पिता द्वारा प्रदत्त देह से ग्लानि होने लगी और तुरन्त उन्होंने योगासन लगाकर अपनी देह भस्म कर दी–

"पिता मंदमति निंदक तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही।।

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि वृष केतू।।"

किंतु भस्मीभूत होने से पूर्व वे अपने पिता को धर्म की शिक्षा देते हुए कहती हैं– कि यदि कोई उच्छृङ्खल प्राणी धर्म की रक्षा करने वाले संत, शंभु तथा विष्णु भगवान् की निंदा करे तो यदि स्वयं उसे दण्ड देने में समर्थ न हो तो अपने दोनों कान मूँद ले और वहाँ से हट जाए किंतु यदि सामर्थ्य हो तो ऐसे दुष्ट की जिह्वा काट लेनी चाहिए। ऐसा करते समय प्राणों पर संकट आ जाए तो प्राणों का भी त्याग कर देना चाहिए यही धर्म है–

"संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिय तहाँ जहँ अस मरजादा।।

काटिय तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूँद नत चलिय पराई।।"2

यह धर्म तो साधारण मनुष्यों के लिये है परंतु भगवान शंकर तो स्वयं उनके पति ही थे। पतिव्रता सती अपने ही पिता द्वारा उनका अपमान कैसे सह लेती इसी कारण उस पिता द्वारा दिया शरीर ही उन्होंने त्याग दिया ये सती का परम धर्म था। भागवत में ऐसा वर्णित है कि सती ने जब क्रोध के वशीभूत होकर प्राण त्यागने का निश्चय किया तो उन्होंने अपने सम्पूर्ण अंगों में अग्नि और वायु की धारणा की। इसके बाद वे अपने स्वामी जगद्गुरु भगवान् शिव के चरणारविन्दों का चिन्तन करने लगीं, उसके सिवा

---

1. रामचरित मानस – 1/63–5
2. रामचरित मानस – 1/64–3, 4

दूसरी वस्तु का उन्हें भान न रहा। उस समय उनकी वह दिव्य देह जो स्वभाव से ही निष्पाप थी तत्काल योगाग्नि में भस्म हो गई–

"ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयति न चापरम्।

ददर्श देहो हत कल्मषः सती सद्यः प्रज्ज्वाला समाधिजाग्निना।।"1

सती ने मरते समय भगवान विष्णु से जन्म जन्म शिवचरणानुराग का वर माँगा जिसके फलस्वरूप अगले जन्म में पार्वती के रूप में हिमाचल के घर जन्म लिया और पुनः शिव भक्ति में लीन हो गई" (मानस)2 पार्वती रूप में उन्होंने बड़ा कठोर तप किया–

"संवत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गँवाए।।

कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा।।

बेल पाति महि परइ सुखाई। तीनि सहस संवत सोइ खाई।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना।।"3

इतना कठोर तप देखकर सभी देवगण द्रवीभूत हो गये और आकाशवाणी हुई–

"अस तपु काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी।।

पति चरणों के प्रेम में अनुरक्त भगवती पार्वती ने सारे भोग त्याग दिए यद्यपि उनका कोमल शरीर तप के योग्य नहीं था–

"अति सुकुमार न तनु पत जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू।।"4

---

1. श्रीमद् भागवत् – 4/4/27
2. रामचरित मानस – 1/65–3, 4
3. रामचरित मानस – 1/74–4–7
4. रामचरित मानस – 1/74–2

गोस्वामी तुलसीदास ने सती तथा पार्वती के चरित्र में तप का अत्यधिक महत्व बतलाया है जिससे यह सिद्ध होता है कि 'तप' के द्वारा धर्मतत्त्व का स्वतः ज्ञान हो जाता है श्री मद्भागवत में भी तप को धर्म का एक आचार बतलाया है रामचरितमानस में भी नारद जी तप के महत्त्व का वर्णन करते हैं तप से ही सब प्राप्त हो जाता है क्योंकि सारी सृष्टि तप के आधार पर टिकी है–**"तप आधार सब सृष्टि भवानी"1**

तप के फलस्वरूप पार्वती के व्यक्तित्व में तेज प्रवाहित होने लगा तथा धर्म के समस्त लक्षण उनमें स्वतः प्रकट हो गये वे धर्म लक्षण भागवत में इस प्रकार वर्णित हैं–

"सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, ईक्षा (अनुचित–उचित का ज्ञान), शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रिय निग्रह), अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय (जप आदि), आर्जव, सन्तोष, साधु सेवा, प्रवृत्ति नामक धर्मों से निवृत्ति, विपर्ययेच्छा, मौन, आत्म विमर्शन, संविभाग, आत्मवत् सर्वभूतेषु भाव परमेश्वर के गुणों का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, यज्ञ, दासभाव, समर्पण भाव आदि"**2**

शम–दम का उदाहरण प्रस्तुत करती हुई महापतस्विनी पार्वती वर रूप में विष्णु भगवान् को चुनने का आग्रह करने पर सप्तर्षियों को उत्तर देती हैं–

महादेव अवगुन भवन विष्णु सकल गुन धाम।

जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही से काम।।

अब मैं जनम संभु हित हारा। को गुन दूषन करै विचारा।।

जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी।।3

---

1. रामचरित मानस – 1/73–5
2. भागवत महापुराण – 7/11–2–12
3. रामचरित मानस – 1/80–81–2–5

साक्षात धर्म स्वरूपिणी माता पार्वती ने जगत कल्याण के लिए भगवान शिव से रामकथा के गूढ तत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया

नारद के आचरण में सनातन धर्म का प्रभावः–

गरुण पुराण के अनुसार नारद प्रजापिता ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। इनके संबंध में यह धारणा प्रचलित है कि सृष्टि में जब मर्यादाओं का उल्लंघन होता है तब मनोवैज्ञानिक पद्धति से उनका उपचार करने की चेष्टा करते हैं। नारद सर्व विद्याविद परम विष्णुभक्त, संत शिरोमणि तथा सर्व लोकचारी किंतु दक्ष द्वारा शाप दिये जाने के कारण एक स्थान पर दो घड़ी से अधिक नहीं ठहरते।

नारद बाल ब्रह्मचारी थे। अपने ब्रह्मचर्य व्रत के कारण तीनों लोकों में विख्यात नारद भी जब हरिमाया से मोहित हो गये उनके आराध्य श्री विष्णु ने अपना भक्त जानकर उनका मोह दूर किया था। ब्रह्मचर्य को वेद में सर्वश्रेष्ठ धर्म माना गया है वेद कहता है–

"ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।।"1

ब्रह्मचर्य के द्वारा ही राजा राष्ट्र का संवर्धन कर सकता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा ही देवता अमर हुए और उन्होंने मृत्यु को जीता था।

ब्रह्मचारी की अद्भुत महिमा है। शतपथ ब्राह्मण (11/3/3) में ब्रह्मचारी को अमर कहा गया है। देवर्षि नारद ने ब्रह्मचर्य व्रत के कारण तप द्वारा ज्ञान प्राप्त कर अद्भुत ग्रंथों की रचना की। रामचरित मानस में उनकी इसी धर्मनिष्ठता का प्रमाण मिलता है कि किस प्रकार उन्होंने काम और क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली थी–

---

1. अथर्व वेद – 11/5/17–19

"कामकला कछु मुनिहिं न ब्यापी। निज भयँ डरेउ मनोभव पापी।।"1

देवराज इन्द्र ने जब नारद जी को तपस्या में लीन देखकर कामदेव सहित रंभादि अप्सराओं को उनका तप भंग करने के उद्देश्य से भेजा। लाख प्रयत्न करने पर भी जब सफल न हुए तब विप्रश्राप के भय से वे बड़े आर्त भाव से विनय करने लगे–

"सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन।

गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन।।"2

किंतु संत का हृदय बड़ा दयालु होता है अतः उन्होंने उन पर क्रोध नहीं किया। इसी कामदेव के ऐसे ही दुराग्रह पर भगवान शंकर ने उसे क्रोधाग्नि में भस्म कर दिया था। किंतु नारद ने काम के साथ क्रोधजित होने का भी प्रमाण दिया–

"भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय वचन काम परितोषा।।"3

विद्वानों के अनुसार ब्रह्मचर्य का शब्दार्थ समझना बहुत कठिन है बहुत से लोग इसका अर्थ इन्द्रियदमन, संयम का साधन न करते हुए केवल विवाह न करके जटाजूट बढ़ा लेना तथा वेष बनाकर इधर–उधर भटकना आदि को ब्रह्मचर्य मानते हैं। किंतु ब्रह्मचर्य का पूर्ण अर्थ है ईश्वर परायणता अथवा ब्रह्मरूप वेदों का अध्ययन–सेवन और सच्चिदानन्द ब्रह्म में एकात्म्य। शास्त्रों में ब्रह्मचारियों की तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं–

1. ऊर्ध्वरेता 2. योगी 3. ब्रह्मचारी। गीता कहती है कि यह जगत् भी त्रिगुणमयी माया का कार्य है–

"त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्व मिदं जगत्।"

---

1. रामचरित मानस – 1/126–7
2. रामचरित मानस – 1/126
3. रामचरित मानस – 1/127–1

संसार के समस्त प्राणी इन त्रिगुणात्मक भावों से भावित हैं अतएव ब्रह्मचारी भी तीन प्रकार के हैं। प्रथम श्रेणी वाले ब्रह्मचारी के मन में विकार सर्वथा नहीं होता सनकादि, नौ योगीश्वर और कपिलदेव आदि इसी श्रेणी के हैं। द्वितीय श्रेणी वालों के मन में विकार आता तो है किंतु वे अपने कठोर संयम, बल, प्रज्ञा और योगसाधनादि के द्वारा मन को ब्रह्म में लीन कर देते हैं। नारद तथा भीष्म आदि इस श्रेणी में आते हैं। तीसरी श्रेणी में सभी साधक आ जाते हैं।

ब्रह्मचर्य के इस विवरण से स्पष्ट है कि नारद परम योगी भक्त तथा साधक थे। किंतु अहंकार रूपी विकार आते ही उनकी बुद्धि भ्रमित हो गई–

"जिता काम अहिमिति मन माही।।"[1]

भगवान सच्चिदानन्द विष्णु ने जब देखा कि मेरे भक्त नारद के मन में अहंकार का बीज पड़ गया तब अपने भक्त की रक्षा के लिये उन्होंने विश्वमोहिनी की रचना कर उन्हें शिक्षा दी।

रामचरितमानस में नारद प्रसंग से यह शिक्षा मिलती है कि भले ही मनुष्य काम, क्रोध को जीत ले किंतु अहंकार लेश मात्र भी रह गया तो पुनः उसी पतन के गर्त में गिर जाता है अर्थात् काम, क्रोध के वशीभूत हो जाता है तभी वेदवाङ्मय में षडविकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मत्सर) पर विजय की बात कही गई है इन में से यदि एक भी रह गया तो वह शेष सभी को ले आता है। नारद का विश्वमोहिनी पर मोहित होना फिर क्रोध के वश में अपने ही आराध्य को दुर्वचन कहकर श्राप देना उनके अहंकार का ही परिणाम था। जिन पर विजय प्राप्त की उन्हीं के दास बन गये।

रामचरितमानस में ऐसा वर्णन मिलता है कि नारद शाप को सत्य करते हुए श्री

---

1. रामचरित मानस – 1/127–5

राम जब पत्नी के विरह में व्याकुल वन–वन भटक रहे थे तब उन्हें ऐसी दुःखी अवस्था में देखकर नारद को बड़ी ग्लानि हुई–

"बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी।।

मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा।।"1

अपने आराध्य श्री राम से उनका सहज स्नेह था। श्री राम तो सदा भक्तों के ही वश में रहते हैं और मातृवत उनकी रक्षा भी करते हैं–

"सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा।।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।"2

श्री राम द्वारा उपदिष्ट संतो के समस्त लक्षण नारद मे विद्यमान थे–

"षट विकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा।।

अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्य सार कवि कोबिद जोगी।।

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना।।

गावहिं सुनहिं सदा ममलीला। हेतु रहित परहित रत सीला।।"3

नारद मुनि ऐसे संत थे जो षड्विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर) से रहित, पाप रहित, कामना रहित, निश्चल, अकिंचन (सर्वत्यागी), असीम ज्ञानवान सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान, योगी, धर्म ज्ञान और आचरण में अत्यन्त निपुण, सदैव श्रीराम की लीला को गाते और सुनते तथा बिना कारण ही दूसरों के हित में लगे रहते थे।

---

1. रामचरित मानस – 3/41–5, 6
2. रामचरित मानस – 3/43–4, 5
3. रामचरित मानस – 3/45–7, 8–46–7

कामदेव के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

जैसा कि पूर्व में प्रथम अध्याय में वर्णित किया गया था कि स्वरूप निरूपिका सहजा शक्ति ही उस व्यक्ति का सनातन धर्म है। जीव के हृदय में काम (इच्छा) को जागृत करना सनातन से कामदेव का धर्म है जिसके पालन के लिए कामदेव ने अपने प्राणों की बलि दे दी। गीता कहती है–

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' अर्थात् स्वधर्म पालन करते हुए यदि मृत्यु भी हो जाए तो वह भी कल्याणकारी है, इस प्रभुवाक्य का प्रत्यक्ष प्रमाण कामदेव के जीवन पर दृष्टि डालने पर मिलता है।

तारकासुर नामक राक्षस जिसने तप करके शंकर भगवान के पुत्र के हाथ से मरने का ब्रह्मा जी से वरदान माँग लिया था। वह दुराचारी जानता था कि शिव तो सहज बैरागी हैं तथा समाधिस्थ रहते हैं उनका पुत्र उत्पन्न होगा ऐसा असम्भव था। इस प्रकार निश्चिंत होकर वह देवताओं तथा मनुष्यों पर अत्याचार करने लगा–

"तारक असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला।।

तेहि सब लोक लोक पति जीते। भए देव सुख संपति रीते।।

अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई।।"1

देवता भी सब प्रकार से लड़ाई कर चुके किंतु वह महाबलशाली हारता नहीं था। तब ब्रह्मा जी ने उसकी मृत्यु का भेद खोला–

"सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।

संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ।।"2

---

1. रामचरित मानस – 1/82–5–7
2. रामचरित मानस – 1/82

शिवजी के वीर्य से उत्पन्न पुत्र ही इसका काल बनेगा। किंतु शिव तो समाधि में लीन थे। अतः ब्रह्मा ने देवताओं से कामदेव को शिवजी की समाधि भंगकर उनके हृदय में विवाह की इच्छा जगाने के लिए कहा तथा कामदेव को भेजने का सुझाव दिया–

"पठवउ कामु जाइ सिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माही।।

तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिबाहु बरिआई।।"1

कामदेव को भगवान शंकर के शांत हृदय मे हलचल पैदा करने के उद्देश्य से स्मरण किया गया। प्रकट होने पर जब देवताओं की योजना कामदेव को ज्ञात हुई तब उन्होंने विचार किया कि यद्यपि शिव से विरोध में मेरा हित नही है फिर भी परहित के लिए जो अपना सर्वस्व त्याग दे संत भी सदैव उसकी प्रशंसा करते हैं आज यही मेरा परम धर्म है–

"तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा।।

परहित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही।।"2

कामदेव जानते थे कि उनकी मृत्यु निश्चित है फिर भी उन्होंने अपना धर्म नहीं छोड़ा–

"चलत मार अस हृदय विचारा। शिव विरोध ध्रुव मरन हमारा।।"3

कामदेव ने जब अपने प्रभाव का विस्तार किया तो एक क्षण में वेद वर्णित सारी मर्यादायें मिट गईं और सारा संसार काम के वश में हो गया–

---

1. रामचरित मानस – 1/83–5, 6
2. रामचरित मानस – 1/84–1, 2
3. रामचरित मानस – 1/84–4

"तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा।।

कोपेउ जबहिं बारिचर केतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू।।

ब्रह्मचर्य ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना।।

सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सबु भागा।।"1

यहाँ पर गोस्वामी तुलसी दास ने कामदेव का प्रभाव वर्णन करते हुए यह सिद्ध किया है कि कामदेव जब तक दया दृष्टि रखते हैं वेद की सारी मर्यादाओं (ब्रह्मचर्य, ब्रत, संयम, नियम, धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग, बैराग्य, विवेकादि) का तभी तक पालन संभव है कामदेव के रुष्ट होते ही एक क्षण में सभी उनके वश में हो जाते हैं–

"जे सजीव जग अचर चर नारि पुरूष अस नाम।

ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम।।"2

कामदेव का प्रभाव देखें–

"भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।

देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे।।

अबला बिलोकहिं पुरूषमय जगु पुरूष सब अबलामयं।

दुइ दंड भरि ब्रह्माण्ड भीतर काम कृत कौतुक अयं।।"3

जब योगीश्वर तपस्वी जो समस्त ब्रह्माण्ड को ब्रह्ममय देखते थे वे भी काम के वश होकर संसार को नारीमय देखने लगे तब साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या। दो घड़ी के भीतर कामदेव ने ऐसा कौतुक दिखाया कि सभी जीवों ने अपना धैर्य संयम

---

1. रामचरित मानस – 1/84–5–8
2. रामचरित मानस – 1/85
3. रामचरित मानस – 1/86–छं

खो दिया। परन्तु भगवान रूद्र को देखकर कामदेव भयभीत हो गया–

रूद्रहिं देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना।।

अपराजेय भगवान् (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य रूप छः ईश्वरीय गुणों से युक्त) रूद्र का महाभयंकर साक्षात् कालरूप को सामने देखकर उसका हृदय अंतर्द्वद्व से भर उठा। एक ओर साक्षात मृत्यु दूसरी ओर धर्म ऐसी कठिन परिस्थिति में परम धीर पुरूष भी विचलित हो जाते हैं क्योंकि प्राण सर्वाधिक प्रिय होते हैं। परन्तु कामदेव ने धर्म का पालन और मृत्यु का वरण किया–

"फिरत लाज कछु करि नहिं जाइ। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई।।"[1]

किंतु शिव को विचलित न कर सका–

"सकल कला करि कोटि विधि हारेउ सेन समेत।

चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदय निकेत।।"[2]

तब क्रोधित होकर कामदेव ने भगवान रुद्र पर अपने पाँचों वाणों (इन्द्रिय विषय रूपी– रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द) का एक साथ संधान कर दिया जिनके हृदय भेदन से शिवजी की समाधि टूट गई और कामदेव का धर्म भी पूर्ण हो गया, किंतु शिव कोप से उसके प्राण न बच सके–

"तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा।।"[3]

किन्तु धर्मशास्त्र कहते हैं–

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीता।।"[4]

---

1. रामचरित मानस – 1/86–3
2. रामचरित मानस – 1/86
3. रामचरित मानस – 1/87–6
4. मनुस्मृति – 8/15 तथा महाभारत वनपर्व 313/128

जब धर्म का हनन होता है तब वह हनन कर्ता को मार देता है किंतु जब मनुष्य धर्म की रक्षा करता है तब धर्म उसकी रक्षा करता है।

कामदेव का शरीर उस समय अवश्य भस्म हो गया था किंतु भगवान रुद्र का क्रोध शांत होते ही उन्होंने उसे सर्वव्यापी बना दिया और पुनः जन्म लेने का आर्शीवाद देकर अनंग नाम से सभी के ह्रदयों में स्थापित कर दिया–

अब ते रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंग।

बिनु बपु व्यापिहि सबहिं पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु।।

जब जदुबंस कृष्ण अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा।।

कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा।।

इस प्रकार प्रद्युम्न के रूप में द्वापर युग में पुनः जन्म लेकर कामदेव ने गीता के वचन की सत्यता सिद्ध कर दी–

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः"

देव गुरु वृहस्पति के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

आचार्य वृहस्पति देवताओं के गुरु हैं जिससे सम्पूर्ण देव–निकाय एवं जीव–निकाय के लिये जीवन चर्या तथा धर्म–कर्म के विधायक तत्त्वों एवं राजधर्म तथा दण्ड विधान आदि का दायित्व भी इन पर स्वाभाविक रूप से रहता आया है। अतः कभी ये अपने आचरणों से कभी उपदेशों से तथा कभी ग्रन्थों का विधान कर कर्तव्य शिक्षा का विस्तार करते रहते हैं। अनेक ग्रंथों में विशेषकर धर्म शास्त्रों, पुराणों तथा महाभारत, रामायणादि में इनके धर्ममय आख्यान और उपदेश प्राप्त होते हैं। इनके नाम से बार्हस्पत्य–अर्थशास्त्र बहुत प्रसिद्ध है। इनकी बनाई हुई एक स्मृति वृहस्पति स्मृति के नाम से विख्यात है जिसमें इन्होंने देवराज इन्द्र को विविध धर्मोपदेश दिये हैं। स्मृति के अनुसार वे कहते

हैं कि–

"त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।

तारयन्ति हि दातारं सर्वपापादसंशयम्।।"[1]

गोदान, भूमिदान और विद्यादान ये तीन महादान होने के कारण अतिदान कहलाते हैं इनके दाता का सभी पापों से उद्धार हो जाता है

रामचरितमानस में वे देवराज इन्द्र को उनकी अधीरता पर फटकार लगाते हैं (इन्द्र भरत के त्याग और प्रेम के दिव्य प्रभाव को देखकर और यह सोचकर कि करुणानिधान श्री राम भरत के प्रेम के वश में होकर कहीं वापस न लौट जाएँ अधीर हो जाते हैं)–

"रामु सँकोची प्रेम बस भरत सप्रेम पयोधि।

बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छल सोधि।।"[2]

"गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहिं भेंट न होई।।"[3]

इन्द्र की इस व्याकुलता का सुरगुरु इस प्रकार धर्म और नीतिमय उत्तर देते हैं–

"सुनु सुरेस उपदेस हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा।।"[4]

"मनहुँ न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु।

अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु।।"[5]

यद्यपि वे भी राक्षसों का वध चाहते थे किंतु श्रीराम के तथा भक्तों के साथ छल

---

1. वृहस्पति स्मृति – 18–19
2. रामचरित मानस – 2/217
3. रामचरित मानस – 2/216–8
4. रामचरित मानस – 2/219–1
5. रामचरित मानस – 2/218

करके नहीं, यही उपदेश वह देवराज को देते हैं कि पूर्व में श्रीराम की सहमति से मन्थरा की मति का हरण सरस्वती जी से करवाया गया था और इस बार यदि ऐसा किया तो लोक–परलोक दोनों में अपयश होगा। क्योंकि–

"जो अपराध भगत कर करई राम रोष पावक सो जरई।।"1

भक्त का अनहित करने वाला श्री राम की क्रोधाग्नि में जल जाता है। गुरु होने के कारण अपने शिष्य की चिंता का हरण उनका धर्म था इसलिए वे देवराज इन्द्र की चिन्ता का इस प्रकार हरण करते हैं–

"भगत शिरोमणि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल

सत्य संध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयस अनुसारी।

सुनि सुरवर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी।।"2

इस प्रकार गुरु वृहस्पति देवराज इन्द्र तथा अन्य देवताओं को समय–समय पर धर्म तथा नीति का सही मार्ग दिखाते हैं। यही उनका धर्म है जिसका निष्ठापूर्वक पालन से वे सर्वश्रेष्ठ हुए।

गरुड़ के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

पक्षिराज गरूड़ भगवान विष्णु के परमभक्त तथा उनके वाहन भी हैं। गरुड़ पुराण में ऐसा उल्लेख मिलता है कि गरुड ने अपनी माता को नागों के बंधन से मुक्त करने हेतु भगवान् श्री नारायण की तपस्या की जिससे प्रसन्न हो कर प्रभु ने अभीष्ट वर माँगने के लिए कहा तब पक्षिराज ने अपनी माता की मुक्ति तथा स्वयं को उनके वाहन बनने का आग्रह किया और वेद ज्ञान माँगकर पुराण संहिता के रचनाकार भी बने।

---

1. रामचरित मानस – 2/218–5
2. रामचरित मानस – 2/219–220–1, 3

भगवान नारायण ने उन्हें स्वरूप प्रदान किया तथा उनके द्वारा रचित पुराण को गरुड़ पुराण नाम दिया–

"यथाहं देव देवानां श्रीः ख्यातो विनतासुत।

तथा ख्यातिं पुराणेषु गारुणं गरुणैष्यति।।

यथाहं कीर्तनीयोऽथ तथा त्वं गरुणात्मना।

मां ध्यात्वा पक्षिमुख्येदं पुराणं गद गारुणम।।"1

भगवान विष्णु द्वारा प्रदत्त वरदान के प्रभाव से इसको गरुड़ द्वारा श्रवण कर कश्यप ऋषि ने 'गारुड़ी विद्या' के बल से जले हुए वृक्षों को पुनर्जीवित कर दिया था।

रामचरित मानस में पक्षिराज गरुड़ का चरित्र श्री राम के परम ज्ञानी भक्त के रूप में दर्शाया गया है–

गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।।

श्रीराम और लक्ष्मण को सर्पों के बंधन से मुक्त करने के पश्चात् इनकी मति भ्रमित हो गई कि जिनका नाप जप करने से प्राणी भव बंधन से मुक्त हो जाता है वे भला कैसे बंधन में बँध सकते हैं–

"भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।

खर्व निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम।।"2

अपने इसी संशय को दूर करने के लिए वे नारद के पास जाते हैं और नारद उन्हें काकभुशुण्डि जी के पास भेज देते हैं।

मानस के चार वक्ता और श्रोताओं की श्रेणी में गरुड जी ज्ञान घाट के श्रोता

---

1. गरुण पुराण – 1/2/56–57
2. रामचरित मानस – 7/58
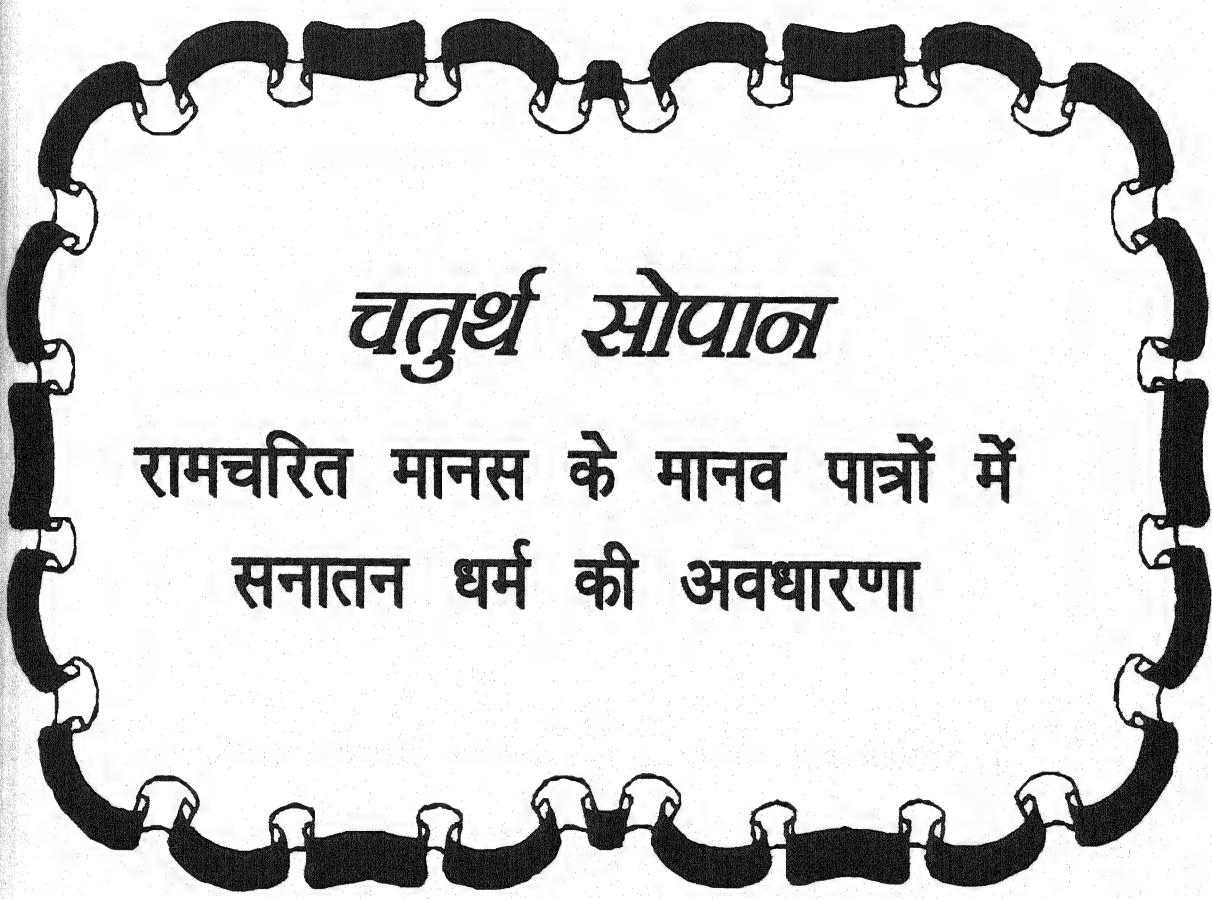
हैं। इनके परम अनुग्रह से भक्तों को यथार्थ का बोध हुआ।

पिछले पृष्ठों में देव–वर्ग के स्वरूप एवं उनके आचरण में निहित सनातन धर्म तत्त्वों का निरूपण किया गया है। यहाँ यह ध्यातव्य है, कि देवगण – एवं राक्षसों के मध्य हुए युद्धों का प्रतीकी करण किया गया, क्योंकि मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशतीएवं गीता में ईश्वर/ब्रह्म/विष्णु के अवतार लेने की बात स्वयं श्री कृष्ण ने किया है, जिसका लक्ष्य असुर–संहार एवं धर्म–संस्थापना था। इसी का विस्तार रामावतार के रूप में हुआ, जिसमें राम प्रारम्भ में विष्णु के अंशावतार थे तथा उनके साथ लक्ष्मण शेष, सीता लक्ष्मी स्वरूपा थीं। इसी परिप्रेक्ष्य में ब्रह्मा जी के आदेश से राक्षसों के संहार एवं राम की सहायता हेतु अनेक देवता ऋक्ष, वानर आदि रूप में अवतरित हुए। अवतारवाद की इस धारणा का विकास तुलसी ने सर्वोच्च रूप में प्रस्तुत किया जहाँ राम विधि हरि, शंभु नचावन हारे बने। इसके विपरीत राक्षस राज रावण, कुंभकर्ण, विभीषण इत्यादि के अवतार हेतु पूर्व जन्म के शाप एवं वरों की परिकल्पना रामचरितमानस में विस्तृत रूप में वर्णित है। इस प्रकार राम–रावण युद्ध एक प्रकार से देव–दानव/राक्षस युद्ध रूप में तुलसी ने निरूपित किया है।

देवों को सुर आदित्य दैवत इत्यादि समानार्थी/पर्याय रूप में कहा गया है। इसी प्रकार राक्षस दैत्य, दनुज, दानव एक वर्ग के ही मान लिये गये हैं। देवों का मानवी करण कर उनके आचरण में सत्य, आर्जव, शुभ संकल्प, मानव–कल्याण, धर्म विहित आचरण, क्षमा, इत्यादि गुणों के साथ ईर्ष्या–द्वेष आदि भावनाओं का भी चित्रण किया गया है। मानस के अनेक स्थलों में उल्लिखित है कि देवों ने अपनी कार्य सिद्धि हेतु अनेक बार असत्याचरण किया है, फिर भी राम के श्रेष्ठ, शक्ति, सौन्दर्य शीलगत आचरणों के समय पुष्प वर्षा कर इस बात की पुष्टि की है कि रामावतार देव, गुरु, विप्र, धेनु, संत, सज्जन धर्म रक्षार्थ हुआ है।

चतुर्थ सोपान

रामचरित मानस के मानव पात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा

रामचरितमानस के मानव पात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा

मानव शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ करते हुए पण्डितजन कहते हैं–"मनु शब्द से (मनोरपत्यं पुमान मानवः) अपत्य अर्थ में "तस्याऽपत्यम्" सूत्र से 'अण्' होने पर "मनु+अ" इस अवस्था से ('ओर्गुणः' पाणिनिसूत्र से 'उ' को गुण 'ओ' तथा "तद्धितेष्वचामादेः" से 'म' के 'अ' को वृद्धि और अवादेश होकर 'मानव' शब्द सिद्ध होता है। महाभारत में वर्णन आया है कि –

"मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत्।

ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान् मनोर्जातास्तु मानवाः।।"1

मनु के वंशज मानव कहलाए। सामवेद कहता है–

"मनुः कविः"2 अर्थात् भविष्य की योजना करने वाला ही वस्तुतः मानव है। निरुक्तकार चिंतनशील प्राणि को मानव की संज्ञा देते हैं–**"मननात् मनुरुच्यते"**

मनुष्य–शरीर में ही जीवात्मा धर्मज्ञ, विवेकी तथा चिन्तनशील है। भविष्य अथवा मोक्ष प्राप्ति की योजना भी मानव देह में ही संभव है। भगवान् श्रीराम को तो मानव ही सबसे प्रिय हैं–

"सब मम् प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहिंभाये।।"3

मनुष्य ही प्रभु को सर्वाधिक प्रिय क्यों है इसका कारण बताते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि मनुष्य शरीर बड़ी दुर्लभता से प्राप्त होता है–

"नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।।"4

---

1. महाभारत – 1/75
2. सामवेद – 90
3. रामचरित मानस – 7/86–4
4. रामचरित मानस – 7/121–9, 10

मनुष्य शरीर ही स्वर्ग, नरक और मोक्ष की सीढ़ी है, अर्थात् इसी शरीर के माध्यम से जीव ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को प्राप्त करता है। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं कि 'जीव किसी भी श्रेणी का हो किसी भी अवस्था में हो मुझमें शरणागत होते ही मोक्ष का अधिकारी हो जाता है"

रामचरितमानस में वानर, भालू, राक्षस (विभीषण आदि शरणागत) और गिद्धराज जटायु आदि जीव भी मुक्ति के अधिकारी प्रभु शरणागति के कारण बने थे। वस्तुतः धर्मतत्त्व का बोध मानव–शरीर में ही संभव है।

गोस्वामी तुलसीदास ने ब्रह्मा के पुत्र स्वायम्भू मनु और शतरूपा को मानव जाति का प्रणेता बतलाया है–

"स्वायमभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नर सृष्टि अनूपा।।

दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कैलीका।।"1

अतः इन दोनों ने जिन उत्तम धर्मों का पालन किया वेद उनकी प्रशंसा करते हैं तथा मानव जाति के लिए वही धर्म अनुकरणीय है।

रामचरितमानस के मानव पात्रों के आचरण में सनातन धर्म की अवधारणा का अवलोकन करने से पूर्व एक दृष्टि राम कथा की मूल कृति (बाल्मीकि रामायण) पर डाल लेते हैं। बाल्मीकि रामायण श्री राम की समकालिक रचना है। डॉ0 रमानाथ त्रिपाठी के अनुसार "बाल्मीकि रामायण में आर्यो की गौरवमयी संस्कृति की झलक है। इसका वर्तमान रूप संभवतः शुंगकाल में निर्मित हुआ था इस काल तक ब्राह्मणत्व पुनः शक्ति–शाली हो गया था। वैदिक संस्कृति का फिर बोलबाला होने लगा था। अपने

---

1. रा0च0मा0 – 1/142–1, 2

काल के अनुरूप विपुलांस, महाबाहु, महोरस्क आर्यों का चरित्र हमें रामकथा में प्राप्त होता है।"1

बाल्मीकि रामायण का अध्ययन करने पर राम एक आदर्श गृहस्थ और शासक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके सभी गुण–दोष मानवीय हैं। राम प्रिया से बिछुड़ने पर पूर्णतः विक्षिप्त प्रतीत होते हैं। क्रोध में कालाग्नि के समान पर्वत की चोटियाँ काटकर गिराने, सागर को सोख लेने तथा हरे–भरे वनों को जलाने के लिए उद्यत हो जाते हैं– (बा0रा0 3/60/11, 3/64–62)

किंतु समयान्तर से मनुष्य की कल्पनायें परिवेश के अनुसार नया रूप ले लेती है। युग के अनुसार उसके आदर्श और उसकी धारणायें बनती हैं, परन्तु मूलवृत्ति अर्थात् मूलाधार कभी नहीं बदलता हाँ युग के अनुसार उनके आवेग और प्रकाशन में भेद मिल सकता है। काव्य में दोनों प्रकार के चरित्र हो सकते हैं–जैसे कि उस काल या परिवेश में हैं, अथवा अपनी दुर्बलताओं से ऊपर उठकर जैसे उन्हें होना चाहिए, दोनो ही रूपों में लेखक की कल्पना पर उसका परिवेश प्रभाव डालता है। तुलसी का काल आते–आते परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं। डॉ0 राजाराम रस्तोगी के अनुसार "तत्कालीन मुस्लिम राज्य प्रणाली एवं शासन व्यवस्था की त्रुटियों के कारण संत्रस्त पीड़ित जनता के विक्षोभ की धारावाहिक प्रतिक्रियात्मक वाणी का उद्घोष उनकी कृतियों का मर्म है।"2

दिग्भ्रमित जनता की मनोदशा उन्होंने स्वयं मानस के सप्तम काण्ड में व्यक्त की है–

---

1. कृत्तिवासी बंग्ला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन – लेखक–डॉ0 रमानाथ त्रिपाठी– पृ0 234
2. तुलसीदास जीवनी और विचारधारा – लेखक– डॉ0 राजाराम रस्तोगी– पृ0 204

"बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोधरत सब नरनारी।।

सब नर काम क्रोधरत लोभी। देव विप्र श्रुति संत विरोधी।।

दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी।।"1

गोस्वामी तुलसीदास दिव्य दृष्टि सम्पन्न दूरदर्शी कवि थे वे जानते थे कि मानव धर्म की पुनः स्थापना स्वयं भगवान् ही कर सकते है अतः उन्होंने अध्यात्म रामायण का भक्तिपरक दृष्टिकोण अपनाकर बाल्मीकि के पुरुषोत्तम राम पर ब्रह्म निरुपण कर पुराणोक्त अवतारवाद के द्वारा उनके मानवोचित दोषों में लीला संवरण राम की मानव लीला समाहित कर दी तथा अपनी समस्त प्रतिभा का अलौकिक परिचय देते हुए श्री रामचरितमानस के पात्रों का शील–सौन्दर्य निरुपण कर एक समाज सुधारक, धार्मिक, नैतिक शिक्षा से ओतप्रोत अद्‌भुत ग्रंथ तैयार कर दिया जिसने तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों पर सीधा प्रभाव डाला। और अनपढ़, गँवार जनता भी स्वधर्म बोध में सक्षम हुई। डॉ0 रमानाथ त्रिपाठी के अनुसार–"मानस के पात्रों में संयम बहुत है परब्रह्म राम तो संयमित हैं ही, उनसे संबंधित सभी पात्र संयमित (शिष्ट) व्यवहार करते हैं, पारिवारिक चित्रण करते हुए भी राम को शील सम्पन्न दर्शाया है, वे आगे कहते हैं कि–मानस की नारी अत्यधिक संयमित है," बाल्मीकि की कौशल्या तो गौरवमयी राज महिषी हैं कृत्तिवास की कौशल्या दुःख की अवस्था में अपने पति को कोसती हैं वे अपने पुत्र पर प्राण देने वाली वात्सल्यमयी माँ हैं, किंतु तुलसी की कौशल्या राजमहिषी हैं वात्सल्यमयी माँ भी और परम संयमित भी हैं।[2]

---

1. रामचरित मानस – 7/98–1, 99–3, 102–7
2. डॉ0 रमानाथ त्रिपाठी – कृत्तिवासी और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन पृ0 236

रामचरितमानस के मानव पात्र–

डॉ० राजूरकर के अनुसार–पात्र की पहचान पात्र के स्वभाव एवं उसके चरित्र के आधार पर होती है। चरित्र पात्र के अंतःकरण की मूल वृत्ति को कहा जा सकता है क्योंकि यही वह प्रवृत्ति है जिसके आधार पर पात्र का ज्ञान, कार्य, साधना, उद्देश्य, तत्परता, व्यवहार आदि का ज्ञान होता है,"1 अर्थात् पात्र की पूर्ण अभिव्यक्ति उसके चरित्र द्वारा होती है। कवि की पात्र परिकल्पना का ज्ञान उसके द्वारा रचित चरित्रों द्वारा होता है। पात्रों की सृष्टि करते समय रचनाकार उसका चरित्र–विधान करता जाता है और उसी में उसका प्रयोजन एवं उद्देश्य व्यक्त होता रहता है।

डॉ० राजूरकर ने अपनी पुस्तक 'रामकथा के पात्र' में जिन पात्रों का उल्लेख किया है उनमें मानव पात्रों की संख्या बाल्मीकि रामायण के अनुसार पुरुष पात्र 34 तथा रामचरितमानस के अनुसार 50 है। इसी क्रमानुसार नारी पात्रों की संख्या 15 बाल्मीकि रामायण में तथा रामचरितमानस में 17 नारी पात्र हैं जिनकी क्रमानुसार तालिका इस प्रकार बनती है–

मानव–पुरुष–पात्र

बाल्मीकि रामायण	रामचरित मानस
1. राम	1. राम
2. लक्ष्मण	2. लक्ष्मण
3. भरत	3. भरत
4. शत्रुघ्न	4. शत्रुघ्न
5. दशरथ	5. दशरथ

1. डॉ० भ०ह० राजूरकर – रामकथा के पात्र – पृ० 118

6. जनक

7. वशिष्ठ

8. विश्वामित्र

9. बाल्मीकि

10. भरद्वाज

11. अत्रि

12. वामदेव

13. शरभंग

14. अगस्त्य

15. कर्दम

16. कश्यप

17. गौतम

18. परशुराम

19. शतानन्द

20. ऋष्यश्रृंग

21. अत्रि

22. प्रहलाद

23. प्रमाथी

24. हनुमान

25. सुग्रीव

26. बालि

6. जनक

7. वशिष्ठ

8. विश्वामित्र

9. बाल्मीकि

10. भरद्वाज

11. अत्रि

12. वामदेव

13. शरभंग

14. अगस्त्य

15. कर्दम

16. कश्यप

17. गौतम

18. परशुराम

19. शतानन्द

20.श्रृंगी ऋषि

21. शतानन्द

22. अत्रि

23. लोमश मुनि

24. वेदशिरा मुनि

25. चन्द्रमा मुनि

26. भृंगी

27. अंगद

28. नल

29. नील

30. जाम्बवन्त

31. जटायु

32. संपाति

33. निषादराज गुह्य

34. सुमन्त्र

27. हनुमान

28. जाम्बवन्त

29. सुग्रीव

30. बालि

31. नल

32. नील

33. जटायु

34. संपाति

35. काक भुशुण्डि

36. स्वायम्भू मनु

37. उत्तानपाद

38. ध्रुव

39. प्रहलाद

40. सत्यकेतु

41. प्रतापभानु

42. धर्मरूचि

43. शीलनिधि

44. प्रमथ

45. केवट

46. निषाद राज

47. प्रियव्रत

48. अरिमर्दन

49. सुमन्त्र

यद्यपि डा0 राजूरकर की पात्र तालिका के मानव पात्र रामचरित मानस के अध्ययनानुसार प्रामाणिक हैं तथापि कुछ पात्र अवश्य शेष बचतें है जिनका उल्लेख प्रस्तुततालिका के पुरूष पात्रों में नहीं मिलता।

1. शिवि 2. दधीचि
3. हरिश्चन्द्र 4. रन्तिदेव
5. कपिलमुनि 6. रघु
7. गालब 8. नहुष
9. तापस 10. वक्ता रूप में स्वयं तुलसीदास
11. श्रोता रूप में संतजन 12. समूह पात्रों में ऋषि–मुनि, अयोध्यावासी, जनकपुरवासी, ग्रामवासी, कोल–किरात आदि।

उपर्युक्त पात्रों के माध्यम से गोस्वामी जी ने सनातन धर्म की सांस्कृतिक परम्परा का उद्घाटन किया है। जिसके प्रमाण इस प्रकार हैं

1. **"शिवि दधीच हरिचन्द नरेसा। सहे धर्म हित कोटि कलेषा।।**
   रन्तिदेव बलि भूप सुजाना। धरमुधरेउ सहि संकट नाना।।"1

2. **"आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला।।**
   सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्व बिचार निपुन भगवाना।।"2

---

1. रामचरित मानस – 2/94–5, 6
2. रामचरित मानस – 1/142–7, 8

3. **"रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाउ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ।।"1**

"रघुकुल रीति सदा चालि आई। प्रान जाइ बरू वचन न जाई।।"2

4. **"गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।**

हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस।।"3

5. **"तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघुवयस सुहावा।**

कवि अलखित गति वेषु विरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी।।"4

समूह पात्रों का वर्णन आगे गौण पात्रों के विवेचन में करेंगे इस प्रकार रामचरितमानस के कुल मानव पुरुष पात्रों की संख्या हुई 59 समूह पात्रों की संख्या अगणनीय माननी चाहिए।

डॉ0 राजूरकर की पात्र तालिका में मानवीय नारी पात्रों की गणना इस प्रकार है–

बाल्मीकि रामायण	**रामचरित मानस**
1. सीता	1. सीता
2. उर्मिला	2. उर्मिला
3. माण्डवी	3. माण्डवी
4. श्रुतिकीर्ति	4. श्रुतिकीर्ति
5. कौशल्या	5. कौशल्या
6. कैकई	6. कैकई

1. रामचरित मानस – 1/231–5
2. रामचरित मानस – 2/28–4
3. रामचरित मानस – 2/61
4. रामचरित मानस – 2/110–7, 8

7. सुमित्रा	7. सुमित्रा
8. अनुसूया	8. अनुसूया
9. शबरी	9. शबरी
10. अहल्या	10. अहल्या
11. तारा	11. तारा
12. अदिति	12. अदिति
13. अरुंधति	13. अरुन्धति
14. मैना	14. मैना
15. मंथरा	15. देवहुति
	16. मंथरा
	17. सुनयना

मेरे अध्ययनानुसार इन पात्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य नारी पात्र हैं–

1. शतरूपा 2. सुग्रीव की पत्नी (रूमा) 3. तपस्विनी नारी स्वयंप्रभा तथा समूह पात्रों में 1. जनकपुर की स्त्रियाँ 2. अयोध्यावासिनी नारियाँ 3. ग्राम वधूटियाँ आदि।

शेष नारी पात्रों की प्रामाणिकता प्रस्तुत उद्धरणों से स्पष्ट हो जाएगी–

1. **"स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नर सृष्टि अनूपा।**

दम्पति धरम आचरन नीका। अजहु गाव श्रुति जिन्ह कै लीका।।"[1]

---

1. रामचरित मानस – 1/142–1, 2

2. **"नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई।।**

रिपु सम मारेसि अतिभारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी।।"1

यहाँ पर सुग्रीव अपनी पत्नी के बालि द्वारा छीने जाने की बात श्री राम से कह रहा है। प्रत्यक्ष रूप से सुग्रीव की पत्नी का कहीं उल्लेख नहीं है, फिर भी वालि–वध के कारणों में बालि द्वारा सुग्रीव की पत्नी का हरण एक मुख्य कारण है इसलिए उसकी चर्चा करना न्याय संगत है जब बालि अपने वध का कारण राम से पूँछता है तो राम उत्तर देते हैं–

"अनुज–वधू भगिनी सुत–नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।

इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि वधे कछु पाप न होई।।"2

इस उद्धरण से धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य का तत्त्व स्पष्ट होता है।

3. **"दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज।**

मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज।।"3

तप सनातन धर्म का एक अंग है अतः मेरे विचार से वह स्त्री भी (स्वयंप्रभा) सनातन धर्म की पात्रों में अवधारणा व्यक्त करती है।

इस प्रकार रामचरित मानस में नारी पात्रों की संख्या 20 है एवं कुल मानव पात्र 79 हैं।

"डॉ0 राजूरकर का कथन है कि भूमिका के आधार पर पात्रों का वर्गीकरण दो भागों में किया जा सकता है– 1. प्रमुख पात्र 2. गौण पात्र। इनमें प्रमुख पात्रों

---

1. रामचरित मानस – 4/6–10–1,11
2. रामचरित मानस – 4/9–7, 8
3. रामचरित मानस – 4/24

की भूमिका लम्बी होती है और गौण पात्रों की भूमिका संक्षिप्त होती है। बाल्मीकि रामायण के अनुसार प्रमुख तथा गौण मानव पात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार है–

प्रमुख पात्र–

राम, सीता, दशरथ, कौशल्या, कैकेई, लक्ष्मण, भरत, हनुमान एवं सुग्रीव।

गौण पात्र–

शत्रुघ्न, सुमित्रा, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, जनक, वशिष्ठ, मंथरा, विस्वामित्र, सुमंत्र, गुह्य, वामदेव, अत्रि, अनुसूया, जटायु, शबरी, बालि, भरद्वाज, जाबालि, बाल्मीकि, अहल्या, अंगद, तारा, जाम्बवन्त, नल, नील, शरभंग, अगस्त्य।"[1] रामचरितमानस के पात्रों का भूमिका के आधार पर वर्गीकरण पर श्रीनिवास गुप्ता के कथनानुसार–"रामचरितमानस सामान्य महाकाव्य न होकर पौराणिक शैली में लिखा गया एक जीवन काव्य है अतः इसकी कथा संरचना में कुछ वैशिष्ट्य आ गया है। वैशिष्ट्य के अनेक पात्रों में से एक महत्वपूर्ण पक्ष वक्ता श्रोता की योजना का है मानस की कथा इन्हीं के द्वारा कही और सुनी जाती है अतः कथा के साथ उनका भी सम्बन्ध है।"[2] मानस के गौण पात्र पुस्तक में प्रमुख तथा गौण पात्रों में अन्तर करते हुए श्री श्रीनिवास गुप्ता लिखते हैं–

1. कथा की कालसीमा में प्रमुख पात्र देर तक छाए रहते हैं उनकी भूमिका लम्बी होती है वे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपनी उपस्थिति का ज्ञान कराते रहते हैं।

इसके विपरीत गौण पात्रों का आगमन कथा में अल्पकाल के लिए होता है। कभी–कभी तो उनकी झलक मात्र ही दिखलाई देती है। उनकी उपस्थिति एवं अस्तित्व

---

1. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर– पृ0 123
2. मानस के गौण पात्र – श्रीनिवास गुप्ता के आधार पर

का आभास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता।

2. कथा के विकास में प्रमुख पात्रों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। अधिकांश घटनाओं के प्रयोजन एवं लक्ष्य इन पात्रों से सीधा संबंध रखते हैं। इसलिए इनकी भूमिकाओं में सघनता एवं विविधता होती है।

इसके विपरीत गौण पात्रों की भूमिका प्रमुख पात्रों के प्रयोजन सिद्धि हेतु अल्पकालीन होती है किंतु इनके योगदान से प्रमुख पात्रों की भूमिका अधिक स्पष्ट होती है।1

श्री श्रीनिवास गुप्ता के अनुसार–''प्रमुख एवं गौण पात्रों का वर्गीकरण पात्र द्वारा कथानक में निभाई गई भूमिका के आधार पर किया जाता है, व्यक्तित्व के आधार पर नहीं। संभवतः किसी गौण पात्र का व्यक्तित्व किसी प्रमुख पात्र अथवा सभी प्रमुख पात्रों से महान हो किंतु कथा विकास के अन्तर्गत यदि उस गौण, महान् पात्र की भूमिका महत्त्वपूर्ण और स्थाई बनकर नहीं आती तब तक उसे केवल व्यक्तित्त्व के आधार पर प्रमुख पात्र नहीं माना जा सकता।''2

हम यहाँ सभी मानव–पात्रों को दो रूपों में वर्गीकृत करेंगे–

1. प्रमुख पुरूष पात्र – गौण पुरूष पात्र
2. प्रमुख नारी पात्र – गौण नारी पात्र

भारतीय मनीषियों ने पुरुष और नारी को समाज के दो आधार स्तम्भ माना है। अतः अपने अपने स्थान पर इनके होने के कारण इनके धर्म भी अलग–अलग माने गये हैं। समाज में परिवार की धुरी के पति–पत्नी दो चक्र हैं जब दोनों स्वस्थान में स्थित

---

1. डॉ0 राजूरकर – रामकथा के पात्र – पृ0 121
2. श्रीनिवास गुप्ता – मानस के गौण पात्र (वेंकटेश विद्यालय तिरुपति) के आधार पर

रहेंगे तभी परिवार रूपी गाड़ी ठीक प्रकार चलेगी।

हम आगे दोनों (स्त्री–पुरूष) के धर्मों का अलग–अलग विवेचन कर रामचरित मानस के पात्रों में उनकी अवधारणा की अभिव्यक्ति करेंगे।

मानस के प्रमुख मानव पुरुष पात्रों में सनातन धर्म का प्रभाव–

विभिन्न विद्वानों ने रामकथा के प्रमुख पुरूष पात्रों की संख्या इस प्रकार दी है–

डा0 राजूरकर के अनुसार– राम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, दशरथ तथा सुग्रीव। 1

डा0 मैथिली शरण गुप्त के अनुसार– राम, दशरथ, लक्ष्मण, भरत। 2

डा0 भाग्यवती सिंह के अनुसार– राम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, दशरथ। 3

मेरे विचार से प्रमुख पात्रों में शत्रुघ्न, ऋषि भरद्वाज और काक भुशुण्डि भी होना चाहिए। क्योंकि जैसा कि डा0 राजूरकर ने अपनी पुस्तक रामकथा के पात्र में उल्लेख किया है कि पौराणिक शैली में होने के कारण मानस का संरचनात्मक वैशिष्ट्य श्रोता और कथा वक्ताओं को भी प्रमुख पात्रों की श्रेणी मे रखता हैं।4 अतः काकभुशुण्डि और भरद्वाज प्रमुख पात्र हुए। मेरे विचार से भरद्वाज और काकभुशुण्डि रामकथा को गति प्रदान करने वाले पात्र न होकर मात्र कथा वक्ता हैं। पूर्व में प्रमुख तथा गौण पात्रों के भेद से यह स्पष्ट हो गया है कि प्रमुख पात्र का कथा से सीधा संबंध होना चाहिए, कथानक का प्रयोजन मुख्य पात्रों की भूमिका पर निर्भर होता है। अतः इस आधार पर इन दो पात्रों को मुख्य पात्रों की श्रेणी में नही रखा जा सकता। गोस्वामी तुलसी दास

---

1. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 123
2. साकेत के आधार पर
3. तुलसी मानस रत्नाकर – डॉ0 भाग्यवती सिंह (पात्र चरित्र चित्रण के आधार पर)
4. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – के आधार पर पृ0 123

की मान्यता के अनुसार शत्रुघ्न भी परब्रह्म राम के अंश होने के कारण प्रमुख पात्रों की गणना मे आते हैं। स्वतन्त्र रूप से भले ही गोस्वामी जी ने इनका उल्लेख न किया हो किंतु भरत का अनुगामी होने के कारण सम्पूर्ण रामकथा में उनकी उपस्थिति का आभास होता है–

"रिपु सूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी।।"1

इस प्रकार रामचरित मानस के प्रमुख पुरुष पात्रों की गणना इस प्रकार है–

1. राम
2. लक्ष्मण
3. भरत
4. शत्रुघ्न
5. दशरथ
6. हनुमान
7. सुग्रीव

श्री राम के आचरण मे सनातन धर्म का प्रभाव–

रामचरित मानस के मानव पात्रों मे राम नायक हैं। यद्यपि कवि ने उन्हें परब्रह्म का अवतार माना है किंतु हम यहाँ उनके ब्रह्मत्व पर नहीं मानवत्व पर चर्चा करेंगे क्योंकि मानवोचित आचार–धर्मों का निर्वाह कर राम ने भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में सर्वोत्कृष्ट नायकत्व प्राप्त किया। डा0 राजूरकर के अनुसार–

"राम कथा की परम्परा एवं विकास का अवलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न केवल भारत बल्कि अनेक राष्ट्रों, संस्कृतियों एवं साहित्य

---

1. डॉ0 भाग्यवती सिंह – तुलसी मानस रत्नाकर में 320 पृ0 पर उद्धृत

में राम की सत्ता अप्रतिम है। यह कथन अतिशयोक्ति न होगा कि किसी भी राष्ट्र के इतिहास में यह नहीं पाया जाता कि इतिहास में प्रतिष्ठित नायक किसी जाति का आदर्श बनकर युग–युग से उसे अनुप्राणित और उत्फुल्लित कर रहा हो।''1

महर्षि बाल्मीकि ने राम को पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है जिनके चरित्र में स्वभाव से ही शक्ति शील–सौन्दर्य झलकता है। वे एक आदर्श मानव हैं साथ ही एक आदर्श पुत्र, पति, भ्राता, सखा आदर्श राजा भी हैं वे धर्म के मूर्तमान रूप हैं जिनके अंदर ये सद्‌गुण हैं– सत्य, सौहार्द, दया, क्षमा, मृदुता, धीरता वीरता, गम्भीरता, अस्त्र–शस्त्रों का ज्ञान, पराक्रम, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरति, संयम, निःस्पृहता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, त्याग, मर्यादा–संरक्षण, एक पत्नीव्रत, प्रजारञ्जकता, ब्राह्मण–भक्ति, मातृ–पितृ भक्ति, गुरू भक्ति, भ्रातृ प्रेम, मैत्री, शरणागतवत्सलता, सरलता, व्यवहार कुशलता, प्रतिज्ञा–पालन, साधु–रक्षण, दुष्ट–दलन, निर्वैरता, लोकप्रियता, अपिशुनता, बहुज्ञता, धर्मज्ञता, धर्म परायणता, पवित्रता आदि अनेक सद्‌गुणों का भण्डार हैं। (बाल्मीकि रामायण 2/1/9–18)

संसार के किसी भी एक व्यक्ति मे इतने महान गुण नहीं पाये जाते शायद इसी कारण उनमें अवतारी होने का विश्वास समाज में व्याप्त हुआ। इस संबंध में विद्वानों ने अपने–अपने अभिमत दिए हैं– डा0 कामिल बुल्के लिखते हैं– ''राम एक क्षत्रिय जाति के नेता थे, जो अपने महत्कार्यों द्वारा चारणों एवं कवियों की वाणी से गौरवान्वित होकर, क्रमशः एक राष्ट्रीय नेता के रूप में सम्पूजित होने लगे और अन्ततोगत्वा उनकी परिणति मानव–मनीषा द्वारा निरूपित महत्तम सत्ता अर्थात पूर्ण–परब्रह्म में हो गई।''2

---

1. राम कथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 134
2. रामकथा – उत्पत्ति और विकास – डॉ0 कामिल बुल्के – पृ0 138

गोस्वामी तुलसीदास के राम निम्न सद्गुणों से सम्पन्न हैं–

शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, बल, विवेक, दम, परहित, क्षमा, कृपा, समता, ईश्वर भक्ति, वैराग्य, सन्तोष, दान, प्राज्ञबुद्धि, वर–विज्ञान, निर्मल–अचल मन, शम–दम, यम–नियम, विप्र तथा गुरूपूजा (रामचरित मानस– 6/80–5–10)

डा0 राजूरकर लिखते है कि– "राम के मर्यादा पुरूषोत्तमत्त्व का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोग हुआ है। आदर्श शिष्य, आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श मित्र, आदर्श सेनाध्यक्ष, आदर्श राजा, इतना ही नहीं, आदर्श शत्रु के रूप में भी राम विकसनशील जीवन के आदर्श, अपूर्व एवं अनन्य साध्य हैं।"1

महर्षि बाल्मीकि ने उनके आदर्श चरित्र का अवलोकन कर सत्य ही कहा था–

"तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामः सत्यपराक्रमः।।"2

अर्थात् ऊँचे प्रासादों से भी ऊँचा झण्डा होता है उसी प्रकार राम का चरित्र श्रेष्ठ चरित्रों से भी सर्व श्रेष्ठ है। उनके चरित्र में भावना की कोमलता भी है और कर्तव्य की कठोरता भी, किंतु धर्मज्ञ राम ने कर्तव्य को भावना से अधिक महत्त्व दिया। बाल्यकाल से उनके राजसिंहासनारूढ़ होने तक का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने किया है उसी के आधार पर हम उनके चरित्र में धर्म की प्रवाहिता का अवलोकन करेंगे।

श्री राम बाल्यावस्था से ही शिष्टाचार जानते थे–

"प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा।।

आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।।"3

---

1. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 142
2. बाल्मीकि रामायण – 1/16–19
3. रामचरित मानस – 1/205–7, 8

वेद कहता है–"**मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव।**"1 गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी वेद वाक्य का अनुमोदन करते हुए लिखा है कि राम सर्वप्रथम अपनी माता को फिर पिता को तत्पश्चात आचार्य वशिष्ठ को प्रणाम करके अन्य कार्य करते थे। वेद में पिता तथा आचार्य का स्थान माता के बाद बतलाया गया है।

राम में सनातन शिष्य धर्म–

गुरु विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षा हेतु जाते हुए जब राक्षसी ताड़का क्रुद्ध होकर उन पर झपटी तब स्त्री को अबध्या मानने वाले राम ने गुरु की आज्ञा पाकर उसे एक ही वाण से मार डाला। बाल्मीकि रामायण के अनुसार राम ताड़का वध करते समय लक्ष्मण से कहते हैं–"**न ह्येनामुत्सहे हन्तुं स्त्री स्वभावेन रक्षिताम्।**"2 अर्थात् स्त्री स्वभाव से ही रक्षा करने योग्य हैं अतः इसके मारने में मुझे उत्साह नहीं है किन्तु–

"**गो ब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च।**
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः।।"3

अर्थात् गो, ब्राह्मण एवं समस्त विश्व के हित तथा साधु जनों की आज्ञा के लिए मैं सहर्ष तत्पर हूँ।

राम की गुरुभक्ति अप्रतिम थी गुरु विश्वामित्र तथा वशिष्ठ दोनों के प्रति पूर्ण समर्पित शिष्य थे। गुरु के लिये पूजा की सामग्री एकत्र करना, उनकी नित्य चरण सेवा करना तथा गुरु से पहले सोकर जागना उनका नियम था

---

1. तैत्तिरीय उपनिषद – 1/11
2. बाल्मीकि रामायण – 1/26/12
3. बाल्मीकि रामायण – 1/26/5

"मुनिवर सयन कीन्ह तब जाइ। लगे चरन चापन दोउ भाई।।

बार बार मुनि आग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही।।"

"गुर ते पहले जगत पति जागे राम सुजान।।"1

शिवधनुष भी उन्होंने गुरु का आदेश प्राप्त होने के पश्चात ही भंग किया था–

"उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा।।

सुनि मुनि वचन चरन सिरु नावा। हरष विषाद न कछु उर आवा।।

ठाड़े भये उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुवा मृगराजु लजाएँ।।"

यहाँ पर राम के अनेक गुण स्पष्ट होते हैं जैसे विनम्रता, तितिक्षा अर्थात् समता अत्यधिक हर्ष के समय या दुख के समय भी वे सहज ही रहते थे यही उनका स्वभाव था। जब उन्हें युवराज पद मिलने वाला था तब भी वे प्रसन्न नहीं हुए थे। बल्कि उन्हें इस बात का खेद था कि जब सभी भाइयों का जन्म, भोजन, शयन, संस्कारादि एक साथ हुए तो किसी एक का राज्याभिषेक कैसे उचित है–

"बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।"2

राम की गुरु भक्ति के अनेक प्रसंग रामचरित मानस में मिलते हैं। किंतु सबसे अधिक हृदय स्पर्शी प्रसंग है जब राम, रावण का वध कर अयोध्या लौटते हैं स्वागत के लिये अनेक ऋषि मुनियों सहित वशिष्ठ–वामदेव आदि खडे हैं गुरुजनों के देखते ही राम अपने धनुष वाण पृथ्वी पर रखकर उनके चरण पकड़ लेते हैं–

"बामदेव वसिष्ठ मुनि नायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।।

धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तरोरुह।।"3

---

1. रामचरित मानस – 1/226–3, 5
2. रामचरित मानस – 2/10–7
3. रामचरित मानस – 7/5–2, 3

कुशल–क्षेम पूछने पर शील निधान राम कहते हैं कि गुरुदेव आपकी दया में ही हमारी कुशल है– **"भेंट कुसल पूँछी मुनि राया। हमरे कुसल तुम्हारिहिं दाया।।"1**

राम में सनातन पुत्र–धर्म–

वेद का निम्न कथन राम के जीवन में अक्षरशः उद्‌घाटित होता है–

"अनुव्रतः पितुःपुत्रो मात्रो भवतु संमना।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मास्वसारमुतस्वसा।

समयञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।"2

अर्थात् पुत्र को पितृव्रत का और माता की आज्ञा का पालन करना चाहिए, पत्नी को पति से मधुर वाणी में बोलना चाहिए। भाई को भाई से तथा बहन को बहन से विद्वेष नहीं करना चाहिए। परस्पर प्रेम पूर्वक समान–व्रत धारण कर भद्र वाणी बोलना चाहिए। बाल्मीकि रामायण के अनुसार– राम ने पिता के वचन को पूरा करने के लिए अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए माता कैकेई को आश्वासन दिया था कि–

"अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके।।

भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।

नह्यतो धर्मचरणं किञ्चदस्ति महत्तरम्।

यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचन क्रिया।।"3

मैं महाराज की आज्ञा से आग में कूद सकता हूँ, तीव्र विषपान कर सकता हूँ और समुद्र में कूद सकता हूँ क्योंकि पिता की सेवा और आज्ञा पालन मेरे लिये संसार का

---

1. रामचरित मानस – 7/5–4
2. अथर्व वेद – 3/30–2–3
3. बाल्मीकि रामायण – 2/18–28, 29–2/19/22

सबसे बड़ा धर्म है।

राम की मातृ–पितृ भक्ति और भ्रातृ प्रेम की स्वयं कैकई ने प्रशंसा की है–

"तुम्ह अपराध जोग नहिं ताता। जननी जनक बन्धु सुखदाता।।

राम सत्य सब जो तुम्ह कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू।।"1

लक्ष्मण के मन में वन के कष्ट सहते देख राम और सीता के प्रति करुणा तथा पिता दशरथ के प्रति क्रोध का भाव आ जाता था जिसकी अभिव्यक्ति करने पर राम उन्हें इस प्रकार शांत करते थे–

"पिता जिस धर्म पर यों मर रहे हैं,

नहीं जो इष्ट, वह भी कर रहे हैं,

उन्हीं कुल केतु के हम पुत्र होकर

करें राजत्व, क्या हम धर्म खोकर"2

पिता की मृत्यु भी उन्हें कर्तव्य (धर्म) पथ से डिगा नहीं सकी–

"नृप कर सुर पुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।।

मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी।।"3

अर्थात् परम धैर्यवान राम पिता का मरण सुनकर अत्यन्त दुखी हो गये। यद्यपि राम साक्षात प्रेम और करूणा की मूर्ति थे किंतु लेशमात्र भी मोह से ग्रसित नहीं थे।

राम में सनातन पति धर्म–

श्री राम ने स्वप्न में भी परस्त्री का चिंतन नहीं किया जीवन के अंत तक उन्होंने जानकी जी के सिवा किसी दूसरी स्त्री का वरण नहीं किया। डॉ0 राजूरकर लिखते

---

1. रामचरित मानस – 2/43–3, 4
2. साकेत – मैथिली शरण गुप्त – पृ0 79–80
3. रामचरित मानस – 2/247–3, 4

हैं–"यद्यपि जीवन के सारे आदर्श पक्ष राम की आदर्श चर्या में व्याप्त थे, तथापि वे आदर्श पति थे, यह कहने में अधिकतर संकोच का अनुभव करते हैं। राम द्वारा सीता का परित्याग प्रसंग स्मरण आते ही साध्वी सीता का दुखपूर्ण जीवन आँखों के सामने आता है ऐसी दशा में उन्हें आदर्श पति कैसे कह सकते हैं?"1

मेरे विचार से राम के सम्पूर्ण जीवन चरित्र पर दृष्टि डालने पर उनके जीवन में अनेक बार ऐसा धर्म संकट आया जब उन्हें भावना और कर्तव्य में से किसी एक का चुनाव करना पड़ा और हर बार उन्होंने स्वयं को कर्तव्य के कठोर पथ पर ही अग्रसर किया। वे जानते थे कि सीता परम पवित्र है अग्नि परीक्षा में यह सिद्ध हो चुका था किंतु उनकी प्रजा के अंतर्मन में सीता के प्रति संदेह का अंकुर है यह जानकर उस समय उनके राज धर्म ने सीता–त्याग का निर्णय ले लिया। गोस्वामी तुलसीदास कहते है कि राम के समान धर्म और नीति का यथार्थ ज्ञाता इस संसार में कोई नहीं–

"नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सन जान जथारथु।।"2

सीता पर राम का अतिशय प्रेम था। अपहरणोपरान्त उनके वियोग मे राम की व्याकुलता इसका प्रमाण है 3 तथा वन गमन से पूर्व चलने की हठ पर सीता को वन की कठोरता बतलाना तथा धर्म का उपदेश देना उनका पति धर्म स्पष्ट करता है–

"राजकुमार सिखावन सुनहू। आनभाँति जियँ जनि कछु गुनहू।।
आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मनि गृह रहहू।।
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनी भवन भलाई।।
एहि ते अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा।।"4

1. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 152
2. रामचरित मानस – 2/254–5
3. रामचरित मानस – 3/29 (ख) 4, 5
4. रामचरित मानस – 2/61–2–5

श्री राम ने पत्नी को मात्र उपदेशित ही नहीं किया बल्कि उनकी इच्छा–अनिच्छा का भी विशेष ध्यान रखा। यद्यपि राम की दृष्टि में उस समय सीता का कर्तव्य सास–ससुर की सेवा करना था तथापि उन्होंने सीता के प्रेम की व्याकुलता को जान कर संग चलने की अनुमति दे दी–

"देखि दसा दघुपति जियँ जाना। हठि राखे नहिं राखहिं प्राना।।

कहेउ कृपालु भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु वन साथा।।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई।।"1

श्री राम ने विवाह के पश्चात् एक पत्नीव्रत लिया था– **"एक पत्नीव्रत धरो राजर्षिचरितः शुचिः।।"2** आनन्द रामायण में राम स्वयं कहते हैं कि सीता को छोड़कर सभी नारियाँ उनके लिये माता कौशल्या के समान हैं–

"अन्यसीतां विनाऽन्या स्त्री कौशल्या सदृशी मम।।

न क्रियते परा पत्नी मनसाऽपि च चिंतये।।"3

राम ने अपने इस व्रत से यह आदर्श स्थापित किया कि जिस प्रकार शास्त्रों में पतिव्रत्य का विधान स्त्री जाति के लिये है उसी प्रकार पुरूषों के लिए एक पत्नी व्रत का विधान होना चाहिए।

एक ओर राजधर्म के निर्वहन के लिए उन्होंने सीता का त्याग किया तो दूसरी ओर अश्वमेघ यज्ञ हेतु सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाकर यह भी सिद्ध किया कि परम पवित्र सीता को उनके हृदय में पत्नी का स्थान प्राप्त है–

---

1. रामचरित मानस – 2/67–2, 3, 5
2. श्रीमद् भागवत् पुराण – 9/10/55
3. आनंद रामायण – विलास काण्ड सर्ग 7/13

"न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।

यज्ञे–यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी कांचनी भवत्।।"1

"राम चन्द्रिका के अनुसार राम ने सीता त्याग के पाप के प्रायश्चितस्वरूप अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन किया था।"2

राम जानते थे कि सीता का त्याग करना उनकी अन्तरात्मा के अनुकूल नहीं है फिर भी उन्होंने प्रजा के लिए सीता का त्याग कर दिया। सीता के प्रति राम के दिव्य प्रेम का एक प्रमाण रामचरित मानस मे मिलता है– राम–रावण युद्ध के समय त्रिजटा सीता के पास जाकर रावण के शीशों और भुजाओं के कटने पर भी न मरने की बात कहती है तब सीता उदास हो जाती है–

"मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता।।

होइहि कहा कहसि किन माता। केहि विधि मरिहि विस्व दुखदाता।।"3

त्रिजटा परम विदुषी थी उसने सीता को समझाया और रावण के न मरने का कारण सीता को इस प्रकार बतलाया–

"कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर लागत सर मरइ सुरारि।।

प्रभुताते उर हतइ न तेही। एहि के ह्रदय बसति बैदेही।।"4

राम यदि रावण के ह्रदय मे बाण मारें तभी रावण मर सकता है किंतु रावण ने

---

1. बाल्मीकि रामायण – (डॉ0 कामिबुल्के की पुस्तक रामकथा उत्पत्ति और विकास में पृ0 617 पर उद्धृत)
2. बाल्मीकि रामायण – (डॉ0 कामिबुल्के की पुस्तक रामकथा उत्पत्ति और विकास में पृ0 619 पर उद्धृत)
3. रामचरित मानस – 6/99/3, 4
4. रामचरित मानस – 6/99/12, 13

हृदय में जानकी को बसा लिया है इसलिये वे हृदय का भेदन नही कर रहे। सिरों और भुजाओं के बार–बार काटे जाने पर जब वह व्याकुल हो जाएगा। और उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान छूट जाएगा तब वे उसके हृदय में बाण मारेंगे–

"कटत सिर होइहि विकल छुट जाइहि तब ध्यान।

तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं राम सुजान।।"1

राम स्वयं सीता से अपने दिव्य प्रेम की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं–

"तत्त्व प्रेम का मम अरुतोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा।।

सो मन रहत सदा तोहि पाही। समझ प्रीति रस एतनेहिं माहीं।।"2

अर्थात् तुम्हारे और मेरे प्रेम का तत्त्व यही है कि मुझमें और तुममें कोई भिन्नता नहीं है। जहाँ तुम हो वहाँ मैं हूँ जहाँ मैं हूँ वहीं तुम हो।

राम में सनातन भ्रातृ धर्म–

राम का भ्रातृ धर्म अतुलनीय था। परिवार में बड़े भाई का छोटे भाइयों के प्रति क्या धर्म होना चाहिए यह सब राम ने अपने आचरण से सिद्ध कर दिया। अपने तीनों भ्राताओं से उनका अतिशय प्रेम था–

"राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।।"3

यहाँ पर नीति सिखाने का तात्पर्य है कि वे स्वयं उन धर्म नीतियों का आचरण करते थे फिर अपने अनुजों को सिखाते थे।

भरत के लिए राज सिंहासन का वरदान सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न होकर कहते

---

1. रामचरित मानस – 6/99
2. रामचरित मानस – 5/15–6, 7
3. रामचरित मानस – 7/25–3

हैं–

"भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू।।

जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।"1

राज्य के लिए भरत से युद्ध को तत्पर लक्ष्मण से राम कहते हैं–

"यद द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां व क्षये भवेत्।

नाहं तत् प्रतिगृहणीयां भक्ष्यवाविष्कृतानिवे।।"2

अर्थात् अपने बन्धु बांधवों या मित्रों का विनाश करने से जिस धन की प्राप्ति हो, वह तो विष–मिश्रित भोजन के समान सर्वथा त्याज्य है मैं उसे कदापि ग्रहण नहीं करुँगा। उन्हें भरत पर द्रढ़ विश्वास है जिसका विश्वास वे लक्ष्मण को दिलाते हुए कहते हैं–

"भरतहि होइ न राज मद विधि हरि हर पद पाइ।

कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिन साई।।"

भरत को यदि ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद भी मिल जाए तब भी उसके चित्त में अहंकार नहीं आ सकता। तात्पर्य यह है कि सभी जगह जहाँ मतभेद और बिघटन हो सकता था अपनी सूझ–बूझ से राम ने सबको एक सूत्र में बाँधकर रखा। बाल्मीकि जी के अनुसार लक्ष्मण उनके बहिर्गामी दूसरे प्राण थे–

"लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो वहिः प्राणः इवापरः।

न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।।

मृष्टमन्नमपि पुमानो तमश्नाति नहि तं बिना।।"3

---

1. रामचरित मानस – 2/42–1, 2
2. बाल्मीकि रामायण – 2/97/4
3. बाल्मीकि रामायण – 18/30, 31

राम को लक्ष्मण के बिना नींद नही आती थी उत्तम भोजन भी वे बिना लक्ष्मण के नहीं खाते थे। लक्ष्मण का त्याग (काल को दिये वचनानुसार) करने की नौवत आने पर राम ने स्वयं अपने प्राण भी त्याग दिये थे। क्योंकि उनका मानना था कि पुत्र, धन, भवन, स्त्री, परिवार तो पुनः प्राप्त हो सकते हैं किंतु सहोदर भ्राता दूसरी बार नहीं मिलता–

"सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।

अस बिचारि जियँ जागहु भ्राता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।"[1]

शत्रुघ्न से भी उनका अत्यन्त स्नेह था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे एक ही आत्मा के चार अंश हों यदि अवतारवाद की दृष्टि से देखा जाए तो यह सत्य भी है। वरदान देते समय भगवान नारायण कश्यप–अदिति (मनु–शतरूपा) से कहते हैं–**"अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता।।"**[2]

राम में सनातन मित्र धर्म–

राम जितने श्रेष्ठ भ्राता थे उतने ही श्रेष्ठ मित्र भी थे। राम ने जिन्हें अपने मित्र का स्थान दिया है वे तीन व्यक्ति हैं– 1. निषादराज गुह 2. वानर राज सुग्रीव तथा 3. राक्षस राज विभीषण। रामचरितमानस में राम–गुह मैत्री बनवास के समय होती है, किंतु कृत्तिवासी रामायण में गुह और राम का बचपन से प्रेम था आदि कांड के अंतर्गत दो प्रसंगों में ऐसा वर्णित है कि निषादाराज गुह पूर्वजन्म में वशिष्ठ पुत्र वामदेव था जो पिता द्वारा शापित होने के कारण चांडाल हो गया था–

---

1. रामचरित मानस – 6/61–7, 8
2. रामचरित मानस – 1/152–2

"मोर पुत्र हैया तोर अज्ञान विशाल

दूर हरे वामदेव हवि रे चंडाल"1

अयोध्या कांड में गुह रूप में जब वह बालक राम के दर्शनार्थ अयोध्या आता है तब उसके हृदय का प्रेम समझकर राम लक्ष्मण द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित कराकर उसके साथ मैत्री कर लेते हैं"2 इस मैत्री को राम जीवन पर्यन्त निभाते हैं। राम–सुग्रीव मैत्री आपत्तिकाल में होती है, दोनों समान दुखों से पीड़ित थे। अग्नि को साक्षी मानकर राम ने सुग्रीव को मित्र बनाया तथा पहले मित्र का दुख दूर करने का आश्वासन दिया–

"सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब विधि घटब काज मैं तोरे।।"3

राम के अनुसार तो मित्र का धूल समान दुख पर्वत के समान तथा अपना पर्वत के समान दुख भी धूल के समान जो जाने वही सच्चा मित्र है।

"निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।।"4

विभीषण शत्रु का भाई है यह जानकर राम कहते हैं कि वह मित्रभाव से आया है अतः सर्वथा त्याज्य नहीं है–

"मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।

दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतद गर्हितम्।।"5

---

1. कृत्तिवासी रामायण – आदिकाण्ड पृ0 43
2. कृत्तिवासी रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ0रमानाथ त्रिपाठी – पृ0 175
3. रामचरित मानस – 4/7–10
4. रामचरित मानस – 4/7–2
5. बाल्मीकि रामायण – 6/18/3

राम में सनातन राज धर्म–

आनन्द रामायण में राम द्वारा उपदिष्ट राजा के सनातन धर्म वर्णित हैं जिनका श्री राम ने स्वयं अपने जीवन में अक्षरशः पालन किया–

"अनृतं नैव वक्तव्यं नृपेण चिरजीविना।।

सत्यं शौचं दया क्षान्तिरार्जवं मधुरं वचः।

द्विजगोयतिसद्भक्तिः सप्तैते शुभदा गुणा।।"1

1. सत्य 2. पवित्रता (वाह्याभ्यन्तर) 3. दया

4. क्षमा 5. स्वभाव में कोमलता 6. मधुर वाणी

7. गो–ब्राह्मण, संत सज्जनों पर श्रद्धा।

ये सात गुण राजा के लिए शुभकारी तथा ग्राह्य हैं। सनातन राज धर्म की दृष्टि से निम्नलिखित सात दुर्गुण अग्राह्य हैं एवं राजधर्म–विघातक हैं–

"निद्रालस्यं मद्यपानं द्यूतं वाराङ्गनारतिः।

अति क्रीडाऽतिमृगया सप्त दोषा नृपस्य च"2

1. अति निद्रा 2. आलस्य 3. मद्यपान 4. जुआ

5. वेश्यागमन 6. अति क्रीडा (खेलकूद) 7. अतिमृगया

इसके अतिरिक्त राजा का यह प्रधान धर्म है कि वह प्रजा का पालन पुत्र के समान करे–

"पुत्रवत पालनीयाश्च प्रजा नृपतिना भुवि"3

---

1. आनन्द रामायण – राज्यकाण्ड 16/4, 6
2. आनन्द रामायण – राज्यकाण्ड 16/7
3. आनन्द रामायण – राज्यकाण्ड 16/8

राजसिंहासन पर आरूढ़ होने से पूर्व राक्षसों का दमन राम का वेद प्रतिपादित राजधर्म था–ऋग्वेद कहता है–

"इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्।

शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्यानिः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्।।"1

अर्थात् सुराज तभी सम्भव है जब ओज और शक्ति की सहायता से राक्षसी प्रवृत्तियों का दमन किया जाए। तात्पर्य यह है कि एक राजा के अंदर जब राक्षसी प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जायें तभी वह सुन्दर, समृद्धिशाली राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

राजधर्म के लिये सीता के त्याग में भी राम की जनमत आदर की भावना छिपी है। वेद कहता है–

"दृते दृग्वंह मा मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्यहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।"2

सनातन धर्म में सुराज्य की परिकल्पना–

वैदिक धारणानुसार राजा को अपने क्षुद्र स्वार्थों को त्यागकर समस्त जन समूह, प्रजाजनों की इच्छाओं, आकांक्षाओं, आदर्शों का आदर कर तदनुकूल आचरण करना चाहिए। अर्थात् जनमत पर आधारित राज सत्ता ही आदर्श है। इसी का अनुकरण करते हुए राम अपनी प्रजा के मत का विशेष ध्यान रखते थे–

---

1. ऋग्वेद – 1/80/1
2. यजुर्वेद – 36/18

"एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए।।

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहुं न कछु ममता उर आनी।।

नहिं अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहिं सोहाई।।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।"[1]

राम प्रजा को उपदेश भी देते हैं और उसे मानने का निर्णय उन्हीं पर छोड देते हैं। तथा प्रजाजनों से भयमुक्त होकर टोकने की बात भी कहते हैं। ऐसे विनम्र राजा पर प्रजा मर मिटती है। इसी विनयशीलता के कारण राम प्रजारञ्जक कहलाये। तथा उनका समस्त अनुशासन उनकी प्रजा ने शिरोधार्य किया–

"राम राज बैठे त्रैलोका हरषित भये गये सब सोका।।

बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।

चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।"[2]

वेद प्रतिपादित सु+राज्य–निर्माण के प्रयोजन से सनातन राम द्वारा वन गमन–राक्षसों का विनाश–ब्राह्मण, संत समाज का कष्ट निवारण हो सका है।

"निसिचर हीन करौं मही भुज उठाइ पनु कीन्ह।

सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्हि।।"[3]

आनंदरामायण के अनुसार राजा के लिये निर्धारित समस्त सद्गुणों का विकास–शौर्य, धैर्य, क्षमा, शरणागत रक्षण, दया, दम–शम, सत्य आदि। जनमत का आदर सीता त्याग

---

1. रामचरित मानस – 7/43–1, 3, 4, 5, 6
2. रामचरित मानस – 7/20–8, 7
3. रामचरित मानस

तथा पुत्रवत स्नेह के पालन के लिए सनातन राम अश्वमेघ यज्ञ के समय लक्ष्मण से कहते हैं–

"अयोध्यां कामधेनुं च जानकीं कौस्तुभं मणिम्।

चिन्तामणिं पुष्पकं च राज्यं कोशादिकं च मे।।

एतेष्वपि च यो यद्वै याचयिष्यति तत् त्वया।।

न दत्तं चेति वै श्रुत्वा ममातोषो भवेत् त्वयि।।"1

मेरा सर्वस्व (अयोध्या, कामधेनु कौस्तुभमणि, जानकी, चिंतामणि, पुष्पक विमान, राज्य तथा कोष इस यज्ञ में आए हुए ऋषि, मुनि, राजागण, ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थी, सन्यासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि की याचना पर देने का तुम्हें आदेश देता हूँ। किसी की भी याचना पूर्ण न होने पर तुम्हें मेरा असन्तोष प्राप्त होगा।

ऐसी उदारता देखकर सारा ब्रह्माण्ड उन्हीं के प्रेम में रंग गया अर्थात वे समस्त लोकों के अधिपति हो गये–

"भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।

भुअन अनेक रोम प्रतिजासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।।"2

बाल्मीकि रामायण के अनुसार राम ने दस बार अश्वमेघ यज्ञ कियें और विश्व विजयी राजा हुए।3

---

1. आनन्द रामायण – यागकाण्ड – 2/59–60
2. रामचरित मानस – 7/22–1, 2
3. डॉ0 कामिल बुल्के (रामकथा उत्पत्ति और विकास) पृ0 617

राम में सनातन गृह धर्म–

समस्त पृथ्वी के एक अधिपति राम एक आदर्श परिवार के मुखिया भी थे। सेवक सेविकाओं पर उनका अतिशय प्रेम तथा दया दृष्टि थी। माताओं तथा भाइयों के साथ प्रेम पूर्वक सुखों का उपभोग करते थे। बड़ों के प्रति सेवा भाव तथा बड़ों के प्रति श्रद्धा भाव था–

"सेवहिं सानुकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई।।

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।।

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं।।"1

श्री राम प्रातः काल सरयू में स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभा में बैठते तथा वेद पुराण सुनते–

"प्रातकाल सरयू करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन।।

वेद पुरान वसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।।"2

सेवक पर तो राम विशेष प्रीति रखते थे–

"सबके प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती।।"3

सेवक के प्रति कृतज्ञता व्यक्तकर अपने हृदय की विशालता का परिचय देते थे–

"तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरुनाए।।

तुम्ह अति कीन्ह मोरि सेवकाई। मुख पर केहि विधि करौं बड़ाई।।

ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। ममहितलागि भवन सुख त्यागे।।"4

---

1. रामचरित मानस – 7/25–1, 3/26/3
2. रामचरित मानस – 7/26–1, 2
3. रामचरित मानस – 7/16–7
4. रामचरित मानस – 7/16–2, 3, 4

वे परिवार के मुखिया थे जो मुख के समान होता है। तुलसीदास जी कहते है–

"मुखिया मुख सो चाहिए। खान पान सम एक।

पालै पोसै सकल अंग। तुलसी सहित विवेक।।"

जिस प्रकार भोजन मुख से ग्रहण किया जाता है किंतु पोषण सारे शरीर का होता है उसी प्रकार परिवार के मुखिया को परिवार के सभी सदस्यों का पोषण करना चाहिए। राम ने सदैव परिवार में सामञ्जस्य बनाकर रखा। राम का सभी माताओं के प्रति समान भाव था। "बाल्मीकि रामायण के अनुसार तीनों रानियाँ परस्पर सपत्नी द्वेष भाव रखती थी। कैकई के प्रति राजा दशरथ की विशेष अनुरक्ति ने कैकई को स्वेच्छाचारी बना दिया था परिणामतः कौशल्या और सुमित्रा को अपमान और पति की उपेक्षा सहन करनी पड़ती थी। कौशल्या राम से अपनी पीड़ा बतलाती कभी–कभी लक्ष्मण भी भावावेश में विमाता के लिये कटूक्तियों का प्रयोग करते थे। ऐसी परिस्थिति में राम का व्यवहार सदैव सौम्य रहता था"1 वे कैकई को अपनी माता के समान ही आदर देते थे, इसीलिए कैकई का स्नेह भी उन्हें प्राप्त था। राजा दशरथ राम के लिए वनवास माँगते समय आश्चर्य चकित होते हुए कहते हैं–

"तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू।।

जासु सुभाउ अरिहु अनुकूला। सो किमि करिहिं मातु प्रतिकूला।।"2

राजा दशरथ ने सत्य कहा था कि राम का स्वभाव शत्रु का भी हित चाहने वाला है। युद्ध से पूर्व अंगद को लंका भेजकर रावण को समझाने का प्रयत्न करते हैं–

"काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई।।"3

---

1. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 154 से
2. रामचरित मानस – 2/32–6, 8
3. रामचरित मानस – 6/27–8

एक अन्य प्रसंग में युद्ध करते समय रावण मूर्छित हो जाता है, शस्त्र विहीन शत्रु पर राम प्रहार नहीं करते।"1 ऐसा करके वे सिद्ध करते हैं कि धर्म युद्ध लड़ने पर विजय होती है–

"प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिं चरराज लंकाम्।

आश्वस्य निर्याहि रथी चधन्वी। तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः।।"2

रावण वध के पश्चात विभीषण रावण का अन्त्येष्टि संस्कार करना नहीं चाहता पर श्री राम कहते हैं–

"मरणान्ति वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।

क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।"3

अर्थात् मरने के बाद वैर का अंत हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन भी सिद्ध हो गया है अतः इसका दाह संस्कार करो। यह है राम की धर्म युद्ध नीति शत्रु को भी स्वजनों की भाँति स्वरूप में लीन कर लेते हैं–

"तासु तेज समान प्रभु आनन।

हरषे देखि संभु चतुरानन।।"4

लक्ष्मण के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

जिस प्रकार लक्ष्मण से भिन्न राम का चरित्र अधूरा हैं उसी प्रकार राम से भिन्न लक्ष्मण का चरित्र भी अपूर्ण है–

---

1. कृत्ति वासी रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ0 रमानाथ त्रिपाठी – पृ0 207 से
2. बाल्मीकि रामायण – 6/59/143
3. बाल्मीकि रामायण – 6/109/25
4. रामचरित मानस – 6/103–9

"लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।

गुरू वसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।"1

बाल्यावस्था से ही लक्ष्मण राम के अनुगामी तथा सेवक थे–

"बारेहि ते निज हितपति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी।।"2

राम के व्यक्तित्व को पूर्णता जिस प्रकार सीता से मिलती है उसी प्रकार लक्ष्मण भी राम से अभिन्न है। अतः जो विशेषता राम में है वही लक्ष्मण में भी है। लक्ष्मण में कुछ अधीरता, उग्रता अवश्य है, किन्तु राम के सान्निध्य में रहने के कारण उनकी उग्रता का आवेग शीघ्र ही शांत हो जाता था।

डॉ0 राजूरकर के अनुसार "लक्ष्मण वस्तुतः घटना, व्यापार तथा चारित्रिक विशेषताओं की दृष्टि से रामकथा का दूसरा नायक ही है, परन्तु नायकोचित लक्ष्मण का चरित्र राम के नायकत्व में लीन होने के कारण उसे उपनायक माना जा सकता है।"3 लक्ष्मण के व्यक्तित्व में शील, सौन्दर्य और शक्ति तीनों का सामञ्जस्य राम के ही समान था–

"रामु लखन दोउ बंधुवर रूप सील बल धाम।।"4

तुलसी दास तो यहाँ तक कहते है कि ब्रह्म और जीव की भाँति परस्पर प्रेम में आबद्ध हैं–

"इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि।।

सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।।"

---

1. रामचरित मानस – 1/197
2. रामचरित मानस – 1/198–1
3. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 200
4. रामचरित मानस – 1/216

जिस प्रकार ब्रह्म का अंश होने के कारण जीव का उससे स्वाभाविक अनुराग होता है उसी प्रकार लक्ष्मण अपने (अंशी) राम से अनुरक्त थे।

लक्ष्मण ने अपना सम्पूर्ण शील, बल और सौन्दर्य राम के लिये विसर्जित कर दिया। डा० माता प्रसाद गुप्त लिखते हैं– "व्यक्तित्व विसर्जन का ऐसा उदाहरण भारतीय साहित्य में कदाचित् विश्व साहित्य में भी दुर्लभ है।" बाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण के धर्मनिष्ठ आचरण तथा स्वभाव का परिचय देती हुई सीता कहती हैं–

"सुजश्च सर्व रत्नानि प्रिया याश्च वरांगनाः।।

ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभः।

पितरं मातरं चैव सम्मान्यापिप्रसाद्य च।।

अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः।

आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम्।।

अनुगच्छति काकुस्थं भ्रातरं पालयन् वने।

सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः।।

पितृवद् वर्तते रामे मात्रवन्मां समाचरत्।

ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः।।

वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवान्शक्तो न बहुभाषिता।

राजपुत्र प्रिय श्रेष्ठः सदृशः श्वसुरस्य मे।।

मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः।

नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्धतिवीर्यवान्।।

यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरत्।।"[1]

---

1. बाल्मीकि रामायण – सुन्दरकाण्ड – 38/54–61 (गीताप्रेस संस्करण)

अर्थात्–

विशाल भूखण्ड में जिसका मिलना कठिन है ऐसे उत्तम ऐश्वर्य तथा मनोहारी स्त्रियों का भी परित्याग कर तथा माता–पिता को सम्मान सहित राजी कर जो राम के साथ वन चला आया जिसके कारण सुमित्रा को उत्तम सन्तान वाली कहा जाता है, जिसका चित्त सदा धर्म में लगा रहता है। जो सर्वोत्तम सुख को त्यागकर वन में बड़ेभाई राम की रक्षा करता हुआ सदा उनके अनुकूल चलता है सिंह के समान कंधे तथा विशाल भुजाओं वाला जो देखने में प्रिय लगता है और जो सदैव अपने मन को वश में रखता है। जिसका राम के प्रति पितृवत तथा मेरे प्रति मातृवत भाव रहता है गुरूजनो की सेवा में संलग्न रहने वाला शोभाशाली, शक्तिमान तथा मितभाषी है। राम का सर्वाधि क प्रिय तथा जो श्वसुर (दशरथ) के समान पराक्रमी, जो प्रत्येक कार्यभार का निष्ठापूर्वक निर्वाह करता है जिसे देखकर राम अपने मृत पिता को भूल जाते हैं वह लक्ष्मण **"मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः"**1 सदा कोमल तथा पवित्र है इसी लिये प्रियो रामस्य लक्ष्मणः। राम को परम प्रिय है।

प्रस्तुत उद्धरण से लक्ष्मण में सनातन धर्म की प्रतिष्ठा का उद्‌घाटन होता है और धर्म के दस सनातन लक्षण भी प्रकट होते है। लक्ष्मण में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, धीरता (घृति), वीरता (दम), तेजस्विता, पराक्रम (विद्या), इन्द्रियजयिता (इन्द्रियनिग्रह), सत्यता, समर्पण, शुचिता (पवित्रता) और त्याग तप, व्रत आदि अनेक सद्‌गुण विद्यमान थे। इन सभी गुणो को हम दो रूपों में प्रमाणित करेंगे–

1. लक्ष्मण का सामान्य सनातन धर्म
2. लक्ष्मण का विशिष्ट सनातन धर्म

---

1. बाल्मीकि रामायण – सुन्दरकाण्ड – 38/62

1. लक्ष्मण का सामान्य सनातन धर्म–

पूर्व में जिन गुणों का उल्लेख किया गया वे धर्म के सामान्य (सबके लिए पालनीय) सनातन धर्म हैं।

धीरता– राम लक्ष्मण के विषय मे कहते हैं–

"स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्यपथे स्थितः।"1

अध्यात्म रामायण में ऐसा वर्णित है कि मेघनाथ को वही मार सकता है जिसने बारह वर्ष तक भूख, निद्रा तथा स्त्रीसंग पर विजय प्राप्त की हो–

"यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः।।

तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मनः।"2

राम चन्द्रिका के अनुसार– **"बारह वर्ष छुधा, त्रिया, निद्राजिते होई;"3**

कृत्तिवास रामायण के अनुसार अगस्त्य मुनि राम से कहते हैं कि चौदह वर्ष तक निद्रा, आहार एवं स्त्री त्याग करने वाला व्यक्ति ही मेघनाथ का वध कर सकता था–

दम – **"बहु काले अनाहारे थाकिवे लक्ष्मण।**

एक काले हवे इन्द्रजितेर मरण।।"4

राम के शंका व्यक्त करने पर लक्ष्मण एक–एक कर तीनों (निद्रा, आहार, स्त्री मुखदर्शन) न करने के प्रमाण देते हैं। कम्ब रामायण [5] तथा द्विपद रामायण में निद्रा का

---

1. बाल्मीकि रामायण – 2/31/10
2. अध्यात्म रामायण – युद्ध काण्ड सर्ग 8
3. डॉ0 कामिल बुल्के – रामकथा (उत्पत्ति और विकास) लक्ष्मण संयम पृ0 407
4. कृत्तिवास रामायण – आदि काण्ड/पृ0 73

5–कम्ब रामायण 2/6/51)

मानवीकरण किया गया है–

1. भैया! आपकी और माता जानकी की रक्षा करते समय निद्रा देवी आई थी तब मैने उनसे आपके राज्याभिषेक तक न आने की प्रार्थना की थी।।

शम –

1. आप मुझे फल देते थे किंतु खाने के लिये नहीं कहते थे अतः मैं सभी फल रखता गया खाये नही।" (कृत्तिवास रामायण उत्तरकाण्ड पृ0 7, 2)

2. सीता हरण के पश्चात सुग्रीव द्वारा दिखाये सीता के गहने में नुपुर के अतिरिक्त इसलिये नहीं पहचान सका क्योंकि मैंने कभी उनका मुख नही देखा–

इन्द्रिय निग्रह –

"नाहं जानामि केयुरें नाहं जानामि कुण्डले।

नूपरे त्वभिजानाभि नित्यं पादभिवन्दनात्।।"1

नित्य पद वन्दन करने के कारण नूपुर अवश्य पहचानता था।

संयम –

सेरी रामायण में लक्ष्मण के संयम की कथा इस प्रकार है– "सीता हरण के पश्चात राम सीता के पलंक पर गिर जाते है। लक्ष्मण चालीस दिन तक निद्रा, अन्न तथा स्त्री प्रसंग का त्याग कर राम का सिर गोद में लिये निश्चल बैठे रहते हैं। एक आकाशवाणी लक्ष्मण के इस संयम की प्रशंसा करती है।"2 लक्ष्मण की इन्द्रिय निग्रहता का अद्भुत प्रमाण भावार्थ रामायण में इस प्रकार मिलता है, कि राम एक बार सीता की सुरक्षा लक्ष्मण को देकर समिधा एकत्र करने चले जाते हैं। निद्रामग्न सीता के वस्त्र

---

1. बाल्मीकि रामायण – किष्किंधा काण्ड सर्ग 6/22–23
2. रामकथा (उत्पत्ति और विकास) डॉ0 कामिल बुल्के पृ0 409

अस्तव्यस्त होकर शरीर को अनावृत्त कर रहे थे। लक्ष्मण ने साधना में लीन होकर उस दृश्य की उपेक्षा कर दी राम ने वापस आने पर लक्ष्मण से पूछा कि लक्ष्मणः स्त्री का शरीर देखकर किसका मन स्थिर रह सकता है। लक्ष्मण ने उत्तर दिया– रामभक्त का मन ही इससे प्रभावित नहीं होता।"1

प्रस्तुत प्रमाणों से लक्ष्मण में दृढ़ता, निर्भयता, निष्ठा, सरलता, निष्कपटता संयमशीलता आदि अनेक गुण प्रकट होते हैं।

लक्ष्मण का विशिष्ट धर्म–

राम की अनन्य भक्ति (सेवा, श्रद्धा और प्रेम का संगम) ही लक्ष्मण का सर्वोपरि धर्म था। उनके लिये राम ही माता, पिता, वन्धु, गुरू, सखा थे। वन गमन के समय राम के समझाने पर वे कहते हैं

"गुरपितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पति आहू।।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई।।
मोरे सबइ एक तुम स्वामी। दीन बंधु उर अन्तरजामी।।"2

मेरे सर्बस्व तुम्ही हो यदि तुमने मुझे छोड़ा तो ये प्राण नहीं रहेंगे आप ही बतायें मन वचन और कर्म से जो प्रेम करता हो क्या वह त्यागने योग्य है? लक्ष्मण की ऐसी दीनता और समर्पण भावना देखकर ही राम ने साथ चलने की अनुमति दी थी। लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भ्राता राम से इतना प्रेम करते थे कि तनिक भी उनका अपमान सहन नहीं कर सकते थे। डा0 राजूरकर लिखते हैं कि– "मूल रूप से लक्ष्मण की चारित्रिक विशेषतायें हैं– भ्रातृ प्रेम और उग्र स्वभाव। अत्यधिक भ्रातृ प्रेम के कारण जहाँ–जहाँ राम के हित संकट ग्रस्त होते हैं वहाँ–वहाँ लक्ष्मण उग्र और असंयमित हो जाता है,

---

1. भावार्थ रामायण – अरण्य कांड अध्याय 8
2. अध्यात्म रामायण – अयोध्या काण्ड/51–52

अन्यथा नहीं।"1 राम का किसी प्रकार भी अहित लक्ष्मण की सारी विवेक मर्यादाओं को क्षण भर में नष्ट कर देता था। तब वह पिता, भाई और माता को कटूक्तियाँ ही नहीं कहते थे, बल्कि उनके वध के लिये भी उद्यत हो जाते थे–

"विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः।

नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः।।

प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या सन्तुष्टो यदि नः पिता।

अमित्रभूतां निःसंगं वध्यतां वध्यतामपि।।"2

अर्थात् पिता दशरथ एक तो बूढ़े हैं दूसरे विषयों ने उन्हे वश में कर लिया है अतः कामदेव के वशीभूत मनुष्य क्या नहीं कर सकता? कैकई की बातों मे आकर यदि पिता आपका शत्रु हो गया है तो मेरे विचार से उसका वध कर देना चाहिए।

गोस्वामी तुलसी दास ने लक्ष्मण के मुख से कभी अप्रिय शब्द स्पष्ट नहीं कहलवाये उनके अनुसार मर्यादा पुरूषोत्तम राम के लघु भ्राता के मुख से पिता, माता के लिये ऐसे अनुचित शब्दों का प्रयोग सर्वथा न्यायोचित नहीं था। वे कहते हैं–

"पुनि कछु लखन कही कटुवानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी।।"3

चित्रकूट में भरत का आगमन सुनकर लक्ष्मण उन्हे राजसिंहासन के लोभवश जानकर अत्यन्त क्रोधित होकर भरत के लिये कटुवचन कहते है–

"कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी। जानि राम बनवास एकाकी।।

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू।।"4

---

1. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर पृ0 204
2. बाल्मीकि रामायण – 21/3, 12
3. रामचरित मानस – 2/96–4
4. रामचरित मानस – 2/228–4, 5

क्रोधित होकर लक्ष्मण शत्रुघ्न सहित भरत के वध के लिये तत्पर हो जाते हैं–

"छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जनु जान।

राम निरादर कर फलु पाई। सोबहुँ समर सेज दोउ भाई।।"1

माता कैकई के लिये भी लक्ष्मण ने अपशब्द कहे। किंतु राम के मना करने पर वे कहते हैं–

"खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह,

अनार्या की जनी हतभागिनी यह,

अभीविषदन्त इसके तोड़ दूँगा,

न रोको तुम तभी मैं शांत हूँगा।

बने इस दस्युजा के दास हैं जो,

इधर मैं दास लक्ष्मण हूँ तुम्हारा,

इधर हो जाय चाहे लोक सारा।।"2

राम के स्वाभिमान को कोई ठेस पहुँचाये ये लक्ष्मण को स्वीकार नहीं था जनक की राज–सभा में जनक द्वारा पृथ्वी को वीर विहीन कहे जाने पर वे क्रोधित हो जाते हैं–

"लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले।।

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई।।

कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी।।"3

क्रोधावेश में वे पद की मर्यादा भी भूल जाते थे तब राम उन्हें समझाकर डाँटकर

---

1. रामचरित मानस – 2/229–230–4
2. साकेत 3 – पृ0 77–78
3. रामचरित मानस – 2/254–1, 253–1, 2

शांत करते थे। परशुराम से वाद–विवाद इसी बात का प्रमाण है। तात्पर्य यह है उनके लिये सब कुछ राम थे राम के सिवा वे किसी को नहीं जानते थे–

"तुम्हीं माता पिता हो और भ्राता,

तुम्हीं सर्वस्व मेरे हो विधाता।"1

वन गमन के लिए हठ में राम के बहुत समझाने पर भी कि–

"पिता की ओर देखो हठ न ठानो,"2

"मैं वन जाउँ तुम्हहिं लै साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा।।

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरू तात होइहि बड़ दोषू।।"3

पिता का दुसह्य दुख और अयोध्यावासियों की व्याकुलता दोनो राम के लिये असहनीय थीं अतः वर्हिगामी प्राण होने पर भी वे लक्ष्मण को वन न चलने की आज्ञा देते हैं। किंतु लक्ष्मण कहते हैं–

"न रोकूँगा रहूँगा जो जियूँगा

अमृत जब है पिया विष भी पियूँगा"

मुझे यदि मारना है मार डालो,

निकालो तो न जीते जी निकालो

प्रभो! रक्खो सदा निज दास मुझको।

अयोध्या है कि यह उसका चिता वन

करूँगा क्या यहाँ मैं प्रेत साधन?

वही हो जो तुम्हें हो इष्ट वन में,

बने नूतन अयोध्या नाथ वन मे।"4

---

1. साकेत 3 – पृ0 85
2. साकेत 3 – पृ0 86
3. रामचरित मानस – 2/71–3, 5
4. साकेत 3 – पृ0 81, 82

ऐसी निश्छलता अन्यत्र देखने को नहीं मिलती मैथिली शरण गुप्त ने भ्रातृप्रेम के जिन बिंदुओं को छुआ है ऐसा कोई विरला ही कर पाता है।

राम के लिये उनके प्रेम की पराकाष्ठा का एक उद्धरण देखें–

नवविवाहिता पत्नी उर्मिला के पूछने पर कि–

"प्रिय तुम्हारा कौन सा पद है यहाँ?"

लक्ष्मण उत्तर देते है–

"भावती मैं भार लूँ किस काम का

एक सैनिक मात्र लक्ष्मण राम का।"1

वन गमन के समय उर्मिला के पास आये और अत्यन्त अधीर होकर प्रिया के चरणों मे गिर पडे। नव विवाहिता से स्वयं के लिये वन–गमन की बात कहने के लिये उन्हें शब्द नहीं मिले–

"गिर पड़े दौड़ सौमित्र प्रिया–पद–तल में।

वह भीग उठी प्रिय–चरण भरे दृग जल में।।"2

इस प्रकार प्रिया को रोता हुआ छोड़कर राम के लघुभ्राता सेवाधर्म पालन के लिये वन को चले–

चले उनके अनुज भी अनुसरण कर,

सभी को छोड़ सेवा को वरण कर।"3

---

1. साकेत 3 – पृ0 38
2. साकेत 3 – (कल्याण नारी अंक – पृ0 199 पर उदधृत)
3. साकेत 3 – पृ0 85

लक्ष्मण में सेवा धर्म–

जिस प्रकार लक्ष्मण का राम के प्रति प्रेम अनन्यता की चरम सीमा में पहुँच गया था उसी प्रकार उनकी सेवा भी सर्वोच्च थी। सेवा धर्म सबसे कठोर धर्म है–

"सबसे सेवक धरम कठोरा।।"

धर्मतत्त्ववेत्ता गोस्वामी तुलसीदास ने कदाचिद् लक्ष्मण की सेवा देखकर ही ऐसा लिखा होगा।

राम–सीता की सेवा के लिये उन्होंने निद्रा, आहार तथा स्त्री संभोग सब कुछ त्याग दिया था। दिन मे आवश्यक कार्य करते थे तथा रात्रि मे वनचरों से रक्षार्थ वीरासन में बैठकर पहरा देते थे। श्री राम के चरण दबाना उनका नित्य का कार्य था–

"सयन कीन्ह रघुवंसमनि पांय पलोटत भाइ।।

उठे लखन प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहिं सोवन मृदु बानी।।

कछुक दूर सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन।।"1

शास्त्र कहते हैं कि सामान्य सनातन धर्मों में ही विशिष्ट धर्म प्रतिष्ठित हो सकता है अर्थात् जिसमें घृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध आदि सद्‌गुण विद्यमान हैं वही किसी और के लिए सर्वस्व त्याग कर सकता है अतः स्वतः सिद्ध है कि लक्ष्मण में ये सारे धर्म विद्यमान थे।

लक्ष्मण के विशिष्ट धर्म में धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य, कर्तव्य–अकर्तव्य, शुभ–अशुभ का कोई बोध नहीं है उनमें केवल विशुद्ध अनुराग हैं, एकमाात्र इष्ट राम का अनन्य हित चिंतन है, जीवन का प्रत्येक स्तर और प्रत्येक कार्य सहज–स्वाभाविक रूप से राम के हित से संबंधित हो जाता है। लक्ष्मण का अपना जीवन, अपना कार्य है ही नहीं। इसी

---

1. रामचरित मानस – 2/89–90–1, 2

को विशेष धर्म कहा जाता है। राम ऐसे अनन्य सेवक के चिर ऋणी हो जाते हैं ऐसा ही अनन्य प्रेम देखकर गोपियों के लिये भगवान् कृष्ण कहते हैं–

"ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे व्यक्त दैहिका"1

अर्थात् वे मेरे मन वाली, मेरे प्राण वाली और मेरे लिये उन्होने अपने सारे दैहिक संबंधो तथा कर्मों को छोड़ दिया है। अतः वे मेरे ही मन से मनस्विनी तथा मेरे ही प्राणों से अनुप्राणित हैं इसलिये केवल मुझसे ही सम्बन्ध रखकर मेरे ही कार्य करतीं हैं।

राम ने इसी अनन्यता के कारण लक्ष्मण को अपने बहिर्गामी प्राण कहा था–

"लक्ष्मणो लक्ष्मि सम्पन्नो बहिःप्राण इवापरः।"2

लक्ष्मण का सारा जीवन बाल्यकाल से लेकर प्राणान्त तक केवल राम के लिये ही समर्पित था। बाल्मीकि रामायण में ऐसा वर्णित है कि राम का काल से वार्तालाप करते समय (दुर्बासा ऋषि को शाप से अयोध्यावासियों को बचाने के लिये रामाज्ञा के विरूद्ध) लक्ष्मण का कक्ष में प्रवेश करना ही लक्ष्मण मृत्यु का कारण बना। वचनबद्ध राम ने लक्ष्मण का त्याग कर दिया तब राम के वियोग में वे एक दिन भी जीवित नहीं रह सके तुरन्त सरयू के किनारे जाकर योगबल से प्राणान्त कर लिया। 3

लक्ष्मण के समान परमार्थ और प्रेम का, बुद्धिमत्ता और निष्कपटता का सत्परामर्श देने और आज्ञा पालन का तेज और मैत्री का विलक्षण समन्वय अन्य कही नहीं केवल इन्ही के चरित्र मे पाया जाता है।

---

1. कल्याण धर्मांक वर्ष 40 अंक। पृ0 365 पर उद्धृत
2. बाल्मीकि रामायण – 1/18–28
3. बाल्मीकि रामायण – उत्तर काण्ड – 106/3–4–5

भरत के चरित्र (आचरण) में सनातन धर्म का प्रभाव–

रामचरित मानस के सभी पात्रों में भरत का आचरण सर्वाङ्गपूर्ण, सर्वाङ्गसुन्दर तथा धर्म पालन की पराकाष्ठा तक पहुँच गया है। गोस्वामी तुलसी दास ने तो भरत को समस्त धर्मो की धुरी धारण करने वाला अर्थात सभी धर्मों का आधार बतलाया है। जिसके बिना राम का धर्म पालन सम्भव नहीं था– गोस्वामी जी ने भरत के चरित्र का सार इस एक पंक्ति में निचोड दिया–

"जो न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुरि धरनि धरत को।।"1

भरत मनुष्य की सात्विक प्रकृति का चरम आदर्श हैं। धर्म पालन की दृष्टि से तो भरत राम से भी ऊँचे हैं। "अनेक संघर्षमयी कसौटियों पर भरत अपने अदम्य साहस, अटूट धैर्य एवं अविकम्पित शक्ति द्वारा पूर्णरूपेण खरे उतरते हैं।"2

श्री जयदयाल गोयन्दका के अनुसार– "भरत का चरित्र उन्हें एक साधु शिरोमणि, आदर्श स्वामि भक्त, महात्मा, निःस्पृह और भक्ति प्रधान कर्म योगी सिद्ध करता है। भरत धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, सद्‌गुण सम्पन्न, त्यागी, संयमी, सदाचारी, प्रेम और विनय की मूर्ति, बुद्धिमान और विवेकी थे। बैराग्य, सत्य, तप, क्षमा, तितिक्षा, दया, वात्सल्य, धीरता, वीरता, गम्भीरता, सरलता, सौम्यता, मधुरता, अमानिता और सुहृदयता आदि गुणों का इनमे विलक्षण विकास हुआ है।"3

राम के लिये उनका अनन्य प्रेम और सेवाभाव लक्ष्मण से किसी प्रकार भी कम नहीं था। राम के वन गमन का समाचार सुनकर वे पिता की मृत्यु का शोक भी भूल

---

1. रामचरित मानस – 2/233–1
2. रामकथा के पात्र – डॉ0 भ0ह0 राजूरकर पृ0 233
3. रामायण के आदर्श पात्र – श्री जयदयाल गोयन्दका – पृ0 71

गये थे–

"भरतहिं बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।

हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु।"

भरत में समस्त सनातन धर्मों की प्रतिष्ठा है। जो उनके राज्य त्याग तथा कठोर व्रत से उद्‌घाटित होती है।

भरत के सामान्य सनातन धर्म–

भरत त्याग, तप, धैर्य, बैराग्य, सत्य, प्रेम तथा करूणा की साक्षात मूर्ति थे। राजा दशरथ भरत के लिये वरदान स्वरूप राज्य माँगने पर कैकई से कहते हैं–

"न कथंचिदृते रामाद् भरतो राज्यमावसेत्।।

रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तम्।।"1

अर्थात् भरत राम के बिना कदापि राज्य स्वीकार नहीं करेगा क्योंकि धर्म पालन में मेरी समझ से भरत राम से श्रेष्ठ है। राम की पादुकायें चित्रकूट से लाने के बाद उन्हें सिंहासनस्थ करके भरत ने अयोध्या के राज वैभव का त्याग कर दिया। नन्दिग्राम में प्रवेशकर भरत ने राजवस्त्रों का भी त्याग कर दिया और राम के समान वल्कल वस्त्र धारण कर तपस्वी का जीवन बिताने लगे–

"राम मातु गुर पद सिरू नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई।।

नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।"2

अर्थात् धैर्यपर्वूक धर्म की धुरी को धारण करने वाले भरत नंदिग्राम में बनवासी का जीवन बिताकर श्री राम के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। भरत ने ऋषि धर्म का

---

1. बाल्मीकि रामायण – अयोध्याकाण्ड/12/61, 62
2. रामचरित मानस – 2/324–1, 2

पालन (शम, दम, यम, नियम, व्रत, जप, तप, तितिक्षा, अक्रोध आदि) करने के लिये अयोध्या का राज सुख (जिसकी प्रशंसा देवता भी करते हैं) त्याग दिया–

"असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा।।

सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा।।

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन वचन तजे तिन तूरी।।

अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई।।

तेहि पुर बसत भरतु बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।"1

प्रस्तुत उद्धरण से भरत के आचरण में धर्म के समस्त लक्षण प्रकट होते हैं।

धृति – धैर्यपूर्वक व्रत पालन

क्षमा – मंथरा तथा माता कैकई को क्षमाकर स्वयं प्रायश्चित करना क्षमा धर्म की ही पराकाष्ठा है

दम – शम–संयम–यम–नियम आदि समस्त धर्मों का पालन ऋषि धर्म पालन के अन्तर्गत आ जाता है।

अक्रोध और सत्य का तो वे स्वयं रूप है। उनके इस अलौकिक धर्म पालन का परिणाम क्या होता है कि–

"देह दिनहिं दिन दूबर होई। घटइ तेजु बल मुख छबि सोई।।

नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरमु दल मन न मलीना।।"2

अर्थात् कठोर व्रत से अन्नादि द्वारा निर्मित मेद घटता है किंतु तप का तेज निरन्तर बढ़कर मुख को आलोकित कर रहा है। राम के प्रेम में मग्न भरत इस प्रकार

---

1. रामचरित मानस – 2/324–1, 2, 3, 4 तथा 2/325–5
2. रामचरित मानस – 2/325–1, 2

अपने धर्म पालन के पलड़े को राम से भी भारी किये हुए हैं।

भरत का विशिष्ट धर्म–

रामद्रोही माता को भरत ने अपने विशिष्ट धर्म पालन हेतु भर्त्सना करते हुए त्याग दिया। किसी कवि ने विशिष्ट धर्म पालन में बाधकों को त्यागने के उद्धरण इस प्रकार दिये हैं–

"पिता तज्यौ प्रहलाद, विभीषन बंधु भरत महतारी।।

बलि गुरू तज्यौ कंत ब्रजबनितन भये जग मंगल कारी।।"1

वेद कहता है 'मातृ देवोभाव' किंतु माता यदि धर्म–द्रोही है तो उसका भी त्याग मंगलकारी है। गोस्वामी तुलसी दास ने स्वयं इस तथ्य की पुष्टि की है–

जिनके प्रिय न राम बैदेही

तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।।

भरत का सामान्य धर्म पालन जितना उच्च कोटि का था उतना ही उनका विशिष्ट धर्म पालन भी महान् था।

बाल्मीकि रामायण में भरत द्वारा कैकई का तिरस्कार ही नहीं होता अपितु भरत कैकई के लिये कठोर दण्ड का निर्धारण भी कर देते हैं–

"कैकयि नरकं गच्छ माच भर्त्तः सलोकताम्।।

त्वत्कृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः।

मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्य कामुके।

न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनी।।

सा त्वमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दण्डकान्।

रज्जुं बद्धबाथवा कण्ठे नहि तेऽन्यत् परायणम।।"2

---

1. कल्याण धर्मांक – (सामान्य धर्म और विशेष धर्म) लेख में उद्धृत
2. बाल्मीकि रामायण – 2/74–4, 6, 7, 33

अर्थात् केवल माता कैकेयी के कारण पिता मृत्युग्रस्त हुए तथा राम को वन का आश्रय लेना पड़ा इसलिये यह पति लोक न जाकर नर्क में जाएगी। यह मेरी शत्रु है। ऐसी पतिघातिनी, शीलभ्रस्ट, नृशंस, राज्यलोलुप स्त्री जलती अग्नि में प्रवेश कर जाए या स्वयं दण्डकारण्य चली जाए अथवा गले मे रस्सी बॉधकर प्राण देदे इसके सिवा दूसरी गति इसकी नही। यदि भैया राम का भय न होता तो मैं स्वयं इसे मार डालता–

"हन्याकाहमिमां पापां कैकई दुष्टचारिणीम्।

यदिमांधार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्।।"1

भरत का माता के प्रति यह क्रोध उनके विशिष्ट धर्म की पराकाष्ठा का सूचक है अन्यथा इस प्रकार की अशिष्टता, अधैर्य और उग्रता उनके स्थाई शील स्वभाव का अंग नहीं है। अन्य किसी स्थान पर भरत में ऐसी दुर्बलता प्रकट नहीं हुई।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस मे भरत को इन दोषो से कुछ हद तक बचा लिया है उनके भरत इतने अधिक अशिष्ट, अधैर्यवान और उग्र रूप में चित्रित नहीं हुए हैं क्योंकि तुलसी की मुख्य भावना माता के तिरस्कार की नहीं अपितु राम प्रेम और धर्म की है जिस कारण वे समाज के प्रतिनिधि के रूप में भरत द्वारा कैकई को गालियाँ मात्र देते से प्रतीत होते हैं परन्तु क्रोध शांत होने पर भाग्य को दोषी मानने लगते है। मानस में भरत कैकई की भर्त्सना तो करते हैं किंतु अंदर ही अंदर आत्मग्लानि की अग्नि में सुलगते रहते हैं–

"मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनहँ सचेतू।।

बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू।।"2

---

1. बाल्मीकि रामायण – 2/78–22
2. रामचरित मानस – 2/179

कैकई जैसी माँ के गर्भ से मेरे जैसा ही पुत्र उत्पन्न हो सकता है ऐसी ग्लानि से भरे वचन बोलने पर भी भरत का हृदय शांत नहीं होता और जब गुरू वशिष्ठ, माता कौशल्या आदि राज सिंहासन पर बैठने की बात कहते हैं तब वे और अधिक दुख का अनुभव करते हैं–

"गुर बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहिं बिस्व कर बदर समाना।।

मो कहुँ तिलक साज सज सोऊ। भये बिधि बिमुख सब कोऊ।।"1

"राम मातु सुठि सरलचित मोपर प्रेमु बिसेषि।

कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि।।"2

भरत दुखी होकर भाग्य को दोष देते है। तुलसी दास ने भरत की दीन दशा का ऐसा सजीव चित्रण किया है कि अयोध्यावासी ही क्या महर्षि भरद्वाज निषादराज गुह्य, तथा लक्ष्मण जिनके–जिनके हृदय में भरत के प्रति शंका की भावना थी वे भी भरत के प्रेम को देखकर द्रवीभूत हो गये–

भरत जी राज्य सिंहासन ठुकराकर राम को वापस लाने की बात कहते हैं–

"जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस।

आपन जानि न त्यागिहहिं मोहिं रघुबीर भरोस।।"3

भरत के राम प्रेमामृतरस में पगे हृदय विदारक वचनों को सुनकर सभी को परमानंद का अनुभव हुआ–

---

1. रामचरित मानस – 2/182–1, 2
2. रामचरित मानस – 2/181
3. रामचरित मानस – 2/183

"भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधाँ जनु पागे।।

भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरत तनु आही।।"1

सभी लोग श्री राम प्रेम की साक्षात मूर्ति भरत की सराहना करने लगे। ऐसी विलक्षण त्याग की भावना इतिहास में कहीं नहीं मिलती।

चित्रकूट पहुँचकर गुरू वशिष्ठ राम से उनके स्थान पर भरत–शत्रुघ्न के वन जाने की बात कहते है यह सुनकर भरत शत्रुघ्न दोनो अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं–

"तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई।।

सुनि सुवचन हरषे दोउ भ्राता। भा प्रमोद परिपूरन गाता।।"2

परन्तु राम तो धर्म धुरंधर थे वे अपना वनवास अपने भ्राता को कैसे भोगने देते परन्तु भरत के प्रेम रूपी समुद्र में डूबने से बच नहीं सके–

राम कहते हैं–

"नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई।।

मनु प्रसन्न करि सकुचि तजि कहहु करौं सोई आज।

सत्यसंध रघुबर वचन सुनि भा सुखी समाज।।"3

भरत के अपार प्रेम समुद्र में सत्य प्रतिज्ञ राम को इस प्रकार असहाय डूबते देख इन्द्र घबरा गया–

"देखु देवपति भरत प्रभाउ। सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ।।"4

किंतु देव गुरू बृहस्पति ने उन्हें समझाया कि भरत राम की ही परछाई हैं वह

---

1. रामचरित मानस – 2/184–1, 4
2. रामचरित मानस – 2/256–3, 4
3. रामचरित मानस – 2/259–4/264
4. रामचरित मानस – 2/266–3

वही कहेगा जो राम करना चाहते हैं–

"मन थिर करहु देव डरू नाहीं। भरतहि जानि राम परछाहीं।।"1

भरत ने जब राम के प्रेमपूर्वक वचन सुने तब धर्म विवेक निर्णय का बोझ स्वयं पर ही महसूस किया। अंतर्द्वंद्व के पश्चात उन्होंने यही निर्णय लिया कि–

"जो सेवकु साहिबहिं सँकोची। निजहित चहइ तासु मति पोची।।

सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई।।"2

मैं सेवक हूँ अतः मेरा धर्म यही है कि जिसमें श्री राम का सुख है वही मेरा परम धर्म है–

"अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा।।"3

भरत का सेवाधर्म अद्भुत है। छल, कपट, स्वार्थ तथा प्रतिदान की इच्छा लेशमात्र भी नहीं थी बस राम के लिए थी तो सर्वस्व त्याग की भावना और राम का हित चिंतन–

"सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई।।"4

यहाँ पर 'फल चारि' से तात्पर्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से है) अर्थात् भरत राम से अपने प्रेम के बदले में राम को ही माँगते थे–

"अर्थ न धर्म न कामरूचि गति न चहउ निरवान।

जनम जनम रति राम पद यह वरदानु न आन।।"5

---

1. रामचरित मानस – 2/266–4
2. रामचरित मानस – 2/268–3, 4
3. रामचरित मानस – 2/301–4
4. रामचरित मानस – 2/301–3
5. रामचरित मानस – 2/204

जन्म जन्मांतर तक श्री राम के चरणों का प्रेम यहीं भरत की लालसा थी। राम उनके स्वामी और वे राम के सेवक यह जानकर उन्होंने राम की आज्ञा शिरोधार्य कर ली–

"मोर तुम्हार परम पुरूषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु।।

पितु आयसु पालिहिं दोउ भाई। लोक बेद भल भूप भलाई।।"1

भरत कहते है कि–

"मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू।।

अब गोसाई मोहि देउ रजाई। सेवौं अवध अवधि भर जाई।।"2

मेरे कारण सबने बहुत दुख सहा अब मुझे आज्ञा दें कि आपके वापस आने तक मैं अयोध्या की सेवा करूँ। करबद्ध भरत को संकोचयुक्त देख अंतर्यामी राम ने अपनी चरणपादुकायें स्वयं दे दीं–

सेवा धर्म के आदर्श भरत श्री राम की खडाऊँ लेकर इस प्रकार चले जैसे प्राण रक्षा के लिए दो पहरेदार नियुक्त कर लिये हों–

"चरनपीठ करूना निधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।।

कुल कपाट कल कुसल करम के। विमल नयन सेवा सुधरम के।।"3

तथा जैसे रघुकुल रीति के रक्षक कपाट तथा सेवा रूपी श्रेष्ठ धर्म के निर्वाहन का मार्ग दिखाने वाले दो चक्षु हों।

राम के राज्याभिषेक के पश्चात वे भी लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न की भाँति सतत् राम की सेवा मे उपस्थित रहते थे। बाल्मीकि रामायण के अनुसार लक्ष्मण त्याग के पश्चात

---

1. रामचरित मानस – 2/315–3, 4
2. रामचरित मानस – 2/313–7, 8
3. रामचरित मानस – 2/316–5, 6

राम ने परमधाम जाने की इच्छा व्यक्त की तथा भरत को राजा बनाने की बात कही! ऐसा सुनते ही वे अचेत हो गये चेतना आने पर वे राज्य लालसा की निंदा करते हुए बोले–

"सत्येनाहं शपे राजन् स्वर्ग भोगेन चैव हि।

न कामये यथा राज्यं त्वां बिना रघुनन्दन।।"1

राजन! मैं निश्चयपूर्वक सत्य तथा स्वर्ग की शपथ करके कहता हूँ आपसे अलग रहकर राज्य भी नहीं चाहता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भरत का सामान्य तथा विशिष्ट दोनो धर्म राम में ही समाहित है इस प्रकार भ्रातृ प्रेम का उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है। राम स्वयं कहते हैं–

तात भरत तुम धरम धुरीना। लोक वेद बिद प्रेम प्रवीना।।

भरत लोकरीति, वेदमर्यादा, धर्मतत्त्वा के ज्ञाता तथा प्रेम में प्रवीण थे।

शत्रुघ्न के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

जिस प्रकार राम के आदर्श चरित्र में लक्ष्मण का चरित्र समाहित है उसी प्रकार भरत के आदर्श धर्म पालन में शत्रुघ्न का धर्म पालन भी समाहित है। श्री जयदयाल गोयन्दका के अनुसार– "शत्रुघ्न मौन कर्मी, प्रेमी, सदाचारी, मितभाषी, सत्यवादी, विषयविरागी, वीर, तेजस्वी, सरल तथा सेवक थे।"2 बाल्यकाल से ही ये भरत के अनुगामी थे–

"भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई।।"3

---

1. बाल्मीकि रामायण – 7/107–6
2. रामायण के आदर्श पात्र – श्री जयदयाल गोमन्दका (गीता प्रेस)
3. रामचरित मानस – 1/198–4

बाल्मीकि रामायण में भी ऐसा ही वर्णित है–

"अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति साधुनः परिपालयन्।

भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः।।"1

अर्थात् जिस प्रकार हाथ में धनुष लेकर लक्ष्मण श्री राम की रक्षार्थ इनका अनुगमन करते थे उसी प्रकार लक्ष्मण के लघुभ्राता शत्रुघ्न भी भरत के साथ रहते थे। मामा के घर से वापस आकर जब उन्हें श्री राम–लक्ष्मण सहित सीता के वनगमन का समाचार मिला तब भरत की भाँति वे भी बहुत दुखी हो गये तथा माता कैकई की कुटिलता जानकर क्रोधग्नि से मानो उनके सारे अंग जलने लगे–

"सुनि सत्रुघ्न मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बताई।।"2

अन्याय का प्रतिकार करना तथा दोषी को दण्ड देना क्षत्रिय का सनातन धर्म है अतः कुबड़ी दासी के कुकृत्य का शत्रुघ्न ही उसे दण्ड देते हैं–

"तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन विभूषन विविध बनाई।

लखि रिस भरेउ लखन लघुभाई। बरत अनल घृत आहुति पाई।।"3

यहाँ पर गोस्वामी जी ने शत्रुघ्न को लक्ष्मण का छोटा भाई कहकर संबोधित किया है जिसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार राम का अहित करने वाले पर लक्ष्मण क्रोधित होकर अपना आपा खो देते थे उसी प्रकार शत्रुघ्न भी क्रोधावेश में धर्म–अधर्म का बोध खो बैठे और उस दुष्टा स्त्री को पैर से प्रहार कर जमीन पर पटक दिया

---

1. बाल्मीकि रामायण – 1/18/32
2. रामचरित मानस – 2/163–1
3. रामचरित मानस – 2/163–2, 3

"हुमकि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भर महि करत पुकारा।।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रूधिर प्रचारू।।"1

परन्तु जिस प्रकार दीनदयाल भगवान् राम लक्ष्मण के क्रोध को अपने प्रेमपूर्ण वचनों से शांत कर उन्हें धर्म–अधर्म का विवेक ज्ञात कराते थे उसी प्रकार दयानिधि भरत ने कुब्जा को शत्रुघ्न के कोप से यह कहकर बचा लिया कि–

"इमामपि हतां कुब्जां यदि जानति राघवः।

त्वां च मां चैव धर्मात्मा नभिभाषिष्यते ध्रुवम्।।"2

भाई! यदि कुबडी तुम्हारे हाथों मारी गयी तो इस घटना को जानते ही धर्मात्मा श्री राम तुमसे ओर मुझसे निश्चय ही बोलना छोड़ देंगे।

(श्री राम की यह नीति थी कि वे स्त्री को सदैव अवध्या मानते थे)

भरत के अलौकिक व्यक्तित्व तथा धर्म पालन की सफलता का श्रेय शत्रुघ्न को जाता है नंदिग्राम मे भरत के निवासित होने पर समस्त प्रजा तथा माताओं की सेवा का कार्य शत्रुघ्न ही करते थे। कैसी अद्भुत सामञ्जस्यता थी दोनो जोड़ियो में बडा भाई जिस धर्म मार्ग पर चल पड़ा छोटे ने परछाई की तरह उसका अनुगमन किया गोस्वामी जी चारों भाइयों की प्रशंसा में लिखते हैं–

"चारिउ सील रूप गुन धामा।"3

शत्रुघ्न ने लक्ष्मण की भाँति ही अपने बडे भाई भरत को अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था अर्थात् जैसे राम में लक्ष्मण के प्राण बसते थे उसी प्रकार भरत से शत्रुघ्न

---

1. रामचरित मानस – 2/163–4, 5
2. बाल्मीकि रामायण – 2/78/23
3. रामचरित मानस – 1/198–6

अनुप्राणित थे इसी कारण चित्रकूट से लौटते समय शत्रुघ्न को वात्सल्य भाव से शिक्षा देते हुए कहा था कि हे रघुनन्दन शत्रुघ्न भरत भले ही माता कैकई से क्रोध करे परन्तु तुम सदैव उनकी सेवा करना तथा उन पर कभी क्रोध मत करना—

"मातरं रक्ष कैकयीं मा रोषं कुरू तां प्रति।।

मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।।"1

राम जानते थे कि शत्रुघ्न का सेवा भाव देखकर भरत का क्रोध भी शांत हो जाएगा। राम के तीनों लघु भ्राता अपने भाई राम की सेवा में एक से बढ़कर एक थे।

शत्रुघ्न मौन कर्मी थे इसीलिए उनका चरित्र उभरकर सामने भले ही न आता हो किंतु अप्रत्यक्ष रूप से उनकी उपस्थिति का सदैव आभास रहा है इसी कारण मैने उन्हें मुख्य पात्रों की श्रेणी में रखा। दूसरा कारण यह भी है कि वे परब्रह्म राम के की चतुर्थांश थे अतः इनके चरित्र—चित्रण के बिना राम की सर्म्पूणता अधूरी रह जाती। यद्यपि लेखकों ने इन्हें रामकथा के प्रमुख पात्रों की श्रेणी में नहीं रखा है तथापि भरत के लिये इनका स्वव्यक्तित्व बिसर्जन इन्हें मुख्य पात्रों की श्रेणी में ले आया।

गोस्वामी तुलसी दास ने शत्रुघ्न के चरित्र का स्पष्ट उल्लेख कहीं नही किया है किंतु यदि शत्रुघ्न के समस्त जीवन में धर्मावधारणा ज्ञात करनी है तो राम राज्याभिषेक के पश्चात बाल्मीकि रामायण मे वर्णित प्रसंगों का आश्रय लेना पड़ेगा। श्री राम से ऋषि मुनियों ने जब लवणासुर के अत्याचारों का वर्णन किया तब श्री शत्रुघ्न के विशेष आग्रह पर राम ने उन्हें भरत के स्थान पर लवणासुर वध के लिये नियुक्त कर दिया—

---

1. बाल्मीकि रामायण — 2/112—27/28

"कृतकर्मा महाबाहुर्मध्यमो रघुनन्दन।।

आर्येण हि पुरा शून्या त्वाऽयोध्या परिपालिता।

संतापं ह्रदये कृत्वा आर्यस्यागमनं प्रति।।

दुखानि च बहूनीह अनुभूतानि पार्थिव।

शयानो दुःखशय्यासु नन्दिग्रामे महायशाः।।

फलमूलाशनो भूत्वा जटी चीरधरस्तथा।

अनुभूयेदृशं दुःखमेष राघवनन्दनः।।

प्रेष्ये मयि स्थिते राजन्न भूयः क्लेशमाप्नुयात्।।"1

शत्रुघ्न जी भ्राता भरत के तप के कारण क्षीण हुए शरीर को देखकर उनके स्थान पर स्वयं लवणासुर वध के लिये जाने की आज्ञा माँगते हैं। यह उनका अद्भुत सेवा तथा त्याग धर्म है।

लवणासुर वध के उपरान्त जब श्री राम उनसे मधुदैत्य के सुन्दर नगर का राजा बनाना चाहते हैं तब शत्रुघ्न बड़ी ग्लानि का अनुभव करते हैं–

"अधर्मं विद्य काकुत्स्थ अस्मिन्नर्थे नरेश्वर।

कथं तिष्ठत्सु ज्येष्ठेषु कनीयानभिषिच्यते।।

अवश्यं करणीयं च शासनं पुरूषर्षभ।।

तव चैव महाभाग शासनं दुरतिक्रमम्।।

त्वत्तो मया श्रुतं वीर श्रुतिभ्यश्च मया श्रुतम्

नोत्तरं हि मया वाच्यं मध्यमे प्रतिजानति।।

व्याहृतं दुर्वचो घोरं हन्तास्मि लवणं मृधे।

---

1. बाल्मीकि रामायण – 7/62–11–14

तस्यैवं मे दुरूक्तस्य दुर्गतिः पुरूषर्षभ।।

उत्तरं नहि वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः।

अधर्मसहितं चैव परलोकविवर्जितम।।

सोऽहं द्वितीयं काकुत्स्थ न वक्ष्यामीति चोत्तरम्।।"1

अर्थात् राजन्! बड़े भाइ भरत जी के रहते हुए मुझ छोटे का राज्याभिषेक कैसे हो सकता है? इस कार्य मे मुझे अधर्म का आभास होता है। किंतु आपकी आज्ञा का उल्लंघन करना मैं घोर पाप समझता हूँ। हे पुरूषोत्तम मुझे भरत भाई को लवणासुर वध हेतु जाते समय यह कहकर नहीं रोकना चाहिए था कि 'लवणासुर का वध मैं करूँगा' पुरुष श्रेष्ठ मेंरी इस दुरूक्ति का ही फल मुझे राज्याभिषेक के रूप में मिल रहा है। बड़े भाई की आज्ञा का उल्लंघन अधर्म युक्त तथा परलोक विरूद्ध कार्य है यह जानकर भी मैने एक बार यह कार्य किया है जिसका परिणाम मेरी यह दुर्गति है अतः अब दोबारा कुछ भी उत्तर न देकर आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

प्रस्तुत उद्धरण से शत्रुघ्न का धर्म–अधर्म विवेक प्रकट होता है विशिष्ट धर्म पालन में वे अन्य भाइयों से किसी प्रकार कम नहीं थे। शत्रुघ्न जी कुशल राजा थे मधुरापुरी राज्य की सुख शान्ति उनकी उत्कृष्ट धर्म नीतिज्ञता का परिणाम था।

श्री राम जब परमधाम जाने लगे तब भरत ने अयोध्या का राज्य अस्वीकार कर उनके अनुगमन का निश्चय किया तत्पश्चात् शत्रुघ्न को राज्यभार सौंपने के लिये बुलाया गया यह जानकर शत्रुघ्न आर्तभाव से कहते हैं–

---

1. बाल्मीकि रामायण – 7/63/2–7

"कृत्वाभिषेकं सुतयोर्द्वयो राघवनन्दन।

तवानुगमने राजन् विद्धि मां कृतनिश्चयम्।।

न चान्यदद्य वक्तव्यमतो वीर न शासनम्।

विहन्यमानमिच्छामि मद्विधेन विशेषतः।।"1

महाराज रघुनाथ जी मैं अपने दोनो पुत्रों को राज्य सौंपकर आपके साथ चलने का निश्चय करके आया हूँ अतः अब आप मुझे कोई ऐसी आज्ञा न दें जिसका मैं पालन न कर सकूँ। मेरे प्रेम को समझकर मुझे इस अधर्म से बचाइये।

इस प्रकार राम के साथ भरत तथा शत्रुघ्न दोनो ने परमधाम प्रस्थान किया।

हनुमान के आचरण मे सनातन धर्म का प्रभाव–

गोस्वामी जी रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड मंगलाचरण में हनुमान के सनातन धर्म सम्मत गुणों की वंदना करते हुए कहते हैं–

"अतुलितबलधामं हैमशैलाभदेहं

दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।

सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं

रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।।"2

प्रस्तुत वंदना में उनके अतिशय बल, सुमेरू पर्वत के समान स्वर्णकान्तियुक्त देह, दनुज शक्ति विनाशक, ज्ञानियों में अग्रगण्य तथा समस्त गुणों की खान आदि गुणों की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। बाल्मीकि रामायण में हनुमान के धर्म सम्मत गुणों की राम स्वयं प्रशंसा करते हुए अगस्त्य मुनि से कहते हैं–

---

1. बाल्मीकि रामायण – 7/108/14–15
2. रामचरित मानस – 5/मंगलाचरण श्लोक

"अतुलं बलमेतद् वै बालिनो रावणस्य च।

न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम।।

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञतानय साधनम्।

विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालया।।

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपयस्यच।

कर्माणि तानि श्रूयन्ते यादि युद्धे हनुमतः।।

एतस्य बाहुवीर्येण लंका सीता च लक्ष्मणः।

प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः।।"1

अर्थात् बालि और रावण का बल निश्चय ही अतुलनीय था किंतु मेरी यह धारणा है इन दोनो का बल मिलकर भी हनुमान के बल की बराबरी नहीं कर सकता। शौर्य, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, राजनीतिज्ञता, पराक्रम और प्रभाव इन सभी सद्‌गुणों से वह परिपूर्ण है। युद्ध में उसका पराक्रम काल, इन्द्र, विष्णु तथा कुबेर से भी महान था। इसी हनुमान के बाहुबल से लंका, सीताविजय राज्य तथा बंधुजन तथा लक्ष्मण मैने प्राप्त किये। हनुमान के प्रथम मिलन मे ही राम ने उनकी अद्‌भुत धर्मज्ञ प्रतिभा को पहचान लिया था बाल्मीकि रामायण मे राम ने अनेक स्थलों पर उनके सनातन धर्म सम्मत् लक्षणों को उद्‌घाटित किया है जिससे उनकी सामान्य धर्म पालन में तत्परता का ज्ञान होता है।

गोस्वामी तुलसी दास के अनुसार वे ज्ञानियों में अग्रणी, अनंत बलवान तथा समस्त विद्याओं के ज्ञान से पंचतत्त्वों पर विजय प्राप्त करने वाले हैं।

---

1. बाल्मीकि रामायण – 7/34–2, 3, 8, 9

हनुमान के आचरण में सामान्य सनातन धर्म लक्षण–

सीता की खोज में गये हनुमान लंका पुरी में अशोक वाटिका में वृक्ष के नीचे दीन अवस्था में बैठी सीता को देखते है तब धैर्यपूर्वक विचार करते हैं कि यदि मैं इस समय सीता से अच्छी भाषा का प्रयोग कर राम का संदेश सुनाऊँगा तो ये मुझे माया रूपी रावण समझ कर व्याकुल होकर चिल्ला पड़ेंगी तब राक्षसनियाँ जाग जायेंगी और मुझे रावण के पास ले जाएँगी और यदि मैं उनका नाश भी कर दूँ तो सुविख्यात योद्धा आमने–सामने डट जाऐंगे इस तरह मेरा उद्देश्य भी पूरा नहीं होगा और बातावरण संदिग्ध हो जाएगा। अतः ऐसी परिस्थिति में वे राम कथा का गान (प्रारम्भ से लेकर अब तक का) करने लगे–

> **"यदि वाच प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।**
>
> **रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।**
>
> **ततो जात परित्रासा शब्दं सहसा राक्षसीगणः।**
>
> **कथं न खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत च।।"1**

मानस में हनुमान के इस अन्तर्द्वद्व का संकेत मात्र करके गोस्वामी जी ने रामकथा का गान कराया– "तरू पल्लव महुँ रहा लुकाई। करई बिचार करौं का भाई।।

> **"देखि परम बिरहा कुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता।।**
>
> **कपि करि हृदय बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।"2**
>
> **"रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।"3**

यह विवेकपूर्ण निर्णय कोई परम धैर्यवान ही ले सकता है। रावण तथा राक्षसियों

---

1. बाल्मीकि रामायण – सुन्दर काण्ड/30–18, 21, 40
2. रामचरित मानस – 5/9–1, 5/12–12
3. रामचरित मानस – 5/13–5

द्वारा सीता को तरह–तरह से सताया जाना देखकर भी समय की प्रतिकूलता के कारण हनुमान सर्व समर्थ होते हुए भी उन्हें क्षमा कर देते हैं किंतु लंका दहन कर अपने बल का परिचय भी दे जाते हैं। श्री हनुमान अतुलनीय बलवान थे ब्रह्मास्त्र भी उन्हें बाँधने या मारने में समर्थ नहीं था किन्तु ब्रह्मास्त्र की मर्यादा भंग न हो इसीलिए वे बंधन में बँधे गये–

"ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।

जौं न ब्रह्म सर मानहुँ महिमा मिटै अपार।।"1

हनुमान के दम, इन्द्रिय निग्रह तथा शम का अद्‌भुत प्रमाण बाल्मीकि रामायण मे सीतान्वेषण के प्रसंग में प्राप्त होता है। रावण के अंतःपुर की स्त्रियाँ देखकर हनुमान विचार करने लगे कि उनसे बड़ा पाप हुआ है परस्त्रियों का सुप्तावस्था में दर्शन कर मैने अधर्म किया है इस प्रकार आत्म ग्लानियुक्त हनुमान अपने विद्या विवेक से उसका समाधान स्वयं ही करते हैं–

"न हि मे पर दाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।

अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः।।

तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः।

निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्य निस्चिय दर्शिनी।।

कामं दृष्टवा मया सर्वा विश्वस्तारावणस्त्रियः।

न तु में मनसा किंचिद वैक्रत्यमुपपद्यते।।

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रर्वतने।

शुभाशुभावस्थासु तच्च में सुव्यवस्थितम्।।"2

---

1. रामचरित मानस – 5/19
2. बाल्मीकि रामायण – सुन्दर काण्ड/11–39–42

अर्थात् मैंने किसी प्रकार से आसक्त होकर परस्त्री का दर्शन नहीं किया है। चूँकि मन ही सारे विकारों का मूल है अतः मन से निर्विकार होने के कारण मैं सर्वथा इस पाप से मुक्त हूँ।

परम धीमान् और विद्यावान व्यक्ति ही ऐसी समाधान नीति का निर्णायक हो सकता है राम स्वयं हनुमान के ज्ञानी होने की बात लक्ष्मण से कहते है–

"नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः।

ना सामवेद विदुषः शक्यमेव विभाषितुम्।।

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।

संस्कारक्रमसम्पन्नामदभुतामबिलम्बिताम्।

उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणी।।"1

अर्थात्–ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा साम का अवगाहन किये बिना कोई इस प्रकार सुंदर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। व्याकरण का इसे परम ज्ञान है इतने समय के वार्तालाप में उसने एक भी अपशब्द का प्रयोग नहीं किया। इसकी वाणी का उच्चारण संस्कार और क्रम से सम्पन्न है। यह व्यक्ति अद्‌भुत तथा हृदय को आनन्दित करने वाली अविलम्बित वाणी बोलता है। वध करने के लिये तत्पर शत्रु का हृदय भी इसकी हृदयस्पर्शी वाणी सुनकर बदल सकता है। हनुमान की इसी परम विद्वता से प्रभावित होकर राम ने सीता की खोज पर जाते समय हनुमान को बुलाकर हाथ की अंगूठी उतारकर प्रतीक चिन्ह स्वरूप सीता को दिखाने के लिये दी थी–

---

1. बाल्मीकि रामायण – किष्किंधा काण्ड – 3/22, 23, 32

"पाछे पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।

परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी।।

बहु प्रकार सीतहिं समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।।"1

राम को हनुमान की बुद्धि, विद्या और बल पर पूर्ण विश्वास था। इसलिये उन्होंने केवल सीता को समझाने और धैर्य बँधाने के लिये कहा था अन्यथा उनमें इतना सामर्थ्य था कि वे रावण को मारकर सीता को वापस ला सकते थे। दूसरी बात यह भी कि रावण जैसे परम विद्वान के सम्मुख कोई उसी की समता वाला व्यक्ति होना चाहिए यह जानकर भी उन्होंने हनुमान को चुना था।

हनुमान का विशिष्ट धर्म–

गोस्वामी तुलसीदास ने हनुमान वंदना में उनके समस्त धर्मों का समावेश कर दिया है जिसके अनुसार वे श्री राम के परमभक्त थे ऐसी निष्ठा ऐसा निःस्वार्थ प्रेम, सेवा की ऐसी अद्भुत प्रतिभा इतिहास में कहीं देखने को नहीं मिलती ।

डॉ0 माता प्रसाद गुप्त के अनुसार–"आदिकाव्य में हनुमान एक ऐसा पात्र है जिसमें बल, सामार्थ्य, वीरता, दृढता, निर्भीकता, विद्याओं तथा कलाओं में दक्षता, बुद्धिमत्ता, विवेकशीलता, विनम्रता, विनयशीलता, जितेन्द्रियता, संयम शीलता, सरलता, मात्सर्य हीनता, आशावादिता, धर्मज्ञता, कर्तव्य परायणता तथा स्वार्थहीनता आदि सद्गुण विद्यमान हैं जिनके कारण यह अपने स्वामीराम का एक कर्तव्य परायण, स्वार्थहीन सेवक सिद्ध होता है।"2

हनुमान की विनयशीलता इतनी उच्चकोटि की थी कि कठिन से कठिनतम् कार्य स्वयं करने पर भी सारा श्रेय अपने स्वामी राम को दे देते थे–

---

1. रामचरित मानस – 4/23–9, 10, 11
2. तुलसीदास (एक समालोचनात्मक अध्ययन) – डॉ0 माता प्रसाद गुप्त – पृ0 304

"प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना।।

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई।।

नाघि सिंधु हाटक पुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा।।

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोर प्रभुताई।।"1

सीतान्वेषण के कर्तव्य की पूर्ति करते समय हनुमान की लंका पहुँचते–पहुँचते तीन बार परीक्षा होती है। इन तीनों परीक्षाओं का स्वरूप चाहे कितना ही अद्भुत, अलौकिक तथा अमानवीय क्यों न हो, उनमें से हनुमान का राम के प्रति अनन्य प्रेम ही प्रकट होता है–

1. राम सेवक तथा पुण्यकर्म करने वाले हनुमान को सह्यभूत होने के विचार से समुद्र ने मैनाक पर्वत से हनुमान के श्रम परिहार के लिये प्रकट होने के लिए कहा–

"जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तइँ मैनाक होहि श्रमहारी।।"2

हनुमान समुद्र की भावना का आदर करते हुए हाथ से स्पर्श कर यह कहकर आगे बढ़ गये कि राम का कार्य पूर्ण होने से पहले विश्राम करना संभव नहीं–

"हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।

राम काजु कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम।।"3

2. दूसरी परीक्षा नागमाता सुरसा ने ली जिससे उनके बुद्धि चातुर्य का प्रमाण मिला–

"सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता।।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवन कुमारा।।

राम काजु करि फिरि मै आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं।।

तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।।"4

---

1. रामचरित मानस – 5/33–2–5
2. रामचरित मानस – 5/1–9
3. रामचरित मानस – 5/1
4. रामचरित मानस – 5/2/–2–5

अनेक प्रकार से अनुनय विनय करने पर भी जब सुरसा ने हनुमान का रास्ता नहीं छोड़ा तब उन्होंने अपने बुद्धि चातुर्य से सुरसा का हृदय जीत लिया–

"कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेहु हनुमाना।।

जोजन भर तेहि बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।।

सत जोजन तेहि आनन कीन्ह। अति लघु रूप पवन सुत लीन्हा।।

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा।।"1

जब सुरसा ने अपना आकार सौ योजन बढ़ा लिया तब हनुमान ने अत्यन्त लघु रूप धारण कर लिया और सुरसा के मुख में प्रवेश कर पुनः बाहर आ गये और विनयपूर्वक सिर झुकाकर आज्ञा माँगने लगे। हनुमान का अद्‌भुत बुद्धि कौशल और विनय शीलता देखकर नागमाता अत्यन्त प्रसन्न हुई

"मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा।।

राम काज तुम्ह करिहउ तुम्ह बल बुद्धि निधान।"2

इस प्रकार दो परीक्षाओं से गुजर कर हनुमान जब आगे बढ़े तब एक मायावी राक्षसी ने उनका मार्ग रोकने की चेष्टा की अतुलित बल निधान हनुमान ने तुरन्त उसका कपट पहचानकर उसका वध कर दिया–

"निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई।।

जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं।।

गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि विधि सदा गगन चर खाई।।

सोईछल हनूमान कंह कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा।।

ताहि मारि मारूत सुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा।।"3

---

1. रामचरित मानस – 5/2–6, 7, 10
2. रामचरित मानस – 5/2–12
3. रामचरित मानस – 5/3–1, 2, 3, 4, 5

यहाँ पर गोस्वामी तुलसीदास ने हनुमान के लिए 'मतिधीरा' शब्द का प्रयोग किया है जिसका तात्पर्य है कि वे परम धैर्यवान थे। बार–बार बाधायें आने पर भी वे विचलित नहीं हुए अपना लक्ष्य एक क्षण के लिये भी नहीं भूले यह उनके परम धैर्यवान होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वीर पुरुष को धीर भी होना चाहिए तभी वह धर्म सम्मत वीरता कहलाती है।

सीता और राम के बीच की दूरी को हनुमान ने अपनी मधुरवाणी द्वारा कम करने की जो चेष्टा की उसके फलस्वरूप दोनों ने हनुमान को आशीर्वाद और प्रगाढ़ प्रेम दिया। सीता ने हनुमान से कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अजर–अमर होने का आशीर्वाद दिया–

"मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी।।
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहु बहुत रघुनायक छोहू।।
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।"1

श्री राम के पास जब सीता का संदेश और निशानी लेकर हनुमान पहुँचे तब राम ने भाव विभोर होकर हनुमान को आलिंगनबद्ध कर लिया तथा कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहने लगे–

"हनुमस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः।।
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारूते।
इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम्।।
साद्रनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः।।"2

---

1. रामचरित मानस – 5/17–1–4

2. अध्यात्म रामायण – 5/5–60–62

वायुनन्दन हनुमान! तुमने जो कार्य किया है, वह देवताओं के लिए भी कठिन है। मैं इसके बदले तेरा क्या उपकार करुँ, यह नहीं जानता। मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व देता हूँ। यह कहकर रघुश्रेष्ठ श्री राम ने वानर श्रेष्ठ हनुमान को हृदय से लगा लिया उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर गये–

"पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता।।"1

लक्ष्मण के मूर्छित होने पर उनके लिये वैद्य का प्रबन्ध तथा औषधि के लिए हिमालय पर्वत उठा लाना, युद्ध में युद्ध कौशल का प्रदर्शन आदि अनेक ऐसे प्रसंग है जिनमें हनुमान के बल, पराक्रम, कार्य कौशल, साहस और पवित्र प्रेम का परिचय मिलता है।

बाल्मीकि रामायण के अनुसार श्री राम ने परमधाम पधारते समय हनुमान को जगत् कल्याण हेतु मृत्युलोक में रहने की आज्ञा दी थी–

"ममकथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वरः।

तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।।"2

अर्थात् वानर श्रेष्ठ! संसार में जब तक मेरी कथाओं का प्रचार रहे तब तक तुम भी मेरी आज्ञा का पालन करते हुए प्रसन्नता पूर्वक विचरते रहो। उत्तर में हनुमान कहते हैं–

"यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।।

तावत्स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।"3

---

1. रामचरित मानस – 5/32–8
2. बाल्मीकि रामायण – उत्तरकाण्ड 108/33–34
3. बाल्मीकि रामायण – उत्तरकाण्ड 108/35–36

अर्थात् प्रभो! संसार में जब तक आपकी पावन कथा का प्रचार रहेगा, तब तक आपके आदेश का पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वी पर ही रहूँगा।

विद्वत्जनों में ऐसी मान्यता है कि सीता जी के वरदान के फलस्वरूप हनुमान अजर–अमर हैं और आज भी पृथ्वी पर विद्यमान हैं। द्वापर युग में हनुमान ने भीम तथा अर्जुन को दर्शन देकर अपने विद्यमान होने का प्रमाण दिया था। महाभारत के रामोपाख्यान में हनुमान–भीम संवाद में हनुमान राम द्वारा प्रदत्त वरदान की चर्चा करते हैं–

"यावद्रामकथा वीर भवेल्लोकेषु शत्रुहन्।

तावज्जीवेयमित्येवं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत्।।"1

रामचरित मानस के तुलसीदास जीवनी में ऐसा वर्णन मिलता है कि हनुमान जी ने ही उन्हें रामचरित मानस के सृजन की प्रेरणा दी थी तथा हनुमान जी की कृपा से ही उन्होने परब्रह्म श्री राम के दर्शन सन 1607 की मौनी अमावस्या के दिन किये थे–

"चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर।

तुलसीदास चंदन घिसें तिलक देत रघुवीर।।"2

इस प्रकार कलियुग में भी हनुमान जी की उपस्थिति का प्रमाण मिलता है।

दशरथ जी के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

डॉ0 राजूरकर लिखते हैं कि–"सत्य प्रेम, पुत्र प्रेम तथा पत्नी प्रेम इन्हीं तीन प्रेमों में मग्न किन्तु– किंकर्तव्यविमूढ़ दशरथ का भावुक हृदयस्पर्शी चित्र हमारे सामने स्पष्ट रूप से आता है। इस किंकर्तव्यविमूढ़ावस्था में भी दयनीय भावुक दशरथ विवश होकर

---

1. महाभारत – 3/147–36
2. रामचरित मानस, तुलसीदास की संक्षिप्त जीवनी– पृ0 9, 10 से

कर्तव्य कठोर बनता सा दिखाई देता है इसलिए दशरथ के सम्पूर्ण चरित्र चित्रण के पश्चात् वह एक आदर्श चरित्र प्रस्तुत करता प्रतीत होता है।"1

बाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ के निम्न गुणों का परिचय मिलता है–

"सस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित् सर्वसंग्रहः।

दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपद प्रियः।।

इक्ष्वाकूणामतिरथो त्यक्त्वा धर्म परोवशी।

महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।

बलवान निहतामित्रो मित्रवान् विजितेन्द्रियः।

धनैश्च संचयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः।।

यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता।।

तथा दशरथो लोकस्य परिरक्षिता।।

तेन सत्याभिसन्धेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता।

पालिता सा पुरी श्रेष्ठा इन्द्रेणेवामरावती।।"2

अर्थात् अयोध्यापुरी में रहते हुए वेदज्ञ, संग्रहशील, दूरदर्शी, महान तेजस्वी, प्रजाप्रिय, इक्ष्वाकुकुल श्रेष्ठ, महाबली, यज्ञ–याग करने वाला, धर्म परायण, संयमी दिव्य गुण सम्पन्न, राजर्षि, त्रिलोक विख्यात, शत्रुहीन, मित्रयुक्त, इन्द्रियविजयी, धन में कुबेर के समान ऐश्वर्य में इन्द्र के समान महातेजस्वी, प्रजापति मनु के समान प्रजा का रक्षक, चारों पुरुषार्थों का ज्ञाता तथा धर्म, अर्थ, काम का अनुष्ठानकर्ता, सत्य प्रतिज्ञ नरेश श्रेष्ठ अयोध्यापुरी का इन्द्र के समान पालन करता था।

---

1. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर पृ0 285
2. बाल्मीकि रामायण – 6/1–5

गोस्वामी तुलसीदास ने भी संक्षेप में दशरथ के इन्हीं गुणों का वर्णन किया है–

"अवधपुरी रघुकुल मनि राउ। बेद विदित तेहि दसरथ नाऊ।।

धरम धुरन्धर गुन निधि ग्यानी। हृदय भगति मति सांरगपानी।।"[1]

डा0 कामिलबुल्के ने अपनी पुस्तक 'रामकथा' में दशरथ की वेद विदितता का प्रमाण दिया है "ऋग्वेद (1, 126, 4) की एक दान स्तुति में अन्य राजाओं के साथ–साथ दशरथ की भी प्रशंसा की गयी है– **"चत्वारिंशद्शरथस्य शोणाः सहस्रस्योग्रे श्रेणिं नयन्ति।"**[2]

सम्पूर्ण धर्मों का ज्ञाता महात्मा दशरथ का मानव मन पुत्रेच्छा से व्याकुल रहता था– **"एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं।।"**[3]

त्रिलोकैश्वर्य सम्पन्न राजा दशरथ का मानव मन वित्तैषणा तथा लोकैषणा से युक्त होते हुए भी सुतैषणा से वियुक्त है–

"तस्य चैवप्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः।

सुतार्थ तप्यमानस्य नासीद् वंश करः सुतः।।"[4]

मनुस्मृति के अनुसार मन में मोक्ष की भावना लाने से पूर्व तीन ऋणों से मुक्त होने का प्रावधान है–

"अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।

इष्टवा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्।।"[5]

---

1. रामचरित मानस – 1/187–4, 5
2. रामकथा (उत्पत्ति और विकास) डॉ0 कामिल बुल्के पृ0 2
3. रामचरित मानस – 1/189–1
4. बाल्मीकि रामायण – 1/8–1
5. मनुस्मृति – 6/36

1. ऋषि ऋण 2. देव ऋण 3. पितृ ऋण। अतः धर्मज्ञ राजा दशरथ पितृऋण से मुक्त होने के लिए सदैव व्याकुल रहते थे पुत्र प्राप्ति के लिए राजा ने गुरू वशिष्ठ की मंत्रणा से पुत्रेष्टि यज्ञ भी किया–

सृंगी रिषिही बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा।।

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे।।"1

पुत्रयज्ञ के फल स्वरूप दशरथ के चार पुत्र उत्पन्न हुए–

"दशरथ पुत्र जनम सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना।।

परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा।।"2

पुत्र जन्म की बात सुनकर राजा दशरथ आनन्द विभोर हो गये उन्हें अपने शरीर की सुध भूल गई। दशरथ के इस भावातिरेक पर डॉ० राजूरकर लिखते हैं कि–"पिता दशरथ भावातिशयता का दुर्बल शिकार है। स्त्री प्रेम या पत्नी प्रेम (कैकई प्रेम) के अतिरिक्त उसे भाव विवश, विवेक शून्य हतबल करने वाला अतिशय पुत्र प्रेम भी रहा है। दशरथ का यह पुत्र प्रेम कर्तव्य की या सत्य प्रेम की पृष्ठभूमि पर अत्यन्त उदात्त बन गया है दशरथ के चरित्र का यथार्थ पक्ष यदि पत्नी प्रेम में है, तो आदर्श पक्ष पुत्र प्रेम तथा सत्य प्रेम में निहित है।"3

पिता दशरथ पुत्र मोह के कारण यदि धर्म से च्युत होना भी चाहे तो यथार्थ ज्ञान कराये जाने पर राजा दशरथ धर्म का पालन करता था। विश्वामित्र का आगमन राक्षस त्राण हेतु दो पुत्रों की माँग तथा दशरथ का मोहवश दुखी होना और अंत में पुत्रों को

---

1. रामचरित मानस – 1/189–5, 6
2. रामचरित मानस – 1/193–3, 4
3. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 294

ऋषि के साथ विदा कर देना मानव मन की सहजताओं के प्रमाण हैं–

"अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए।।

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ।।"1

ऐसे ही धर्म संकट में राजा दशरथ के प्राण तब फँस जाते हैं जब रानी कैकई पूर्व में दिये गये दो वचनों के फलस्वरूप भरत के लिए अयोध्या का राज्य तथा राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास माँगती है–

"सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका।।

मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।।

तापस वेष बिसेषि उदासी। चौदह बरसि रामु बनबासी।।

सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू।।"2

डा0 राजूरकर लिखते हैं कि "महाबलशाली दशरथ कैकई के सम्मुख सदा हतबल तथा भीरू बनकर रहा।"3 दशरथ की इस दुर्बलता का प्रमाण देखें–

"कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ।।

सुरपति बसइ बाँहबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रूख ताकें।।

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई।।

सूल कुलिस असि अँगव निहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।"4

कैकई में आसक्त दशरथ भावातिशयिता में नीति निपुण होते हुए भी स्त्री के

---

1. रामचरित मानस – 1/208–7, 8
2. रामचरित मानस – 2/29–1–4
3. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 292
4. रामचरित मानस – 2/25–1–4

कपट को नहीं समझ पाए और वचनों की कतार लगा दी–

"प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें।।

जौं कछु कहौं कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही।।"1

दशरथ ने भावावेष में प्राणप्रिय राम की सौ बार शपथ देकर बचन पूर्ति का वचन दे दिया जिसके फलस्वरूप वे मृत्युपाश मे स्वयं बँध गये। कैकई दशरथ की सत्यप्रतिज्ञता को जानती थी इसी कारण उसने पहले राजा को वचनबद्ध कर लिया था–

"मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।

देन कहेहु वरदान दुइ तेउ पावत संदेहु।।"2

कैकई के ऐसे उद्वेगजनक वचन सुनकर राजा भोलेपन में तथा पुत्र के राज्याभिषेक की प्रसन्नता में भाव विह्वल होकर कहता है–

"रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहिं बरू बचनु न जाई।।

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई।।"3

इस प्रकार कैकई ने कब उन्हें चारों ओर से कपट जाल में बद्ध कर लिया दशरथ को पता नही चला। वे तो वेदरीति के आधार पर ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंपकर वानप्रस्थ मे प्रवेश कर सनातन धर्म का निर्वाह करना चाहते थे–

"श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जठरपनु अस उपदेसा।।

नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाभ किन लेहू।।"4

---

1. रामचरित मानस – 2/26
2. रामचरित मानस – 2/27
3. रामचरित मानस – 2/28–4, 7
4. रामचरित मानस – 2/2–7, 8

धर्मशास्त्रों में वर्णित आश्रमधर्मों के आधार पर गृहस्थ जब अपने शरीर पर झुर्रियाँ, बालों मे सफेदी और पुत्र के भी पुत्र देखे तब अरण्य की ओर प्रस्थान करे–

"गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलिपलितमात्मनः।

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यंसभाश्रयेत्।।"1

किंतु दशरथ का परमोदार स्वभाव तथा प्रबल बिधि का बिधान दोनो को यह स्वीकार नहीं था। अयोध्यावासी भी राजा दशरथ के राम के प्रति निष्कपट प्रेम तथा राजा की सत्य प्रियता को जानते हैं–

"का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा।।

एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरू बिचारि नहि कुमतिहि दीन्हा।।

जे हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबसु ग्यान गुन गा जनु।।

एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहिं दोसु नहिं देहिं सयाने।।"2

कोई कहता विधाता का दोष है कोई राजा की सरलता को दोष देते हैं जिसके कारण वे दुर्बुद्धि कैकई के कपट को न पहचान सके और अपना वचन पूरा करने मे हठी राजा कैकई को वचन दे बैठे।

दशरथ के निर्मल पुत्र प्रेम से उनका सत्य प्रेम अत्यन्त उज्ज्वल है। जिस प्रकार पित्र सुलभ स्वभाव के वशीभूत होकर दशरथ ने विश्वामित्र के कार्य पूर्णता के लिए वचनबद्ध होने पर थोड़ी आनाकानी के बाद अंततः अपने वचन को पूर्ण किया उसी प्रकार कैकई से बचनबद्ध दशरथ ने प्राण प्रिय राम को वन जाने से न रोककर स्वयं

---

1. मनुस्मृति – 6/2
2. रामचरित मानस – 2/47–1–4

अपने प्राणों की बलि दे दी–

"राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।

तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।।"1

"तजे राम जेहि बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी।।"2

"रामहिं कहेउ राउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना।।"3

भावना और कर्त्तव्य (धर्म) का इतना तीव्र संघर्ष अन्य किसी पात्र में नहीं आया है। पत्नी प्रेम के कारण उसे पुत्रप्रेम से वियुक्त, सत्य प्रेम की पार्श्वभूमि पर होना पड़ा है। सांसारिक सुखों का, अपने सर्वस्व का समर्पण दशरथ के कर्त्तव्य पूर्ति की बलिवेदी पर करके अपने चरित्र को महान बना दिया है। दशरथ के चरित्रोत्कर्ष के यें सोपान अत्यन्त मानवीय, स्वाभाविक एवं उदात्त हैं। मृत्यु के उपरान्त भी वे पुत्र प्रेम से ओतप्रोत होकर रण प्रांगण में रावण वध के उपरान्त सूक्ष्म शरीर से प्रकट होते हैं और राम, लक्ष्मण, सीता तीनो को आशीर्वाद देते हैं

"तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए।।"4

"अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा।।"5

डा0 माता प्रसाद के अनुसार– "दशरथ वस्तुतः एक दुःख पर्यवसायी चरित्र हैं वे एक राज्य के अधिपति हैं इसलिए उनका पतन उक्त राज्य के भाग्य को प्रभावित करता है, और यह पतन उनके चरित्र की दो विशेषताओं में से, जो सद्भाव के आधिक्य के अन्तर्गत ही मानी जा सकती हैं, किसी के कारण भी कहा जा सकता है; एक तो

---

1. रामचरित मानस – 2/155
2. रामचरित मानस – 2/174–4
3. रामचरित मानस – 2/292–3
4. रामचरित मानस – 6/112–1
5. रामचरित मानस – 6/112–2

बड़े पुत्र राम के प्रति आत्यन्तिक प्रेम है, और दूसरा वचन पालन मे तत्परता है। उनके जीवन में ऐसी असाधारण स्थिति आती है जब वे इन दो में से किसी एक का चुनाव कर सकते थे। कैकई दोनो का साथ–साथ निर्वाह करना उनके लिए असम्भव बना देती है परन्तु दशरथ दोनो (प्रेम और कर्त्तव्य) का निर्वाह करते हुए अपने प्राण त्याग देते हैं।"1

दशरथ प्रारम्भ से ही राम के ब्रह्मत्व से परिचित थे–

"जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई।।"2

किंतु पूर्व जन्म के वरदान के कारण–

"सुत विषयक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ कहै किन कोऊ।।

मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम् जीवन तिमि तुम्हहि अधीना।।"3

उन्हें मुक्ति नहीं मिली थी। राम के द्वारा दृढ़ ज्ञान मिलने के उपरान्त ही उनकी मुक्ति सम्भव हुई–

"रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना।।

ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो।।"4

यहाँ पर प्रथम प्रेम से तात्पर्य पूर्व जन्म में माँगे गये वरदान से है। इस प्रकार दशरथ का चरित्र वृद्धश्च तरुणी भार्या का उदाहरण अपवाद स्वरूप मान लिया जाए तो उदारता, विशालता, प्रेम को अन्त तक निर्वाह करने वाले रूप में दिखाई देते हैं। पत्नी (कैकेयी, पुत्र (राम) एवं सत्य निष्ठा अपने आत्यन्तिक रूप में यहाँ दिखाई देते हैं।

1. तुलसीदास – एक समालोचनात्मक अध्ययन – पृ0 300
2. रामचरित मानस – 1/193–5
3. रामचरित मानस – 1/151–5, 6
4. रामचरित मानस – 6/192–5, 6

भावना एवं कर्तव्य का द्वन्द्व उनके चरित्र के मूल में है। कैकेयी प्रेम में तमोगुण, राम प्रेम में रजोगुण तथा सत्यनिष्ठा/प्रतिज्ञापालन/प्रतिष्ठा में सतोगुण दिखाई देता है।

सुग्रीव के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

सुग्रीव वानर जाति का आदर्श प्रतिनिधि है। उसके चरित्र से वानर जाति की संस्कृति का परिचय प्राप्त होता है। उसके आचरण में मानव सुलभ दुर्बलताओं के साथ–साथ ऊँचे आदर्श भी विद्यमान हैं। अनेक विद्वानों ने सुग्रीव के चरित्र को औसत दर्जे का माना है जिसमें कोई भी विशेष गुण नहीं है–

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार– "सुग्रीव का चरित्र तो और भी औसत दर्जे का है।"[1]

2. डा0 राम प्रकाश अग्रवाल लिखते हैं– "सुग्रीव की स्थिति पताकानायक की है परन्तु बल, वीरता, बुद्धि, विवेक, औदार्य आदि कोई गुण उनमें विशेष नहीं है।"[2]

3. डा0 राजूरकर का मानना है कि "तुलसी ने भी सुग्रीव को शरणापन्न सेवक धर्म का निर्वाह करने वाले सखा के रूप में चित्रित करके उसके महत्व को कुछ हद तक माना है।"[3]

मेरे विचार से विद्वानों ने सुग्रीव के धर्म सम्मत चरित्र की ओर ध्यान नहीं दिया चूँकि राम स्वयं धर्म के मूर्तमान रूप थे वे जानते थे कि सुग्रीव स्वधर्म रक्षित वानर है उसके भीतर वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक धर्मज्ञ मनुष्य में होने चाहिए। बल, बुद्धि, विद्या में वह बालि के समान था। बालि ने स्वयं मरते समय ऐसी शंका व्यक्त की थी–

---

1. गोस्वामी तुलसीदास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – पृ0 143
2. बाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन–डॉ0 रामप्रकाश अग्रवाल– पृ0 190–191
3. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 321

कि यद्यपि हम दोनो भाई (बालि–सुग्रीव) एक समान हैं फिर भी आपने एक राज्य विहीन को अपना मित्र क्यों बनाया–

"धर्म हेतु अवतरेहु गोसाई। मारेहु मोहि ब्याध की नाई।।

मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।।"1

तब राम ने उसे धर्म–अधर्म का भेद समझाया यद्यपि बालि महाबलवान धर्मज्ञ, तेजस्वी था किंतु छोटे भाई की पत्नी का बलात् अपहरण करने के पाप के कारण धर्मात्मा राम ने उसे अपनी मित्रता के योग्य नहीं माना प्रस्तुत उद्धरण से स्पष्ट है कि सुग्रीव में अन्य गुण हों न हों पर वह सदाचारी था इसीलिए राम ने उसे अपना मित्र बनाया, बाल्मीकि रामायण के अनुसार सुग्रीव में निम्न गुण प्रकट होते हैं– आदर्शमित्र बलशाली, कर्तव्यदक्ष, व्यवहार कुशल, राजनीति–निपुण तथा निष्कपट। इन्हीं गुणों के कारण हनुमान, जाम्बवान, नल–नील आदि विद्वान साथियों ने उसका कभी साथ नहीं छोड़ा। सुग्रीव की इन्ही चारित्रिक विशेषताओं को देखकर महात्मा भरत कहते हैं–

"त्वस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः।।

सौहृदाज्जयते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम्।।"2

सुग्रीव! तुम हम चारों के पाँचवे भाई हो। क्योंकि सौहार्द से ही मित्रत्व और अपकार से शत्रुत्व व्यक्त होता है। और मित्र भाई ही होता है। अग्नि को साक्षी मानकर राम ने सुग्रीव को अपना मित्र बनाया तथा एक दूसरे का दुख दूर करने का वचन दिया

---

1. रामचरित मानस – 4/9–5, 6
2. बाल्मीकि रामायण – युद्ध काण्ड – 126/47

सुग्रीव कहता है—

"कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा।।

सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि विधि मिलहि जानकी आई।।"1

राम भी सुग्रीव को दुख निवारण का वचन देते हैं—

"सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।

ब्रह्म रूद्र सरनागत गए न उबरिहिं प्रान।।"2

सुग्रीव को दिये वचन को जिस प्रकार राम ने निभाया उसी प्रकार निष्ठापूर्वक सुग्रीव ने भी राम की सहायता की यदि सुग्रीव की मानव सुलभ सहज दुर्बलताओं को छोड़ दिया जाए तो उसमें एक कर्तव्यनिष्ठ, कुशल राजनीतिज्ञ, निश्छल मित्र आदि चारित्रिक विशेषतायें प्रकट होती हैं।

बालि वध के पश्चात् राज्य प्राप्ति ने सुग्रीव को विलासिता की ओर उन्मुख कर दिया राम कहते हैं—

"सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी।।"3

किंतु कुशल मंत्री हनुमान द्वारा नीतिपूर्ण शिक्षा दिये जाने पर वह अत्यन्त लज्जित हुआ—

"सुनि सुग्रीव परम भय माना। विषय मोर हरि लीन्हेउग्याना।।

अब मारूत सुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा।।"4

क्रोधाग्नि में जलते हुए लक्ष्मण के सम्मुख नीतिज्ञ तथा विनम्र हनुमान तथा तारा

---

1. रामचरित मानस – 4/5–7, 8
2. रामचरित मानस – 4/6
3. रामचरित मानस – 4/18–4
4. रामचरित मानस – 4/19–3, 4

को भेजकर उनका क्रोध शांत करने का प्रयत्न करता है तत् पश्चात स्वयं अति विनम्रतायुक्त वचन बोलता है जिससे लक्ष्मण का क्रोध शांत हो जाता है–

"सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि विनती समझाउ कुमारा।।

तब कपीस चरनन्हि सिरू नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा।।"1

वह अति विनम्र होकर श्री राम से क्षमा माँगता है–

"विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पॉवर पसु कपि अति कामी।।

नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा।।"2

राम इन दुर्बलताओं को मानव सुलभ मानकर क्षमा कर देते हैं। इसके पश्चात सुग्रीव एक कर्तव्यनिष्ठ मित्र तथा कुशल राजनेता के रूप में प्रस्तुत होता है–

"त्रिपज्वरात्रादूर्ध्व यः प्राप्तुयादिह वानरः।

तस्य प्राणान्ति को दण्डोनात्र कार्या विचारणा।।"3

कठोर दण्ड निर्धारक राजा सुग्रीव अत्यन्त विनम्र तथा व्यवहार निपुण भी है। वानर सेना को संबोधित करते हुए कहते हैं–

"ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई।।

राम काजु अरू मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा।।"4

वृद्धजनों को तथा दिग्गज योद्धाओं को सम्मानपूर्वक अंगद के द्वारा बुलवाता है–

"हरींश्च वृद्धानुपयातु सांगदो

भवान् ममाज्ञाधिकृत्य निश्चितम्।।"5

---

1. रामचरित मानस – 4/20–3, 6
2. रामचरित मानस – 4/21–3, 4
3. बाल्मीकि रामायण – किष्किंधा काण्ड – 29/32
4. रामचरित मानस – 4/22–5, 6
5. बाल्मीकि रामायण – किष्किंधा काण्ड/29/33

वरिष्ठ योद्धाओं के साथ अंगद नलनील आदि को दक्षिण दिशा में भेजता है–

"सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना।।

सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू।।"[1]

बुद्धिमान तथा चतुर सुग्रीव की राम के प्रति निष्ठा प्रशंसनीय है। बाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण सुग्रीव के पास दूत भेजकर भेद नीति अपनाता है–

"त्वं वै महाराज कुल प्रसूतो महाबलश्चऋक्षराजसुतश्च।

न कश्चनार्थस्तव नास्त्यनर्थस्तथापि मे भ्रातृसमोहरीश।।

अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः।

किं तत्र तव सुग्रीव किष्किंधां प्रतिगम्यताम्।।"[2]

अर्थात् तू श्रेष्ठ राजकुल में उत्पन्न, अत्यन्त बलवान है। आजतक हम दोनो ने एक दूसरे को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया है। तू मेरे भाई के समान है। मैने राम की पत्नी का हरण किया है। तू व्यर्थ ही इस झगड़े में सम्मिलित हो रहा है। तू किष्किंधा में रहकर मित्रता बनाए रख।

यह सुनकर सुग्रीव ने राम के प्रति अपनी निष्ठा का प्रमाण देते हुए कहा–

"न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो

न चोपकर्तासि न मे प्रियोसि।

अरिश्च रामस्य सहानुबन्ध

स्ततोऽसि वालिवत् हिवध्यः।।"[3]

---

1. रामचरित मानस – 4/23–1, 2
2. बाल्मीकि रामायण – युद्ध काण्ड 20/10–11
3. बाल्मीकि रामायण – युद्ध काण्ड 20/23

तू न मेरा मित्र है न उपकारकर्ता है और न तू मेरा प्रिय ही है। तुझ पर दया की जाए ऐसा तेरा कोई कृत्य नहीं है। तू राम का शत्रु है, मेरा भी शत्रु है तू बालि के समान ही बध्य है। सुग्रीव का युद्ध कौशल कुंभकर्ण के युद्ध में प्रकट होता है उसने रावण के तीन सेनापति कुंभ, विरूपाक्ष तथा महोदर को यमपुरी पहुँचाया था।[1] सुग्रीव का साहस भी प्रशंसनीय है समर्थ न होते हुए भी रावण से द्वन्द्व युद्ध करता है राम उसके साहस की प्रशंसा करते हुए समझाते हैं कि आवेश मे आकर इस तरह का अनियोजित, अविचार न करें। तब सुग्रीव उत्तर देता है कि शरीर में शक्ति होने के कारण सीता के अपहरणकर्ता को देखकर मुझसे आक्रमण किये बिना रहा नहीं गया–

"तव भार्यापहर्तारिं दृष्ट्वा राघव रावणम्।

मर्षयामि कथं वीर जानन् विक्रमात्मनः।।"2

सुग्रीव की राजनीतिज्ञता विभीषण के रामादल में आगमन पर ज्ञात होती है–

"कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई।।

कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा।।

जानि न जाइ निसाचर माया। काम रूप केहि कारन आया।।

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा।।"3

राजनीति कहती है–

"मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः।"

अर्थात विजय का मूल कारण योग्य मन्त्रियों द्वारा की गई उत्तम मन्त्रणा है।

---

1. बाल्मीकि रामायण – युद्धकाण्ड – 67/83–89; 76/65–95; 96–97
2. बाल्मीकि रामायण – युद्धकाण्ड – 41/9
3. रामचरित मानस – 5/43–1, 4, 5, 6

हनुमान द्वारा विभीषण के स्वभाव का परिचय मिलने पर सुग्रीव प्रसन्न होकर विभीषण को भी सखा रूप में देखने लगते हैं–

"विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतुनः।"1

डा0 राजूरकर के अनुसार– "तुलसी ने राम को ही प्रताप मूलक माना है, अन्य जीव निमित्त मात्र है। इसलिए निमित्त मात्र सुग्रीव की शूरता का वर्णन तुलसी ने न के बराबर किया है।"2 मेरे विचार से सुग्रीव का राम के प्रति समर्पण भाव ही उसके गुण प्राकट्य का प्रधान कारण है। बालि द्वारा दमित सुग्रीव का शौर्य, आत्मविश्वास तथा नेतृत्व क्षमता राम का सानिध्य पाकर ही उद्घाटित होते हैं। सुग्रीव का खोया आत्मबल पुनः जाग्रत करने के उद्देश्य से ही राम स्वयं बालि के सम्मुख जाकर युद्ध नहीं करते वे सुग्रीव को भेजते हैं–

"तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा।।"3

इस प्रकार सुग्रीव राम के प्रति सदा के लिए कृतज्ञ हो जाता है और उसके कुशल मंत्रित्व, सेनापतित्व, वीरता, साहस, निष्ठा, पराक्रम आदि गुणों का प्राकट्य होता है।

रामचरित मानस के गौण पुरूष पात्रों के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

डा0 राजूरकर के अनुसार मानस के गौण मानव पुरूष पात्र निम्न लिखित हैं– वशिष्ठ, जनक, विश्वामित्र, बामदेव, सुमन्त्र, गुह्य, बाल्मीकि, भरद्वाज, अगस्त्य, अंगद, जाम्बवन्त, नल, नील, शरभंग।"4

---

1. बाल्मीकि रामायण – युद्धकाण्ड – 18/38
2. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 321
3. रामचरित मानस – 4/7–26
3. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 123

विषय विस्तार भय के कारण मेरे विचार से ऐसे गौण पात्रों का संक्षिप्त विवेचन उचित होगा जिनसे कथा को गति मिलती है अतः गौण पात्र इस प्रकार हैं–

1. वशिष्ठ	2. विश्वामित्र	3. जनक	4. सुमन्त्र
5. गुह्य	6. जटायु	7. अत्रि	8. बाल्मीकि
9. अंगद	10. जाम्बवान	11. नल–नील	12. परशुराम
13. मनु	14. ऋष्यश्रृंग (श्रृंगी)	15. बालि	16. प्रतापभानु
17. अरिमर्दन	18. बामदेव	19. याज्ञवल्क्य	20. लोमशमुनि
21. भरद्वाज	22. काक भुशुण्डि		

इनके अतिरिक्त अन्य पात्रों का वर्णन गोस्वामी जी नें आंशिक रूप से किया है। अर्थात् इनके द्वारा कृत धर्मकार्यों का उल्लेख मात्र है जिससे पात्रों को धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है।

वशिष्ठ ऋषि के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

महर्षि वशिष्ठ महाराज दशरथ के कुलगुरू एवं पुरोहित थे। वे नीति विशारद तथा धर्मतत्त्व वेत्ता थे। तपोमूर्ति वशिष्ठ की सर्वोपरि श्रेष्ठता का आधार उनका ब्रह्मज्ञान था जिसके बल पर उन्होंने ब्रह्मर्षि पद प्राप्त कर लिया था। वे अत्यन्त क्षमाशील व्यवहार कुशल, अतिथि सेवी तथा गोसेवी थे। महर्षि वशिष्ठ अहिंसा धर्म की साक्षात मूर्ति थे। "महर्षि विश्वामित्र के द्वारा अपने सौ पुत्रों का वध किए जाने पर भी वे उन्हें क्षमा कर देते है तथा हिंसा भाव से गये विश्वामित्र भी उनके सम्मुख जाकर अपने अस्त्र शस्त्र त्याग देते हैं।"[1] महर्षि पतंजति द्वारा उद्घोषित– **"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैर**

---

1. कल्याण (धर्मांक) पृ0 84 से

त्यागः" वाक्य पूर्णतः उनके जीवन का मूल था। वे एक सच्चे ब्राह्मण थे–

"ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।

कृच्छाय तपसे चैव प्रेत्यानन्तसुखाय च।।"1

बाल्मीकि रामायण के अनुसार केवल ब्रह्मतेज ही नही, शक्ति बल भी उनमें चरम सीमा पर था"2 विश्वामित्र द्वारा उनके आश्रम में आक्रमण किये जाने पर उनके ब्रह्मतेज तथा शक्ति बल ने विश्वामित्र की विशाल सेना को हरा दिया था। चक्रवर्ती महाराज दशरथ भी महर्षि वशिष्ठ की आज्ञा पालन में ही जीवन की सार्थकता समझते थे–

"गुर गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि विनय विसाला।।"3

राजा के निमंत्रण पर ही वशिष्ठ मुनि राज्य सभा में उपस्थित होकर अपनी महत्वपूर्ण सम्मति दिया करते थे। रघुकुल शिरोमणि राजा दशरथ के पूर्णरूप से गुरू वशिष्ठ के चरणों में समर्पित थे अतः गुरू गरिमा के गान को सार्थक करते हुए वशिष्ठ सदैव इक्ष्वाकुकुल के हित में संलग्न रहते थे–

"गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुर्गुरूदर्देवो महेश्वरः।

गुरूः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।।

चक्षुरून्मीलितम् येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।"

जब–जब राजा दशरथ अज्ञान तथा मोह ग्रसित होकर धर्म पथ से च्युत होने लगे तब–तब गुरू वशिष्ठ ने उन्हे सत्य का मार्ग दिखाया। विश्वामित्र के द्वारा

---

1. कल्याण धर्मांक – पृ0 678 में उद्धृत
2. बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड/55
3. रामचरित मानस – 1/189–2

राम–लक्ष्मण के माँगे जाने पर दशरथ मोहग्रस्त हो गये तब गुरू ने उन्हे समझाया–

"देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अज्ञान

धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान।।"1

पिता की मृत्यु के बाद राम भी उसी प्रकार गुरू वशिष्ठ के चरणों में समर्पित हो गये तथा राजा राम गुरू की छाया में राज काज सम्हालने लगे।

बाल्मीकि रामायण के अनुसार–

"काल पुरूष तथा राम के गुप्त संवाद के प्रसंग में प्रतिहारी के रूप में नियुक्त लक्ष्मण के द्वारा दुर्वासा ऋषि के आगमन पर हुई कर्तव्यच्युति के लिए लक्ष्मण के त्याग का कठोर निर्णय पालन के लिए वशिष्ठ ने ही राम को बाध्य किया था"2 वे एक सच्चे गुरू थे जो प्रत्येक परिस्थिति में अपने शिष्य का हित चाहते थे किंतु थे तो आखिर मानव ही अतः मानव सुलभ प्रेम, वात्सल्य भी उनमे भरपूर था वे राम तथा सीता के प्रति अत्यन्त स्नेहिल थे यह जानते हुए भी कि राम का वनगमन पूर्णतः धर्म सम्मत है, चित्रकूट प्रसंग में वे स्वयं चाहते हैं कि राम अयोध्या वापस लौट जायें–

"बोले मुनिबरू समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भ्राता। फेरिअहिं लखन सीय रघुनाथा।।

सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता।।"3

ब्रह्मज्ञानी वशिष्ठ राम के ब्रह्मत्व से परिचित थे इसलिए एक बार अपने पौरोहित्य

---

1. रामचरित मानस – 1/207
2. बाल्मीकि रामायण – उत्तर काण्ड – 106/7–11
3. रामचरित मानस – 2/254/1, 256–3, 2

कर्म पर ग्लानि करते हुए राम से मुक्ति की प्रार्थना करते हैं–

"एक बार वशिष्ठ मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए।।

अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा।।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपा सिंधु विनती कछु मोरी।।

देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम ह्दय अपारा।।

महिमा अमित बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना।।

उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान स्मृति कर निंदा।।

नाथ एक बर माँगउँ राम कृपा करि देहु।

जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु।।"1

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ स्वधर्म निरत संत थे राम के वन गमन तथा दशरथ की मृत्यु के पश्चात उन्होने ही अयोध्या राज्य की बागडोर सम्हाल कर रखी थी। वे सच्चे अर्थो में विश्वकल्याण निरत संत पुरूष थे। श्री वशिष्ठ मुनि के निम्न वाक्य परम कल्याण कारी हैं–

"जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना शुभ कर्मा।।

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।।"2

"तव पद पंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर यह फल सुन्दर।।

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ।।

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभि अंतर मल कबहुँ न जाई।।"3

---

1. रामचरित मानस – 7/48–1–6, 49
2. रामचरित मानस – 7/49–1, 2, 3
3. रामचरित मानस – 7/49–3, 4, 5

प्रभु प्राप्ति के उद्‌देश्य से ही उन्होंने पौरोहित्य कर्म स्वीकार किया था। वशिष्ठ मुनि के माध्यम से संत तुलसी ने सच्चे गुरू एवं सच्चे संत का चरित्र प्रतिपादित किया है।

विश्वामित्र–

'धिक्‌बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजोबलंबलं' के उद्‌घोष करने वाले विश्वामित्र राजर्षि भी हैं और महा उग्र तपश्चर्या करने वाले महायोगी भी। उन्होने अपनी साधना से राजर्षि की उपाधि पायी है। विश्वामित्र आश्रम बनाकर राजभोग्य का परित्याग कर वानप्रस्थी बने अपनी शस्त्र विद्या और तपोबल से वे राजन्य वर्ग एवं ऋषि वर्ग में विख्यात भी रहे हैं। उनका जीवन और उनके क्रिया कलाप बाल्मीकि रामायण मे बड़े भव्य एवं आकर्षक रूप मे चित्रित हैं किंतु रामचरित मानस मे वे राम के सहायक आयुध गुरू एवं दिशा निर्देशक रूप में चित्रित हैं।

तुलसी ने उनके चरित्र और सनातन धर्म संबंधी अवधारणाओं की व्यावहारिक रूपरेखा अल्पकालिक कथा सूत्र रूप में व्यंजित की है। यद्यपि विश्वामित्र अपनी शस्त्र कला एवं तपस्या अर्जित शक्ति से अपने आश्रम के निकट राक्षसों को नष्ट कर सकते थे किंतु इसे वे अपने तपश्चर्या का अपव्यय मानते थे। वे दूरदर्शी चिन्तक हैं। इन्हें ज्ञात है अतः वह राम को लेने के लिए दशरथ के दरबार में उपस्थित होते हैं। तुलसी ने विश्वामित्र की चिंता एवं रामभक्ति का विवेचन इस प्रकार किया है–

"बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी।।

जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं।।

देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं।।

गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी।।

तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा।।

एहूँ मिस देखौं पद जाई। करि विनती आनौं दोउ भाई।।

ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना।।"1

राम के रूप पर मुग्ध विश्वामित्र ने दशरथ के समक्ष राम लक्ष्मण को वन ले जाने के रूप में अपनी याचना प्रस्तुत की। मोहग्रस्त दशरथ को वशिष्ठ ने समझाया और पुरूष सिह राम लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र वन की ओर प्रस्थान कर गये। राम द्वारा एक ही वाण से ताटका के वध को देखकर विश्वामित्र ने स्वार्जित दिव्य आयुधों को सौपकर उनके संचालन की विधि राम को बताई। राम के आश्वासन पर यज्ञ का प्रारंभ हुआ और मारीच आदि राक्षसों को भगाकर मारकर यज्ञ की रक्षा राम ने की। विश्वामित्र ने अग्रिम चरित्र की कथा राम को भोक्ता बनाने के लिए सुनाई आगे चलकर अहल्या की कथा और उसके शापोद्धार की घटना के मूल में विश्वामित्र का ही हाथ था। राम लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र मिथिला नगर पहुँचे। राम से सीता दर्शन की कथा सुनकर विश्वामित्र अत्यधिक आनन्दित हुए। स्वयंबर में पधारे सभी श्रेष्ठ शक्तिशाली, कुलीन, बाहुबली, रूपवान राजकुमारों द्वारा धनुष उठाने के कार्य में असफल हो जाने के बाद विश्वामित्र ने राम को धनुष उठाने हेतु आदेश दिया। राम के कृतकृत्य होने पर विश्वामित्र परशुराम को भी राम की शक्ति का परिचय कराते हैं और परशुराम के प्रसन्न होने पर विश्वामित्र ने राम सीता के शास्त्रीय बिधि से पाणिग्रहण की चर्चा की परिणाम स्वरूप दशरथ बरातियों समेत अपने चारों पुत्रों का विवाह कर विश्वामित्र के साथ अयोध्या लौट आते है।

---

1. मानस — 1/206

दशरथ ने राम के असम्भव कार्यों के पीछे विश्वामित्र के ही आशीर्वाद की महत्ता दी और अनेक प्रकार से विश्वामित्र का आदर सत्कार कर विदा किया। इस प्रकार राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने विश्वामित्र राम विवाह के पश्चात फिर मानस में नही दिखते हैं। विश्वामित्र के दर्शन नही होते हैं। डा० राजूरकर ने विश्वामित्र और वशिष्ठ के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि "बाल्मीकि ने वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के परस्पर संघर्ष का विस्तार से वर्णन किया है। वशिष्ठ के समान राजर्षि, महर्षि तथा ब्रह्मर्षि के पद को प्राप्त करने के लिए विश्वामित्र एड़ी चोटी की शक्ति लगाता है, परन्तु व्यर्थ। राज परिवार का कुलगुरू वशिष्ठ के गौरव को प्राप्त करने के लिए राम और लक्ष्मण को दशरथ से माँग ले जाकर वन आश्रम में उनके गुरू होने का गौरव प्राप्त करके एक दृष्टि से वशिष्ठ से अधिक महत्व प्राप्त करता है। वशिष्ठ की ज्ञान दीक्षा केवल तात्त्विक (थियोरेटिकल) थी, जबकि विश्वामित्र ने ज्ञान दीक्षा प्रत्यक्ष कर्मक्षेत्र में मारीच, सुबाहु, ताड़का आदि का वध करवाकर प्रायोगिक (प्रेक्टिकल) शिक्षा के रूप में दी। विशाल शिव धनुष की प्रत्यंचा का लीलया टणत्कार राम के द्वारा किये जाने का श्रेय विश्वामित्र की ओर ही अधिक जाता है।"[1] इस प्रकार राजस प्रवृत्ति के विश्वामित्र का जीवन क्रमशः तप त्याग, परोपकार, ऋजुता, इन्द्रिय निग्रह, सारल्य धर्म पालन इत्यादि सनातन धर्म के अनेक लक्षण उनके जीवन मे व्यावहारिक रूप में दिखाई देते है। उनका चरित्र किसी काव्य का विषय स्वतन्त्र रूप से हो सकता है।

परशुराम –

बाल्मीकि रामायण में परशुराम का उल्लेख पात्र के रूप मे हुआ है वे वहाँ चरित्र रूप प्राप्त नही कर सके पौराणिक मान्यता के अनुसार परशुराम क्षत्रिय विरोधी ब्राह्मण

---

1. रामकथा के पात्र – पृ0 425

के रूप मे चित्रित हैं जिन्होंने अपने ब्रह्म धर्म का पालन छोड़ क्षात्र धर्म का आश्रय लिया है वे कट्टर शिव भक्त हैं। मानस में तुलसी ने उनके चरित्र के अवतरण का विशेष प्रयोजन रखा है। भले ही परशुराम ब्राह्मण जैसे श्रेष्ठ धर्म को छोड़ आवेग के कारण क्षत्रिय बन बैठे हों, परन्तु उनकी उग्र तपश्चर्या इसी समय उनका संयम ईश्वर पर उनका अनन्य विश्वास ऐसे गुण निरूपित हुए हैं जो सनातन धर्म की अवधारणा के अनुकूल हैं। तुलसी ने उनके उग्र स्वभाव आत्म प्रशंसा तथा उनके समक्ष छोटे से बालक लक्ष्मण की व्यंगभरी कटूक्तियों से उद्वेलित रूप प्रस्तुत किया है।

अंत में वे राम भक्ति से परिपूरित दिखाई पडते है। राम द्वारा धनुर्भंग होने तथा सीता प्राप्ति के लिए आतुर असफल राजाओं की कुंठा की अभिव्यक्ति के मध्य रौद्र रस की अभिव्यक्ति स्वरूप परशुराम का आगमन दिखाया गया है। तुलसी ने लिखा है–

"गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा।।
सीस जटा ससि बदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरून होइ आवा।।
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते।।
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारू जनेऊ माल मृगछाला।।
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठारू कल काँधे।।
सांत वेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि तनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप।।"1

रूप और कार्य का यह द्वैताभास विचित्र लगता है किंतु "वज्रादपि कठोराणि, मृदूनिकुसुमादपि" का साक्षात् रूप परशुराम में दिखाई पड़ता है जहाँ वे मार, मद, मोचन, काम विनिंदक राम के स्वरूप को देखते हैं, और भीड़ का कारण जानकर कुपित

---

1. मानस – 1/268

हो उठते हैं तुलसी ने इस वृत्ति का उपहास करने हेतु लक्ष्मण जैसे छोटे बालक का चयन किया है दोनो के संवाद में कटूक्तियाँ, वाग्मिता, आत्मश्लाघा और वचन विदग्धता दिखाई देती हैं राम के कोमल रूप को देखकर जब परशुराम शांत और नम्र पड़ते, तब लक्ष्मण के व्यंग्य वाणों से वे आहत हो उठते थे। इस प्रकार धनुर्भंग के इस प्रकरण में यद्यपि परशुराम असंयमित और आत्मश्लाघा से प्रसन्न होने वाले ऋषि के रूप में प्रस्तुत हुए हैं, किंतु इतना तो अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि उनकी शिव भक्ति, उग्र तपस्या, संकल्प निष्ठा, गुरू भक्ति सचमुच प्रशंसनीय हैं और ये तत्त्व सनातन धर्म के तत्त्वों के अंतर्गत आते हैं, तुलसी ने इन्हें कलावतार के रूप में चित्रित किया है।

राम के वास्तविक रूप को पहचानकर वे पुनः तपश्चर्या हेतु विदा होते हैं संभवतः तुलसी को वर्णगत गुणों का परित्याग और तद्‌जन्य कर्म स्वीकार्य नहीं थे। परशुराम मूलतः ब्राह्मण वर्ण के थे। स्वाध्याय, तप, दान उनका प्रमुख धर्म था और इसी को तुलसी ने रूपक के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही।।
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू।।
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई।।
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे।।"[1]

तुलसी के सनातन धर्म की अवधारणा में पंथ निरपेक्षता है प्रत्येक वर्ण अपने–अपने कर्मों का पालन सदाचार व्रत, सत्य, अहिंसा, धृति, अस्तेय इत्यादि तत्त्वों का पालन नियमन कर अपना जीवन सार्थक कर सकता है यही तुलसी का मंतव्य रहा है।

---

1. मानस – 1/283

निषादराज गुह–

राम के तीन अनन्य सखाओ मे निषादराज गुह्य भी एक था। डा0 राजूरकर लिखते है कि– "निषादराज गुह्य का सख्य भाव सुग्रीव एवं विभीषण के समान, कुछ अंश में क्यों न हो, स्वार्थ विहीन था अतः सुग्रीव तथा विभीषण से अधिक गुह्य का चरित्र श्रेष्ठ है।"1 गोस्वामी जी ने गुह्य के चरित्र को राम के भक्त तथा सेवाभाव युक्त सखा के रूप मे चित्रित किया है। राम का शृंगवेरपुर सीमा मे आगमन सुनकर निषाद अत्यन्त प्रसन्न होकर परिवार सहित भेंट लेकर उनसे मिलने पहुँच गया–

"सीता सचिव सहित दोउ भाई। शृंगबेरपुर पहुँचे जाई।।

यह सुधि गुहँ निषाद जब पाइ। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई।।

लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा।।

करि दण्डवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें।।

देव धरनि धनु धाम तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा।।"2

प्रस्तुत उद्धरण से राम द्वारा उपदिष्ट मित्र के आदर्श लक्षणों से निषादराज युक्त है–

"देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।

बिपति काल सतगुन कर नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।"3

निषाद राज एक आदर्श गृहस्थधर्मी, आदर्श सेनाध्यक्ष, निश्छल प्रेमयुक्त, साहसी तथा धर्मज्ञ मनुष्य था। अतिथि सत्कार में अति निपुण निषाद भरत के आगमन पर

---

1. रामकथा के पात्र – डॉ0 राजूरकर – पृ0 398
2. रामचरित मानस – 2/87–1,
3. रामचरित मानस – 4/7–5, 6

मन में उनके प्रति शंका उत्पन्न होते ही भरत पर आक्रमण के लिए उद्यत हो जाता है किंतु वृद्धजनों की मंत्रणा पर जब भरत से मिलता है तब उसे अपने विचार पर पश्चाताप भी होता है–

"सनमुख लोह भरत सन लेउँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ।

स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी।।

बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी।।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा।।

गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ।

बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आई।।"[1]

राम सखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूँछी कुसल सुमंगल खेमा।।

देखि भरत कर सील सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू।।"[2]

शृंगबेरपुर के निषादराज गुह्य की राम से बचपन की मैत्री थी इस प्रकार का संकेत बाल्मीकि रामायण और कृत्तिवास रामायण दोनो से प्राप्त होते हैं–

"तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मरामः सखा।

निषाद राज्यो बलवान् स्थपतिश्चेति विश्रुतः।।"[3]

शृंगबेरपुर का गुह्य नामक राजा निषाद कुल मे उत्पन्न सैनिक शक्तियुक्त बलवान, निषादों में सुविख्यात, धर्मज्ञ तथा राम को प्राणों के समान प्रिय था।

---

1. रामचरित मानस – 2/190–2, 5/192–5, 7
2. रामचरित मानस – 2/195–3, 4
3. बाल्मीकि रामायण – अयोध्याकाण्ड – 50/33

जटायु के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

"बाल्मीकि रामायण के अनुसार जटायु दशरथ का सखा तथा सम्पाति का भाई है। विनतापुत्र अरूण के दो पुत्र थे– जटायु तथा सम्पाती (दक्षिणात्य पाठ) (14,33) किंतु गौडीय पाठ (20,34) जटायु तथा सम्पाति को गरूड़ के पुत्र मानता है।"[1] कृत्तिवास तथा बलरामदास के रामायणों में भी सम्पाति तथा जटायु, दोनो गरूड़ के पुत्र हैं। दोनो किसी समय सूर्य के पास पहुँच गये थे, सम्पाति ने अपने अनुज को सूर्य की किरणों से व्याकुल देखकर उसे अपने पंखों से ढक लिया था। इस प्रकार जटायु तो बच गया था किंतु सम्पाति के पंख जल गये और वह निस्सहाय होकर विंध्य पर्वत पर गिर गया था।[2]

महाभारत (3, 263), भट्टिकाव्य (सर्ग 5), रामायन ककविन (सर्ग 5) और उदार राघव (सर्ग 8) के अनुसार भी सीताहरण के पश्चात् ही जटायु का उल्लेख मिलता है। जटायु मानवधर्म का अद्भुत प्रमाण है। सखा दशरथ की पुत्रवधु सीता को राक्षस के बंधन से मुक्त कराने के लिए वह अपनी पूरी शक्ति लगा देता है–

"गीध राज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहचानी।
अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई।।
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा।।
धावा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें।।"[3]

जटायु अपने नखों से रावण को आहत करता है, सारथी सहित रथ को पलट

---

1. रामकथा (उत्पत्ति एवं विकास) – पृ0 420 से लेखक डॉ0 कामिल बुल्के।
2. रामकथा (उत्पत्ति एवं विकास) – पृ0 420
3. रामचरित मानस – 3/29–7–10

देता हैं सीता रावण के पाश से मुक्त हो जाती है और रावण से जटायु का द्वंद युद्ध प्रारम्भ हो जाता है–

"स भग्न धन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।

अंकेनादाय वैदेहीं पपात भुवि रावणः।।"1

अब रावण के पास केवल उसकी तलवार रह गई है। वह फिर उठाकर सीता को आकाश में ले जाता है जटायु उसकी बायीं भुजा काट देता है किंतु वे फिर उत्पन्न हो जाती हैं। अंत में रावण क्रोधित होकर जटायु के पंख काटकर भूमि पर गिरा देता है–

"तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। कांढ़ेसि परम कराल कृपाना।।

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी।।"2

इस प्रकार एक कर्तव्य निष्ठ प्राणी स्वधर्म पालन करते हुए अपने प्राणों का बलिदान कर देता है।

यद्यपि जटायु जानता था कि वह बल और छल में रावण के समान नही है, तथापि अपनी आँखों के सामने एक स्त्री के प्रति अत्याचार होते वह नहीं देख पाया। भावार्थ रामायण (3, 17), तत्त्वसंग्रह रामायण (3, 15) तथा पाश्चात्य वृत्तान्त नं0 1 के अनुसार जटायु रावण के छल में आकर अपना मर्मस्थान (पंख का अग्रभाग) प्रकट करता है। सेरीराम के अनुसार सात दिन तक युद्ध करने के बाद दोनो (रावण–जटायु) एक दूसरे को अपना मर्मस्थान बताते हैं रावण धोखा देता है किंतु जटायु को सत्य बोलने से सीता पक्षियों की भाषा में रोकती है लेकिन, सत्यवादी जटायु सीता की बात

---

1. बाल्मीकि रामायण/19 – (सर्ग 51)
2. रामचरित मानस – 3/29–21, 22

टालकर मर्मस्थान बतला देता है और रावण द्वारा आहत हो जाता है। रावण जटायु की वीरता देखकर हतप्रभ रह जाता है रावण उसके पंख काटकर क्षत–विक्षत कर देता है किंतु वह धीर पक्षी तब तक अपने प्राणों की रक्षा करता है जब तक राम से भेंट नहीं होती और वह सीता हरण का पूर्ण वृत्तांत कथन नहीं कर पाता–

"नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही।।

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाई। विलपति अति कुररी की नाई।।

दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना।।"1

इस प्रकार एक सच्चा प्राणी अपना धर्म पालन करते हुए प्राण न्योछावर कर देता है। और परब्रह्म श्री राम उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान करते हैं–

"गीध देह तजि धरि हरिरूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।।

स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी।।"2

सुमन्त्र के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

रामचरित मानस में सुमन्त्र राजा दशरथ का अमात्य या मंत्री ही नहीं बल्कि उनके परिवार के सदस्य के समान था इस तथ्य की पुष्टि तब होती है जब सीता जी को अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना करने पर सीता कहती हैं–

"तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी।

उतरूदेउँ फिरि अनुचित भारी।।"

"सास ससुर सन मोरि हुँति। विनय करबि परि पाय।

मोर सोचु जनि करिअ कछु। मैं बन सुखी सुभाँय।।"3

---

1. रामचरित मानस – 3/31/2, 3, 4
2. रामचरित मानस – 3/31–1, 2
3. रामचरित मानस – 2/98

सास–ससुर के समान आप भी मेरे हितकारी हैं अतः मेरी ओर से उनसे विनती करियेगा कि मेरी चिंता न करें मै वन में स्वाभाविक रूप से ही सुखी हूँ। राम भी उन्हें पिता समान कहकर आदर देते थे–

"तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करउँ तात कर जोरें।।

सब विधि सोइ करतब्य तुम्हारे। दुख न पाव पितु सोच हमारें।।"1

सुमन्त्र राम से पुत्रवत् स्नेह करते थे। गोस्वामी तुलसी दास ने सुमन्त्र मे मानसिक संघर्ष का सजीव चित्रण किया है, एक ओर स्वामिभक्ति तथा स्वामी की आज्ञा का पालन उनका धर्म था तो दूसरी ओर राम के प्रति अगाध प्रेम मे वे स्वामिनी की भर्त्सना भी करते है और विवश राजा दशरथ के प्रति सहानुभूति भी रखते हैं–

"सचिव धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी।।

जनम मरन सब सुख दुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा।।

काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस रात्रि दिवस की नाईं।।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं।।

धीरज धरहु विवेक बिचारी। छाडिअ सोच सकल हितकारी।।"2

सुमन्त्र एक सच्चा मित्र, मन्त्री तथा परम विदूषक था ऐसे घोर संकट के समय उसने यथा सम्भव परिस्थिति सम्हालने का प्रयास किया। हम कह सकते हैं कि वह एक सच्चा मानव था।

---

1. रामचरित मानस – 2/96–1, 2
2. रामचरित मानस – 2/150–3, 5, 6, 7, 8

अंगद–

रामचरित मानस में अंगद का चरित्र एक विशिष्ट मानसिक द्वन्दयुक्त विमनस्क रूप में चित्रित हुआ है। जहाँ उसकी मानसिक विमनस्कता समाप्त हो जाती है वहाँ वह राम का अनन्य सहायक बन जाता है। अंगद अपने बल पराक्रम बुद्धि चातुर्य तथा वाक्पटुता आदि विशेषताओं का यत्र तत्र प्रदर्शन करता है। अंगद बालि और तारा की एक मात्र संतान के रूप में मानस में वर्णित है। अंगद के चरित्र का बाल्मीकि और तुलसी ने प्रायः एक सा चित्रण किया है, किंतु तुलसी ने रामभक्त के रूप में माधुर्य एवं ऐश्वर्य की मिश्रित छटा से सुशोभित अंगद को चित्रित किया है।

डा0 राजूरकर के अनुसार– "अपने पिता के अनुचित वध और अपनी माता के नवीन भर्ता सुग्रीव की वर्चस्विता अंगद के हृदय में शूल के समान चुभती है परन्तु वह अपनी प्रतिहिंसा को पूर्ण करने का अंत तक अवसर न पा सका।"[1]
अंगद का यह झुलसता व्यक्तित्व सीतान्वेषण के अभियान में प्रकट होता है, जब कि सुग्रीव की कठोर आज्ञा से भयभीत और क्षुब्ध वह आमरण अनशन करने की ठान लेता है क्योकि उसे दोनो प्रकार से अपनी मृत्यु समक्ष दिखती है–

"कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भई मृत्यु हमारी।।
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारहिं कपिराई।।
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संसय नाहीं।।
अंगद बचन सुनत कपि वीरा। बोलि न सकत नयन बह नीरा।।"[2]

मानस में अंगद एक अति कुशल दूत, अतिशय बलवान और दृढ़ प्रतिज्ञ वानर

---

1. रामकथा के पात्र – पृ0 382
2. रामचरित मानस – 4/26

के रूप में चित्रित है। रावण के दरबार में जब वह दूत बनकर जाता है तब उसकी तेजस्विता, निर्भीकता, आत्मविश्वास एवं स्वामिभक्ति देखते ही बनती है उसकी नितिज्ञता, व्यंगोक्तियाँ, धैर्य, साहस एवं सबल मनोदशा का वर्णन तुलसी ने इस प्रकार किया है–

"गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज।।
कह दस कंठ कवन तै बंदर। मैं रघुवीर दूत दसकंधर।।
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तब हित कारन आयउँ भाई।।
उत्तम कुल पुलस्त कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती।।
नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदम्बा।।
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहिं प्रभु तोरा।।
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी।।"1

रावण को बहुत प्रकार से समझाने पर भी जब वह असफल हो जाता है तब वह उसे व्यंगवाणों से बाध्य करता हुआ उसके पौरूष और अहंकार को धिक्कारता है रावण उसे अपनी ओर मिलाने की बहुत चेष्टा करता है किंतु सत्यसंध अंगद रामभक्ति को ही श्रेष्ठ मानता है–

"अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेटा।।
अंगद तही बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक।।
गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु।।

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

---

1. रामचरित मानस – 6/20

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्री रघुवीर ह्रदय नहिं जाकें।।

हम कुल घालक सत्य तुम कुल पालक दससीस।

अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस।।

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी।।

खल तव वचन कठिन सब सहउँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ।।"1

रावण के द्वारा धर्म और नीति की बात सुनकर अंगद बौखला जाता है वह अपनी वाकपटुता से उसे लज्जित कर देता है और यह प्रण करके सभा के मध्य अपना पदरोप देता है कि रावण की सभा में से कोई भी वीर यदि उसके पद को डिगा देगा तो वह सीता को हार कर वापस चला जायेगा तुलसी ने लिखा है–

"कह कपि धरमसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी।।

देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म व्रत धारी।।

कान नाक बिनु भगिनी निहारी। छमा कीन्ह तुम्ह धर्म बिचारी।।

धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु हमहुँ बड़भागी।।

समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा।।

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी।।"2

इस प्रकार अंगद के चरित्र में अनूठा आत्म विश्वास दिखाई देता है जिसके समक्ष त्रिलोक विजयी रावण और मेघनाद जैसा उद्भट योद्धा भी हार मान जाते हैं। मानस में अंगद का दौत्य कर्म इतना प्रभावशाली रहा कि सम्पूर्ण युद्ध का निर्णय इसके

---

1. रामचरित मानस – 6/22
2. रामचरित मानस – 6/22–34

बाद ही तय हो गया था। अंगद ने रावण को तेजहीन कर दिया–

"कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।

झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाई।।

कपि बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि के परचारे।।

गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा।।

गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई।।

भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई।।

सिंहासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई।।"1

अंगद ने अपने बल और कुशाग्र बुद्धि का ऐसा प्रभाव रावण सभा में जमाया कि समस्त राक्षस योद्धा रावण सहित श्री हीन हो गये यही कुशल दूत का धर्म है। तुलसी ने अंगद को राम का अनन्य भक्त तथा भौतिक आकर्षणों से पूरी तरह विरक्त बताया है राम के राज्याभिषेक के पश्चात अंगद के इस रूप के दर्शन होते हैं–

"तब अंगद उठि नाइ सिरू सजल नयन कर जोरि।

अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि।।

मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछे घाली।।

असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजेउ भगत हितकारी।।

तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।

अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही।।"2

सारांश यह है कि अंगद ने अपने उज्ज्वल व्यक्तित्व के कारण पूरे वानर समाज में महत्वपूर्ण स्थान ही प्राप्त नहीं किया बल्कि प्रभु श्री राम का भी प्रिय कहलाया।

---

1. रामचरित मानस – 6/34
2. रामचरित मानस – 7/18

जनक—

पौराणिक मान्यता के अनुसार रवि वंश की मुख्य रूप से तीन शाखाएं क्रमशः अयोध्या, काशी और मिथिला में स्थापित हुई थीं, और तीनों शाखाओं में कुछ ऐसे महाप्रतापी, सत्यवक्ता, तेजस्वी ज्ञानी, प्रजाप्रिय राजा हुए हैं जिनकी पुण्य कीर्ति अनेक पुराणों के विषय बने। मिथिला नरेश जनक ऐसे ही राजा हैं जो योगी और भोगी एक साथ हुए उन्होने विदेह की ख्याति पायी। मानस में उनके चरित्र और उनके आचरण में सनातन धर्म के अनेक तत्त्वों को नया आयाम मिला है। भूमिकर्षण से बालिका सीता को पाकर जनक ने बड़े लाड़प्यार से उसका लालन–पालन किया। हर पिता की तरह जनक की यह मनोभिलाषा थी कि उनकी पुत्री का पति यशस्वी, विश्व विजेता, श्रेष्ठवीर और स्वरूपवान हो इसलिये उन्होंने सीता को वीर्यशुल्का घोषित कर सीता स्वयंबर का आयोजन किया। स्वयंबर सभा में बंदीगण जनक की प्रतिज्ञा को इस प्रकार उद्घोषित करते है। यह वो धनुष है जो उन्हें शिवजी से प्राप्त है रावण और वाणासुर भी इस धनुष को उठाने में असफल हो गये थे। जो इस धनुष को उठाएगा उसे सीता जैसी अपरूप सुन्दरी एवं त्रिभुवन विजय की कीर्ति एक साथ मिलेगी—

"सोइ पुरारि कोदंड कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा।।

त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही।।"1

वीरों की असफलता देख जनक की व्याकुलता तथा उनका क्षोभ बढ़ जाता है दुनिया में कोई ऐसा पिता नही है जिसकी चरम अभिलाषा यह हो कि उसकी कन्या अविवाहित रहे। जनक का क्षोभ क्रोध और अमर्ष में बदलता है कि उनके संकल्प या प्रतिज्ञा के कारण ही सीता अविवाहित रह जाएगी उनका वात्सल्य और वीरों की

---

1. रामचरित मानस – 1/250

असफलता मे द्वंद खड़ा हो उठता है, हताश और निराश स्वरों में वे कहते हैं—

"नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले वचन रोष जनु साने।।

दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना।।

कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा।।

अब जनि कोउ माखै भट मानी। वीर विहीन मही मैं जानी।।

सुकृत जाय जौं पनु परिहरऊँ। कुँअरि कुआरि रहउ का करऊँ।।

जौं जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई। तौ पुन करि होतेउँ न हँसाई।।"1

जनक के इस तरह कहने पर क्रुद्ध लक्ष्मण ने प्रत्युत्तर में कहा—

"रघुवंसिनमह जंह कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई।।

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउन कछु अभिमानू।।"

लखन के दर्पपूर्ण वचनों को सुनकर पिता को संतोष प्राप्त हुआ और उन्हें लगा कि वे तैरकर नदी का किनारा पा गये हैं—

"जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई।।"2

जनक का पितृत्व के दूसरे पक्ष में हर्ष है आह्लाद है औदार्य है राम जैसा रूपसिंधु वर पाकर कौन ऐसा श्वसुर होगा जो गर्वित और आप्यायित न हो। उनकी उदारता आतिथ्य सत्कार दान, मान और रामादिक भाइयों के साथ चारों कन्याओं का विवाह मानस में इस प्रकार किया गया है कि यह स्थल छोटी–छोटी घटनाओं का पुंज रूप होकर एक नए मंगलकाव्य की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। विवाह के लौकिक संस्कारों के समय जनक का उल्लास समधी दशरथ के प्रति उनकी विनम्रता अत्यन्त आकर्षक,

---

1. रामचरित मानस – 1/251–252
2. रामचरित मानस – 1/263

रमणीय है। अपना सर्बस्व न्योछावर करने की भावना ने पिता जनक के हृदय को इतना विस्तृत कर दिया है कि इस आनंद का वर्णन असंभव सा है। विवाह के पश्चात किसी न किसी बहाने दशरथ को रोककर नये प्रकार से स्वागत करने के पीछे संबंधों की ऊष्मा को ही चित्रित नहीं करता अपितु वैदिक, औपनिषद, पौराणिक और स्मार्त परम्परा से पुष्ट सनातन धर्म की शाश्वत अवधारणा पिता के सत्कर्मों को इंगित करता है। इस अवसर पर भी करुण प्रसंग तुलसी ने उत्पन्न कर जनक के पितृरूप की जैसी उज्ज्वल, रसपेशल, हृदयावर्जक, मार्मिक झाँकी अंकित की है वह निश्चय ही सनातन धर्मी पिता के रूप को ही चित्रित करता है।

पति गृह हेतु प्रस्थान करती कन्या के दुख में, उसके प्रेमाश्रुओं में जनक जैसा योगी भी विगलित हृदय हो उठा तब सामान्य जनों को ऐसे कारूणिक प्रसंगों में रोते हुए सभी लोग देखते हैं। माता सहेलियाँ, ज्ञातिजनों की बृद्धायें पुत्री के वियोगजनित आशंका से जितने अधीर होते है, अपनी साधना से शरीर को भी जीतने वाले वीतरागी जनक भी अपनी मर्यादा स्थिर नहीं रख सके। तुलसी ने ऐसे कारूणिक प्रसंग को इस प्रकार चित्रित किया है–

"बंधु समेत जनकु तब आये। प्रेम उमगि लोचन जल छाए।।

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी।।

लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की।।"1

यह ऐसा अवसर है जहाँ चित्तनिरूद्धवृत्ति असफल हो जाती है ज्ञान विमूढ़ हो जाता है, वात्सल्य जामात्य के प्रति गर्व समान समधी को देखकर कन्या के सुख की कल्पना पुत्री के पराई होने की परिकल्पना से हृदय का विकलन स्वाभाविक है। भले

---

1. रामचरित मानस – 1/338

ही जनक यहाँ लौकिक पिता की तरह दिखाई पड़ते हों, उनका शास्त्र ज्ञान लुप्त होता प्रतीत होता है, इस अरन्तुद वेदना में जो भाव सन्धि और भावशवलता है उससे जनक का सत् पक्ष ही उद्घाटित हुआ है। सनातन धर्म के नियमों में भले ही वीतरागी या जितेन्द्रिय होने की महिमा का वर्णन हो किन्तु तुलसी ने ज्ञान की पराजय वत्सलता की विजय बड़े स्वाभाविक और मार्मिक रूप में चित्रित किया है यही तो सनातन धर्म की बहुआयामी अवधारणा है। यदि जनक यहाँ रूदन न करते तो वह केवल संबंधो का कोरा आडम्बर मात्र ही होता।

जनक के चरित्र का तीसरा पक्ष राम सीता वन गमन और चित्रकूट में भरत के पहुँचने पर दिखाई देता है एक तरफ पितृ आज्ञा पालन करने हेतु राम का वन गमन दूसरी ओर भरत की चंचरीक वृत्ति राजा न बनने की प्रतिज्ञा और इन दोनों परिस्थितियों के मध्य तीसरे विकल्प की चर्चा के कारण यह ऐसा अवसर उपस्थित हुआ जिसमें संबंध ा धार्मिक एवं शास्त्रचर्चा करणीय अकरणीय का विवेचन पितृवचनों की रक्षा भ्रातृप्रेम की ऐसी स्थितियाँ हैं जिनसे नीति धर्म प्रेम की ऐसी आध्यात्मिक ज्योति प्रस्फुटित हुई कि बड़े–बड़े ऋषि मुनि, समाजशास्त्री शास्त्रज्ञ, स्मृतिकार दिग्भ्रमित हैं क्योंकि एक ओर राम हैं जो सत्यसंध पिता के वचनों को पूर्ण करने के लिए अयोध्या जैसे विशाल साम्राज्य का परित्याग कर अम्लान मन से वन निवास करना चाहते हैं तो दूसरी तरफ भरत हैं जो पिता वचनों की उपेक्षाकर स्वयं राजा न बनकर विकल्प रूप में राम को राजा बनाकर चौदह वर्ष का वनवास भोगना चाहते है। ऐसी विरोधाभासी परिस्थितियों में जनक का आगमन हुआ। जिनकी स्थिति विषम इसलिए है कि उनकी एक कन्या तो वन में रहेगी और दूसरी कन्या साध्वी रहेगी तीसरी पुत्री पति विरह के अगाध सागर में आकण्ठ निमग्न होकर न हँस सकेगी न रो सकेगी और चौथी कन्या इन सबके बीच

में इस प्रकार निवास करेगी जैसे दाँतो के बीच में जीभ रहती है।

समधी दशरथ की मृत्यु की सूचना पाकर जनक गुप्तचरों के निर्देश पर चित्रकूट पहुँचते हैं जहाँ राम सीता, कौशल्या, कैकई, सुनयना सभी के मानसिक द्वन्द्वों के मध्य जनक के चरित्र का उज्जवल पक्ष निरूपित हुआ है। चित्रकूट में अपनी पुत्री की नियति को देखकर जनक जैसे योगी का मन हर्ष और विषाद की, द्वन्द्व की स्थिति में पहुँच गया क्योंकि दशरथ की प्रतिज्ञा के अनुसार यदि सीता को साध्वी या संन्यासिनी तो दूसरी माँडवी राजरानी रहेगी तुलसी ने जनक के विषाद और वात्सल्य का निरूपण इस प्रकार किया है–

"तापस वेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी।
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की।।
उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू।।
चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु।।
मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की।।"[1]

जनक को अपने पितृ धर्म पर संतोष ही नही गर्व भी है कौन ऐसा पिता है जो ये न चाहता हो कि उसके आचरण से पितृकुल के साथ श्वसुर पक्ष भी अपने को धन्य समझे तुलसी ने लिखा है–

"तापस वेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेमु परितोष विशेषी।।
पुत्रि पवित्र किये कुल दोउ। सुजस धवल जग कह सब कोउ।।
जिति सुरसरि कीरति सरितोरी। गवन कीन्ह विधि अण्डकरोरी।।"[2]

---

1. मानस – 2/286
2. मानस – 2/287

अब निर्णय की घड़ी आ गई जिसमें नीति, प्रीति, स्वार्थ, परमार्थ धर्म, धैर्य, सत् असत् लोकनीति, वेदनीति या सबको मिलाकर सनातन धर्म की सैद्धान्तिक व्याख्या का अवसर आया है जहाँ जनक को यह निर्णय करना है कि इस द्वन्द्व भरी स्थिति में धर्मानुसार क्या किया जाए। वशिष्ठ कहते है–

"महाराज अब कीजिए सोई। सब कर धरम सहित हित होई।।

ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।

तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल।।"1

यह सुनकर जनक का अर्न्तद्वन्द्व और बढ़ गया आखिर में उनकी किसी न किसी पुत्री को तो सन्यासिनी बनना ही है, और शेष पुत्रियाँ जिन परिस्थितियो से एकाकार होंगी वे असामान्य ही नहीं अलौकिक भी होंगी यह स्थिति किसी भी न्यायाधीश के लिए कष्टकारी तो है ही साथ ही पिता के रूप में जनक के लिए तो दंश के समान है।

"सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे।।

सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं। आये इहाँ कीन्ह भल नाहीं।।

रामहि रायँ कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना।।

हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई।।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बस बिकल बिसेषी।।

समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा।।

तात भरत कह तेरहुति राऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ।।

राम सत्यब्रत धरम रत सब कर सीलु सनेहु।

संकट सहत सकोच बस कहिअ जो अयसु देहु।।"2

---

1. मानस – 2/291

2. मानस – 2/292

तब जनक राम के पास गए। राम ने पितृ समान जनक से कहा कि उन्हें पिता दशरथ की प्रतिज्ञा का पालन सर्वश्रेष्ठ मार्ग लगता है फिर भी वे जनक की आज्ञा को सिर माथे पर रख लेंगे। तुलसीदास ने संबंधों के निर्वहन में धर्म की जिस मर्यादा का पालन किया है उसका प्रतिबिंब जनक के चरित्र में दिखाई पड़ता है

"राम सपथ सुनि मुनि जनकु। सकुचे सभा समेत।।"1

और अंत में वशिष्ठ की अध्यक्षता एवं जनक के मार्ग निर्देशन में जो निर्णय हुआ उसमें धर्म, संबंध, नीति, मर्यादा और सनातन तत्त्व की जो ज्ञान ज्योति फूटी उससे भारत ही नहीं सम्पूर्ण क्षितिमंडल सदैव के लिए आलोकित हो उठा। भरत राम की खड़ाऊं लेकर अयोध्या लौटे जनक अयोध्या में रहकर सम्पूर्ण राज्य कार्य सुव्यवस्थित कर प्रजारंजन का दायित्व सचिवों को सौपकर अपनी राजधानी को लौट आये।

इस प्रकार रामकथा में जनक का चरित्र राम के सहायकों के रूप में चित्रित हुआ है जिसमें सनातन धर्म की विशिष्ट परिभाषा निरूपित हुई है। जनक जो विदेह है, जनक जो राजर्षि हैं, जनक जो वात्सल्य के अबाध समुद्र हैं, जनक जो श्रेष्ठ संबंधी हैं उनके सीमित चरित्र के माध्यम से तुलसी ने सत्य, ऋज, क्षमा, दान आदि सनातन धर्म के अनेक तत्त्वों की सैद्धान्तिक व्याख्या जनक चरित्र के माध्यम से किया है।

शरभंग मुनि–

राम के वनातिक्रमण का परिचय वाल्मीकि एवं विराध करते हैं बाल्मीकि ने तो इस अतिक्रमण का वर्णन अत्यन्त सुस्पष्ट रूप मे किया है जबकि विराध में शरभंग ऋषि का पता बताते है। शरभंग ऋषि ने राम का आतिथ्य अत्यन्त गद्गद हृदय से किया और अपनी प्रेम स्वरूपा भक्ति के बदले में राम से यह माँगा कि जब तक वे योगाग्नि

---

1. रामचरित मानस – 2/296

में अपने शरीर को निःशेष न कर दें तब तक राम उन्हीं के समीप रहें क्योंकि उन्होंने ब्रह्मा के मुख से यह सुन रखा था कि इसी मार्ग से राम वन जायेंगे तबसे वे राम की प्रतीक्षारत है।

शरभंग में दैन्य मानमर्षित्व अनन्यता योग इत्यादि गुणों की चर्चा तुलसी ने की है। वे अहर्निश अपने हृदय में सीताराम को स्थित कर उन्हीं के ध्यान में रत रहे हैं–

"चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती।।
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना।।
सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा।।
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी।।
जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा।।
एहि विधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदय छाँडि सब संगा।।
सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरन्तर सगुन रूप श्री राम।।"1

---

1. रामचरित मानस – 3/8

(ख) रामचरित मानस के नारी पात्रों के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

विद्वानों के मतानुसार ऋग्वेद में नारी शब्द प्रयुक्त नही हुआ है किंतु यज्ञ के अर्थ में 'नार्यः' शब्द का प्रयोग हुआ है। तैत्तिरीय आरण्यक 6/1/3 और शतपथ ब्राह्मण 3/5/4/4 में यह मिलता है।

नारी शब्द नृ अथवा नर से बना है। नृ + अञ् + ङीन = नारी। नर + ङीष् = नारी। महर्षि पतञ्जलि ने दोनो व्युत्पत्तियों को ठीक माना है (नुर्धर्म्या नारी, नरस्यापि नारी' महाभाष्य 4/4/9) यास्क ने नर शब्द को नृत = नाचना से बनाया है। नरः मनुष्याः नृत्यन्ति कर्मसु (निरूक्त 5/1/3) काम करते समय मनुष्य हाथ पैर नचाता है, हिलाता, डुलाता है; इसलिए उसे नर कहते हैं। इसी विशेषण के कारण स्त्री को नारी कह सकते हैं; किंतु ऋग्वेद में 'नृ' का प्रयोग वीरता का काम करना, दान देना तथा नेतृत्व करने के अर्थ में हुआ है। स्त्री का नारी नाम भी इन्हीं विशेषताओं के कारण पड़ा होगा। वे युद्ध तथा शिकार में वीरों की सहायिका होती होंगी तथा अतिथियों, भिक्षुओं आदि के सत्कार–दान आदि का भार इन्हीं पर होता होगा। सायण के मतानुसार नारी शब्द का भाव नरों का उपकारक अथवा सहयोगी होना है–

"नृणां महावीरार्थिनाम् उपकरित्वात् नारिः। न अरिः नारिः"

(सायण भाष्य– तैतिरीय आरण्यक, –4/2/1)

नारी शब्द के ब्युतत्तिपरक अर्थ से स्पष्ट हैं कि नारी पुरूष की शत्रु नहीं बल्कि मित्र है और उसकी पूरक भी हैं। भारतीय वाङ्गमय और समाज का कवियों और संतों का तथा गोस्वामी तुलसीदास का नारी जाति के प्रति क्या दृष्टिकोण था इसकी चर्चा संक्षिप्त मे करना न्यायोचित होगा।

डा0 राजाराम रस्तोगी के अनुसार– "भारतीय ऋषियों ने भारतीय समाज में

नारी का स्थान अत्यन्त गरिमामय माना है। उनकी दृष्टि में नारियाँ अलौकिक शक्तियाँ हैं, मानव जीवन की सुख समृद्धि की कारिका हैं और क्षमा, दया, ममता, प्रेम, सौहार्द, अहिंसा, करूणा एवं वात्सल्य आदि उदात्त भावनाओं को प्रश्रय देने वाली मानवीय देवियाँ हैं।"[1] विद्वजनों के मतानुसार वेदों में न केवल ज्ञान, कर्म और उपासना संबंधी धार्मिक विषयों का पर्याप्त ज्ञान–भण्डार सुरक्षित है, अपितु नारी धर्म संबंधी भावनाओं की अभिव्यक्ति भी है। जिसके द्वारा समाज में नारी को उच्चतम स्थान प्राप्त था। "सामवेद को छोड़कर अन्य तीन वेदों ऋग, यजु तथा अथर्ववेद में नारी धर्म संबंधी चर्चा मिलती है।"[2]

ऋग्वेद में देवी रूप में ही उनका स्तवन किया गया है। उपनिषदों में भी नारी की वैदिक महत्ता अनवरत रही। समृतियों में, मुख्य रूप से मनु स्मृति मे नारी के प्रति कठोर कहे जाने वाले महात्मा मनु ने सती साध्वी नारी की प्रशंसा करते हुए लिखा है–

"प्रजनार्थ महाभागा पूजा ही गृह दीत्पयः।

स्त्रियः श्रियश्च लोकेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।।"[3]

सन्तान को जन्म देने वाली होने के कारण स्त्रियाँ बड़ी भाग्यशालिनी हैं, वे घर की दीप्ति हैं। वस्त्राभूषणों से उनका आदर करते रहना चाहिए। स्त्री और श्री मे परस्पर भेद नहीं है। सती साध्वी नारी के लक्षण बतलाते हुए मनु कहते हैं–

"विशीलः कामवृत्तो व गुणैर्वा परिवर्जितः।

उपचर्यः स्त्रिया साधव्या सततं देववत्पतिः।।"[4]

---

1. तुलसीदास जीवन और विचारधारा (डॉ0 राजाराम रस्तोगी) पृ0 173
2. तुलसीदास जीवन और विचारधारा (डॉ0 राजाराम रस्तोगी) पृ0 173
3. मनुस्मृति – 9/26
4. मनुस्मृति – 5/154

पति बुरा हो, बुरे आचरण का हो; दुर्गुणो की खान हो, फिर भी देवता के समान नारी को पति की सेवा करना उचित है तथा–

"पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।

पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम।।"1

साध्वी स्त्री को जो पति प्रदेश पहुँचना चाहती है उसे कभी भी वैसा काम नही करना चाहिए जिसमें उसके पति की सम्मति न हो। प्राचीन वैदिक ऋषियों द्वारा प्रतिपादित नारी धर्म के उपर्युक्त लक्षणों का रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने पूर्णतः अनुमोदन किया हैः महात्मा तुलसी समाज में वेद विहित कर्तव्यों का पालन श्रेष्ठ समझते थे। उनका महाकाव्य 'रामचरित मानस' मानव जीवन में नारी का महत्व और समाज में नारी के गरिमामय रूप को प्रत्यक्ष कराने वाला अलौकिक सद्ग्रन्थ है; इसी अलौकिकता के कारण 'मानस' को विद्वजनों में वेद, पुराणो, समृतियों का निचोड़ कहा जाता है "डा0 श्याम सुन्दर दास मानस' के नारी पात्रों में सनातन धर्मावधारणा के विषय में कहते हें "राक्षसियाँ भी धर्मपरायणा, नीतिनिपुणा और भक्त हैं। मन्दोदरी नीतिपुिणा, विदुषी, त्रिजटा भक्तिपरायणा और सुलोचना धर्म प्राणा पतिव्रता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।"2 रामचरित मानस के नारी पात्रों में सनातन धर्म की तुलना यदि मनुस्मृति से की जाय तो बहुत समानता दृष्टिगोचर होती है–

उदाहरणार्थ– **"आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।**

यो धर्म एक पत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम्।।"3

---

1. मनुस्मृति – 5/155
2. गोस्वामी तुलसीदास – डॉ0 श्यामसुन्दर दास – पृ0 177–178
3. मनुस्मृति

पतिव्रता स्त्री को संयमशील, धीर और पवित्र होना चाहिए क्योंकि एक पतिव्रता से सारी सम्पदायें उपलब्ध हो जाती हैं।

तुलसी दास जी का भी यही कथन है–

एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा।। (मानस)

इसी प्रकार मनुस्मृति में कहा गया है कि नारी स्वभाव मे कई दोष पाये जाते हैं जैसे अधिक सोना, आलस्य, शारीरिक सज्जा की अभिलाषा, संभोगेच्छा, क्रोध, घृणा, द्रोह और बुरा आचरण। तुलसीदास जी ने भी इन अवगुणों को स्वीकार किया है–

"नारि स्वभाव सत्य कवि कहही। अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसी दास जी ने समस्त धर्मग्रन्थों (मानस) का अनुमोदन करते हुए मानस के पात्रों का चरित्र चित्रण किया है। अब हम क्रमशः मानस के नारी पात्रों में सनातन धर्म के प्रभाव का विवेचन करेंगे।

नारी पात्र–

(अ). प्रमुख नारी पात्र– सीता, कौशल्या, कैकेयी

(ब). गौण नारी पात्र– अनसूया, शबरी, अहल्या, तारा और मंथरा

सीता के आचरण में सनातन धर्म का प्रभाव–

भारतीय परम्परा में नारी को पूज्या, वंदनीया, आदरणीया माना और कहा गया है; क्योंकि समाज में सुव्यवस्था और उसे सुश्रृंखलित करने में नारी की महान भूमिका है। वह कार्येषु मंत्री है, भोजनेषु माता है शयनेसु रम्भा है उसमें कोमलता है, सेवाभाव है, सर्वस्व समर्पण की भावना है और प्रतिकार में आकांक्षा कुछ भी नहीं है। उसका विकास कन्या, पुत्री, युवती से आगे बढ़कर मातृत्व की उच्च गरिमा युक्त पद की है।

रामकथा में प्रायः राम + अयन कहकर कवि, भक्त, पाठक, रसिक राम के

ऐतिहासिक आदर्श महानायक से आगे बढ़कर विष्णु के अंशावतार से परब्रह्म की कथा मानते हैं और सीता को राम से अभिन्न कहकर कहीं आदि शक्ति और कहीं माया के रूप में निरूपित करते हैं शोधकर्त्री की यह विनम्र उपपत्ति है कि रामा + अयन भी रामायण बनेगा और बाल्मीकि रामायण में सीता को रामा भी कहा गया है।

इस प्रकार यह समस्त कथा सीता की ही हो जाती है अतः अतिवाद से बचने के लिए यहाँ यह कहा जा सकता है कि रामायण में राम और सीता का संबंध शब्द और अर्थ, जल और लहर, श्रद्धा और विश्वास की भाँति है।

वैदिक वाङ्गमय में सीता कृषि की अधिष्ठात्री या हल के अग्र भाग से खींची गयी रेखा के रूप में लिखित है। उपनिषद् और पुराणों में सीता चरित्र के विविध पक्ष दिखाई पड़ते हैं जिसका मूल श्रोत बाल्मीकि रामायण है। रामकथा को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय बाल्मीकि ऋषि को है इस प्रकार सीता का सम्पूर्ण चरित्र बाल्मीकि रामायण में ही प्राप्त होता है। जिसका आध्यात्मिक विकास अद्‌भुत रामायण से लेकर हिन्दी में रामचरित मानस में हुआ है। उनकी चारित्रिक विशेषतायें वाह्य सौन्दर्य आन्तरिक–शुचिता, अनुराग, दृढ़ता, पतिप्रेम तथा सनातन धर्म संबंधी विशेषताओं का चित्रांकन क्रमशः किया जा रहा है।

1. सीता का सौन्दर्य–

बाल्मीकि ने सीता को पुत्रीवत् देखा है तो तुलसी ने उन्हे अपना आराध्य राम की आदि शक्ति के रूप में चित्रित किया है। सीता सौन्दर्य वर्णन में ब्रह्मा की सारी निपुणता मूर्तिमान हो गयी है।

"जनु विरंचि सब निज निपुनाई। विरचि विश्व कहँ प्रकट देखाई।।

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छवि गृह दीप सिखा जनु बरई।।

सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं विदेह कुमारी।।

उपमा सकल मोह लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी।।

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकवि कहाई अजसु को लेई।।

जौ पटतारिअ तीय सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया।।"1

सीता पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती से अधिक कमनीय हैं

"गिरा मुखर तन अरघ भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।।

विष वारूनी वंधु प्रिय जेही। कहअ रमा सम किमि बैदेही।।"2

सीता का मुख चन्द्रमा से भी श्रेष्ठ है–

"सिय मुख समता पाव किमि चंद वापुरो रंक"3

सीता की तप्त कंचन वर्ण कांति, देहयष्टि, सौकुमार्य, नयनहारी ही नहीं मनोहारी भी है बाल्मीकि ने अनेक प्रसंगों में सीता के सौन्दर्य का उल्लेख इस प्रकार किया है। एकाध स्थल दृष्टव्य हैं

"भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा।

श्यामा समविभक्तांगी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता।।

नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा नच पन्नगी।

तुल्या सीमन्तिनी तस्या मानुषी तु कुतो भवेत्।।

---

1. रामचरित मानस – 1/246
2. रामचरित मानस – 1/246–3
3. रामचरित मानस – 1/237

रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना।
धर्मपत्नी प्रिया नित्यं भर्तुः प्रहिते रता।।
सा सुकेशी सुनासोरूः सुरूपाच यशस्विनी।
देवतेव वनस्यास्य राजते श्रीरिवापरा।।
तप्तकांचनवर्णाभा रक्ततुंगनखी शुभा।
सीता नाम वरोहा वैदेही तनुमध्यमा।।"1

सीता का शील–

रूप के साथ शील का समन्वय सोने में सुगंध के समान होता है। सीता पूतमेद्य, उज्ज्वल चरित्रयुक्त नारी है उनके शील का आधार पतिव्रत प्रेम या राम प्रेम है। इसी प्रेम के कारण सीता वनवास, अपहरण, अग्निपरीक्षा की कसौटी पर स्वर्ण के समान खरी उतरी हैं। तुलसी ने प्रेम और कर्तव्यनिष्ठा के प्रसंगो में सीता के शील का निरूपण किया है। तुलसी ने पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता का पूर्व राग उनकी व्याकुलता अन्तर्द्वन्द्व इत्यादि का चित्रण जिन शब्दों में किया है वे अत्यन्त मनोवैज्ञानिक भावों की सूक्ष्म विवेचना में समर्थ हैं जैसे–

1. लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हेउ पलक कपाट सयानी।।

2. नख शिख देखि राम कै शोभा। सुमिरि पिता पन मन अति छोभा।।"2

राम वनवास के समय सीता बड़े विनम्र किंतु दृढ़ शब्दों मे अपने पतिधर्म और संकल्प का उल्लेख करती है। राम के अनुनय विनय के बाद भी सीता कहती है–

---

1. बाल्मीकि रामायण अरण्य – 31/29–30 एवं 34/15–17
2. मानस – 1/232, 233

"लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देवि बड़ि अविनय मोरी।।

मैं पुनि समुझ दीखि मन माहीं। पिय वियोग सम दुख जग नाहीं।।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सदन सुखदायी।।

जहँ लगि नाथ नेह अरू नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ ते ताते।।

प्रान नाथ तुम बिन जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसइ नाथ पुरूष बिन नारी।।

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद विमल विधु बदन निहारे।।"1

इसी शील की रक्षा हेतु रावण के प्रलोभन के प्रत्युत्तर में सीता अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक कहती है–

"सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कवहुँकि नलिनी करइ विकासा।।

सठ सूने हरि आनेहि मोहीं। अधम निलज्ज लाज नहिं तोहीं।।"2

तात्पर्य यह कि सीता में रूपगर्विता का भाव नहीं यद्यपि वह अपरूप सुन्दरी हैं किंतु यदि उनका शील एक ओर विनम्र है तो दूसरी ओर दृढ़ता का अवलम्बन भी है।

सीता का सौकुमार्य–

नारी में लावण्य और सुकुमारता के अन्योन्याश्रित संबंधो का वर्णन कवि परम्परा में आदिकाल से चला आ रहा है। तुलसी ने पुत्रवधु सीता के सौकुमार्य का वर्णन

---

1. मानस – 2/65
2. मानस – 5/9

कौशल्या से करवाया है–

"तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु ससुर परिजनहि पियारी।।

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई।।

कलप बेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोला। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा।।

जियन मूरि जिमि जोगवत रहउँ। दीप बात नहिं टारन कहँउ।।

सुरसर सुभग वनज बनचारी। डाबर जोगु कि हंस कुमारी।।"1

अन्य स्थान पर सीता सुकुमारता की चर्चा इस प्रकार है–

"मानस सलिल सुधा प्रति पाली। जिअइ कि लखन पयोधि मराली।।

नव रसाल वन विहरन सीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला।।"2

सीता नवजात मृग शावक के समान भीरू थी।

(क). सिय वन बसहिं तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती।।"3

(ख). कोलाहल सुनि सीय सतानी। सखी लवाइ गई जहँ रानी।।"4

प्रेम एवं दाम्पत्य–

बाल्मीकि रामायण में सीता–राम का प्रेम साहचर्य जनित है जिसमें पूर्वराग का कहीं उल्लेख नहीं है तुलसीदास ने संस्कृत के ललित साहित्य (प्रसन्नराघव) से पूर्व राग का प्रसंग उठाकर इसे काव्योचित सौन्दर्य से सजाया है रामचरितमानस में धनुर्भंग प्रसंग में इस घटना को पुष्पवाटिका प्रसंग कहा जाता है। सारे नगर में राम के

---

1. रामचरित मानस – 2/58–1–3
2. रामचरित मानस – 2/62/4
3. रामचरित मानस – 2/59/2
4. मानस – 1/226

अलौकिक रूप सौन्दर्य की चर्चा है कर्णगोचर सौन्दर्य पुष्पवाटिका में जब नयन गोचर होता है उस समय सीता की दशा का चित्रण तुलसीदास ने इस रूप में किया है जिसका पर्यवसान पातिव्रत धर्म की दृढ़ता में हुआ है।

सनातन धर्म के तत्त्वों में इसका विश्लेषण अलग से किया जाएगा यहाँ मात्र इतना ही कथनीय है कि यह रूपाकर्षण, रूपासक्ति श्रेष्ठ प्रणय में परिणत होता है। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

"सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी।।
तासु वचन अति सियहिं सोहाने। दरसि लागि लोचन अकुलाने।।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहचाने।।
थके नयन रघुपति छवि देखे। पलकन्हिहुँ परिहरी निमेषे।।
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद ससिहिं जनु चितव चकोरी।।"1

सीता–राम के दाम्पत्य प्रेम की प्रतिष्ठा वन गमन तथा प्रबास काल में दिखाई देती है। रूपाशक्तिजन्य आकर्षण विवाह में परिणत होता है, और वह दाम्पत्य जीवन की दिव्य, अलौकिक झाँकी प्रस्तुत करता है, कि सीता सनातन धर्म की सर्वश्रेष्ठ नारी प्रतीक बन जाती है। डा0 राजूरकर ने लिखा है कि "एक सती साध्वी पतिव्रता स्त्री के लिए माता–पिता, भाई–बहन प्रिय परिवार, सुहृद समुदाय तथा सुशील पुत्र के रूप में जितने नेह नाते हैं सबके सब पति के बिना ग्रीष्म कालीन प्रचंड सूर्य से भी अधिक दाहक बन जाते हैं।"2 तुलसी ने लिखा है–

---

1. मानस – 1/232
2. रामकथा के पात्र – पृ0 335

"मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारू सुह्रद समुदाई।।

सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई।।

जहँ लगि नाथ नेह अरू नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।

तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू।।

भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।।"1

पति सामीप्य के माधुर्य के सामने वन एवं ऋतु के ताप सुखद प्रतीत होंगे। कुस की साथरी रजाई–गद्दे के समान प्रतीत होंगे सीता की यह परिकल्पना जितनी भावुक है उतनी ही आदर्शमय है। उन्हें तो वन में ही समस्त परिवार की अनुभूति होगी–

"बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा।।

कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु संग मंजु मनोज तुराई।।

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू।।

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी।।"2

राम विधु वदन दर्शन से आप्यायित सीता किस प्रकार सेवा करेगी यह कल्पना नहीं प्रत्यक्ष रूप में नयन गोचर होने की बात सीता ने स्वीकार की है–

"मोहि मन चलत न होइहि हारी। छिनुछिनु चरन सरोज निहारी।।

सबहिं भांति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।।

पांय पखारि बैठि तरु छांही। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं।।

श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें।।

सम महि तृन तरूपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी।।

बार बार मृदु मूरत जोही। लागिहि तात बयारि न मोही।।"3

---

1. रामचरित मानस – 2/65
2. रामचरित मानस – 2/266
3. रामचरित मानस – 2/67

राम भी सीता के सुखों का पूर्ण ध्यान रखते हैं। एकांत में प्रिया सीता को फूलों की माला बनाकर उनका शृंगार करते थे ऐसा तुलसी ने राम सीता के दाम्पत्य प्रेमवर्णन के लिए लिखा है। इसी प्रेम की अनन्यनिष्ठा दृढ़ता के कारण सीता अपने विरह को सह सकी हैं राम भी सीता हरण के पश्चात प्राकृतिक उपमानों में सीता की प्रतिछबि देख अपने विरह को व्यक्त करते हैं इसी दाम्पत्य प्रेम की अनन्यता के समक्ष अग्नि परीक्षा में अग्नि श्री खंड (चंदन) के समान शीतल हो गयी थी। तुलसी ने लिखा है–

"पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष नहिं भय कछु तेही।

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।

तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्री खंड समाना।।"1

सीता की अलौकिकता–

वैदिक वाङ्गमय से लेकर पौराणिक तथा साहित्यिक काव्यों में सीता चरित्र वर्णन में कुछ न कुछ ऐसा अवश्य चित्रण किया गया है जिसमें सीता की अलौकिक शक्ति का प्रत्यक्ष या परोक्ष में उल्लेख हुआ है। रामचरितमानस तो दर्शन का साहित्य काव्य है, दर्शन में ब्रह्म की आदि शक्ति योगमाया या माया लिखित है। तुलसी ने सीता राम की अभिन्नता के संबंध में अनेक उपमानों का उल्लेख किया है, वे अंशावतार में लक्ष्मी स्वरूपा हैं ब्रह्म की अह्लादकारिणी एकात्मिका शक्ति हैं। कथा प्रसंगों में सीता की अलौकिकता अनेक स्थलों पर दिखाई देती है। विवाह एवं चित्रकूट प्रकरण पर सीता ने अपनी शक्ति का प्राकट्य इस प्रकार किया है–

---

1. रामचरित मानस – 6/109

(क). जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रकट जनाई।।

हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई।।

सिधि सब आयसु अकनि गई जहाँ जनवास।

लिए सम्पदा सकल सुख सुरपुर भोग विलास।।"1

(ख). सीय सासु प्रति वेष बनाई। सादर करई सरिस सेवकाई।

लखा न मरमु राम बिनु काहुँ। माया सब सिय माया मांहू।।"2

सीता के चरित्र में सनातन धर्म की अवधारणा का प्रभाव–

पिछले पृष्ठों में शोधकर्त्री ने मानसोक्त सीता संबंधी चारित्रिक गुणों का चित्रण, व्याख्या, आलोड़न, विलोड़न किया है जिसका सार यह है कि वैदिक साहित्य में सीता का उल्लेख अनेक रूपों में है किंतु सीता चरित्र संबंधी आख्यानों का मूल बाल्मीकि रामायण ही है। बाल्मीकि रामायण से लेकर सोलहवीं सदी के मध्य युग तक सीता चरित्र का विकास बहुविध रूपों में हो चुका था, फिर भी चारित्रिक विकास के अनुरूप सीता में अनेक गुणों की अवधारणाएं विकसित हुई हैं कहीं सीता को ही आद्यशक्ति मानकर उसे रावण बध का श्रेय दिया गया है राम तो उसके निमित्त मात्र हैं। अतः सीता चरित्र में सार्वजनीन, सार्वभौमिक या सनातन धर्म से संबंधित नारी गुणों का बाहुल्य है। घृति तो उनके समस्त आद्यन्त जीवन में दिखाई देता है। तुलसी ने श्री, ह्री, मर्यादा, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, पतिनिष्ठा, मितवाग्मिता का चित्रण अनेक घटनाओं में किया है।

बाल्मीकि की सीता पतिव्रता होने के साथ ही वैदिक युगीन स्वाभिमान युक्त नारी दिखाई देती है तो तुलसी में मध्ययुगीन सामंती मूल्यों के साथ शालीनता,

---

1. रामचरित मानस – 1/306–7, 8

2. रामचरित मानस – 2/252–2, 3

विनयशीलता, दृढ़ता भी दिखाई देती है।

तुलसी के मध्य काल तक आते–आते सनातन धर्म अपने मूल अर्थो में बहुप्रचलित हो चुका था अतः कोमलता, माधुर्य, लज्जा विनयशीलता, संकोच, दृढ़ता आदि गुण भी सीता चरित्र में दिखाई पड़ते हैं। वह आदर्श प्रेमिका है आदर्श पत्नी है, आदर्श पुत्रवधु है। नारिधर्म लक्षणों के अनुरूप उसके चरित्र संबंधी आख्यानों की रचना कर तुलसी ने सीता को सनातन धर्म की ध्वजावाहिका मानकर अनेक पक्तिंयाँ उद्धृत की है। यद्यपि उनके पूर्वराग जनित प्रेम में आशंका विवशता कुछ–कुछ अमर्ष भी दिखाई देता है किंतु पर पुरूष से अचानक प्रेम होने का भय एवं गौरी पूजन के समय साँवरे राम के रूप में वर की याचना धर्नुभंग के समय उनकी विह्वलता मनोहारी एवं रसपेशल रूप में वर्णित है।

बनवास प्रकरण पर पति की अनन्यता को लेकर उनके तर्क उनकी दृढ़ता को ही व्यञ्जित करते हैं। रामचरित मानस में प्रथम बार सीता सास कौशल्या के समक्ष पति से बोलने में संकोच अवश्य करती हैं जो सनातन धर्म की मर्यादा के अनुकूल है, किंतु अपनी बात सतर्क विश्लेषण प्रधान वाक्यों से दृढ़तापूर्वक करती हैं। इस प्रसंग में आदर्श पत्नी के रूप का सीता का उल्लेख किया है जिसमें वन से लौटे श्रांत पति की सेवा सुश्रूषा कर अपने जीवन को सार्थक और धन्य मानने वाली सीता का यह प्रेम किसे आकृष्ट नहीं करेगा। रावण के वास्तविक रूप को देखकर सीता की धिक्कृति उनके पति प्रेम को ही व्यंजित करती है।

अशोक वाटिका में रावण के सामने तिनके की ओट कर मृत्यु को भी तुच्छ समझ सीता त्रैलोक्य सुन्दरी को प्राप्त होने वाली सुख सुविधाओं का तिरस्कार पति के प्रति अनन्य निष्ठा को ही व्यंजित करता है। राम के विरह में अशोक वाटिका में बैठी सीता

के प्राण इसलिए नहीं निकल रहे हैं कि रामचन्द्र दर्शन के लिए लालायित नेत्रों से अश्रुपात होकर उन्हें विरहानल से दग्ध होने से बचा लेते हैं।

पति पर अनन्य विश्वास रखने वाली सीता निर्भय और निस्संक होकर अग्नि में प्रविष्ट हो एक सर्वथा नये, रूप में दिव्य, अलौकिक छटायुक्त मनोहारी सीता निकलकर आती है जो कुंदन के समान खरी है। तुलसी ने सीता की बाल लीलाओं का चित्रण यद्यपि नहीं किया है; उनके मातृत्व जैसे चरम रूप का निदर्शन एक ही चौपाई में किया है; किंतु बाल्मीकि रामायण से लेकर तुलसी ने भी सीता चरित्र के अनेक गुणों का महनीय वर्णन किया है।

श्रौत, स्मृति एवं महाभारत में श्रेष्ठ आदर्श नारियों के जिन लक्षणों का उल्लेख किया गया है तुलसी की सीता में किसी न किसी रूप में सभी गुण उल्लिखित हैं। जिसमें तुलसी ने एक अतिरिक्त गुण और जोड़ दिया है वह है राम से अभिन्नता इसीलिए तुलसी की सीता आज सती ही नहीं भारतीय नारियों में अग्रगण्य स्थान रखती हैं।

त्याग, तपस्या, औदार्य, क्षमाशीलता, अनन्यता, दृढ़ता, समर्पण, कर्मठता, कष्ट सहिष्णुता ऐसे अनेक गुण रामचरित मानस के विविध प्रसंगों में चित्रित हैं।

कौसल्या–

कौसल्या दशरथ की बड़ी रानी या पटरानी है। वह राम जैसे श्रेष्ठ पुत्र की माता है। पारिवारिक दृष्टि से कौसल्या का स्थान सबसे ऊँचा है वह पट्टमहिषी है, किंतु दशरथ कैकेयी को अधिक चाहते हैं अतः कौसल्या को पति की ओर से उपेक्षा ही मिली है। जिस नारी को पति से उपेक्षा सपत्नी द्वेष सहन करना पड़े उसका जीवन दुखद ही रहता है। रामचरित मानस में अवतारवाद के कारण तुलसी ने कौसल्या चरित्र को कुछ

उदात्त और आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। पूर्वजन्म में वे सतरूपा, अदिति थी भगवत् स्वरूप राम की माता बनने का उन्हें सुअवसर कौसल्या रूप में ही मिला है इसी कारण मानस में वे आदर्शवादी रूप लिए हुए हैं।

पायस विभाजन के समय कौसल्या को चरू का अर्ध भाग प्राप्त होता है इससे दशरथ के मन में उनकी प्रतिष्ठा प्रगट होती है। राम जन्म के समय ईश्वर को चतुर्भुज रूप देख के उनसे शिशु रूप में परिवर्तित होने की प्रार्थना कर अपने श्रेष्ठ मातृत्व भाव को व्यक्त करती हैं। कौशल्या का एक और रूप राम की नर लीला में दिखाई पड़ता है कि वे राम को स्नान करा श्रृंगार कर पालने मे लिटा देती हैं और देवार्चन में लग जाती हैं। वहाँ उन्होंने नैवेद्य थाल को राम द्वारा खाते हुए देखकर पालने मे पड़े राम को जब पुनः देखा तो एक साथ एक ही समय दो बालकों को देखकर वे आश्चर्यचकित हो उठती हैं उस समय राम के विराट रूप का दर्शन कर वे अपने को धन्य मान लेती हैं।

एतत् संबंधी कुछ पंक्तियाँ उनके चारित्रिक महत्ता की द्योतक हैं–

"एक बार जननीं अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए।।
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना।।
करि पूजा नैबेध चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा।।
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई।।

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा।।
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हंसि दीन्ह मधुर मुसुकानी।।
देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।।"[1]

---

1. रामचरित मानस – 1/201

राम ने शिशु क्रीडा के अंतर्गत सर्वाधिक आनंद कौसल्या को दिया है। इसके बाद विश्वामित्र के साथ रामवनगमन और बधुओं सहित चारों पुत्रों के आने तक कौसल्या की झाँकी कहीं नहीं दिखाई पड़ती वे पारिवारिक–कृत्यकर्मों, पूजा पाठ, कुल धर्म निर्वहन में ही व्यस्त रहने वाली महिला थीं। विवाहित पुत्रों और पुत्र वधुओं को देखकर माताओं के ह्दय में हर्ष का अगाध सागर उमंगित होने लगा बाल्मीकि ने लिखा है कि बध्वागमन से रानियाँ अत्यधिक प्रमुदित हैं–

"कौसल्या च सुमित्रा च कैकयी च सुमध्यमा।।

वधू प्रतिग्रहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः।।"1

तुलसी ने इस अवसर पर माताओं द्वारा अनेक लौकिक रीति क्रिया कलापों का चित्रण कर माताओं के आनंद को व्यक्त किया है। वधू देखने की उत्सुकता किस माँ को नहीं होती तुलसी ने लिखा है–

"सिविका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिहिं होंहि सुखारी।।

एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंद।

भाइन्ह सहित बिआहि घर आये रघुकुल चन्द।।

लोक रीति जननी करहिं वर दुलहिन सकुचान।

मोदु विनोदु बिलोकि बड़ राम मनहिं मुसकाहिं।।"2

कौसल्या की दूसरी छवि राम बनवास प्रसंग में होती है जब राम कौसल्या के पास पहुँच राज्याभिषेक की सूचना देते हैं तब हर्षातिरेक के कारण कौसल्या दान देते हुए कुल देवी की पूजा कर उनसे कृपा की याचना करती हैं–

---

1. बाल्मीकि रामायण – बालकाण्ड – 77/10–11
2. रामचरित मानस – 1/350

"आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी।।

पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा।।

जेहि विधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू।।"1

बाल्मीकि रामायण के अनुसार कौसल्या इस अवसर पर सुवर्ण गाय आदि का दान करती हैं–

"सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च।।

व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्रमदोत्तमा।।"2

किंतु दुर्भाग्यवश ब्रह्मा सुधाकर की जगह राहु लिख गया सुधा के स्थान पर हलाहल लिख गया कुटिल कैकेयी की करनी के कारण राम को वन का राज्य मिला और वे माता कौसल्या के पास वन गमन की अनुमति लेने पहुँचते हैं तब कौसल्या भाव विभोर होकर अपने हार्दिक आनंद को व्यक्त करती हुई राम से स्नान और भोजन करने का आग्रह करती हैं क्योंकि राज्याभिषेक के समय विलम्ब होने के कारण उन्हें दैनन्दिन कृत्यों का अवसर नहीं मिलेगा। तुलसी ने कौसल्या की वत्सलता का चित्रण बहुविधि रूप में किया है। कौसल्या तो साक्षात् परमानंद सिंधु में आकंठमग्न हो रही थीं इस भाव की व्यंजना संभवतः इन पक्तियों से भिन्न शब्दों में संभव न हो–

"बार बार मुख चुंबित माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता।।

गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए।।

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई।।"3

---

1. रामचरित मानस – 2/8
2. बाल्मीकि रामायण – 2/3/47–48
3. रामचरित मानस – 2/52

धर्म धुरीन राम ने निर्विकार रूप से कौसल्या से निवेदित किया कि श्रेष्ठ कार्यनिष्पादन हेतु पिता ने अयोध्या के स्थान पर उन्हें वन का राजा बनाया है, जिसे सुनकर कौसल्या श्रीहत हो गयीं और वैवर्ण्य के कारण वे कम्पित स्वरों में राम से पूँछती हैं कि पिता ने किस दण्ड के फलस्वरूप उन्हें वनगमन की आज्ञा दी है। कौन दिनकर कुल के लिए कृसान बन गया है–

"राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा।।

तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू।।"1

धैर्य धारण कर कौसल्या ने अपनी चिंता व्यक्त की, कि राम वन गमन से उन्हें इतना अधिक क्लेश नहीं है जितना कि दशरथ और प्रजा से भरत को प्राप्त होगा। तुलसी ने भरत का नाम पहले लेकर कौसल्या के आशीर्वाद की जो प्रतिष्ठा की है वह सभी भावों से ऊपर उठकर उन्हें मातृत्व के उच्च सिंहासन पर आरूढ़ करा देता है। इसीलिए वे साधिकार राम को आदेश देती हैं कि यदि पिता ने कानन राज का आदेश किया हो तो माता का आदेश सर्वोपरि मानकर राम को वनगमन नहीं करना चाहिए यदि इस आदेश में माता–पिता दोनों की सहमति हो तो वन का राज्य अयोध्या से सौ गुना अधिक श्रेष्ठ है–

"जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।"2

तुलसी ने स्नेहसिक्ता माता कौसल्या के अवचेतन मन में छिपे पति द्वारा तिरस्कृत कैकेयी की षड्यंत्र भावना को समझ कौसल्या के मनोभावों का वैसा चित्रण

---

1. रामचरित मानस – 2/54
2. रामचरित मानस – 2/56

नहीं किया जैसा बाल्मीकि रामायण में यथार्थ रूप में इस दुर्घर्ष सूचना को सुनकर कौसल्या का क्रोध उद्वेलित हो उठता है। आदर्शवादी तुलसी ने माता पिता की आज्ञा को पालन करने वाले राम के वनगमन पर उनके मनस्ताप को व्यक्त किया है। कौसल्या यह भी नहीं कहना चाहतीं कि राम के साथ वे भी वन जाएगीं। काल की विपरीत स्थिति को समझ दारुण दुसह के वशीभूत हो कौसल्या विलाप करती हैं जिसे राम धैर्यपूर्वक सांत्वना प्रदान करते हैं। कौसल्या को तो एक दूसरी ही चिंता सताने लगी जब सीता को राम की अनुगामिनी होने का आभास हुआ। वत्सलता की साकार प्रतिमूर्ति कौसल्या पुत्र वधू सीता की नेत्रों में स्थित नेत्रगोलक की भाँति रक्षा करती थी यदि सीता ही अयोध्या में रह जाएगीं तो उन्हें अधिक कष्ट नहीं मिलेगा। जो सीता चित्रलिखित बंदरों को देख डरती थी वे जंगल में साक्षात व्याघ्र आदि हिंस्र पशुओं को देखकर कैसे रहेंगी। कौसल्या की कामना है–**"जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा।।"**[1] इस प्रसंग में राम, सीता, लक्ष्मण दशरथ की आज्ञानुसार वन गये विवश मूर्छित मणिविहीन सर्प की भाँति व्याकुल दशरथ कौसल्या के समीप आए और कौसल्या ने मुमूर्ष दशरथ से प्राणों की रक्षा करने हेतु धैर्य धारण करने का निवेदन किया किंतु सुमंत्र के लौटने पर दशरथ मरणांतक वेदना से छटपटाने लगे ऐसे समय कौसल्या ही उनके लिए अवलंब बनी वे कहती हैं कि इस समय दशरथ रूपी जहाज में पुरजन परिवार आरूढ़ है और उनके बिना सब कुछ विनष्ट हो जाएगा चौदह वर्ष बाद तो राम–सीता उन्हें पुनः मिलेंगे–

---

1. रामचरित मानस – 2/60

"कौसल्या नृप दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउँ जियँ जाना।।

उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी।।

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू।।

करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू।।

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं ता बूड़िहि सबु परिवारू।।

जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी।।"1

दुर्भायवश रघुवंश के महान प्रतापी राजा दशरथ ने राम के वियोग में प्राणों का परित्याग कर दिया। सम्पूर्ण अयोध्या शोक सागर में विलीन हो गई जिसके अवलंबन भरत बने। कैकेयी के स्वागत के पश्चात भरत दारुण एवं वज्राघात के समान सम्पूर्ण घटनाक्रम से अवगत हुए तो उन्हें शोक, ग्लानि, कुछ क्रोध और पश्चात्ताप हुआ वे अपनी सफाई में क्या कहते और किससे कहते उन्हें एकमात्र कौसल्या ही दीख पड़ी और उनके गोद में जाकर भरत ने जिस परिताप की व्यञ्जना की वह कौसल्या की उदारता, वत्सलता को ही प्रकाशित करता है। कौसल्या अपनी उदारता से भरत की मनःस्थिति समझ सरल ह्दय से कहती हैं–

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे।।

बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी।।

भए ज्ञान बरु मिटै न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू।।

मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।।"2

भरत सभी माताओं, ससैन्य राम को मनाने चित्रकूट जाते हैं उन्हें पैदल चलता

---

1. रामचरित मानस – 2/154
2. रामचरित मानस – 2/169

देख दुखी कौसल्या रथारूढ़ होने का आदेश करती हैं। समय के अनुसार राम भरत की भेंट चित्रकूट में हुई। इस समय कौसल्या का चिंतक एवं दार्शनिक रूप दिखाई पड़ता है। उदार हृदय कौसल्या प्रथम बार सीता को देख सहम सी गई। भरत और राम की इस सभा में धर्म, नीति, स्वार्थ, परमार्थ, लोक, परलोक हित सभी के द्वन्द्वों का चित्रण तुलसी ने किया है किंतु जिस समय जनकागमन की सूचना वहाँ पहुँचती है कौसल्या अपना मंतव्य प्रगट करती हैं। वे जनक की पत्नी सुनैना से भरत के आर्तपूरित हृदय के संबंध में निश्छल रूप से कहती हैं–

"राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ।।
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई।।
कहत सारदहुँ कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे।।
जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा।।"[1]

ऐसी दृढ़तापूर्ण बात वही कह सकता है जिसका हृदय निश्छल, उदात्त और किसी का अप्रिय न सोचने वाला हो। इस स्थिति में कौसल्या को भरत की अधिक चिंता है। अंत में राम की पादुका लेकर भरत अयोध्या लौट जाते हैं सभी लोग चौदह वर्ष की अवधि बीतने की प्रतीक्षा करते हैं।

रावण वध कर राम–सीता–लक्ष्मण श्रेष्ठ कपि नायकों के साथ अयोध्या लौटे कौसल्या किस प्रकार बिह्वल होकर राम से भेंट करती हैं तुलसी ने सटीक उपमा का प्रयोग किया है जैसे सूखे बिरवे में पानी पड़ जाए और वह हरित हो उठे। गाय, जैसे सायं काल हुंकार भरती हुई अपने वत्स के पास पहुँचती है कौसल्या की स्थिति इससे

---

1. रामचरित मानस – 2/283

कुछ भिन्न नहीं थी–

"कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लबाई।।

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं।

दिन अंत पुर रूख स्रवत थन हुंकार करि धावत भई।।"1

कौसल्या के चरित्र में सनातन धर्म का आदर्श रूप–

यहाँ यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि बाल्मीकि रामायण की कौसल्या दशरथ की पटरानी तो हैं किन्तु कैकेयी के समक्ष वे पतिप्रेम वंचिता, अधिकारहृता और सापत्न्य द्वेष से पीड़िता हैं फिर भी उनके चरित्र का केन्द्र बिंदु वात्सल्य ही है जिसे वे व्यक्त तो करती हैं किंतु अपने हार्दिक कष्टों को मौन होकर सहन करती रहती हैं। तुलसीदास मर्यादावादी आदर्श धर्म प्रणेता कवि हैं उन्होने बड़ी ही जागरुकता के साथ कौसल्या के चरित्र का नव संयोजन प्रस्तुत किया है।

सर्वप्रथम तुलसीदास ने कौसल्या के चारित्रिक असंतुलन को दूर करने के लिए प्रबल वात्सल्य के साथ सामाजिक मूल्यों के प्रति उनकी श्रेष्ठ पक्षधरता प्रस्तुत की है। कहना नहीं होगा कि स्त्री का देवत्व रूप मातृत्व में ही निहित है इसलिए तुलसी ने त्याग, सहिष्णुता, कोमलता, ऋजुता, औदार्य, परोपकार, सामाजिक संबंधों की चिंता पर दुखकातरता जैसे पूत, शुचि, मेद्य और उज्जवल तत्त्वों का समावेश कर कौसल्या चरित्र को ऐसा चित्रित किया है कि वे सनातन धर्म के सभी भावों को समेट कर मानवता के उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित हो गई हैं। उनका राम प्रेम विश्व के सभी प्राणियों के प्रति निश्छल प्रेम में परिवर्तित हो गया है। उनकी हार्दिक उदारता के समक्ष भरत की ग्लानि के कारण उन्हें रघुकुलदीपक घोषित करने में क्षणिक भी बिलम्ब नहीं लगा और वे अपने

---

1. रामचरित मानस – 7/6

प्रेम से दशरथ पुरजन वासियों को जिस दृढ़ता से धैर्य बँधाती है वह किसी भी संस्कृति के वरेण्य आदर्श हो सकते हैं।

सनातन धर्म के सभी तत्त्व कौसल्या चरित्र में समाहित और व्यञ्जित ही नहीं हैं अपितु वे इनसे ऊपर उठकर ऐसे मनोभाव मे जा बैठी है जिसका केन्द्र बिन्दु मातृत्व है इसी मातृत्व के बल पर वे कैकेयी के स्वत्व को स्वीकार कर रामको वनगमन की आज्ञा देती हैं। इस प्रकार तुलसी ने कौसल्या को श्रेष्ठ सद्गृहणी, पतिपरायणा, कुल ज्येष्ठा, सपत्नियों से मधुर संबंध रखने वाली, राजमाता, श्रेष्ठ विमाता और राजमहिषी के रूप में मानस में वर्णित किया है।

कैकेयी—

दशरथ प्राणबल्लभा कैकेयी रामकथा को ऐसा अप्रत्याशित मोड़ देती है जिसकी संधि में हर्ष, विषाद, सत्य, असत्य, प्रिय—अप्रिय, मातृ—पितृ भक्ति, भातृप्रेम राजा—प्रजा के संबंध परिभाषित हुए हैं। सम्पूर्ण रामकथा में कैकेयी का चरित्र आज भी उतना ही रहस्यमय है अव्याख्यायित है जितना धर्म शास्त्रकारों और साहित्यकारों के समक्ष द्वन्द्व रहा होगा। उसका चरित्र पहले भी रहस्यमय था और आज भी है। इधर मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में कैकेयी के चरित्र की व्याख्या और उसके मन में सुप्त तथा कारक तत्त्वों को पाकर जाग्रत होने वाले विचारों की व्याख्या अवश्य होती है। इससे आश्चर्य यह होता हे कि इस व्याख्या में भी सनातन धर्म के अनेक ऐसे तत्व हैं जिनकी झलक मिलती है।

मूल रूप से कैकेयी अतीव सुन्दरी क्षत्रिय कन्या है। जो रणकला में भी विशारद है शस्त्राभ्यास में वह दक्ष है उसका ह्रदय अत्यन्त कोमल है किंतु नियति ने उसके साथ क्रूर परिहास किया है कि उसका विवाह दशरथ से हुआ जिनकी अनेक रानियाँ पहले

से थी किंतु वे निःसंतान थे। पुत्रसुख से वंचित थे और इस सुख प्राप्ति हेतु वे कुछ भी वचन देने के लिए तत्पर थे। "बृद्धस्य तरूणी भार्या" का उदाहरण कैकेयी है जो शृंगार प्रिया और काम प्रिया है।

पुत्र भरत के होने पर उसके हृदय में अगाध बात्सल्य का सिंधु लहराता है जो केवल भरत तक ही सीमित नहीं उसमें राम भी आंकठमग्न हो जाते हैं। यदि यह कहा जाए कि कैकेयी भरत की अपेक्षा राम से अधिक स्नेह, वात्सल्य या प्रेम करती थी तो यह अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा ऐसी सरल–हृदया, कोमला ने उसके अंतस्थल के सुप्त संवेगों की हल्की झलक प्रस्तुत की है यद्यपि अवतारवाद या भक्तिभावना के कारण रामकथा के कुछ काव्यों मे ऐसी भी घटनायें मिलती हैं जिसमें राम कैकेयी को प्रेरित करते हैं कि वे दशरथ से वरदान माँगकर राक्षसों के संहार हेतु राम को वन भेज दें।

रामचरित मानस में ऐसा कोई प्रसंग नहीं है वहाँ प्राक्तन मूल कथा ही विन्यस्त है अतः रामचरित मानस के अनुसार ही कैकेयी के चारित्रिक गुणों की व्याख्या कर उसमें निहित सनातन धर्म की अवधारणाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए जाऐंगे। मानस मे कैकेयी का जो चरित्र अंकित है वह सरल और भोलेपन से युक्त है कठोरता क्षणिक आवेश के कारण प्रतिक्रिया बश हुआ है। पहले हम उसके चरित्र के प्रथम पक्ष का विश्लेषण कर द्वितीय पक्ष की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे विवाह के समय दिए गए वरदान या शर्त अथवा युद्धरक्षा में कैकेयी को दो वरों से आश्वस्त किया गया था इसका उल्लेख मानस में अप्रत्यक्ष रूप से है।

कैकेयी दशरथ प्राण बल्लभा है किंतु दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर जब दशरथ को संतान की प्राप्ति नहीं हुई तब उन्होंने बशिष्ठ की आज्ञा से श्रृंगी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया और उसमें प्राप्त चरू या पायस का जो विभाजन हुआ उसमें कैकेयी का

सन्तोष यह व्यक्त करता है कि वह राजा की कामिनी ही नहीं अपितु सपत्नियों के प्रति सहृदय भी है। तुलसी ने इस पायस विभाजन का उल्लेख कर कैकेयी की सरलता, स्वाभाविकता, पतिनिष्ठा और पुत्र कामना को व्यक्त किया है–

> **"तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाई। कौसल्यादि तहाँ चलि आई।।**
>
> **अर्धभाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा।।**
>
> **कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ।।**
>
> **कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि।।**
>
> **एहि बिधि गर्भसहित सब नारी। भई हृदयं हरषित सुख भारी।।"**[1]

इस पायस विभाजन में यह व्यंजित है कि यद्यपि कैकेयी राजा दशरथ को सर्वाधिक प्रिय है उसकी बातों में दशरथ हर समय बँधे हुए रहते थे किंतु मर्यादावादी तुलसी ने सापत्न्य धर्म के सनातन रूप की रक्षा करते हुए पट्ट्महिसी कौशल्या की उपेक्षा नहीं दिखाई है। पायस का उसे अर्ध भाग दिया गया है जबकि कैकेयी को उसका चतुर्थांश दिया गया है। तुलसी ने दशरथ की तीन ही रानियों का उल्लेख कर सनातन धर्म की अवधारणा की पुष्टि की है कि मूलतः विवाह वंशधर की प्राप्ति पितृऋण से उऋण होने की कामना से प्रेरित है, उसमें कामार्थ, वाग्विलास या मात्र दैहिक सुख की तुष्टि ही अपेक्षित नहीं है।

छोटी रानी कैकेयी सुन्दरी तो थी इसलिए पुत्रकामना हेतु दशरथ का उसके पुत्र को ही युवराज बनाने की शर्त की स्वीकृति स्वाभाविक लगती है, किंतु दशरथ के चरित्र में कौशल्या का अपमान कहीं भी तुलसी ने चित्रित नहीं किया है अपितु पायस विभाजन मे उसे आधा भाग देकर उसका मान ही बढ़ाया है। समय पर कैकेयी ने भरत को जन्म

---

1. रामचरित मानस – 1/190

दिया अयोध्या में सुख का सागर लहराने लगा।

कैकेयी की दूसरी झलक अयोध्या कांड में दिखाई देती है जब दशरथ वशिष्ठ और मन्त्रियों के अभिमत से राम को युवराज पद देने का निर्णय करते हैं। मूलतः यह बात दशरथ स्वयं कैकेयी को बताकर उसे आश्चर्यचकित करना चाहते थे किंतु दुर्भाग्यवश यह बात सारे नगर में फैल गयी हर्षित हुलसित, प्रमुदित अयोध्या के नर नारियों का उत्साह देखते हीं बनता था जिसे मंथरा ने देखा और स्वामिनी का अहित देख दुखित ह्रदय होकर सम्पूर्ण समाचार और अपना अभिमत व्यक्त करती है। उसे यह तनिक भी आभास नहीं था कि राम के राज तिलक की सूचना पाकर कैकेयी इतनी हर्षित हो उठेगी कि वह मंथरा को पुरस्कृत करेगी।

तुलसी ने कैकेयी की सरलता राम–सीता पर अत्यधिक विश्वास का चित्रण कर सनातन धर्म के उस उज्जवल पक्ष का चित्रण किया है जिसमें सपत्नियों में द्वेष नहीं, विद्वेष नहीं, अविश्वास नहीं अपितु इसके स्थान पर त्याग समरसता, ऋजुता और मुदिता चित्रित है। जब मंथरा ने कैकेयी पर यह आक्षेप किया कि उसे तो शैयासुख में ही सर्वस्व सुख प्रतीत होता है सपत्नी की चतुराई सरलता के कारण उसे दिखाई नहीं पड़ती तब कैकेयी अपनी सरलता का इस प्रकार परिचय देती है–

देखहु कस न जाय सब सोभा। जो अवलोकि मोर मन छोभा।।

पूत विदेस न सोचु तुम्हारे। जानति हवु बस नाउ हमारे।।

नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई।।

सुनि प्रिय वचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी।।

पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी।।

x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x

सुदिन सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई।।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।।

राम तिलक जौं साचेहुँ काली। देउँ मांगु मन भावत आली।।

जौं विधि जनमु देई करि छोहू। होहुं राम सिय पूत पतोहू।।

प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलक छोभ कस तोरे।।'1'

ऐसी सरला कैकेयी पाषाणमति, क्रूरकर्मा बन जाती है कि उसकी तुलना करना ही कठिन है। सिंगमंग फ्रायड, हैविलॉक जैसे मनोविश्लेषकों ने अचेतन मन की व्याख्या करते हुए यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि माता अपने पुत्र के कष्ट और अपने अहं को विगलित होते नहीं देख सकती संभवतः कैकेयी के अचेतन मन में पति प्रेम की पराकाष्ठा थी और वह यह अधिकार समझती थी कि जिस राम को वह भरत से भी अधिक चाहती है उसके हर्ष का निर्णय कैकेयी से मंत्रणा कर तब फिर राज सभा से उसकी पुष्टि की जाएगी ऐसी चाहत कैकेयी की निश्चित रूप से रही होगी, किंतु गुरू मंथरा ने सापत्न्य द्वेष की अनेक कहानियाँ बताकर कैकेयी और भरत के दुर्दशाग्रस्त कष्टप्रद भावी जीवन की जो झाँकी प्रस्तुत की उस वाग्जाल में भोली कैकेयी का फँस जाना अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता और फूल पत्थर बन गया।

कैकेयी के सरल ह्रदय में प्रेम की सदानीरा ने ऐसा विकराल सरित प्रवाह का रूप धारण कर लिया जिसमें तटस्थ वृक्ष भी बह गये कुछ भी शेष नही बचा। कैकेयी मंथरा की बातों में आ गयी, अपने सुहागदर्प को भूलकर वह कौशल्या के प्रति असहिष्णु हो गयी उसे मंथरा की ये बातें सत्य प्रतीत होने लगीं कि चतुर कौशल्या ने छिपे–छिपे चुप रहकर अपने पुत्र को युवराज बनाकर राजमाता के पद पर अभिशिक्त हो कैकेयी

---

1. रामचरित मानस – 2/14–15

और भरत को जो दण्ड देगी उसकी भयंकरता को सुनकर ही कैकेयी ने आँख और कान बंद कर लिए। कैकेयी भी अनुभव करने लगी कि यदि ऐसा हुआ तो उसकी स्थिति उसका स्वत्व निष्फल हो जाएगा वह दूध में पड़ी मक्षिका की तरह असहाय और विवश रहेगी। तुलसी ने कैकेयी की इस मनोदशा का चित्रण संचारी भावों के माध्यम से किया है–

"कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब।

भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब।।

कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी।।

तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी।।"[1]

कैकेयी अपनी सरलता के संबंध में यह स्वीकार करती है कि उसने दशरथ के हृदय पर भले ही राज किया हो किंतु पतिप्रेमजन्य अहम् से उसने किसी का अहित नहीं किया है किंतु पुत्र विषयक वात्सल्य जन्य अहम् वह तोड़ने न देगी। वह कहती है–

"काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ।।

अपनें चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।

केहि अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुख दीन्ह।।"[2]

क्रमशः मंथरा ने उसे पुत्र विषयक सोच एवं कौसल्या के प्रति विद्वेष भावों को उद्वेलित अवस्था में पहुँचाया और यह भली–भाँति घुट्टी की तरह पिला दिया कि वह अपने मन के भाव दशरथ से तभी व्यक्त करे जब दशरथ उसके त्रियाचरित्र जन्य रूप से या तो कामाभिभूत होकर या आतंकित होकर राम की सौगंध खाकर कैकेयी के

---

1. रामचरित मानस – 2/19–20
2. रामचरित मानस – 2/20–21

वचनों को पूरा करेंगे ऐसे आश्वासन पर ही वह अपने दो बरों को प्रस्तुत करेगी तभी उसकी जीत होगी जब राम यतिवेश में वन जाऐंगे और भरत राजा होंगे।

कैकेयी जो सरल हृदया थी जिसे रूप गर्विता नहीं कहा जा सकता क्योंकि सरलता और भोलेपन की प्रतिमूर्ति थी अब उसके मन में क्रोध नहीं प्रतिशोध की हिंसा पनपने लगी चिंगारी दावाग्नि बन गई और वह दृढ़ संकल्पित कोप भवन में जा बैठी जिसकी सूचना पाकर इन्द्र को भी अपने वाहुबल का आश्रय देने वाले चक्रवर्ती दशरथ भी सूख गए भयभीत हो गये। रतिनाथ के सुमनसर से आहत दशरथ ने प्राणप्रिया के समीप जाकर देखा कि कुवेश रूप में कैकेयी क्रोध की साक्षात् प्रतिमूर्ति लगती है, अतः उन्होंने उसे सुमुखि सुलोचनि पिकबयनी एवं गजगामिनी के विशेषणों से उसके सौन्दर्य की प्रशंसा कर कैकयी को प्रसन्न करना चाहा, यद्यपि सामान्य अवस्था में आबाल युवती या बृद्धा नारी अपने सौन्दर्य की अतिशय प्रशंसा सुनकर द्रवित हो जाती है किंतु कैकेयी द्रवित नही हुई, तब दशरथ ने अपने बाहुबल की याद दिलाकर उसे प्रसन्न करना चाहा। इस बाहुबल प्रदर्शन में भी कैकेयी के मुख दर्शन की चाहत अपनी तृषा का उल्लेख करना वे नहीं भूले उन्होने याद, दिलाया कि वे कैकेयी के कहने पर किसी रंक को राजा और राजा को देश निर्वासित कर सकते हैं, क्योंकि उनका स्वभाव है कि वे कैकेयी के मुखचंद्र के लिए चकोर हैं। वे कुछ भी कपटाचरण या असत्य, अलीक नहीं कह रहे हैं। राम की सौगन्ध की बात सुनकर कैकेयी कुछ द्रवित हुई त्रिया चरित्रानुसार आभूषणों से अपना शरीर सज्जित ही करने लगी थी कि दशरथ ने राम के राज्याभिषेक की घटना क्या सुनाई कैकेयी ने कुछ व्यंग्य, कुछ उलाहने भरे वाक्यों को प्रेमरस में सानकर ऐसी बात कही कि दशरथ उसे कभी कुछ देते नहीं माँगने का आश्वासन मात्र ही उसे भूतकाल में मिलता रहा है। तुलसी ने लिखा है कि दशरथ त्रियाचरित्र से सर्वथा

अनभिज्ञ थे और वे कैकेयी के जाल मे फँस गये–

"लखहिं न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गरू पढ़ाई।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारिचरित जलनिधि अवगाहू।

कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहसि नयन मुहु मोरी।।

मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।

देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु।।

थाती राखि न माँगेहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ।।

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरू बचन न जाई।।"1

कैकेयी से याचित दो वरदानों ने दशरथ को शिथिल, व्यथित, व्याकुल कर दिया वे आँख और कान मूँदकर इनके परिणाम की भयावहता का अनुभव कर कैकेयी से दीनार्त होकर भरत के राज तिलक की बात स्वीकार कर लेते हैं किंतु राम वनवास के लिए उनका मन स्वीकार नहीं करता क्योंकि कैकेयी कभी भी राम की विरोधी नहीं रही दशरथ को अभी भी यह अविश्वास है कि कैकेयी इतनी निष्ठुर पाषाण हृदया नहीं हो सकती। उन्हे लगता है कि उनकी प्रिया परिहास कर रही है। वे जानते हैं कि राम ही उनका जीवन है किंतु कैकेयी की दृढ़ता देख उसके चरण पकड़ दीन हीन दशरथ प्रार्थना करते हैं कि यदि वह दशरथ को जीवित देखना चाहती है और वे भरत का राजलितक देखना चाहते हैं तो कैकेयी दूसरे वर के संदर्भ में कुछ अन्य माँग ले।

निष्ठुर कैकेयी राजा से जिस प्रकार के व्यंग वचन कहती है, राजा को अपनी मृत्यु साक्षात् दिखाई देने लगती है, और वे विवश होकर भूमि में पड़े विलाप करने लगते हैं। प्रातःकाल होते ही सुमंत्रागमन, सुमन्त्र के साथ राम का आना निर्ममता पूर्वक कैकेयी

---

1. रामचरित मानस – 2/27–28

का बर याचना एवं दशरथ की आज्ञा सुनाना राम की प्रसन्नता, वनगमन, अयोध्या की प्रमुख नारियों द्वारा कैकेयी का प्रबोधन किंतु कैकेयी का अप्रभावित रहना इस वनवास प्रकरण के ऐसे कारूणिक प्रसंग हैं जिसमें तुलसी ने एक ओर करूण रस की धारा ही नहीं बहाई अपितु उसका हृदयावर्जक चित्रण किया है कि कथा और भाव को देखकर साधारण पाठक भी रसाप्लावित हो उठता है तो मनोविश्लेषण कर्ता क्रूरकर्मा कैकेयी के चारित्रिक विकास पर हतप्रभ हैं कि कैसे तुलसी ने अवचेतन मन में स्थित भाव का अपनी सूक्ष्मग्रहिका शक्ति से चित्रण किया है कि कैकेयी अपराधिनी तो लगती नहीं उसकी निष्ठुरता में स्वाभाविकता लगती है। उसके त्रियाचरित्र में कार्य संपादन की कुशलता दिखाई देती है।

राम वनगमन के पश्चात् भरतागमन हर्षिता कैकेयी का भरत स्वागत घटना का निर्विकार रूप से वर्णन भरत की मनोव्यथा कैकेयी के प्रति तीव्र भर्त्सना राम के प्रति अपने उद्दाम भावों की अभिव्यंजना में सारा परिवेश ही परिवर्तित हो जाता है, और चित्रकूट प्रवास के समय राम का सर्वप्रथम कैकेयी से मिलना कैकेयी की आत्मग्लानि पुनः उसके मूलरूप में अवस्थिति का चित्रण तुलसी ने किया है।

कैकेयी के चरित्र में सनातन धर्म के तत्त्व–

तुलसी ने कैकेयी की सुंदरता का वर्णन तो नहीं किया किंतु उसके स्वभावगत उदारता, सरलता, क्षमाशीलता सौतों के प्रति प्रेम आदि का चित्रण कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अन्य पात्रों के माध्यम से कराया है। मूलतः कैकेयी कोमलहृदया है जो स्त्री अपने पुत्र के साथ अपनी सौत के पुत्र का पालन पोषण लाड़ प्यार और दुलार वात्सल्य का अधिक अंश सौत के पुत्र को दे उसके हृदय की विशालता की कोई सीमा नहीं। कैकेयी ने राम के प्रति वात्सल्य भाव निस्वार्थ रूप में व्यक्त किया है। वह कामना करती है कि

यदि सीता और राम उसके पुत्र और पुत्रवधु होते तो उसका गर्भ सार्थक हो जाता। ऐसे नारी चरित्र शायद ही विश्व वांङ्गमय में कहीं भी मिले। सनातन धर्म किसी पंथ किसी मत किसी समुदाय का धर्म नहीं उसमें तो हर पूजा उपासना, पद्धतियाँ, सदानीरा सुरसरि नदी की तरह है जिसकी नियति समुद्र में विलीन होना है। कैकेयी के जीवन में ऐसी सरलता, ऋजुता, निरभिमान, औदार्य और निर्दोष भाव से पति प्रेम के समक्ष सर्वस्व समर्पण की भावना के गुण उसके मूल प्रवृत्तिगत गुण हैं उसकी कठोरता, निष्ठुरता और अहंकार इत्यादि संवेग क्षणिक अस्थिर धर्म हैं जो प्रतिक्रियावश प्रतिहिंसा का रूप ले सके।

यद्यपि उसके चरित्र में सनातन धर्म के अनेक गुण दिखाई देते हैं किंतु एक दोष के कारण सारे गुण समाप्त हो गये और वह मात्र खलनायिका ही दिखाई पडती है।

अनसूया–

डा0 पाण्डुरंगराव ने इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है– "इसका शब्दार्थ ईर्ष्या से रहित है। इस शब्द से एक और अर्थ निकलता है, सू धातु से यह शब्द बनता है सू धातू का अर्थ है– पैदा करना, जन्म देना, निष्पन्न करना आदि। जो पैदा कर सकता है वह सूय है तो जो पैदा नहीं कर सकता वह असूय बनता है। इस प्रकार अनसूया का मतलब होगा जो पैदा करने की क्षमता से वञ्चित नहीं है, ईर्ष्या या असूया में नई चीज पैदा करने की क्षमता नहीं रहती वह स्वयं मिट जाती है और दूसरों को भी मिटाती है, पर अनुसूया या अनीर्ष्या इसके विपरीत सब कुछ पैदा कर सकती है, सबको सब कुछ देती है और इसी प्रदत्ति की भावना से अंदर ही अंदर निरंतर आनंदित रहती है यही अनुसूया शब्द का निहितार्थ है।"1

---

1. रामायण के महिला पात्र – पृ0 43

चित्रकूट से आगे बढ़ने पर राम सीता और लक्ष्मण अत्रि आश्रम में पहुँचते हैं यहाँ पर अत्रि की साध्वी पत्नी अनसूया से सीता की भेंट होती है। बाल्मीकि से लेकर तुलसीदास के रामचरित मानस तक कथा का इतिवृत्त तो समान है पर धर्म और अध्यात्य की व्याख्या भिन्न–भिन्न परिवेश में प्रस्तुत हुई है। बाल्मीकि रामायण में अत्रि ने स्वयं अपनी पत्नी के दुर्धर्ष तप, कठोर व्रत पालन और तपस्या का उल्लेख किया है। जिसके कारण मंदाकिनी की पवित्र धारा इस स्थान को अभिसिंचित करती है। तुलसी ने भी इस तथ्य का उल्लेख इस प्रकार किया है–

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि प्रिया निज तप बल आनी।।

सुर सरि नाउ माम मन्दाकिनी। सो सब पातक पोतक डाकिनी।।

सीता अनसूया में अपने सास के दर्शन करतीं हैं और अनसूया सीता को दिव्य वस्त्राभूषण से अलंकृत करती है जिनकी शोभा और कान्ति कभी म्लान नहीं पड़ती। साथ ही अनसूया ने अपने जीवन की तपश्चर्या, पति सेवा जो आध्यात्मिक, लौकिक यश, कीर्ति, बड़प्पन, क्षमता अनुभव प्राप्त किये थे उसका उपदेश सीता से करती हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि तुलसी ने अनसूया के माध्यम से नारि धर्म की गरिमा, मर्यादा और महत्ता का चित्रांकन किया है जो सार्वत्रिक और सार्वभौमिक हैं। इस प्रकार सनातन धर्म के मूल अंगों में से स्त्री विशेष धर्म की वृहद और विस्तृत रूपरेखा निम्न पंक्तियों में व्यक्त की है। आदि काल से लेकर आज भी पति–पत्नी इकाई में पति को सर्वोत्तम एवं श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। वैवाहिक संस्था में इस पद की गरिमा और मर्यादा सुरक्षित रहने के कारण ही आज विश्व के अन्य देशों में वैवाहिक संस्था की प्रमुखता मूल कारण है। जबकि विश्व के अन्य देशों में पति–पत्नी संबंधों में तनाव या दूरी छोटे–छोटे कारणों से बढ़ जाती है जिसका दुष्परिणाम तलाक या विवाह–विच्छेद के

रूप में सर्वग्रासी या सर्वभक्षी समस्या के रूप में वैश्विक समाज शास्त्रियों के सामने मुँह बाये खड़ी है। तुलसीदास ने मध्ययुगीन संस्कारों में पति–पत्नी संबंधों की दृढ़ता का चित्रांकन अनसूया के उपदेश के माध्यम से दिया है अनुसूया ने इस अवसर पर सामान्य नारी के पति सम्बन्धी आचार व्यवहारों का उल्लेख कर तदुपरांत उत्तम मध्यम और अधम पत्नियों के पति संबंधी कार्य व्यवहारों की एक सूची प्रस्तुत की है। वस्तुतः पुरूष की सफलता के पीछे नारी का ही स्थान दिखाई देगा। पति सेवा कर ही नारी यशस्वी बनती है यहाँ तुलसी प्रोक्त कुछ पंक्तियों को उद्धृत कर तदुपरान्त इनकी सामाजिक आवश्यकता और सनातन धर्म की अवधारणा सम्बन्धी दृष्टिकोंण का विश्लेषण अनसूया के चारित्रिक परिप्रेक्ष्य में करेंगे। संयुक्त परिवार में माता–पिता, भाई, स्त्री के लिए महत्त्वपूर्ण इकाई हैं किंतु रत्न और कविता की तरह स्त्री भी उत्पन्न कहीं होती है और शोभा अन्यंत्र पाती है।

नारी की शोभा पति से ही होती है वही उसका मनप्राण है तुलसी ने लिखा है–

"अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।

धीरज धर्म मित्र अरू नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।।

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।

ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।

एकई धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।

जग पतिब्रता चारि विधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं।।

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरूष जग नाहीं।।

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें।।

धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।।

बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।

पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।।

बिनु श्रम नारि परम गत लहई। पतिब्रत धर्म छांड़ि छल गहई।।

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। विधवा होइ पाइ तरूनाई।।

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।

जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय।।

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।

तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित।।"1

सारांश यह कि पति–पत्नी की उभयानन्यता सामाजिक संबंधों में विभेद के मूल कारक तत्त्वों के साथ तुलसीदास नैतिक आदर्शवादी, सामाजिक चिंतन की भूमिका में उतरकर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि नारी की कीर्ति उसकी गरिमा उसकी मर्यादा पति के प्रति अनन्यता में ही निहित है। प्रथम अध्याय में शोधकर्त्री ने विभिन्न देशों की साम्प्रदायिक या मत संबंधी आचार संहिताओं या क्रिया कलापों का सैद्धान्तिक विवेचन कर कर्तव्य रूप धर्म का विशद विवेचन कर वैयक्तिक एवं सार्वत्रिक, सार्वकालिक सनातन धर्म के मूल तत्त्वों के साथ काल स्थान विशेष धर्म की अवधारणा से सनातन धर्म की एकता निरूपित की है। नारियों की दृष्टि से सनातन धर्म में पति के प्रति एक निष्ठा उसकी सहायता, साहचर्य जनित एकान्तिक भाव में पत्नी के महती भूमिका की विस्तृत चर्चा नीतिशास्त्रियों ने की है। जिसे हम आज के परिप्रेक्ष्य में भी अनुभव करते हैं भले ही कुछ नारी समानता के तथाकथित समर्थक इन्हे पुराने विचार कहें नारियों के

---

1. रामचरित मानस – 3/5

प्रति पुरूष के वर्चस्व की निंदा करें पर वस्तुतः अनसूया और अत्रि के जीवन प्रसंगों की बाल्मीकि रामायण में जो चर्चा की गई है उस पृष्ठभूमि में यह कहा जा सकता है कि जीवन में सारी प्रतिष्ठा विजय और उपलब्धि का आधार पुरूष की अपेक्षा नारी का व्यक्तित्व है। पुरूष के भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन की सफलता नारी की पवित्रता, निष्ठा, दृढ़ता और सेवाभावना पर निर्भर है। अनसूया की दिव्य, अलौकिक पवित्रता के कारण ही अत्रि का नाम विख्यात हुआ। नहीं तो वे एक महज सामान्य साध ाक या तपस्वी भर थे। यद्यपि तुलसी ने इस प्रसंग की चर्चा नहीं की, कि किस प्रकार अनसूया के पातिव्रत धर्म के कारण तीनो लोकों के स्त्री समाज में यह ईर्ष्या का भाव पैदा हो गया था कि येन केन प्रकारेण अनुसूया से श्रेष्ठ सती नारी की या तो खोज की जाय या उनकी ऐसी कठोर परीक्षा ली जाए जिससे वे अपने व्रत में कमजोर सिद्ध हो जाएं। किंतु अनसूया की तपश्चर्या और पति के प्रति एकान्तिक निष्ठा के कारण ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी शिशु रूप में परिवर्तित होना पड़ा क्योंकि तीनों साधारण विप्रवेश धारी याचक के रूप में अनसूया के समक्ष निर्वसना होकर भिक्षा दान का प्रस्ताव रखा था। परन्तु अनसूया के तेज से वे शिशु बन गए इस प्रकार शिशु के समक्ष नारी का वस्त्रयुक्त या निर्वसन होना कोई महत्त्व नहीं रखता।

तात्पर्य यह कि गोस्वामी तुलसी ने अनसूया चरित्र के माध्यम से सनातन धर्म की नारी रूप के कर्तव्यों की विधि–निषेधों का ऐसा चित्रांकन किया है जो कुछ अपवाद छोड़कर आज भी नर–नारी संबंधों की श्रेष्ठ आचार संहिता का निदर्शन है।

यद्यपि उपभोक्तावादी संस्कृति या नारी के शारीरिक या भौगोलिक अंग प्रदर्शनों पर व्यापार करने वाले समाज के लोग भारतवर्ष की वैवाहिक संस्था की दूरदर्शिता और दृढ़ता पर आज भी आश्चर्य और जिज्ञासा से आपूरित होकर उसका सामाजिक

शोधपरक अध्ययन करते हुए उन कारक तत्त्वों की जानकारी करना चाहते हैं जो नर–नारी के संबंधों की एक सूत्रता के कारक तत्त्वों को जानना चाहते हैं जिसका विदेशी समाज में नितांत अभाव है।

सनातन धर्म के तप इन्द्रिय दमन, ऋजुता सेवा, सौशील्य शुश्रूषा इत्यादि की व्यवहारिक व्याख्या तुलसीदास ने अनसूया चरित्र के माध्यम से व्यक्त की है।

मंथरा –

महाकाव्य में मुख्य या प्रधान पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्रों का भी चित्रण महाकवि इसलिए करता है कि वे पात्र अपने क्रियाकलापों से यातो कथा को गति या मोड़ देते हैं अथवा अपने चारित्रिक पक्ष से मुख्य पात्रों के चरित्र के किसी न किसी पक्ष को उजागर करते हैं। ऐसे पात्र गौण कहलाते हैं जो अपनी क्षणिक छटा दिखलाकर कथाफलक से विलुप्त या ओझल हो जाते हैं किंतु उनका प्रभाव बहुत दूरगामी होता है। रामकथा में मंथरा और सूर्पणखा ऐसे ही पात्र हैं जिन्होंने अपने चरित्र से राम कथा को एक नया मोड़ दिया है।

मूलतः मंथरा कैकयी के मातृकुल से उसकी संरक्षिका होकर आई थी। मानव व्यवहार की यदि कमजोरियों की चर्चा करें तो हर पिता की यह अभिलाषा होती है कि उसकी पुत्री पतिगृह में सुखी रहे वह अपने अधिकारों का निर्वाध उपयोग कर सके। दशरथ निःसंतान थे कौसल्या और सुमित्रा से पुत्रप्राप्ति की आशा उन्हें नहीं थी, ऐसे समय कैकेयी के पिता ने यदि यह अनुबंध रखा था कि उसका पुत्र ही उनका उत्तराधिकारी बनेगा तो यह कोई अनुचित बात नहीं थी, क्योंकि दशरथ को वंशधर चाहिए। उनकी एतद् विषयक अस्वीकृति अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होती इसी अधिकार की रक्षा हेतु कुरूपा, कुब्जा, प्रत्युत्पन्न मतिवाली मंथरा कैकेयी की सेविका के रूप में अयोध्या

आयी थी क्योंकि मूलतःकैकेयी अतीव सुन्दरी होने के साथ अत्यन्त सरलहृदया थी।

उक्त तथ्य प्रत्यक्ष रूप से रामचरित मानस में नही आया किंतु मंथरा की भूमिका कुछ इसी रूप में प्रस्तुत की गई है, उसके चरित्र की विशेषताओं का चित्रण तुलसीदास ने किया है।

(1). आदर्श सेविका–

मंथरा कैकेयी की सेविका ही नहीं संरक्षिका भी है उसने कैकेयी को ऐसा शिक्षित किया जिसके कारण दशरथ उसके रूप सौन्दर्य पर मुग्ध हो उसी के ही होकर रह गये। कैकेयी की अन्य चिंताये मंथरा दूर करती थी, दशरथ भी राजकाज से निपटकर प्रिया को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार की मनोभिलाषायें व्यक्त करते थे जिनकी पूर्ति में मंथरा सहायिका होती थी।

मंथरा के इस स्वामिभक्त रूप को किसी कवि ने संस्पर्श नहीं किया वह श्रेष्ठ आदर्श सेविका थी जिसका एक मात्र लक्ष्य अपनी स्वामिनी के अधिकार की संरक्षा थी। वह कैकेयी से अपमानित होने पर स्वयं कहती है–

कोउ नृप होय हमें का हानी। चेरि छाँडि न होउब रानी।।

तुलसी ने अर्थान्तरन्यास अलंकार के अंतर्गत काने, खोटे, कुबड़े ऐसे कुरूप नर नारियों की दुष्ट मति या कुटिलता का उल्लेख किया है। रामराज्य की सूचना सुनकर सम्पूर्ण अयोध्या में मंथरा ही ऐसी दासी थी जिसे सर्वाधिक आन्तरिक कष्ट हुआ क्योंकि यह तो उसकी स्वामिनी के अधिकारों पर खुली डकैती थी, उसे राजमाता के पद से वंचित किया जा रहा था उसकी मनोदशा का चित्रण तुलसी ने इस प्रकार किया है–

"दीख मंथरा नगरू बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा।।

पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा डर दाहू।।

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती।।
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँति।।
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी।।
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू।।"1

(2). दूरदर्शिता–

मंथरा दूरदर्शी सेविका थी उसने राम वनवास की सूचना सुनकर यह विश्लेषण कर समझ गई कि राजा दशरथ ने कैकेयी को विश्वास में न लेकर चुपके–चुपके राम राज्याभिषेक का निर्णय ले लिया है। भरत भी यहाँ उपस्थित नहीं हैं इससे सर्वाधिक हानि उसकी स्वामिनी कैकेयी को ही होने वाली है। जो दशरथ के कपट भरे प्रेम वाक्यों में मुग्ध होकर उन्हें ही सत्य मानकर यथार्थ स्थिति से अवगत नहीं हैं। वह कैकेयी से कहती है–

"भयउ कौसलहि विधि अतिदाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन।।
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा।।
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें।।
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई।।"2

(3). प्रत्युत्पल मतित्व–

मंथरा अग्रसोची दासी थी उसके पास मात्र रात्रि भर का समय है और वह कुछ ऐसा कार्य करना चाहती हैं जिसके कारण राम का राज्याभिषेक टल जाए। वह कैकेयी के पास जाकर इस घटना की सूचना और उसके भविष्य का दृश्य अपनी वाणी से

---

1. रामचरित मानस – 2/13
2. रामचरित मानस – 2/14

अंकित करती है जिसमें सपत्नी कौशल्या की कुशलता राजा दशरथ की चतुरता सापत्न्य द्वेष की पौराणिक कहानियाँ सुनाकर कैकेयी को इतना भयाक्रांत कर देती है कि वह विह्वल हो उठती है–

"रामहि तिलक काल जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ।।
रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनी भयहु दूध कइ माखी।।
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई।।
कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसलाँ देब।
भरतु बंदिगृह सेहइहिं लखनु राम के नेब।।"1

(4). वाग्मिता–

मंथरा दासी होते हुए कठिन से कठिन कार्य निर्विघ्न समाप्त करने की कला में कुशल है, और इस कुशलता के पीछे वाक्‌चातुर्य और विदग्धता उसके प्रमुख गुण हैं। कैकेयी के पिता कैकय नरेश ने कैकेयी के सरल स्वभाव को देखते हुए अंतःपुर के षडयंत्रों से कैकेयी के अधिकारों की रक्षा करने हेतु मंथरा को दासी के रूप में अयोध्या भेजा था और जैसे ही कैकेयी के स्वत्व एवं अधिकारों पर कुठाराघात की संभावनायें दिखीं मंथरा ने कैकेयी को ही अपने वाक्‌जाल में फँसाकर उसे राम कौशल्या और दशरथ के विरूद्ध विमाता के आचरणों के अनेक उदाहरण देकर ऐसी सुदृढ़ शिक्षा दी कि जिसके आगे दशरथ की आर्त करूण और अरन्तुद वेदना भी व्यर्थ चली गयी। वह कहती है–

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फल परिपाका।।
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि।।

---

1. रामचरित मानस – 2/19

पुँछेहु गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची।।

भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरी सेवा बस राऊ।।

परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।

कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि।।"1

और अंत में राम वनगमन के पश्चात मंथरा अपने इस दुष्कृत्य का दण्ड भी पाती है शत्रुघ्न पद प्रहार ही नहीं करते अपितु उसकी चोटी पकड़कर उसे घसीटते भी हैं।

मंथरा के चरित्र में सनातन धर्म की झलक–

सनातन धर्म की अवधारणा व्यक्त करते हुए शोधकर्त्री ने यह भी संकेतित किया है कि कोई भी गुण अपने आप में परिपूर्ण, सर्वमान्य सार्वजनीन और सार्वभौमिक नही हो सकता जब तक वह अपने विरोधी गुण से अपनी श्रेष्ठता नही प्रतिपादित कर लेता। यदि कुरूपता नहीं होती, पाप नहीं होता, कल्मष नहीं होते, तो सौन्दर्य, पुण्य, गुण और राम की कितनी महत्ता होती। रावण है तभी राम की सत्ता महत्ता है इसी परिप्रेक्ष्य में हमें मंथरा के चरित्र को भी देखना चाहिए। समीक्षकों ने उसकी कार्यकुशलता, निष्पादन शैली और सबसे ऊपर सेविका धर्मनिर्वहन जैसे गुणों की अवहेलना की है। उसका उचित मूल्यांकन नहीं किया गया। रामभक्ति के आवेश के कारण मंथरा उपेक्षिता रही है।

यदि मंथरा नहीं होती तो क्या राम वन जाते? रावण वध करते? ऐसा तभी संभव था जब मंथरा के अंतःकरण मे भरी स्वामिभक्ति की श्रेष्ठ भावना का निदर्शन देखते। महाभारत में कार्य की महत्ता या उसके स्वरूप की अपेक्षा उसके पीछे निहित एवं अनस्यूत दृढ़ता ईश्वर भक्ति के श्रेष्ठ भाव को भी श्रेष्ठ धर्म कहा गया है इसीलिए

---

1. रामचरित मानस – 2/21

सनातन धर्म में साधारण धर्म, विशिष्ट धर्म अन्तर्भुक्त हैं। मंथरा में सेविका का भाव स्वामिनी की रक्षा का दृढ़ संकल्प निहित है, और यह ऐसा सद्‌गुण है जो सनातन धर्म का अंग है भले ही तात्कालिक रूप से उसका परिणाम दुखद रहा हो परंतु रावण वध के पश्चात जो राम का ईश्वरीय रूप सामने आया है उसमें मंथरा के योगदान की उपेक्षा हम नहीं कर सकते।

शबरी –

बाल्मीकि रामायण में शबरी मतंग ऋषि की शिष्या है और उन्हीं की आज्ञा से मतंगवन में तपस्या करती हुई चिरकाल से राम के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती है। अपना पूर्वरूप प्राप्त कर कबंध राम को शबरी से मिलने का परामर्श देता है। राम प्रतीक्षारता शबरी के पास पहुँच उसके आतिथ्य को स्वीकार करते हैं। गद्‌गद्, पुलकित, अतीन्द्रिय सुख का अनुभव कर शबरी प्रेमा या भावभक्ति का साक्षात् उदाहरण बनती है। तुलसी ने बाल्मीकि की अपेक्षा शबरी के चरित्र का दूसरा ही उपयोग किया है। बाल्मीकि रामायण मे मतंग वन की दिव्य शोभा राम के साथ शबरी का दीर्घ संवाद वर्णित है जबकि तुलसीदास ने इस अवसर का उपयोग भक्तिभाव की व्यंजना के लिए किया है। समासवृत्ति के अनुरूप तुलसी ने शबरी के आतिथ्य का इस प्रकार चित्रण किया है–

> **"स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।।**
> **प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा।।**
> **सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे।।**
> **कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।**
> **प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।।"[1]**

---

1. रामचरित मानस – 3/34

शबरी नारी जाति को अधम कहकर अपनी गुणहीनता और भक्ति जैसे श्रेष्ठ उदात्त भाव को पाने के लिए भगवान से प्रार्थना करती है। राम ने सत्संगति, कथा श्रवण, निरहंकार भक्ति, कीर्तन, मंत्रजाप, दृढविश्वास, दम, संयम, कर्मों के प्रति अनासक्ति, सर्वत्र इष्टदेव के दर्शन, संतोष, छलहीन, विश्वास कर प्रभु भक्ति जैसी नवधा भक्ति का उसे उपदेश दिया। शबरी का मंतव्य पूर्ण हो गया वह आप्तकाम होकर योगाग्नि में जलकर सारूप्य मोक्ष को प्राप्त करती है।

शबरी संभवतः अन्त्यज थी किंतु गुरूकृपा से उसे साधना का सुअवसर प्राप्त हुआ। निरहंकार शबरी अनन्य भाव से ऋषि मुनियों की सेवा करती हुई राम के दर्शन पाकर अपने जीवन को सार्थक और धन्य कर लेती है। इस प्रकार सनातन धर्म की मूल अवधारणा ऐहिक एवं आमुष्मिक दोनो को प्राप्त कर वह श्रेष्ठ नारी के रूप में प्रकट हुई है, जिस राम भक्ति में कुल गोत्र जाति की वरीयता की अपेक्षा सत्संगति, कथा श्रवण और भावभक्ति की प्रधानता है, शबरी इन तीनो गुणों से युक्त है। रामकथा में शबरी जैसे कुछ ही पात्र हैं जो अपने सार्वभौमिक गुणों के कारण सनातन धर्म के मुकुटमणि सिद्ध हुए हैं।

तारा –

बाल्मीकि रामायण के अनुसार तारा वरूण के पुत्र सुषेण की पुत्री थी उसका विवाह किष्किंधा नरेश बालि के साथ हुआ। बाल्मीकि रामायण के अनुसार धर्म, नीति, आचार और व्यवहार का जितना सम्यक ज्ञान तारा को रहा है उतना अन्य किसी नारी पात्र में नहीं दिखाई पड़ता। अनुसूया में केवल पातिव्रत धर्म की चर्चा है शबरी भक्ति की चर्चा कर शांत हो जाती है किंतु तारा अप्रमेय योद्धा की पत्नी अंगद जैसे पुत्र की माँ और अपने व्यक्तित्व से पति को सतर्क करने वाली ऐसी नारी है जिसकी चमक के

आगे अनेक सद्नारी पात्र फीके पड़ जाते हैं।

रामचरित मानस में उसकी संक्षिप्त झलक मिलती है। सुग्रीव के युद्ध आवाहन को सुनकर उत्तेजित बालि प्रस्थान में क्षिप्रता दिखाता है तो तारा उसे अत्यन्त धैर्यपूर्वक समझाती है कि यह कायर आपसे सदैव पराजित होने वाला सुग्रीव बिना किसी अन्य की शक्ति पाये आपको ललकारने का साहस नहीं कर सकता निश्चित ही राम लक्ष्मण की शक्ति का संबल उसे प्राप्त है अतः बालि को ऐसी विषम परिस्थिति में विचार विमर्श कर निर्णय करना चाहिए। तारा पति के अत्यन्त अहंकार और उग्र स्वभाव को जानती है तथा राम की दिव्यशक्ति सम्पन्नता का उसे बोध है, फिर भी बालि उसकी बातों की उपेक्षा करके युद्धभूमि को जाता है क्योंकि उसे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि राम कोई भी अन्याय नहीं करेंगे। पति के साथ इस एकान्तिक समय में तारा ने विवेक, दूरदृष्टि, धैर्यशीलता का परिचय ही दिया है–

"सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा।।

कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा।।

कह बाली सुनु भीरू प्रिय समदरसी रघुनाथ।

जौ कदापि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ।।"1

पति की मृत्यु की सूचना सुनकर तारा व्याकुल हो गयी तब राम ने उसे नश्वर क्षणिक संसार की निस्सारता का उपदेश देकर उसे सुस्थिर चित्तवाला बनाया तारा के जीवन का दूसरा अध्याय उस समय प्रारंभ हुआ जब सुग्रीव राजा बन जाता है और सुर–सुरा सुन्दरियों के बीच इतना आसक्त हो जाता है कि राम सहायता की प्रतिज्ञा भी भूल जाता है। लक्ष्मण के धनुष की टंकार सुनकर भयभीत सुग्रीव स्वतः लक्ष्मण के

---

1. मानस – 4/7

सामने न जाकर अपनी बिलासिता के कारण राम कार्य की शिथिलता की क्षमा याचना नहीं करता, उसके स्थान पर वह हनुमान और तारा को भेजता है। तेजस्विनी तारा अपने कोमल शास्त्रानुमोदित बचनों से लक्ष्मण के कोप को शांत करती है। किसी की प्रशंसा कर उसे बड़ी जल्दी ही अपने वश में किया जाता है, नीति के इसी सिद्धांत का अवलंबन तारा करती है वह लक्ष्मण को अपने महल में लाकर आदर सत्कार कर उनके कोप को शांत करती है तभी सुग्रीव उनके समक्ष उपस्थित होते हैं।

मानस में तारा की इतनी ही चर्चा है, आचार और धर्म की दृष्टि से वस्तुतः तारा सभी नारी पात्रों में अग्रणी रही है। स्मार्त ऋषियों ने नारी के लिए आचार और धर्म की जो व्यवस्थायें दी हैं तारा उनसे कभी विचलित नहीं हुई है। तारा की दूरदर्शिता के कारण ही बालि उसे अत्यधिक प्रेम करता था।

डा0 अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव ने लिखा है कि "तारा की सामान्य बातों में भी उसका वैदुष्य प्रतिबिंवित है, स्नेह और ममता की वह मूर्ति सी दिखाई देती है, तथा किसी भी परिस्थिति में उसने अपना विवेक नहीं खोया, बालि और सुग्रीव के बीच का वैमनस्य तथा अंगद के प्रति सुग्रीव की दुर्भावना इस परिवार को मटियामेट कर सकती थी, किंतु तारा की उदारता और स्नेहपूर्ण व्यवहार ने न केवल उसकी रक्षा की वरन् उसकी प्रतिष्ठा को भी बचा लिया था। तारा के चरित्र की यह विशेषता है कि न तो बालि अथवा अंगद के प्रति प्रेम के अतिरेक ने ही उसे बिचलित किया न राजमहिषी के गौरव ने उसमें अभिमान की भावना उत्पन्न की न परिवार के कलह ने उसके विवेक को नष्ट किया, और न किसी अन्य परिस्थिति ने धर्माचरण से अलग किया।"[1] सचमुच में तारा के पारिवारिक और गार्हस्थिक जीवन में सनातन धर्म की जिस अवधारणा का

---

1. रामायण का आचार दर्शन – पृ0 176

विकास दिखाई देता है वह संयुक्त परिवार को टूटने से तो बचाता ही है, वैयक्तिक धर्म, कुल धर्म और समाज धर्म की त्रिवेणी तारा के जीवन में दिखाई देती है।

अहल्या–

अहल्या का शाब्दिक अर्थ होता है अतीव सुन्दरी। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार ब्रह्मा ने जब अहल्या का निर्माण किया तब गौतम ऋषि ने उसे अपने लिए वरदान स्वरूप मांग लिया और इन्द्र लोलुप दृष्टि से उसे देखता ही रहा। पुराकथाओं के अनुसार इन्द्र प्रातःकाल गौतम ऋषि का रूप धारण कर अहल्या के पास पहुँच सहवास की क्रिया में लिप्त ही हो रहा था कि वास्तविक गौतम ऋषि आ गये और उन्होंने इन्द को अपने शाप से श्रीहत कर दिया।

रामकथा के गायकों ने इस प्रसंग को कहीं प्रतीकात्मक और कही वास्तविक रूप में चित्रित किया है क्योंकि गौतम ऋषि ने अहल्या को शिला बनने का अभिषाप दिया था और वे आश्रम छोड़कर अन्यत्र चले गये। आश्रम सूना हो गया। अहल्या शिला रूप में तब तक पड़ी रही जब तक राम ने आकर उसका उद्धार नहीं किया। तुलसी ने इस प्रसंग को मानवीय धरातल से उठाकर भक्ति जैसे उदात्त दृष्टि से इस कथा को संक्षिप्त रूप में लिखा है अहल्या चरित्र की इतनी ही महत्ता है कि उसके द्वारा ईश्वर के या राम के अवतारवाद की पुष्टि होती है।

विश्वामित्र के साथ यज्ञ की रक्षा कर राम लक्ष्मण गुरू सहित धनुष यज्ञ देखने मिथिला को प्रस्थान करते है, तभी निर्जन आश्रम को देख राम के औत्सुक्य को शांत करने के लिए विश्वामित्र ने अहल्या के पूर्व प्रसंग को सुनाकर और अपने चरणरज से इसके उद्धार का आदेश किया। इस संबंध में तुलसी ने लिखा है–

"आश्रम एक दीख मग माही। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।।

पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेखी।।

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।

चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।"1

तुलसी ने उसके पूर्वचरित्र को नहीं उल्लिखित किया अपितु रामचरण रज से पतिप्राप्ति के साथ ही साथ उत्तमोत्तम भक्तिपद की अधिकारिणी बनी यही अहल्या चरित्र की विशेषता है यद्यपि वह अनपेक्षित रूप से दुराचारिणी सिद्ध हुई थी जिसके कारण अनेक वर्षों तक अभिशप्त शिला के रूप में वह उपेक्षिता रही किंतु रामकृपा से वह पुनः अपने सतीत्व को पाकर अपने पूर्व पद को प्राप्त हुई। उसके चरित्र से यह व्यंजित होता है कि चाहे अनचाहे सती नारी को और वह भी अपरूप सुन्दरी होने पर अनेक लोलुप कामुक दृष्टियों का सामना करना पड़ता है, जिसे वह अपने तेज और अपरिमित सतीत्व से नष्ट कर देती है। अहल्या में यही गुण तुलसी चित्रित करना चाहते थे यह उनकी आदर्शवादी दृष्टि है और अहल्या पंचकन्याओं में समादृत है।

---

1. रामचरित मानस – 1/210

पंचम सोपान

रामचरित मानस के राक्षस कुलीन पात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा

राम चरित मानस के राक्षस कुलीन पात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा

भारतीय पुराख्यानों में यह प्रचलित मान्यता है, कि पूर्व काल में यहाँ सुर-असुर जातियाँ निवास करती थीं, जिनमें यज्ञ-यागादिक धार्मिक कर्मकाण्डों में प्राप्त दाय भाग के लिए संघर्ष होता था। आगे चलकर यह भूमि, वर्चस् एवं सत्ता प्राप्ति के लिए किये गये कुटिल एवं गुप्त षड़यंत्रों के कारण स्थायी वैमनस्य हो गया। ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से दिति से दैत्य, अदित से आदित्य, मनु से मानव इत्यादि जातियाँ बनी जिनमें, देव, गन्धर्व, यक्ष, नाग मनुष्यों के पक्ष में खड़े हुए तो असुर, दैत्य, दानव इत्यादि राक्षस कहलाये। ये सभी जातियाँ एक मूल कुल पुरूष की सन्तानें थीं जिनके सत् पक्षगत कृत्य सनातन धर्म के शुचि, पूत, उज्ज्वल मेघ्य रूप का निदर्शन करते हैं, तो राक्षसों, निशाचरों में भी इसके नकारात्मक पक्ष का संकेत कर सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप सनातन धर्म की व्याख्या करते हैं। बात यह है, कि अच्छे पक्ष की महत्ता उसके अंधकार पक्ष के सापेक्ष्य में ही प्रकाशित होती है। कुरूपता, निर्धनता, अधर्म के परिप्रेक्ष्य में ही सौन्दर्य धन, धर्म का उज्ज्वल रूप दिखाई देता है। इसी प्रकार असत् पात्रों में भी सत्य, न्याय, वचन रक्षा, आर्त-त्राण, युद्ध-धर्म वीरता, त्याग, इन्द्रिय निग्रह ऐसे सनातन धर्म के किसी न किसी रूप का प्रभाव उनके क्रिया कलापों में दिखायी देता है। रावण का अत्याचार समाज के लोक मंगल की साधना के लिए साहित्यकार के लिए जितना अपेक्षित है, उससे त्रस्त, पीड़ित जन सामान्य की व्याकुलता जितनी अधिक होगी। राम का महत्त्व भी उसी सीमा में प्रभावी होगा।

तुलसी का मानस एक ऐसा विमल विधु है, जिसकी कीर्ति कौमुदी आज भी अक्षुण है। तुलसी ने असत् या निम्न श्रेणी अथवा राक्षसों, निशाचरों के चरित्र का ऐसा प्रभावशाली चित्रण किया है, कि इस चरित्र से उनकी क्रूरता, अन्याय, अत्याचार का तो

वर्णन होता है, साथ जन सामान्य की अनुभूति, उनकी आशा का एक मात्र केन्द्र बिन्दु सहज ही राम की ओर उठती है। आपात् परिस्थिति, कठिन संकट में हमारी दृष्टि ऐसे ही महापुरूषों की ओर जाती है। मानस में राक्षस कुलीन पात्रों में रावण, कुंभकर्ण, विभीषण मेघनाद, माल्यवान, मारीच ऐसे पुरुष पात्र हैं तो मंदोदरी, त्रिजटा, शूर्पणखा नारी पात्र हैं। इन सभी पात्रों में धर्म के किसी न किसी रूप की झलक अवश्य मिल जाती है। विभीषण तो पूर्णतया राम भक्त हैं, तो सतीत्व एवं पति प्रेम के कारण मंदोदरी प्रातः स्मरणीया नारियों में समादृत हैं। रामचरित मानस के प्रमुख राक्षस कुलीन पात्रों का विवरण इस प्रकार है–

(क). राक्षस कुलीन पुरूष पात्र

1. रावण
2. मेधनाद
3. विभीषण
4. कुंभकर्ण
5. मारीच

(ख). राक्षस कुलीन नारी पात्र

1. मंदोदरी
2. सूर्पणखा
3. त्रिजटा

(क). राक्षस कुलीन पुरुष पात्र

रावण –

रामकथा का प्रतिनायक रावण है। रावण का चरित्र आदर्शवादी नहीं अपितु वस्तुवादी, संशयवादी नहीं वरन्‌निश्चयवादी, कल्पनावादी, नहीं प्रत्यक्षवादी, निराशावादी नहीं वरन् आशावादी और संकल्पवादी का है। रावण के दसशिर और बीस भुजाएं थी, उसमें अपरिमेय शक्ति थी।[1]

रावण की उत्पत्ति –

मानस में रावण की उत्पत्ति के मूल में शाप है। विष्णु के द्वारपाल जय–विजय को ब्राह्मण के शाप के कारण हिरण्यकश्यप एवं हिरण्याक्ष तथा अगले जन्म में रावण–कुंभकर्ण के रूप में अवतरित होने का उल्लेख है–

1. **"विप्र शाप ते दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई।"**

   "भए निसाचर जाई ते महावीर बलवान।"

   "कुंभकरन रावण सुभट सुर विजयी जग जान।"[2]

द्वितीय कथा जालन्धर की सती पत्नी के शाप से संम्बंधित है–

2. **"तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना।।"**

   "वहाँ जलन्धर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ।"[3]

3. **एक जन्म का कारण नारद शाप बताया गया है–**

   "होहु निसाचर जाइ तुम कपटी पापी दोउ।"

   "हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ।"[4]

---

1. तुलसी की काव्य कला – डॉ0 भाग्यवती सिंह – पृ0 265
2. रामचरित मानस – 1/22
3. रामचरित मानस – 1/123
4. रामचरित मानस – 1/135

4. एक अन्य जन्म के कारण में राजा प्रतापभानु की कथा कही गई है। धर्माचरणरत प्रतापभानु मार्ग भूल गया और कपटी मुनि के वाग्जाल में फँसकर ब्राह्मण कोप का भाजन बना। यह शाप अकारण जल्दबाजी में दिया गया था–

"काल पाइ मुनि सुनु सोई राजा। भयउ निशाचर सहित समाजा।

दस सिर ताहि बीस भुजदण्डा। रावन नाम वीर बरि बंडा।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा।

सचिव जो रहा धरमरूचि जासू। भयउ विमात्र बंधु लघु तासू।।

नाम विभीषण जेहि जग जाना। विष्णु भगत विज्ञान निधाना।।

"उपजे जदपि पुलस्त्य कुल पावन अनल अनूप।

तदपि महिसुर श्राप बस भए सकल अघरूप।।"1

इस सम्बन्ध में डा० म०ह० राजूरकर ने लिखा है –पैत्रिक परम्परा निष्कलंक और निश्छल होते हुए भी राक्षसत्व का उदय तुलसी की रामकथा में हुआ है। कीर्ति धवल पुलस्त्य कुल भी ब्राह्मण श्राप के प्रभाव से निष्प्रभ हो गया, रावण का राक्षसत्व, कभी ब्राह्मण दर्प पर तथा कभी परिस्थिति पर एक दारूण व्यंग्य बनकर अट्टहास करने लगता है। उसी के साथ तपस्वियों को पीड़ा देना तथा स्त्रियों पर बलात्कार करने की प्रवृत्तियों का उद्गम हुआ है"2

---

1. रामचरित मानस – 1/175–76
2. रामकथा के पात्र – पृ० 169

रावण सौन्दर्य–

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार अंगद ने जब रावण को देखा–

"अंगद दीख दसानन वैसे। सहित प्राण कज्जल गिरि जैसे। 1

भुजा विटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना।।

मुख नासिका नयन अय काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना।।"

रामावतारपोद्दार ने अरूण रामायण में रावण के वाह्य रूप का वर्णन तो नहीं किंतु आसुरी सौन्दर्य का नियमन यत्र–तत्र किया है प्रत्येक स्थान पर उसकी तांत्रिक शक्तियों का वर्णन विस्तृत रूप से किया है–

"हर ऋद्धि–सिद्धि का अधिकारी मैं एकमात्र

किसके सम्मुख झुकने वाला यह लौह गात्र"2

रावण की तपस्या एवं सामर्थ्य–

तुलसी ने रावण की उग्र तपस्या का वर्णन किया है–

"कीन्ह विविध तप तीनहुं भाई। परम उग्र नहिं बरन सो जाई।"

उसने वरदान में माँगा–

"हम काहू के मरहिं न मारे। वानर मनुज जाति हुई बारे"3

तपश्चर्याजन्य सामर्थ्य दृष्टव्य है–

"कौतुक की कैलास पुनि लीन्हसि जाइ उठाइ।

मनहुँ तौल निज बाहु बल चला बहुत सुख पाइ।"4

---

1. रामचरित मानस – 6/18/12
2. अरुण – पृ0 374
3. रामचरित मानस – 1/76/2
4. रामचरित मानस – 1/179

भुजबल विश्व वस्य कर राखेसि कोउ न सुतंत्र।

मंडलीक मन रावन राज करइ निज मंत्र।।"1

अरूण रामायण में रावण की तान्त्रिक सिद्धियों और उनके भोग का बहुविधि चित्रण हुआ है–

"स्रष्टा–द्रष्टा मैं ही अनुपम मैं महामहिम।

सम्पूर्ण जगत मेरी बाहों में आ जाता।

सौ गुनी प्रखर मन से मेरी वैज्ञानिक गति।

मैं सुष्टि सूक्ष्मता के रहस्य को जान गया।"2

रावण ने सूर्य, चन्द्र, वरूण, अग्नि किन्नर, सिद्धनाग सभी को अपना वशवर्ती बना लिया था–

"रवि ससि पवन वरून धनधारी। अगिनी काल जम सब अधिकारी।

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठ सबहिं के पंथहिं लागा।

रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुं न पावा।।"3

अतुलित बलवान होने के साथ–साथ रावण अपने पारिवारिक संबंधो को बड़ी ही कुशलता से निभाता था फिर चाहे वह पिता रूप में हो भ्रातृ रूप मे हो या पति रूप में–

रावण पिता के रूप में–

मेघनाथ, प्रहस्त, अक्षय रावण के अनेक विश्रुत पुत्र थे। जिनमें मेघनाद के प्रति रावण का पितृ प्रेम प्रबल था। संकट पड़ने पर मेघनाद को ही स्मरण करता था।

---

1. रामचरित मानस – 1/182
2. अरुण – 374
3. रामचरित मानस – 1/181/56

मेघनाद की मृत्यु पर रावण अत्यधिक विचलित हो गया था–

"सुत बध सुना दसानन जबहिं। मूर्छित भयउ परयो यह तबहिं।।"1

रावण का भ्रातृ प्रेम–

रावण के कुंभकर्ण, विभीषण, खर दूषण आदि भाई कहे गये है। खर दूषण की मृत्यु के प्रतिशोधवश रावण ने सीता का हरण किया था। रावण प्रायः विभीषण की मंत्रणा पर शासन चलाता था। किंतु वह सीता प्रत्यावर्तन पर किसी की मंत्रणा नहीं सुनता था। हनुमान का वध विभीषण के कहने पर ही नहीं किया था। अपमानित विभीषण को वह बंदी बना सकता था किंतु भ्रातृ प्रेम के कारण ही उसने विभीषण को राम के पास जाने से भी नहीं रोका। कुंभकर्ण के जागने पर वह रावण से कहता है–

"भल न कीन्ह तै निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाइ काहा।।

अजहुँ तात त्याग अभिमाना। भजहुँ राम होइहि कल्याना।।"2

और कुंभकर्ण ने भी रावण के प्रेम में विकट संग्राम कर मृत्यु को प्राप्त किया। रामावतार कवि ने लिखा है–

"तुमने जब रामचन्द्र को रिपुमान लिया

तब मुझको भी भाई के हित लड़ना ही है

एक दिन सभी को भूतल पर मरना ही है।"3

पतिरूप में रावण–

रावण ने अनेक सुंदरियों का अपहरण कर उनसे विवाह किया था। उसकी पटरानी मंदोदरी थी वह अपने पति के रूप, शक्ति, दर्प, इन्द्रिय असंयम का गौरव रूप

---

1. रामचरित मानस – 6/77
2. रामचरित मानस – 6/63
3. अरुण – पृ0 542

में बखान करती थी मंदोदरी ने कांता सम्मित उपदेश अनेक बार किया। जिसे रावण ने उसे भीरू प्रिया कहकर टाल दिया था। मंदोदरी के कहने पर उसने अशोक वाटिका में बैठी सीता का वध नहीं किया था–

"मोर कहा अति हिय धरहू"

"मंदोदरी ह्रदय करि चिंता। भयो कंत पर बिधि विपरीता।।"1

"सुनत वचन पुनि मारन धावा। मय तनया कहि नीति बुझावा।।"2

रावण की भेद नीति–

राजनीति में साम, दाम, दण्ड, भेद नीति का महत्त्व पूर्ण स्थान है। मानस में रावण की भेदनीति का उदाहरण अंगद प्रबोध के समय मिलता है, वह भी विकृत रूप में। अरूण रामायण में झंझटा द्वारा मंथरा को प्रलोभन देना तथा अंगद प्रसंग भी इसी नीति के अंतर्गत आता है–

"अंगद तहि बालि कर बालक। उपजेहुं बंस अनल कुल घालक।।

गर्भ न गयहू व्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहू"3

रावण की भक्ति–

रावण का चरित्र राजसी एवं तामसी मनोवृत्ति का सम्मिलित रूप है। तुलसीदास ने उसे प्रतिनायक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यद्यपि उसको भक्ति भावना एवं अवतारवाद के कारण सफलता नहीं मिल पाई क्योंकि बाल्मीकि से लेकर परम्परागत राम कथा में रावण का चित्रण परम ऐश्वर्ययुक्त शोभा, दर्प शौर्य पराक्रम समन्वित रूप

---

1. मानस – 5/36, 37
2. मानस – 5/10
3. मानस – 6/21/56

में मिलता है। अवतारवाद की पृष्ठभूमि में पहले कहा जा चुका है कि वह शापवश राक्षस बना है अतः तुलसी ने उसे प्रच्छन्न रूप से तामस भक्त सिद्ध किया है। खर दूषण वध पर रावण सोचता है–

"खरदूषण मोहि सम बलवंता। तिनहि को मारहि विन भगवंता।।

सुन रंजन भंजन महिभारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा।

तौ मैं जाइ बैर हठ करउँ। प्रभु सर प्रान तने भव तरउँ।।

होइहि भजन न तामस देहा। मन क्रम वचन न मंत्र दृढ़ एहा।।"

(मानस–3/23)

रावण की मृत्यु पर उसका तेज राम में मिल जाता है। ऐसा उल्लेख तुलसी ने किया है–

"तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखिशम्भु चतुरानन।।"

(मानस–3/23)

सारांश यह है कि यदि राम सनातन धर्म के शुचि, उज्ज्वल और सात्विक पक्ष के श्रेष्ठतम् निदर्शक रूप में चित्रित हैं तो रावण क्रूर कर्मा, हिंसक, परपीड़क पक्ष का प्रतीक है। तुलसीदास ने खंडन–मंडन शैली से सनातन धर्म के उज्ज्वल व आकर्षक रूप का निदर्शन करने के लिए रावण का चयन किया है। रावण में एक ओर उग्र तपश्चर्या करने वाला जितेन्द्रिय रूप है तो दूसरी ओर वह श्रेष्ठ प्रजापालक कुशल सेनापति और किसी न किसी सीमा तक आदर्श पति भी है। यद्यपि उसके रंगमहल में अनेक देशों से लाई हरण या वरण की हुई स्त्रियाँ हैं फिर भी अपनी पटरानी मंदोदरी का कभी भी अपमान नहीं किया। अनेक स्थानों पर मंदोदरी के प्रबोधन पर वह अपना अतिशय प्रेम दिखाकर अपने शक्ति वैभव का प्रदर्शन करता है। कठोर तपश्चर्या घृति, इन्द्रिय निग्रह, दृढ़ संकल्प पर आधारित होती है जो हमें रावण के चरित्र में दिखाई देती है।

सनातन धर्म के सत् रूप में राम इस धर्म के केतु एवं सेतु तथा पालक हैं तो रावण कुछ अंशो में सनातन धर्म के तत्त्वों का पालन कर उसके असत् रूप का निदर्शक है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने चरित्र चित्रण की कला को इस रूप में विकसित किया है कि वर्णित विषय के सत् और असत् पक्षों का चित्रण हो सके और उसके उज्ज्वल सुखद पक्ष की स्पष्ट रूप रेखा पाठक के समक्ष प्रस्तुत हो सके। रावण में वैराग्य जनित ज्ञान और संसार की असारता का बोध निश्चित रूप से था क्योंकि खरदूषण के पश्चात उसके विवेक ने उसे चिंतन करने पर मजबूर कर दिया कि राम साधारण मानव नहीं हैं।

गीतोक्त **"यथा ये माम् प्रपद्यंते ताम् तथैव भजस्यामि"**

पर रावण ने विचार किया कि मेरे क्रूर कर्मा प्रवृत्ति वाले पुरजन सभी अधोगामी होंगे और वह सबके साथ मुक्ति का अभिलाषी था। इस तामसी देह से भजन, पूजन, अर्चन नहीं हो सकता अतः राम से वैर भाव रखकर अपनी सम्पूर्ण प्रजा का विनाश कराकर वह स्वयं मोक्षकामी बना।

यदि सचमुच में ईश्वर ने अवतार लिया है तो हठ पूर्वक उससे लड़कर वह अपनी कामना की पूर्ति कर सकता है और रावण ने ऐसा ही किया है। इस प्रकार रावण चित्रण पर विहंगावलोकन कर कि एक ओर वह शंकर का ऐसा अनन्य भक्त है। उग्र तपश्चर्या में उसने अपने शिरों की आहुति डालकर अपनी अहंकार शून्यता का परिचय दिया है तो दूसरी ओर वह वैर भाव से बैष्णव भक्ति का परोक्ष में ही सही निदर्शक दिखाई देता है जिसने अपने हजारों कुटुम्बियों को नर्क से मुक्त कर स्वर्ग का अधिकारी बनाया है। इसीलिए सनातन धर्म के सत् और असत् के प्रतीक के रूप में तुलसीदास ने रावण का चयन उसके बाह्य क्रियाकलाप और आन्तरिक चिंतन को इस रूप में प्रकट

किया है कि मृत्यु के उपरान्त उसका तेज राम के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है जो प्रत्येक सनातन धर्मी का चिरम्य है।

मेघनाद–

मेघनाद को इन्द्रजित भी कहा जाता है। बाल्मीकि रामायण से लेकर अद्यावधि लिखी रामायणों में मेघनाद को सबसे अधिक शक्तिशाली योद्धा चित्रित किया गया है। इसने तान्त्रिक शक्ति को सिद्ध करने के लिए अनेक यज्ञ किये थे। परिणाम स्वरूप इसके पास अनेक तान्त्रिक या किसी सीमा तक यह मानें कि दिव्य अस्त्र शस्त्र थे।

मेघनाद ही ऐसा एक पात्र है जिसने अपने पिता के हर कृत्य में आगे बढ़कर सहयोग ही दिया है साथ ही अन्य पुत्रों की भाँति उसने पिता को राम विरत करने का प्रयास नहीं किया है, इसी अनन्य पितृ भक्ति के कारण मेघनाद का पुत्र पक्ष अत्यन्त सबल एवं प्रबल है। इसके चरित्र की दो प्रमुख विशेषतायें दिखाई पड़ती हैं जिसमें युद्ध कुशलता समयानुकूल अस्त्र शस्त्रों के संचालन में दक्षता और अनन्यपितृ भक्ति।

यद्यपि मेघनाद राक्षस परम्परा का योद्धा है जिसमें अहंकार सद्‌गुणों का विरोध देव, ऋषि, तपस्वियों, विरोधियों का निर्मूल करना अपनी संस्कृति के प्रचार और प्रसार के लिए विपक्षियों को त्रस्त करना प्रमुख धर्म था क्योंकि रावण ने यह अनुभव कर लिया था कि देवता लोग प्रत्यक्ष रूप से रण क्षेत्र में आकर युद्ध करने से कतराते हैं अतः रावण गौ विप्र, स्त्रियों, सदाचारियों को कष्ट देकर यज्ञ यागादिक क्रियाओं का विरोध करता रहा, संभवतः क्षुधाहीन (अर्थात् यज्ञाहुतिहीन) निर्बल देव और इतर जन रावण की शरण में आ जायेंगे, रावण की आधीनता स्वीकार करेंगे इस कार्य में मेघनाद सदैव अग्रणी रहा है।

रामचरित मानस के बालकांड में भूमिका के रूप में रावण के इन दुष्कृत्यों का चित्रण है। वस्तुतः मेघनाद का प्रथम परिचय सुंदरकांड में होता है। सीता संधान हेतु अशोक वाटिका को उजाड़ने और अक्षय कुमार की मृत्यु का समाचार सुनकर क्षुब्ध मेघनाद वहाँ जा पहुँचता है और द्वन्द्व युद्ध में हनुमान से पराजित होता है, तब वह बड़ी नीतिमत्ता का आश्रय लेकर ब्रह्मास्त्र का संधान कर हनुमान को पाशबद्ध कर लेता है। तुलसी ने लिखा है–

"चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा।।

कपि देखा दारून भट आवा। कटकटाइ गरजा अरू धावा।।

अति बिसाल तरू एक उपारा। विरथ कीन्ह लंकेस कुमारा।।

रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।।

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा।।

मुठिका मारि चढ़ा तरू जाई। ताहि एक छन मुरूछा आई।।

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया।।

ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।

जौं न ब्रह्म सर मानउँ महिमा मिटइ अपार।।"[1]

मेघनाद के चरित्र का दूसरा पक्ष उसकी पितृ भक्ति है। उसने युद्ध के समय पश्चिम द्वार का मोर्चा सम्हाल रखा था। तुलसी दास ने लिखा है–

"मेघनाद तहँ करई लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई।।

पवन तनय मन भा अति क्रोधा। गरजउ प्रबल काल समजोधा।।"[2]

---

1. रामचरित मानस – 5/19
2. रामचरित मानस – 6/43

उसकी वीरता रणकुशलता का पता उस दिन लगता है जब दूसरे दिन प्रातः वह रावण को अपनी मायावी शक्ति का पता बताकर युद्ध की कमान स्वयं सम्हालता है। माल्यवंत के परामर्श से दिग्भ्रमित पिता को मेघनाद ही आश्वस्त करता है।

"कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहऊ का थोरा।

सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा।।"1

कुपित राक्षस कुलभूषण मेघनाद युद्ध के समय राम लक्ष्मण, नल, नील इत्यादि का आह्वान करके युद्ध के लिए चुनौती प्रस्तुत करता है। उसके कठिन दुर्धर्ष वाणों की तीव्रता और तीक्ष्णता के समक्ष सभी आतंकित हो उठे–

"अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने।।

सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा।।

जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर।।

जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहि जुद्ध कै इछा।।

सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा।।

दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।

सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बल धीर।।"2

उसकी वीरता की चरम सीमा लक्ष्मण–मेघनाद युद्ध के समय दिखाई पड़ती है। जब उसने लक्ष्मण को भी अपनी वरदायिनी अमोघ वीरघातिनी शक्ति से मूर्छित कर

---

1. रामचरित मानस – 6/49
2. रामचरित मानस – 6/50

दिया। तुलसी ने लिखा है–

"रावन सुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राना।।

वीर घातिनी छांडिसि सांगी। तेज पुंज लछमन उर लागी।।

मुरुछा भई सक्ति के लागे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे।।"1

पूरे मानस में यह एक ऐसा योद्धा है जिसने अपनी वीरता प्रचंड, दुर्धर्ष, अबध्य शक्ति का उपयोग विलासिता में नहीं किया है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उसने अपनी कठोर तपस्या से जो आसुरी शक्ति प्राप्त कर रखी थी उसका उपयोग उसने इस युद्ध में किया था। कुंभकर्ण की मृत्यु के पश्चात् अहंकार से युक्त मेघनाद अपने मायामय रथ का उपयोग करता है। मायामय रथ का उल्लेख जब रावण से करता है–

"मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा पिता समझायउ।।

देखहु कालि मोर मनुसाई। अबहि बहुत का करौं बड़ाई।।

इष्टदेव से बल रथ पायउ। सो बल तात मैं तोहि दिखायऊँ।।"2

मायामय इस रथ में आरूढ़ मेघनाद आकाश में चढ़कर अट्टहास करने लगा। वह सबके लिए अदृश्य था इसलिए उसने अपने वाण प्रहार से सब वीरों को घायल और मूर्छित कर दिया। यहाँ तक कि उसके नागपाश में राम लक्ष्मण आबद्ध हो गये। तुलसी ने लिखा है–

"सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना।।

डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करै बहु बाना।।

दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई।।

---

1. रामचरित मानस – 6/54

2. रामचरित मानस – 6/72

x x x x x x x x x

मारूत सुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बल सीला।।

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन।।

पुनि रघुपति सैं जूझन लागा। सर छांड़इ होइ लागहिं नागा।।

ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनंत एक अबिकारी।।"1

जामवंत की रणकुशलता से मेघनाद मूर्छित होकर लंका पहुँचा दिया जाता है तब वह तांत्रिक यज्ञ का अनुष्ठान प्रारंभ करता है। यहाँ यह उल्लेख्य है कि वैदिक धर्म परम्परा यज्ञ को प्रामुख्य देती है। इस यज्ञ के सात्विक, तामस, राजस रूपों का उल्लेख गीता में किया गया है, राक्षस धर्म की परम्परा में यज्ञों में मद्य, मांस का अबाध उपयोग विहित माना गया है। इसीलिए राक्षस धर्म की परम्परा सनातन परम्परा के विपरीत कही गयी है। सनातन परम्परा देव, दनुज, राक्षस और मनुष्यों पर समान रूप से लागू होती है, इसलिए राक्षसी परम्परा उनकी अपनी विशिष्ट परम्परा है, जिसका अनुपालन कर मेघनाद विश्वविख्यात पिता से अधिक बलशाली दिखाई देता है, क्योंकि उसने उनका उपयोग विलासिता के लिए नहीं किया इसलिए मेघनाद रावण से भी श्रेष्ठ वीर सिद्ध हुआ है। उसके इस तामसी युद्ध का पता विभीषण को सर्वप्रथम हुआ और उसने राम को सूचित किया। वानर सेना ने इस यज्ञ को विध्वंस किया। इस यज्ञ विध्वंस से एक बात और सामने आती है कि वैदिक परम्परा का विकसित यज्ञ स्वरूप सनातन धर्म में सात्विक, मानसिक, कायिक, वाचिक यज्ञों में परिवर्तित हो गया, जिसकी विस्तृत सैद्धान्तिक विवेचना गीता मे की गयी है। अतः तुलसी की दृष्टि में सनातन धर्म की श्रेष्ठता निरूपित करने के लिए तामसी यज्ञ विध्वंस श्रेयस्कर कार्य लगता है।

---

1. रामचरित मानस – 6/73

इस तामसिक यज्ञ में आहुति के लिए रक्त एवं भैंसों के मांस का प्रयोग किया जाता रहा हैं जिसका विनाश जामवान, सुग्रीव द्वारा प्रेषित वानर यूथकों ने किया। तुलसी ने लिखा है–

"जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रूधिर अरू भैंसा।।

कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा।।

तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई।।

लै त्रिसूल धावा कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे।।

आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा।।"[1]

मरते समय भी मेघनाद ने लक्ष्मण और राम को ललकारा है इसलिए यह ललकार भक्ति रस की ललकार न होकर रौद्र रस की ललकार है। मेघनाद के चरित्र में सनातन धर्म की अवधारणा दो रूपों में दिखाई देती है, उसका वीर रूप प्रथम है शक्तिउपार्जन हेतु उसने कठोर कायिक, मानसिक, वाचिक श्रम किया। अपनी ध्येय साधना में वह सफल हुआ और एक तरह से वह अविजित योद्धा बना। उसके इस रूप का उल्लेख बाल्मीकि रामायण से लेकर मानस तक इसी क्रम में चला है। अपनी अजेय शक्ति अर्जन हेतु उसने तपश्चर्या की, साधना की इष्टदेव की सिद्धि के लिए कठोर तपश्चर्या श्रेष्ठ कही गयी है, भले ही वह राक्षस परम्परा की परिणति रही हो। सनातन धर्म में आर्य और आर्येतर जिसमें यक्ष, देव, गंर्धव, राक्षस सभी की परम्पराओं के स्वस्थ रूप समाहित माने जाते हैं। साम्प्रदायिक, धार्मिक आचार विचारों में जो कुछ भी श्रेष्ठ, उज्ज्वल वरणीय है वही सनातन धर्म का मूल आधार है।

राक्षसी परम्परा में इष्टदेव को शीघ्र प्रसन्न करने के लिए मांस बलि की प्रधानता

---

1. रामचरित मानस – 6/76

है इसीलिए तुलसी ने ऐसे यज्ञों के विध्वंस को धर्म विरूद्ध नहीं माना। जीवन के प्रारंभ में मेघनाद ने सात्विक उग्र तपस्या की थी। मांस बलि की आहुति तो देवता को तत्काल सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त की गई है। मेघनाद के चरित्र में दूसरा तत्त्व पितृ भक्ति का है। संभवतः वही अकेला एक ऐसा पात्र है जिसने पिता के कार्यों का समर्थन ही किया है इस दृष्टि से वह श्रेष्ठ, आदर्श पुत्र कहा जा सकता है। उसके चरित्र चित्रण करते समय यदि तुलसी का मानसिक विश्लेषण करें तो तुलसी दास उसे श्रेष्ठ वीर, आदर्श पितृ भक्त पुत्र रूप में अंकित करना चाहते थे। यद्यपि तुलसी ने पात्रों को किसी न किसी रूप में रामभक्त बनाने के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष में प्रयास किया है जबकि ऐसा प्रयास मेघनाद के साथ उन्होंने नहीं किया।

सारांश यह है कि मेघनाद आदर्श पुत्र, श्रेष्ठ योद्धा, रणनीति विशारद पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।

विभीषण–

विभीषण ऐसा राक्षस कुल का पात्र है जिसके एक ओर अधर्म परायणता है तो दूसरी तरफ सत्विकता है। बात यह है कि रावण की भाँति विभीषण की उत्पत्ति भी आर्य और राक्षस संस्कृति के मिश्रण से हुई है, अतः स्वभाविक है कि रावण के बंधु होने के नाते विभीषण रावण के कृत्यों का समर्थन करता क्योंकि वह उसका भाई और प्रमुख सचिव है।

पुनर्जन्म एवं अवतारवाद की दृष्टि से विभीषण धर्मात्मा सिद्ध होता है, ऐसा संत तुलसी ने मानस में प्रतिपादित किया है कि वह पूर्वजन्म में राजा प्रतापभानु का सचिव धर्मरूचि था–

"सचिव जो रहा धरमरूचि जासू। भयउ विमातृ बंधु लघु तासू।।

नाम विभीषन जेहि जग जाना। विस्नु भगत विज्ञान निधाना।।"1

अपनी कठोर तपस्या का फल वह माँगता है–

"तेहिं माँगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुराग।।"2

सीता शोध के समय हनुमान वैष्णव चिन्हों से अंकित विभीषण का गृह देखते हैं–

"रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।

नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ।।"3

विप्रवेश धारी हनुमान से वह अपने को रामभक्त बताता है–

"तात कहहुँ मोहि जान अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।

तामस तन कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माँही।।

जौ रघुवीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठ दीन्हा।।"4

रावण का मंत्री होने पर भी विभीषण ने हनुमान को सीता निवास का पता बताया है, यद्यपि यह कृत्य मंत्री की दृष्टि से अनौचित्यपूर्ण है, किंतु विभीषण रावण के अत्याचार, परस्त्री अपहरण जैसे जघन्य लोकनीति के विरूद्ध कार्यों का समर्थक नही था, इसीलिए उसने सत्यपथ अनुगमन कर भ्रातृ विरोध का निश्चय किया रावण के दरबार में भी वह हनुमान का पक्ष नीतियुक्त वचनों से करता है।

"नाइ सीस कर विनय बहूता। नीति विरोध न मारिय दूता।।"5

---

1. रामचरित मानस – 1/175/2–3
2. रामचरित मानस – 1/177
3. रामचरित मानस – 5/5
4. रामचरित मानस – 5/7/2–3
5. रामचरित मानस – 5/24/7

वह भ्रातृ हित चिंतक है उसने दरबार में स्वमति के अनुसार रावण के उक्त कार्य की निंदा कर उसे सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया है।

"जौ कृपाल पूछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता।।
जौ आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।
सो परनारि लिलार गोसाई। तजउ चउथ के चंद की नाई।।
जन रंजन भंजन खल ब्राता। वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।।
ताहि बयरू तजि नाइअ माथा। प्रनतारित भंजन रघुनाथा।।
देहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही। भजहुँ राम बिनु हेतु सनेही।।"1

यहाँ तक कि विभीषण के अतिशय आग्रह और उसकी रामभक्ति देखकर रावण उसे अपमानित करता है। कुपित रावण के पादप्रहार से अपमानित होकर विभीषण राम के आश्रय में पहुँचता हैं। तुलसी ने विभीषण की प्रपत्ति गलदश्रु भावना का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

"बहुरि राम छवि धाम विलोकी। रहेउ ठठुकि एक टक पल रोकी।।
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुर त्राता।
सहज पाप प्रिय तामस देहा। जथा उलूकहिं तम पर नेहा।
श्रवण सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि–त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुवीर।।"2

राम के सामीप्य में समुद्र से पथ माँगने का परामर्श विभीषण की विनम्रता और राम के मर्यादा पालन कृत्य का संकेत है। बाद में विभीषण के नीति चातुर्य का पता इस

---

1. रामचरित मानस – 5/38–39
2. रामचरित मानस – 5/45

बात से लगता है कि उसने राम सेना को चार भागों मे बाँट कर अपनी रण कुशलता और बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। कुंभ कर्ण के समक्ष विभीषण की सत्यकथन विषयक निष्ठा मेघनाद आयोजित यज्ञ की सूचना पाकर राम को सूचित करना तथा रावण की नाभि में अमृत वास का रहस्य ज्ञापित करने में विभीषण की दूरदर्शिता कूटनीतिज्ञता, सत्य एवं न्याय पथ पर आरूढ़ होकर अपनी राम भक्ति संबंधी निष्ठा का प्रदर्शन है।

तात्पर्य यह है कि तुलसी ने राक्षस कुलोद्भव विभीषण के अंतः मन में उत्पन्न द्वैत भाव का निदर्शन न्याय पथ का अवलम्बन राम भक्ति की दृष्टि से किया है। विभीषण में सत्य वचन प्रियता अनन्यता, न्यायप्रियता, धार्मिकता, रामभक्ति, सदाशयता इत्यादि सनातन धर्म निरूपित गुणों का निदर्शन मिलता है।

पूर्वकाल में अपनी उग्र तपस्या से ब्रह्मा के समक्ष प्रभु भक्ति का वरदान माँगकर विभीषण ने रावण सामीप्य में रहकर भी राक्षसत्त्व के कंटकाकीर्ण मार्ग में चलने का जो व्रत या संकल्प लिया था उसका निर्वहन उसने आद्यन्त किया। राम के तिलक के समय विभीषण ने अपनी अनासक्ति और विषय भोगों से उदासीनता का परिचय दिया था। इस प्रकार विभीषण सनातन धर्म के मध्य मार्ग का अवलम्बन करता है क्योंकि उसकी उत्पत्ति राक्षस वंश में हुई उसका लालन पालन रहन–सहन राक्षस संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में हुआ। फिर भी वैयक्तिक रूप से उसने यथा संभव सद्धर्म का पालन निस्शंक होकर किया है।

तुलसी के सनातन धर्म की यही विशेषता है कि बाह्य क्रिया कलापों के साथ आंतरिक क्रिया कलापों में यदि कही विरोध बैषम्य दिखाई पड़ता है तो तुलसी ने आंतरिक पक्ष की शुचिता को महत्त्व दिया है।

कुंभकर्ण–

जय विजय, प्रतापभानु और नारद शाप के परिणाम स्वरूप कुंभकर्ण का जन्म हुआ था। कुंभकर्ण के चरित्र के संबंध में डा0 राजूरकर ने लिखा है– "कुंभकर्ण के महाबलाढ्य तेजस्वी युद्ध विशारद तथा विशालकाय रूप का तुलसी ने विस्तार से वर्णन किया है, किंतु निद्राशीलता के कारण उसका सार्थक उपयोग नही हो पाता।"1

तुलसी ने मानस मे उसकी रणकुशलता का अत्यन्त भयावह रूप प्रस्तुत किया है। विभीषण ने उसका परिचय और वानरों की चपलता का वर्णन इस प्रकार किया हैं–

"बंधु बचन सुनि चला विभीषण। आयउ जहँ त्रैलोक विभूषण।।

नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा।।

एतना कपिन्ह सुना जब काना। किल किलाइ धाए बलवाना।।

लिए उठाइ विटप अरू भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर।।

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा।।

मुर्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो। जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो।।

तब मारूतसुत मुठिका हन्यो। पर्‌यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो।।

पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता।।

पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि।।

चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई।।

अंगदादि कपि मुरूछित करि समेत सुग्रीव।

काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव।।"2

---

1. रामकथा के पात्र – पृ0 395
2. रामचरित मानस – 6/65

कुंभकर्ण के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष यह है कि उसमें सनातन धर्म के कुछ पक्षों का चित्रण है जिसमें सत्यप्रियता रामभक्ति प्रमुख है। वह अपने अग्रज रावण को निःसंकोच सचेष्ट करता हुआ सत्य एवं नीति युक्त वाणी से रावण को सावधान करता है–

"सुनि दसकंधर वचन तब कुंभकरन बिलखान।।

जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान।।"1

वह रावण से सम्पूर्ण कथा का विवरण सुन पश्चात्ताप भरे शब्दों मे रावण को डांटता है क्योंकि कुंभकर्ण के मन में प्रभुभक्ति, सदाचार, इन्द्रियनिग्रह, परनारि हरण के प्रति क्रोध किसी न किसी रूप में बसें हुए थे।

"हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक।।

अहह बंधु तै कीन्ह खोटाई। प्रथमहिं न सुनाएहि आई।।

कीन्हेहु प्रभु विरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक।।

नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा।।

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई।।"2

विभीषण से उसके अपमान की कथा सुनकर कुंभकर्ण उसके कृत्य के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करता है। तुलसी के चरित्र चित्रण की यह कला विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सुर, नर, वानर, दैत्य दनुज, राक्षस सभी वर्गों में उन्होंने सनातन धर्म के किसी न किसी पक्ष का चित्रण किया है।

कुंभकर्ण के मन में भी राम की भक्ति का प्रच्छन्न रूप दिखाई पड़ता है, यद्यपि

---

1. रामचरित मानस – 6/62
2. रामचरित मानस – 6/63/3–7

उसने रावण के पक्ष में विकट युद्ध किया और सद्‌गति अर्थात् मोक्ष भी प्राप्त किया। रामदर्शन की लालसा अपनी मृत्यु का ज्ञान और विभीषण को आर्शीवाद प्रभु भक्ति के प्रति अनन्य निष्ठा को व्यक्त करता है।

> **"सुनु सुत भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन।।**
>
> **धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन।।**
>
> **बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर।।**
>
> **वचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।**
>
> **जाहु न निज पर सूझ मोहिं भयउँ काल बस बीर।।"[1]**

कहना नही होगा कि कुंभकर्ण के चरित्र के सत् असत् दो पक्ष दिखाई पड़ते हैं। असत् पक्ष में उसका राक्षस धर्म के अनुकूल अभक्ष्य भोजन करना, रावण के अत्याचारी क्रूर कर्मों का समर्थन करना, स्वयं दुर्धर्ष युद्ध करना है, तो सत् पक्ष के रूप में न्यायकर्ता, अन्याय का विरोध करने वाला, रामभक्त विभीषण की भक्ति की प्रशंसा करने वाला, तथा राम को ईश्वर मानकर अपनी प्रच्छन्न भक्ति निवेदन करना इत्यादि ऐसे गुण हैं जो उसे सनातन धर्म के मध्य में या संधि स्थल पर खड़ा कर देते हैं।

मारीच–

मारीच परम्परया ताटका राक्षसी का पुत्र सुबाहु का भाई तथा रावण का अनुचर है पूर्व काल मे इसने अपने सहचरों के साथ विश्वामित्र के यज्ञ में रक्त की वर्षा की थी, अतः राम ने बिना फल के बाण से इसे समुद्र के उस पार भेज दिया था, तबसे यह राम से आतंकित रहता था। इसके चरित्र का दूसरा रूप कनक मृग बनने के प्रसंग में दिखाई देता है। यह रावण का मामा लगता है। रावण उसकी मायावी शक्ति से परिचित

---

1. रामचरित मानस – 6/64/7, 8, 9

है। सूर्पणखा द्वारा अनन्य सुन्दरी सीता की रूप चर्चा सुन रावण उसके अपहरण करने में इसका सहयोग माँगता है, तब मारीच रावण को राम शक्ति का परिचय इस प्रकार देता है कि राम नर रूपधारी न होकर सचराचर स्वामी जगदीश्वर हैं अतः अपने से बलिष्ठ व्यक्ति से वैर करना नीतियुक्त नहीं है।

अप्रत्यक्ष रूप से मारीच रामभक्ति की उनकी शक्ति की चर्चा कर हृदयस्थ राम प्रेम की अभिव्यंजना करता है–

"तेहि पुनि कहा सुनहु दस सीसा। ते नर रूप चराचर ईसा।।

तासों तातु बयरू नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै।।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर रघुपति मोहि मारा।।

सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरू किएँ भल नाहीं।।

भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई।।

जौं नर ताता तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा।।

जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड।

खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड।।"[1]

मारीच ने अपनी ओर से रावण को सीता हरण के दुश्कृत्य से परावृत्त करने का प्रयास किया किंतु सफल न होने पर वह अपनी मृत्यु देख राम के हाथों अपनी मृत्यु के वरण को प्राथमिकता देता है तुलसी ने सूक्ति के माध्यम से मृत्यु वरण को श्रेष्ठ कहा हैं–

"तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि विरोधे नहिं कल्याना।।

सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कवि भानस गुनी।।

---

1. रामचरित मानस – 3/25

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना।।

उतरू देत मोहि बधब अभागे। कस न मरौं रघुपति सर लागें।।"1

सनातन धर्म की अवधारणा में कायिक, वाचिक और आभ्यन्तर पक्षों की शुद्धता ऋजुता और क्रिया कलाप आते हैं जिसका एक पक्ष पुरूषार्थ चतुष्टय में मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष के संदर्भ में एक तर्क यह प्रबल रूप से स्थापित किया गया है, कि मोक्ष सनातन धर्म के अंगो का निष्ठा एवं दृढ़ता से पालन करने पर यह उसके प्रतिफल रूप में मिलता है, जबकि दूसरे पक्ष के मीमांसक इसे कुछ विशिष्ट कर्मों का फल मानते हैं जिसमें कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग, योग मार्ग और भक्ति मार्ग है।

भक्ति मार्ग के वैधी और रागानुगा दो रूप होते हैं। मारीच मे रागानुगा या राम के प्रति अनन्य भाव से प्रेम करना वर्णित है। गद्गद् हृदय से राम के धनुर्धारी रूप को देखना अपने नेत्रों को सार्थक करना तथा राम के हाथों वध होना किसका काम्य नहीं है, भक्ति की यह चरम सीमा है। सनातन धर्म का यह श्रेष्ठ वरेण्य आदर्श रूप है, मारीचि के कायिक, वाचिक, मानसिक अनुभावों और संचारी भावों से उसकी रामभक्ति का चित्रण तुलसीदास ने इन शब्दों में किया है–

"अस जिय जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा।।
मन अति हरष जनाव न तेही। आज देखिहउँ परम सनेही।।
निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपा निकेत पद मन लाइहौं।।
निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुख सागर हरी।।
मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकहउँ धन्य न मो सम आन।।"

---

1. रामचरित मानस – 3/26

2. रामचरित मानस – 3/26

(ख). राक्षस कूलीन नारी पात्र–

मंदोदरी–

भारतीय पुरा कथा में मंदोदरी की गिनती पंचकन्याओं में की गयी है। यह हेमा तथा मय दानव की पुत्री है, बाल्यावस्था में ही अप्सरा हेमा स्वर्ग चली जाती है। पिता द्वारा इसका लालन पालन किया गया। युवावस्था आने पर इसका विवाह रावण से हुआ और यह उसकी पट्टमहिषी बनी।

बाल्मीकि रामायण में इसे अपरूपा सुंदरी कहा गया है और सीता के आने पर वह अपने को रूप गर्विता ही मानती है क्योंकि सौंदर्य में वह सीता से कम नहीं है, किंतु कामाभिभूत व्यक्ति के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रामचरित मानस में उसके सतीत्व की चर्चा करने के साथ ही उसके एक विशिष्ट प्रयोजन की चर्चा की गयी है। अपने पति रावण को राम के प्रति आत्म समर्पण और भक्ति का उपदेश देना। अशोक वाटिका से लेकर युद्ध के लिए एकाकी राक्षस राज रावण के प्रयास के समय तक वह बारम्बार पिष्ट पोषण करती हुई रावण को सीता के प्रति विरत करने का प्रयास करती है। यद्यपि माल्यवान प्रहस्त, विभीषण, शुक, सारण, मन्दोदरी रावण को सीता के राम को सौंप देने का उपदेश करते हैं, जिन्हें रावण कायिक, वाचिक या मानसिक रूप से प्रताड़ित या अपमानित करता है। किंतु वह अपने अंतःकरण से यह जानता है कि मन्दोदरी के प्रबोधन में उसका सतीत्व मिश्रित है, अतः वह उसका आलिंगन कर अथवा अपने यश का डिंडिभ घोष करता हुआ उसकी बात को हँसी में उड़ा देता है।

मंदोदरी के चरित्र के संदर्भ में डा० रामप्रकाश अग्रवाल ने लिखा है कि "वह अपने पति की नैतिक प्रहरी है, वह विवेकमयी है, राम की शक्ति और सत्ता को

पहचानती है, परस्त्री हरण के पातक की भयंकरता को समझती है। प्रीतिपूर्ण वचन करूण याचना आग्रह आदि के द्वारा अपने पति को सुमार्ग पर लाना चाहती है, वह पति के कल्याण के लिए निरन्तर सतर्क रहती है।"[1]

सर्वप्रथम उसकी झलक मानस के सुन्दरकाण्ड में दिखाई देती है जहाँ रावण प्रतिदिन की भाँति सीता के समक्ष अपना प्रणय निवेदन करता है, और सीता की कटूक्तियों को सुनकर एक दिन जब उसे मारने दौड़ता है तब मयतनया मंदोदरी कांतासम्मित उपदेश से रावण को इस कार्य से विरत करती है–

"सुनत वचन पुनि मारन धावा। मय तनया कहि नीति बुझावा।।"[2]

मंदोदरी का यह अत्यधिक पत्यनुराग ही है कि रावण सीता के समक्ष एकाकी न जाकर मन्दोदरी को लेकर जाता है, इससे ही हम उसके पति हितैषिणी रूप को समझ सकते हैं, क्योंकि मनोवैज्ञानिकों ने यह कहा है कि किसी अपरिचिता या सीमित परिचिता से प्रणय निवेदन एकांत में ही करना चाहिए।

दूसरी बार मंदोदरी अधिक चिंतित और रावण की शक्ति से राम की शक्ति बलाबल की तुलना कर राम को अधिक शक्तिशाली समझ अपनी भावी आशंका व्याकुलता चिंता व्यक्त करती है। इस नीति वचन में हितैषणा तो है ही आगामी आशंका तथा धैर्य, पातिव्रत प्रेम प्रकट होता है। यहाँ पर मंदोदरी के नीतियुक्त वचनों में उसकी तर्क शक्ति विश्लेषण क्षमता और वाग्मिता का परिचय मिलता है। वह रावण को समझाती है कि जिसका दूत लंका को जला गया, जिसकी गर्जना से अनेक राक्षसियों के गर्भपात हो गये, भला उसका स्वामी कितना शक्तिशाली न होगा? क्योंकि यह सब

---

1. बाल्मीकि और तुलसी – साहित्यिक मूल्यांकन – पृ0 230
2. रामचरित मानस – 5/10

कार्य आपके समक्ष हुआ है यह सीता शरद कालिक रात्रि के समान है। और अंत में वह सुझाव प्रस्तुत करती है कि बिना सीता के दिए रावण की सहायता शंकर और ब्रह्मा भी नहीं करेंगे। उसने रावण के समक्ष इस युद्ध की जो भयंकर झाँकी प्रस्तुत की उसमें उसका अनिष्ट तो निश्चय ही है। और भारतीय स्त्री चाहे वह राक्षसी ही क्यों न हो पति अनिष्ट की आशंका से त्रस्त रहती है।

इस प्रकार शोधकर्त्री की यह उपपत्ति है कि मंदोदरी अनन्य पति निष्ठावान होने के साथ–साथ भविष्य दृष्टा भी है। वह अपने पातिव्रत धर्म से रावण के चतुर्दिक एक सुरक्षाचक्र बना देना चाहती है।

तुलसी ने लिखा है–

"दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी।।
रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली वचन नीति रस पागी।।
कंत करत हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू।।
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहि गर्भ रजनीचर घरनी।।
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई।।
तव कुल कमल विपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई।।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हे।।
राम बान अहिगन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक।।"1

सेतुबंध के पश्चात मंदोदरी की व्याकुलता और अधिक बढ़ जाती है, जब उसने सुना कि राम ने खेल में ही सेतुबंध जैसे असंभव कार्य को संभव कर दिखाया है, तो

1. रामचरित मानस – 5/36

मंदोदरी रावण के समक्ष कांता सम्मिति उपदेश न देकर सतर्क यह नीति निरूपण करती है कि प्रेम और वैर समान व्यक्ति से करना चाहिए, भला उल्लू और जुगनू या सूरज से तुलना किस प्रकार हो सकती है। जिस राम ने मधु कैटभ दैत्य, हिरण्यकशिपु , बलि और सहस्रार्जुन को मारा हो ऐसे ब्रह्म राम के रूप में अवतरित हुए हैं, इसलिए रावण राम के चरणों में नमस्कार कर उन्हें जानकी सौप दे तथा अपने पुत्र मेघनाथ को राज्यभार देकर वानप्रस्थी बन जाना चाहिए, क्योंकि संतो ने यह कहा है कि– राजा को चौथेपन में जंगल जाकर इन्द्रियनिग्रह कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यह कोशलाध ीश राम साक्षात् परब्रह्म हैं जो रावण पर कृपा करने हेतु यहाँ पधारे हैं, ऐसा करने पर ही तीनो लोकों में रावण का यश तो फैलेगा ही साथ ही मंदोदरी का अहिवात यावत्जीवन बना रहेगा।

यहाँ हम देखते है कि प्रथम उपदेश के पश्चात् द्वितीय उपदेश में मंदोदरी के वचनों में सत्यनिष्ठा, धार्मिकता अपने दाम्पत्य जीवन को दीर्घजीवी बनाने की कामना और इन सबसे ऊपर नारी चरित्र के मूल में जो केंद्र बिंदु या धुरी है, उसकी रक्षा की कामना है। वह स्पष्टवक्ता, राम की भक्ति की ओर अपने पति रावण को प्रेरित करती है।

"मंदोदरी सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो।।
कर गहि पतिहि भवन निज आई। बोली परम मनोहर बानी।।
चरन नाइ सिरू अंचलु रोपा। सुनहु वचन पिय परिहरि कोपा।।
नाथ बयरू कीजै ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों।।
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा।।
अतिबल मधु कैटभ जेहिं मारे। महावीर दितिसुत संघारे।।

जेहिं बलि बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महिभारा।।

तासु विरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा।।

रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।

सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ।।

नाथ दीन दयाल रघुराई। बाधउ सनमुख गएँ न खाई।।

चाहिअ करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते।।

संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथे पन जाइहि नृप कानन।।

तासु भजन कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता।।

सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया।।

जौं पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन।।

अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात।

नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात।।"1

साध्वी की सात्विकता की प्रतिमूर्ति मंदोदरी पति की पाश्विक काम वासना की पंकिल भावना के अतिरेक से आतंकित होती है। वह चाहती है कि एन केन प्रकारेण उसका पति परस्त्री की वासना से मुक्त हो जाए तभी उसकी युद्ध कुशलता और शासन कौशल आजीवन सुरक्षित रहेगा किंतु दुर्भाग्यवश इसी बीच रावण के अखाड़े में राम के वाण से रावण के छत्र मुकुट और मंदोदरी के कर्णाभूषण अकारण ही भूमि मे गिर पड़े जिससे मंदोदरी भविष्य के अपशकुन को जानकर भयाक्रांत हो उठती है और वह पुनः पति के सामीप्य जाकर प्रेमाश्रुपूरित नयनों से प्राण पति रावण से प्रार्थना करती है कि राम मनुज नहीं हैं रावण ने अपने बाहुबल और तपश्चर्या की शक्ति से देव, दनुज,

---

1. रामचरित मानस – 6/6, 7

मनुष्यों सभी को अपने वशीभूत कर एकछत्र अकंटित राज्य स्थापित किया है किंतु उसकी यह शक्ति ब्रह्म के समक्ष तुच्छ सिद्ध होगी राम विश्व रुप हैं। रावण स्वयं विचार कर देखे कि उसने मनुष्यों को विजित किया है किंतु अणु–अणु में व्याप्त विराट पुरूष के समक्ष वह ठहर नहीं सकता, इसलिए वह वैर को छोड़कर राम से प्रेम करे जिससे उसे वैधव्यजनित दुख न देखना पड़े। इस उपदेश में तुलसी की संप्रदायवादिता अवश्य दिखाई देती है क्योंकि कोई भी सन्नारी अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरूष की प्रशंसा नहीं करती यहाँ तो भक्त तुलसी दास ने मंदोदरी को भी रामभक्ति से पूरित दिखाकर राम के विराट रूप की परिकल्पना कर रावण को भयाक्रान्त ही नहीं किया अपितु उसे कुमार्ग से विपथगामी बना सच्ची नारी के रूप में उपस्थित किया है।

"सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी।।

कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू।।

बिस्वरूप रघुवंसमनि करहु बचन बिस्वासु।

लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु।।

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा।।

भ्रुकुटि विलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला।।

x x x x x x x x x

अस विचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरू बिहाइ।

प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ।।"1

रूप गर्विता मंदोदरी रावण के रूप सौंदर्य शक्ति पराक्रम तेजोदृप्त तथा विश्वविजेता को पतिरूप में पाकर अपने जीवन को सार्थक समझती है, वहीं कुटिल

---

1. रामचरित मानस – 6/15

कामवासना के निर्लज्ज सेवक को अपना स्वामी मानकर उसका साथ देती है। जहाँ रावण के सौंदर्य, शौर्य, धैर्य, रणकुशलता की वह प्रशंसिका है वहीं उसके धर्म विरूद्ध आचरण की वह निंदा भी करती है। रावण वध के बाद विधवा मंदोदरी में तनिक भी दीनता नहीं है, उसे अपने पति का जीवन जहाँ श्रेयस्कर लगा वहाँ उसकी मृत्यु भी उसे अधिक सुन्दर लगी जीवन की जटिल परिस्थितियों, प्रतिकूल स्थितियों, में भी अपनी प्रतिष्ठा की परवाह न करके अपना कर्तव्य सत्यनिष्ठा से पालन करती है। विपत्ति में वह रोती नहीं धैर्यपूर्वक वह रावण को मृत्युपूर्व चेतावनी देती हुई उसके पौरूष को ललकारती है। वह पुनः अतीतकालिक घटनाओं का पति को स्मरण कराती है जिसमें उसके पति की पराजय हुई, उसे अपमानित होना पड़ा उस समय उसकी शक्ति उसका पराक्रम कहाँ चला गया था। जिसके दूत ने लंका को भस्म किया दूसरे ने रावण की सभा में उसे अपमानित किया जिस पुरूष ने भरी सभा में शिव का धनुष भंग किया जयंत को एक आँख वाला बनाया।

रावण के हित के लिये जिसने दौत्यकर्म के लिये अंगद को भेजा ऐसा राम उसका अहित चिंतक कैसे हो सकता है। इस उपदेश में मंदोदरी का क्रोध अमर्ष, धृति इत्यादि सनातन धर्म के तत्त्व दिखाई देते हैं–

> **"कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोइ न समर तुम्हहि रघुपतिही।।**
> **रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई।।**
> **पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा।।**
> **कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी असंका।।**
> **रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा।।**
> **जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा।।**

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु।।

पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुल बल जानहु।।

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहि मानेहि नीचा।।

जनक सुता अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला।।

भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही।।

सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा।।

सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी।।

बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध।

बालि एक सर मारयो तेहि जानहु दसकंध।।

कारूनीक दिनकर कुलकेतू। दूत पठायउ तब हित हेतू।।

अंगद हनुमत अनुचर जाके। रनबाँकुरे वीर अति बांके।।

दुई सुत मरे दहयो पुर अजहु पूर पिय देहु।

कृपा सिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जस लेहु।।"1

भवितव्यता को कौन रोक सका है, मंदोदरी को भी वैधव्य दुख सहन करना पड़ा रावण के मरने के पश्चात मंदोदरी व्याकुल होकर मूर्छित हो गई, उसे अपने पति के अतिशय शक्ति, शूरवीरता पर गर्व है, क्योंकि जिसने मृत्यु को भी जीत लिया था वही रावण आज मृत्यु के कारण विवश भूमि पर पड़ा है। वरूण, कुबेर, इन्द्र, वायु जिसके सन्मुख पानी भरते थे, ऐसे रावण का शरीर अनाथ होकर रह गया है–

"सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा।।

बरून कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा।।

---

1. मानस – 6/36–37

भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं।।

जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई।।

राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा।।

अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम विमुख यह अनुचित नाहीं।।

काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना।।

जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहक पावक हरि स्वयं।

जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करूनामयं।।

आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।

तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं।।

अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।

जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान।।"1

वस्तुतः मंदोदरी के व्यक्तित्व की गरिमा उसके संयम और सहनशीलता में है। वह रावण के सौन्दर्य शौर्य और धैर्य की सहर्ष प्रशंसा करती है तो दूसरी ओर उसके धर्म विरूद्ध आचरण की निंदा करने में भी संकोच नहीं करती है। परम साध्वी समर भूमि में वह अनाथा की तरह रोती है, पर राम उससे कुछ नहीं कहते। उसकी महत्ता निरूपित करते हुए डा0 पाण्डुरंग राव ने लिखा है कि– "रामकथा संविधान में मंदोदरी का वही स्थान है जो नवदरवाजे वाली महानगरी मानव देह में सबका समाहार करने वाले सारगर्भित उदर का है।"2

इस प्रकार शोधक्षात्रा यह अनुभव करती है कि मंदोदरी प्रतिनायिका होते हुए भी

---

1. मानस – 6/104

2. रामायण के महिला पात्र – पृ0 74

उसके चरित्र के विविध पक्ष तुलसी द्वारा अनुद्घाटित रह गये हैं वह परम विदुषी, वीर प्रसवनी माता, कुशल नीति, आचरण शास्त्र की ज्ञाता है फिर भी उसके पातिव्रत धर्म मति, घृति, विवेक, सत्यप्रियता का उद्घाटन कर तुलसी ने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि राक्षस या विरोधी संस्कार वाली होने पर भी मंदोदरी के जीवन में सनातन धर्म के अनेक गुणों की श्रेष्ठ महत्ता रही है, उसने इन गुणों को धारण कर विपरीत परिस्थितियो के होने पर भी इनका आश्रय नहीं छोड़ा है, यही उसके व्यक्तित्व के श्रेष्ठ निदर्शक तत्त्व हैं।

त्रिजटा–

मूल रूप से यह रावण परिवार की अनुचरी है। जिसको कई अन्य असुरांगनाओ के साथ अशोक वाटिका में सीता की रखवाली करने और उन पर निगरानी रखने के लिए रावण द्वारा नियुक्त किया गया था। राक्षस कुलोद्भवा होने पर भी वह संस्कार से सात्विक और सदय है। उसकी झलक रामचरितमानस में अत्यल्प है किंतु उसके भविष्य कथन में सुंदरकांड का ही नहीं अपितु संपूर्ण राम कथा में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

रावण के प्रलोभनो से त्रस्त और उसके अशोभनीय आचरणों से क्षुब्ध सीता एकाकी अशोक वाटिका में अपनी अरन्तुद वेदना व्यक्त करती है। राम के विरह में वह अपने प्राणों को समाप्त करने की जब सोच ही रही थी तो प्रबुद्धा त्रिजटा उसे राम के प्रताप और यश की कहानी सुनाकर सीता को धैर्य बंधाते हुए अपनी सदाशयता और नीतिमत्ता का परिचय देती है। तुलसी ने तो उसे रामभक्त ही कहा है तभी त्रिजटा अपने स्वप्न की बात सुनाकर सीता को धैर्य बंधाती है साथ ही ब्रह्ममुहूर्त में देखे गये स्वप्न के सत्य होने का संदेश भी देती है।

तुलसीदास की चरित्र चित्रण संबंधी यह विशिष्ट कला है कि अधम निम्न पात्रों मे भी वे कहीं न कहीं उसके सत् पक्ष का निदर्शन कराते हैं तुलसी ने लिखा है–

"त्रिजटा नाम राक्षसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।।

सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना।।

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।

खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसिजाई। लंका मनहुँ विभीषन पाई।।

नगर फिरी रघुवीर दुहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गए दिन चारी।।

तासु वचन सुनि ते सब डरीं। जनक सुता के चरनन्ह परीं।।"[1]

इस स्वप्न के संबंध में त्रिजटा के चारित्रिक पक्ष का उद्घाटन करते हुए डा0 पांडुरंग राव ने लिखा है– "त्रिजटा का यह स्वप्न उसकी अव चेतन या अर्द्ध चेतन सुषुप्ति अथवा योगनिद्रा का द्योतक है। वह न केवल भविष्य में होने वाली राम विजय और पराजय का स्वप्न देखती है बल्कि उसी दिन कुछ ही क्षणों के बाद हनुमान के द्वारा होने वाले लंका ध्वंस को भी सपने में देख लेती है वास्तव में अशोक वाटिका मे उस समय विद्यमान हनुमान, सीता और रावण की मनोदशा तथा उसके संम्भाव्य परिणाम की स्वच्छ प्रतिच्छाया त्रिजटा के स्वप्न में अंकित हो जाती है इतना ही नहीं इन तीनों के मन में किसी न किसी रूप में अंकित राम भी त्रिजटा के स्वप्न में प्रत्यक्ष हो जाते हैं।"[2]

---

1. रामचरित मानस – 5/11
2. रामायण के महिला पात्र – पृ0 76

सीता के मरने की बात सुनकर त्रिजटा सीता को राम के प्रताप, बल, यश आदि की चर्चा कर सीता को धैर्य बँधाती है, आत्महत्या के विचार से विरक्त करती है। इस प्रकार गोस्वामी तुलसी दास ने त्रिजटा के चरित्र में कहीं भी राक्षसी प्रवृत्ति का निदर्शन नहीं कराया है। इसकी अपेक्षा वह वाग्मी, हरिभक्त और राम के पक्ष वाली सिद्ध होती है जो निश्चय ही सद्धर्म का द्योतक है। निर्मल मन, निश्कलुष मन बड़े–बड़े ऋषि मुनियों का भी नहीं होता फिर भी तो राक्षस संस्कृति के पापमय पंकिल पयो निधि में त्रिजटा का मन निस्पृह और दर्पण की भांति स्वच्छ है जिसकी कामना बड़े–बड़े ऋषि मुनि भी करते है। तुलसी के सनातन धर्म की यही विशेषता है कि शरीर से व्यक्ति चाहे जिस परिस्थिति में रहे किंतु यदि मानसिक स्तर पर वह निस्कलुष है तो अधर्मियों या राक्षसों के बीच भी वह सत्धर्म वाला है।

त्रिजटा और विभीषण विरोधाभाषी परिस्थितियों में भी सद्धर्म की संपोषिकायें हैं। अल्पकाल के लिए ही त्रिजटा की छटा रामचरित मानस में विद्युल्लता की भाँति सबको चमत्कृत कर जाती है।

सूर्पणखा–

रामकथा में जिस प्रकार मंथरा कथा को एक नया मोड़ देती है उसी प्रकार सूर्पणखा भी संधिस्थल पात्र बनकर कथा प्रवाह को युद्धभूमि तक पहुँचा देती है। वह रावण की भगिनी है। राम लक्ष्मण को देखकर उनसे प्रणय प्रस्ताव करती है, उनसे उपेक्षिता होने पर सीता को खाने के लिए दौड़ती है, तभी लक्ष्मण उसे नाक–कान विहीन कर देते हैं। तुलसी लिखते हैं–

"सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारून जस अहिनी।।

पंचवटी सो गई एक बारा। देखि विकल भइ जुगुल कुमारा।।

रूचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसकाई।।

मम अनुरूप पुरूष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं।।

यातै अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।।

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता।।

X X X X X X X X X X X

सुन्दरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा।।

X X X X X X X X X X X

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई।।

सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई।।

लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्ह।"1

डा0 राम प्रकाश अग्रवाल ने लिखा है कि "चरित्र–चित्रण की दृष्टि से सूर्पणखा में दो विशेषतायें हैं। प्रथम वह स्वैरिणी स्त्रियों की प्रतिनिधि है, दूसरे राजनीति पंडित रावण की अनुजा होने के नाते स्वयं भी राजनीतिविज्ञ है। तुलसी ने मुख्यतः स्वैरिणी रूप का चित्रण कर नारी मात्र पर आक्षेप लगाया है।"2 मेरे विचार से यह तथ्य पूर्ण सत्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि खर–दूषण वध के पश्चात सूर्पणखा रावण की सभा में जाकर उसे धिक्कारते हुए जिस नीति धर्म और न्याय की बात करती है उससे तो यही सिद्ध होता है कि उसे सनातन धर्मतत्त्वों का ज्ञान था–

"धुँआ देखि खर दूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा।।

बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरत बिसारी।।

राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।।

---

1. रामचरित मानस – 3/16–17
2. बाल्मीकि और तुलसी – साहित्यिक मूल्यांकन – पृ0 228

बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़े किएँ अरू पाएँ।।

संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा।।

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी।।

रिपु रूज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।"1

सूर्पणखा के ऐसे नीति सम्मत वचनों को सुनकर और उसका करूण क्रंदन सुनकर रावण आकुलित हो उठा और उसके सभासद भी आश्चर्य चकित रह गये। सूर्पणखा ने राम–लक्ष्मण और सीता का परिचय बड़े ही निष्पक्ष भाव से दिया है, राम लक्ष्मण के बल का बखान करती हुई वह रावण के समक्ष सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा रावण की काम लोलुपता को ध्यान में रखकर प्रतिशोध की भावना से करती है–

"अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खलबध रत सुर मुनि सुख दाता।।

सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा।।

रूप रासि विधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी।।

तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगनि करहिं परिहासा।।"2

इस प्रकार सूर्पणखा कामरूपा प्रतिहिंसा से युक्त और वचनविदग्धा है। वह सनातन धर्म के सत्पक्ष का ज्ञान रखते हुए भी असत् पक्ष का प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुई है। इस प्रतीक के माध्यम से तुलसी ने यह प्रतिपादित किया है कि धर्म और इन्द्रिय निग्रह से वियुक्त काम व्यक्ति को पतन के मार्ग में ले जाता है। सूर्पणखा ने अपने चरित्र से राम रावण युद्ध की अग्नि में प्रथम आहुति अपनी ओर से दी। परिणामतः सद्धर्म के असत् रूप में उसका चरित्र वासना का प्रतीक बनकर रह गया।

कहना नहीं होगा कि राक्षस वर्ग के पात्रों में सनातन धर्म के अनेंक लक्षण उनके

---

1. रामचरित मानस – 3/21

2. रामचरित मानस – 3/22

आचार दर्शन में मिलते हैं। यद्यपि यह विवाद का विषय हो सकता है कि राक्षसों की सामान्य मनुष्य या वास्तविक रामायण युगीन समय में आर्यों से कोई भिन्न जाति रही होगी। यह विषय नए शोध का विषय हो सकता है कि आर्य अनार्य, सुर–असुर, देव–दैत्य, दनुज–मनुज किसी अलग–अलग जातियों के नाम हैं या बानर, भालू इत्यादि मानवेतर पशु अथवा जटायु, गरूड़ कोई पक्षी जाति के रहे होंगे जिन्होंने राम–रावण युद्ध के समय अपनी सहभागिता दिखाई है।

विश्लेषण कर देखें तो सारी बातें कुछ भक्ति और कुछ अवतारवाद के कारण एक दूसरे से इतनी सम्पृक्त हो गई हैं कि सामान्य अध्येताओं के लिए वे रहस्यात्मक हो गई हैं।

कहना नहीं होगा कि दुर्गा सप्तशती एवं श्रीमद्भगवतद्गीता के कुछ अंशो में कृष्ण ने धर्म संस्थापना एवं अधर्म विनाश हेतु वे किसी न किसी रूप में अवतार लेंगे यहाँ संभवामि युगे युगे की अवधारणा ने सबसे पहले कृष्णभक्ति के सूत्र व्यावहारिक रूप में अवतारवाद की धारणा को पुष्ट करते हुए इसी के अनुकरण से रामभक्ति की अवधारणा विकसित हुई, और मूल रूप से अवतारवाद की पुष्टि विश्व से जुडी। यदि राम विष्णु के अंशावतारी सीता–लक्ष्मी, भरत–शंख तथा लक्षमण–शेषनाग के रूप में अवतरित हुए तो इनके समर्थक जितने भी देवता थे वे सब बानर की योनि के रूप में अवतरित होकर राम–रावण युद्ध में राम के सहायक बने तो दूसरी ओर ऋषि अथवा ईश्वर के शाप या वरदान के कारण श्रेष्ठ व्यक्ति अगले जन्म में असुर योनि अथवा रावण बने। यदि अवतारवाद एवं भक्ति के इस आवरण को हटा दें तो यह दिखाई देगा कि यह सारा संघर्ष आर्यों के ही परस्पर वैमत्य के कारण हुआ।

ऋग्वेद से लेकर अवेस्ता तक एक विशेष समानता दिखाई पड़ती है कि एक

समय में सुर–असुर एक ही जाति के श्रेष्ठ व्यक्ति थे विपरीत आचरण के कारण उनकी संस्कृतियाँ बदल गईं क्योंकि ब्रह्मा के पुत्र महर्षि कश्यप की पत्नियों से अदिति से आदित्य दिति से दैत्य दनु से दानव या दनुज जैसी संताने होकर ऋषि परम्परा में ही आती हैं, इसी प्रकार कैकसी विश्वश्रवा ऋषि की पत्नी हैं, जिससे क्रूरकर्मा रावण का जन्म हुआ। इन्द्र जैसे श्रेष्ठ पराक्रमी पद वाले राजा की पुत्री जयन्ती असुर कुल गुरू पुरोहित शुक्राचार्य को व्याही गयी थी।

उक्त विवरणों से यह सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन सबकी संस्कृतियाँ समान थीं कुछ मतभेद के कारण परस्पर युद्ध या संग्राम हुए जैसे समुद्रमंथन के समय देव और दैत्य समान परिश्रम करते दिखाई देते हैं और समुद्र से उत्पन्न श्रेष्ठ वस्तुएं देवों के हाथ लगीं और असुर या दैत्य ठगे से रह गये। इसी कारण देवासुर संग्राम हुआ। कुल मिलाकर यहाँ यह स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है कि विचार वैभिन्य के कारण ये सभी जातियाँ आर्य ही थीं, देश काल, स्थान के कारण इनके धर्म के स्वरूप और उनके मान्य सिद्धान्तों में कुछ परिवर्तन अवश्य हो गया किंतु सनातन धर्म की अवधारणा किसी न किसी रूप में समान रूप से विकसित होती रही है। यदि राम पक्ष के लोग गौ द्विज, वैदिक या पौराणिक, विप्र, निर्बल जनों के रक्षक सिद्ध हुए, तो रावण ने भी वेद का विस्तृत अध्ययन किया है। वह वेदज्ञ बना, मान्यता तो यहाँ तक है कि कृष्ण यजुर्वेद का सम्पादन रावण ने ही किया था यज्ञ, दान, प्रजारंजन, तपश्चर्या में सनातन धर्म की ये परम्पर्या करते थे। रावण ने ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या की थी और अमरत्व जैसा दुर्लभ वर प्राप्त किया था साथ ही शंकर की उपासना कर अपने सिरों की आहुति दी और महान शैव बना अतः राक्षस कुलीन पुरूषों में धर्म रक्षा, यज्ञ, तप, दान इत्यादि सनातन धर्म के सिद्धान्तों का

प्रतिपालन करते हुए दिखाई देते हैं, तो कुंभकर्ण, सात्विक वृत्ति का विभीषण, प्रहस्त, शुक, सारण मंदोदरी उसे अधर्म से विरत रहने का बारम्बार आग्रह, प्रार्थना, हठ या उपदेश करने का प्रयास करते हैं। सामाजिक संबंधो की समरसता राक्षस परिवार मे सनातन धर्म के अनुरूप मिलती है।

इसी प्रकार स्त्रियों में पातिव्रत के साथ धर्मानुचरण करती हुई स्त्रियाँ नीति का पक्ष लेती दिखाई देती हैं। मंदोदरी त्रिजटा ऐसी ही नारियाँ है। कहना नहीं होगा कि शोधकर्त्री की यह उपपत्ति है कि तथाकथित राक्षसकुलीन पात्रों में सनातन धर्म की अवधारणा कुछ न कुछ अवश्य मिलती है, यद्यपि उनका राक्षस धर्म अपनी निजी धारणाओं से आबद्ध है फिर भी तुलसीदास की रामभक्तिपरक नैतिक दृष्टि में सत्यव्रत, सदाचार, धर्माचरण ऋजुता जैसे गुण किसी न किसी रूप में मिलते हैं। यह तुलसी की अपनी निजी या भक्तिकालिक मान्यता का ही प्रभाव है।

षष्ठ सोपान

रामचरित मानस में सनातन धर्म का सांस्कृतिक स्वरूप

रामचरित मानस में सनातन धर्म का सांस्कृतिक स्वरूप

"गोस्वामी तुलसीदास भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सनातन स्वरूप को भली–भाँति पहचानते थे।"1 रामचरित मानस में उन्होंने ह्रासोन्मुख सनातन संस्कृति के पुनरुत्थान का सहृदय प्रयत्न किया है, जिसके परिणाम स्वरूप "भारतीय वाङ्गमय में पंचम स्वरोल्लेखित वर्णाश्रम धर्मों की विज्ञानमयी व्यवस्था का ज्ञान जनसामान्य के लिये सुलभ हुआ।" इन्ही आश्रम तथा वर्ण धर्मों के अंतर्गत समस्त सनातन संस्कृति संन्निहित है। रामचरित मानस में सनातन धर्म का सांस्कृतिक स्वरूप जानने के लिए सर्वप्रथम हमें यह जानना होगा कि संस्कृति क्या है? पाणिनि ने अष्टाध्यायी में संस्कृति की परिभाषा देते हुए लिखा है–

"संपरिभ्यां करौतौभूषणे।" समवाये च।2

संस्कृति शब्द सम उपसर्ग पूर्वक 'डुकृञ् करणे' धातु से क्तिन् प्रत्यय का योग करने पर बनता है। सम और परि उपसर्ग पूर्वक 'डुकृञ्' धातु से भूषण एवं संघात अर्थ अभीष्ट होने पर सुट् का आगम होता है। **"सं परिपूर्वस्य करोतेः सुट स्याद्भूषणे संघाते चार्थे।"3**

अतः संस्कृति का अर्थ है, भूषण भूत सम्यक् कृति। इस प्रकार संस्कृति से परिष्कार या परिमार्जन की क्रिया अथवा सम्यक् रूपेण निर्माण का अर्थ ग्रहण किया जाता है।

ऋग्वेद में संस्कृत; यजुर्वेद में संस्कृत् और संस्कृति, तथा ऐतरेय ब्राह्मण में संस्कृति शब्द का प्रयोग मिलता है

---

1. तुलसीदास जीवनी और विचार धारा – पृ0 137 (डॉ0 राजाराम रस्तोगी)
2. पाणिनी (अष्टाध्यायी) 6/1/137–138
3. भट्टोजि दीक्षित कृत सूत्रवृत्ति

ऋग्वेद– **"न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।।"** 5/76/2

डा० पी०वी० काणे का मत है कि ऋग्वेद के प्रस्तुत मंत्र में संस्कृत शब्द का अर्थ धर्म (वर्तन) है। (धर्मशास्त्र का इतिहास प्रथम भाग पृ० 176)

सायण के अनुसार इस मंत्र में प्रयुक्त संस्कृत शब्द यज्ञ का बोधक है–

"धर्ममच्छ। परिवृढं धर्मं प्रदीप्तं यज्ञम्।"[1]

तथा

"अश्विनौ संस्कृतं धर्मं न प्रमिमीतः।..............धर्म समीपे नूनमिदानीमिहयज्ञे।"[2]

यजुर्वेद– **"तन्नौ संस्कृतम्।"** तथा **"सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा"**

यजुर्वेद– (4/34–7/14)

भाष्यकार उव्वट के मतानुसार यजुर्वेद के 7/14 मंत्र में प्रयुक्त संस्कृति शब्द का अर्थ 'सत्कार' है।[3] तथा भाष्यकार महीधर 'संस्कार' अर्थ ग्रहण करते हैं।[4]

अस्तु संस्कृति शब्द को कल्चर के आधार पर गढ़ा हुआ तथा आधुनिक युग में नवप्रयुक्त मानना अयुक्तिपूर्ण है। इस शब्द का वैदिक युग से प्रयोग होता रहा है। हाँ, अर्थ विस्तार के द्वारा आधुनिक युग में संस्कृति शब्द से पहले की अपेक्षा अधिक अर्थ–गाम्भीर्य की अभिव्यक्ति होती है; यह कहना समुचित है।[5] (डा० बी०डी० अवस्थी–वैदिक साहित्य संस्कृति और दर्शन पृ० 97)

---

1. ऋग्वेद – 5/76/1 का सायण भाष्य।
2. ऋग्वेद – 5/76/2 का सायण भाष्य।
3. सा प्रथमा संस्कृतिः सः प्रथमः सोम सत्कारः क्रियते सोमक्रये।
4. "सा प्रथमा मुख्या संस्कृतिः सोम संस्काराः।" (यजुर्वेद 7/14 का अवटभाष्य)
   (यजुर्वेद का महीधर भाष्य)
5. Culture Cultivation, the state of being cultivated refinement due to the result of cultivation, the type civitization a crop of experimently green bacteria or the like to cultivate or to improve. chamber's Twentieth century's Dictionary.
   - Revised edition 1962, Page 257

जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित है कि–

"आत्मसंस्कृतिर्वावशिल्पानि एतर्यजमान आत्मानं संस्कुरूथ।"

(ऐ0ब्रा0– 6/5/1)

निष्कर्षतः हम यह सकते हैं कि वेदों में संस्कृति का विकास प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण मे हुआ है। गुरूकुलों के संचालक और आश्रमों के प्रतिष्ठापक ऋषियों ने वेदों की संस्कृति को दिव्य स्वरूप प्रदान किया है इसी कारण वेदों की संस्कृति की उदारता को देखकर वेदों के आलोचक भी आश्चर्य चकित रह जाते हैं, सनातन धर्म की संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके सूक्ष्म तत्त्व अपरिवर्तनीय हैं; क्योंकि ये तत्त्व उस सनातन सिद्धान्त पर आधारित हैं जो कि मनुष्य और प्रकृति मे हैं वे कभी परिवर्तित नहीं हो सकते प्रत्येक काल में तथा प्रत्येक देश में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्ति के स्वाभाविक विचार कभी नहीं बदल सकते। हाँ उनका वाह्य स्वरूप अथवा सभ्यता में परिवर्तन अवश्य हो सकता है।

सनातन संस्कृति के मूल तत्त्व को समझने के लिये ऋग्वेद का यह उदाहरण उत्कृष्ट होगा–

"इन्द्रम्मित्रं वरूणमग्निमाहुरथोदिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान्।

एकं सद्विप्राबहुधावदत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।"1

अर्थात्

वह तेज स्वरूप एक है। विद्वान् लोग उसे इन्द्र, मित्र, वरूण, अग्नि, दिव्यसुपर्ण, गरूत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि नामों से पुकारते हैं। देवतावाची शब्द अनेक हैं किंतु उनका वाच्य अर्थ एक ही है। उसकी उपासना किसी भी नाम से की जाय, वह उसी

---

1. भारतीय संस्कृति का प्रवाह – पृ0 8 (डॉ0 इन्द्र विद्या वाचस्पति)

परमदेव तक पहुँच जाती है।

वेद के इसी उदार दृष्टिकोण में सनातन संस्कृति का मूल तत्त्व निहित है। एक भक्त के अनुसार–

"नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।"

हे प्रभु! जैसे सब नदियाँ–नाले अनेक मार्गों से होकर समुद्र तक पहुँच जाते हैं वैसे ही भिन्न–भिन्न नामों से की गयी स्तुतियाँ तुझ तक पहुँच जाती हैं। तात्पर्य यह है कि यह उदार दृष्टिकोण ही वैदिक संस्कृति को सनातन संस्कृति बनाने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। सनातन संस्कृति वह है जिसमें समस्त देश तथा काल की संस्कृतियाँ और सम्यतायें समाहित हो जाती हैं, जैसा कि "गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं कि– **"मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रेमणि गणा इव।"** इसके अनुसार प्रत्येकमणि को एक विशेष धर्म, सम्प्रदाय, मत अथवा विशेष संस्कृति कहा जा सकता हैं। प्रथक–प्रथक मणियाँ एक एक संस्कृति (धर्म) हैं और प्रभु ही सूत्र रूप में उनमें विद्यमान हैं।" (स्वामी विवेकानंद के विचार पुस्तक पृ0 3)

यही सनातन धर्म का सांस्कृतिक स्वरूप है गोस्वामी जी का रामचरित मानस इन्ही भावों से ओतप्रोत है यथा–

"जड़ चेतन जग जीव सकल राममय जानि" (1/7) मानस

अर्थात् जड़ चेतन विश्वगत समस्त पदार्थों को जो मनुष्य अपने इष्टदेव से आच्छादित मानता है वही सनातन संस्कृति को जानने वाला है। कारण कि करूणानिध ाान प्रभु सम्पूर्ण जगत के कारण भूत होने के कारण जगद्पिता हैं अतः प्रभु की न कोई भाषा है न कोई जाति है न देश है और न ही किसी भेद से उन्हें सीमित किया जा सकता है जो असीम है उसकी सीमा कैसी?

वेद, उपनिषद् आदि किसी वर्ग विशेष की निधि नहीं हैं बल्कि वेद तो मानव संस्कृति की अमूल्य निधि हैं वेद की अलौकिकता तो "वसुधैव कुटुम्बकम्" से ही सिद्ध हो जाती है। जिसके अनुसार सारी वसुधा ही एक कुटुम्ब है। किंतु दुख की बात तो यह है कि वेद की इस पावन कल्याणमयी संस्कृति को मानने वाले लोग बहुत कम संख्या में दिखलाई पड़ते हैं और वैदिक संस्कृति के अनुयायी केवल भारत में ही यत्र–तत्र शेष बचे हैं। हमारे पूर्वज ऋषिगण शायद इस बात को पहले ही जानते थे इसी कारण भारत देश की प्रशंसा में व्यास मुनि कहते हैं कि–

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,

धन्यास्तुते भारतभूमि भागे। (विष्णु पुराण)

देवता भी स्वर्ग में यह गीत गाते हैं, धन्य है वे लोग जो भारतभूमि में उत्पन्न हुए हैं। यह भूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि वहाँ स्वर्ग और अपवर्ग दोनो की साधना हो सकती है देवता लोग भी भारत भूमि में उत्पन्न होने की कामना करते हैं जिससे वह अपवर्ग प्राप्त करने का उपाय कर सकें।" (भारतीय संस्कृति का प्रवाह पृ0 4) देवताओं की इस कामना का कारण यह है कि भारत ही वह देश है जिसने सृष्टि से प्रलय तक सनातन संस्कृति को जीवित रखा है यहाँ संस्कृति के सनातन तत्त्व का कभी ह्रास नहीं हुआ। सनातन संस्कृति को आत्मसात् करने के कारण ही इसे भारतीय संस्कृति मान लिया गया। इसी सनातन अथवा भारतीय संस्कृति में ग्राम्य और आरण्यक जीवन को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम का संबंध आश्रमों एवं अरण्यों से ही रहा है। "भारतीय संस्कृति में लौकिक अभ्युदय की उपेक्षा नहीं हुई है तथापि वरीयता निःश्रेयस (पारलौकिक कल्याण) को ही प्राप्त हुई यही कारण है कि आध्यात्मिकता को भारतीय संस्कृति का केन्द्र बिन्दु कहा

गया है।" (भारतीय संस्कृति और कला– डॉ0 राधाकमल मुखर्जी, पृ023)

भारतीय संस्कृति के सनातन तत्त्व–

श्री इन्द्र विद्या वाचस्पति ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति का प्रवाह' में भारतीय संस्कृति की चार विशेषतायें बताई हैं–

1. उदार दृष्टिकोण–

"उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।"

2. लचीलापन–

इस विशेषता के लिये क्षमाशीलता का महत्त्व बताया गया है। उनका कथन है कि भारतीय इतने क्षमाशील हैं कि उनकी तुलना रबर से की जा सकती है। रबर को चाहे जितना खींचो कुचल दो दबा दो किन्तु बंधनमुक्त होते ही वह पुनः उसी अवस्था में आ जाता है। ठीक यही स्थिति भारतीय संस्कृति की भी है। उर्दू के कवि इकबाल ने ठीक ही कहा है–

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा।।"

3. आत्मसात करने की शक्ति–

सबको अपना बना लेने की पवित्र भावना तथा सभी की विचारधाराओं और संस्कृतियों को सम्मान सहित अपनाने की अद्‌भुत शक्ति भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। फिर चाहे वे द्रविण हों, यूनानी हो, सीथियन अथवा इस्लामी और ईसाई हों भारतीय संस्कृति ने सबको अपने में आत्मसात कर लिया।

4. आध्यात्मिकता–

'यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे' की भावना से ओत प्रोत भारतीय संस्कृति में तप को

शस्त्र बल से, सत्य को असत्य से, और धर्म को अर्थ से सदैव से ही ऊँचा स्थान दिया जाता रहा है।

आदि से अंत तक मनुष्य का एक ही परम लक्ष्य है। आत्मज्ञान से परमात्मा की प्राप्ति। उपनिषदों की ब्रह्मविद्यायें इसके उत्कृष्ट प्रमाण हैं।

अन्य विद्वानों ने भी भारतीय संस्कृति के भिन्न–भिन्न तत्त्वों का उल्लेख किया है।–

बाबू गुलाबराय ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति की रूप रेखा' में (पृ0 6–12) में निम्न तत्त्वों का उल्लेख किया है–

1. आध्यात्मिकता
2. परलोक एवं आवागमन में विश्वास
3. समन्वय बुद्धि
4. वर्णाश्रम विभाग
5. बाह्य और आन्तरिक शुद्धि
6. अहिंसा, करुणा, मैत्री और विनय
7. प्रकृति प्रेम
8. उत्सव प्रियता।

डॉ0 रामजी उपाध्याय के अनुसार संस्कृति के सनातन तत्त्व निम्नलिखित हैं–[1]

1. सार्वजनीनता
2. सर्वांगीणता
3. देवपरायणता
4. धर्म परायणता
5. आश्रम व्यवस्था
6. आध्यात्मिकता

---

1. भारतीय संस्कृति का उत्थान – डॉ0 रामजी उपाध्याय – पृ0 11–13

7. कर्मफल और जन्मान्तरवाद   8. सर्वे सुखिनः सन्तु

9. निःसीमता   10. सनातनता

11. ऋषि एवं ग्राम की प्रधानता   12. उपरिस्थायिता।

डॉ0 मुंशीराम शर्मा ने वेद प्रतिपादित संस्कृति के निम्न तत्त्व उद्घाटित किये हैं–[1]

1. समष्टिभावना   2. चातुर्वर्ण्य व्यवस्था

3. चातुराश्रम्य व्यवस्था   4. राजनीतिक आदर्श

5. वैयक्तिक जीवन   6. संस्कार

7. धर्म

इन्द्रविद्यावाचस्पति के अनुसार– "किसी देश की आध्यात्मिक, सामाजिक और मानसिक विभूति को उस देश की संस्कृति कहते हैं"[2] वे आगे कहते हैं कि भारत के प्राचीन साहित्य में, जिसे आजकल संस्कृति कहते हैं उसके लिए सामान्य रूप से 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया जाता था, और जिसे वर्तमान भाषा में सभ्यता कहते हैं, उसका अंतर्भाव अर्थ शब्द में था। परन्तु समय के साथ–साथ धर्म और अर्थ इन दोनों शब्दों का प्रयोग संकुचित होता गया। धर्म केवल विश्वास और कर्म का पर्यायवाची रह गया, और अर्थ का दायरा धन सम्पत्ति तक परिमित हो गया। इस कारण यद्यपि संस्कृति और सभ्यता शब्दों का वर्तमान प्रयोग हमारी भाषा में नया है तो भी अभिप्राय को प्रकट करने की दृष्टि से वह उपयोगी तथा ग्राह्य है।"[3]

---

1. वैदिक संस्कृति और सभ्यता – डॉ0 मुंशीराम शर्मा – पृ0 46–235
2. भारतीय संस्कृति का प्रवाह – पृ0 1
3. भारतीय संस्कृति का प्रवाह – पृ0 1

स्वामी विवेकानन्द जी के निम्न कथन से वाचस्पति जी का विचार और भी पुष्ट हो जाएगा स्वामी जी के अनुसार– "प्रत्येक धर्म (संस्कृति) के तीन भाग होते हैं।[1] पहला **दार्शनिक भाग–** इसमें धर्म का सारा विषय अथवा मूल तत्त्व, उद्देश्य और लाभ के उपाय निहित है। दूसरा **पौराणिक भाग–** यह स्थूल उदाहरणों के द्वारा दार्शनिक भाग को स्पष्ट करता है। इसमें मनुष्यों एवं अति प्राकृतिक जीवन के उपाख्यान आदि लिखे हैं। इसमें सूक्ष्म दार्शनिक तत्त्वों को मनुष्यों अथवा अति प्राकृतिक (अवतारों) के जीवन के उदाहरणों द्वारा समझाया जाता है। तीसरा है **अनुष्ठानिक भाग–** यह धर्म का स्थूल भाग है इसमें पूजा पद्वति, आचार अनुष्ठान, शारीरिक विभिन्न अंग विन्यास, पुष्प, धूप, धूनी, प्रभृति, नाना प्रकार की इन्द्रिय ग्राह्रय वस्तुएं हैं। इन सबको मिलाकर आनुष्ठानिक धर्म का संगठन होता है। विश्व में विख्यात समस्त धर्मों (संस्कृतियों) के ये तीन विभाग हैं।" मेरे मत से गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना भारतीय संस्कृति की इन्हीं तीन तत्वों को ध्यान में रखकर की होगी। तभी तो भारतीय संस्कृति के इतिहास में रामचरित मानस का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है तथा उसकी आभा से सम्पूर्ण विश्व आलोकित है, तथा भारतीय समाज का प्रत्येक नागरिक गोस्वामी जी के इस सनातन संस्कृति के पुनुरुत्थान के अद्भुत प्रयास से गौरवान्वित है।

संस्कृति के संदर्भ में समस्त विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सनातन तत्त्व इन्हीं तीन तत्वों में सन्निहित हैं

रामचरित मानस के संस्कृतिपरक अध्ययन करने के उपरान्त सनातन संस्कृति के निम्नलिखित तत्त्व प्रकट होते हैं–

1. संस्कार 2. अवतारवाद

---

1. कल्याण धर्मांक – पृ0 698 (धर्म पर स्वामी विवेकानन्द के कुछ विचार – संकलन)

3. आचार और धर्म 4. वर्णाश्रम व्यवस्था

5. पुनर्जन्म तथा परलोक 6. अध्यात्म तथा दर्शन

इन्हीं तत्त्वों के आधार पर रामचरितमानस भारतीय संस्कृति का उज्जवलतम प्रतीक है। डॉ0 माता प्रसाद गुप्त के अनुसार–भारतीय संस्कृति में आदि काल से सत्य, अहिंसा, धैर्य, क्षमा, निर्वैरता, अनासक्ति, इन्द्रियनिग्रह, शुचिता, निष्कपटता, त्याग, उदारता और लोक संग्रह आदि के जिन सात्विक तत्वों का सन्निवेश रहा है उन सबका जैसा समाहार राम–कथा में दिखाई पड़ता है वैसा अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ता है। आर्यावर्त के बाहर भी प्राचीन काल से जो राम–कथा का प्रचार रहा है, वह इसी सनातन सात्विक संस्कृति के समादर का प्रतीक है।" (तुलसीदास–एक समालोचनात्मक अध्ययन के पृ0 281)

संतकवि तुलसी की यही विशेषता है कि उन्होने भारतीय संस्कृति के इन दिव्य तत्त्वों को पूर्ण रूप से आत्मसात करके अपने ग्रंथ रामचरितमानस का सृजन किया। रामचरितमानस में सनातन धर्म के सांस्कृतिक स्वरूप का अध्ययन हम निम्न तथ्यों के आधार पर करेंगे–

क. सनातन धर्म सम्मत संस्कार पात्रों के संस्कार

ख. संस्कार द्वारा संस्कृति

ग. रामचरित मानस में सांस्कृतिक निष्ठा तथा

घ. रामचरित मानस में सनातन धर्म एवं सनातन संस्कृति।

क. सनातन धर्म सम्मत संस्कार पात्रों के संस्कार–

डॉ0 राजबली पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू संस्कार' के पृ0 18 में संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए लिखा है कि "संस्कार शब्द की सिद्धि सम् उपसर्ग पूर्वक 'डुकृञ' करणे धातु से घञ् प्रत्यय का योग करने पर होती है" संस्कार का अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं और व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिये किये जाने वाले अनुष्ठानों से है।" (पृ0 19)

डॉ0 बी0डी0 अवस्थी की पुस्तक 'वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन (पृ0109) में ऐसा वर्णित है–

आत्मशरीरान्यतरनिष्ठोऽविहित क्रियाजन्योऽतिशयविशेषः संस्कारः। (वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग 1, पृ0 132)

वैदिक संस्कारों में अनेक आरम्भिक विचार, धार्मिक विधि विधान, उनके सहवर्ती नियम तथा अनुष्ठान भी समाविष्ट हैं। संस्कारों के सविधि अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

जैमिनीय सूत्र (3/1/3) की व्याख्या करते हुए भाष्यकार शाबर अपने शाबर भाष्य में लिखते हैं यथा–

"संस्कारो नाम स भवति यस्मिञ्जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य।"

संस्कार वह है जिसके होने से पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के योग्य हो जाता है।

"म0म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का मत है कि संस्कारों से तीन कार्य सम्पन्न होते हैं–1. दोषमार्जन 2. अतिशयाधान 3. हीनांगपूर्ति।

प्रकृति द्वारा उत्पन्न पदार्थ में यदि कोई दोष हो, अर्थात् हमारे उपयोग में

आते–आते उसमें कोई बाधा आयी हो, तो उसे दूर करना दोषमार्जन संस्कार कहलाता है। उपयोगी बनाने के लिए उसमें कुछ विशेषता उत्पन्न कर देना अतिशयाधान संस्कार है। फिर भी कोई त्रुटि हो तो किसी अन्य पदार्थ का सम्मिश्रण कर उस त्रुटि को पूर्ण कर देना पूर्ति नाम तृतीय संस्कार है।" (वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पृ0 209)

सनातन धर्म सम्मत संस्कार–

गौतम धर्म सूत्र (8/14–24) में निम्नलिखित 48 संस्कारों का विवेचन है–"अष्टचत्वारिंशता संस्कारैः संस्कृतः।

बाल्यावस्था के आठ संस्कार–

1. गर्भाधान 2. पुंसवन 3. सीमंतोन्नयन 4. जातकर्म

5. नामकरण 6. अन्नप्राशन 7. चौल 8. उपनयन

वेद के चार व्रत–

1. महानाम्नी व्रत 2. उपनिषद 3. महाव्रत 4. गोदान

युवास्था के चौदह संस्कार–

1. स्नान (समावर्तन) 2. विवाह 3. देवयज्ञ

4. पितृयज्ञ 5. मनुष्य यज्ञ 6. भूतयज्ञ

7. ब्रह्म नामक पंचमहायज्ञ पाकयज्ञ = 8. अष्टका 9. पार्वण स्थलीपाक

10. श्राद्ध 11. श्रावणी 12. अग्रहायणी

13. चैत्री 14. आश्वयुजी।

सात हविर्यज्ञ संस्कार–

1. अग्न्याधान 2. अग्निहोत्र 3. दर्शपौर्णमास 4. आग्रयण 5. चातुर्मास्य

6. निरुढ़पशुबंध 7. सौत्रामणि

सात सोम यज्ञ संस्कार–

1. अग्निष्टोम 2. अत्यग्निष्टोम 3. उक्थ्य 4. षोडशी

5. वाजपेय 6. अतिरात्र 7. आप्तोर्याम

आठ जीवन पर्यन्त पालनीय संस्कार–

1. दया 2. क्षमा 3. अनसूया 4. शौच

5. अनायास 6. मंगल 7. अकार्पण्य 8. अस्पृहा।

किंतु पारस्कर गृह्यसूत्र और मनुस्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन मिलता है। भारतीय संस्कृति में इन्हीं षोडश संस्कारों को मुख्य रूप से मान्यता दी गई है जो निम्नलिखित है– (वैदिक साहित्य, संकृति और दर्शन, पृ0 106)

1. गर्भाधान संस्कार 2. पुंसवन 3. सीमन्तोन्नयन

4. जातकर्म 5. नामकरण 6. निष्क्रमण

7. अन्नप्राशन 8. चूडाकर्म 9. कर्णवेध

10. उपनयन 11. वेदारम्भ 12. समावर्तन

13. विवाह 14. वानप्रस्थ 15. सन्यास

16. अन्त्येष्टि संस्कार।

संस्कारों का विवेचन–

डॉ0 बी0डी0 अवस्थी के मतानुसार– यद्यपि ऋग्वेद में संस्कार शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है।[1] तथापि उसमें जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि 'संस्कृत', 'संस्कृतम्' और 'संस्कृत्रम' आदि पदों का प्रयोग हुआ है।[2]

---

1. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – पृ0 115
2. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – पृ0 116

संस्कृत– रणाय संस्कृतः (ऋग्वेद 8/33/9)

संस्कृतम्– न संस्कृतं प्रमितीतो गमिष्ठान्ति। (ऋग्वेद 5/76/2)

संस्कृत्रम– न संस्कृतत्रमुपर्यान्त ता अभि। (ऋग्वेद 6/28/4)

"श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान तन्नौ संस्कृतम्।" (यजुर्वेद 4/34)

शुक्ल यजुर्वेद के इस मंत्र में भी संस्कृतम पद का प्रयोग हुआ है– भाष्यकार महीधर के मत से–**"संस्कृतम् सर्वोपकरणसंयुक्तम्।"**

अर्थात् संस्कृत का अर्थ सर्वोपकरणयुक्त है।

शतपथ ब्राह्मण में संस्कुरु और संस्कृतम आदि पद प्राप्त होते हैं–

"स इदं देवेभ्यो हविः संस्कुरु" (शतपथ ब्राह्मण 1/1/4/10)

तथा **"साधु संस्कृतम् संस्कुर्वित्येवैतदाह (शतपथ ब्राह्मण 1/1/4/10)**

अब हम इन्हीं तथ्यों के आधार पर वेद प्रतिपादित संस्कारों का विवेचन करेंगे। जैसा कि गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में षोडश संस्कारों का वर्णन मिलता है उन्ही सर्वमान्य षोडश संस्कारों के आधार पर संस्कारों का विवेचन युक्तिसंगत होगा क्योंकि "धर्मशास्त्रों की तरह संस्कारों की स्पष्ट रूपरेखा वेदों में दृष्टिगोचर नहीं होती।[1]

1. गर्भाधान संस्कार–

प्रजातन्तु के अविच्छिन्न बनाये रखने के लिए गर्भाधान संस्कार किया जाता है। डॉ0 पी0वी0काणे ने अपनी पुस्तक "धर्मशास्त्र का इतिहास–प्रथम भाग पृ0 181 में ऐसा लिखा है कि अथर्ववेद का 5/25 वाँ सूक्त गर्भाधान संस्कार से संबंधित है। अथर्ववेद के इस सूक्त के तीसरे व पाँचवे मंत्र से जो कि वृहदारण्यक उपनिषद (6/4/21) में उद्धृत हैं, गर्भाधान संस्कार का उद्घाटन करता प्रतीत होता है–

---

1. भारतीय संस्कृति का प्रवाह – इन्द्रविद्यावाचस्पति – पृ0 29

"अथास्याउरु विहापयति विजिहीथां द्यावापृथिवी इति तस्यामर्थं निष्ठाय

मुखेन मुखं संधाय त्रिरेनामनुलोमामनुमार्ष्टि।

"विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।

आसिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते।।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके।

गर्भं अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ।।"1

उपर्युक्त मंत्र अथर्ववेद 5/25/3 तथा 5/25/5 से अवतरित हैं।

ऋग्वेद में भी गर्भाधान संस्कार का उल्लेख हुआ है–

"अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः।

अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषुपुत्रान्।।"2

तथा "हिरण्यी अरणी यं निर्मन्यतो अश्विना।

तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे।।"3

अथर्ववेद में भी दसमास में पुत्र उत्पन्न होने की कामना की गयी है–

"आते गर्भो योनिमेतु पुमानवाण इवेषुधिम्।

आ वीरो जायताम् पुत्रस्तेदशमास्यः।।"4

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वेदों में संतानोत्पत्ति की प्रक्रिया में भी यज्ञ का पवित्र भाव निहित है। स्त्री और पुरूष का संयोग प्रजापति की सृष्टि के क्रम का संतुलन

---

1. वृहदारण्यक उपनिषद् – 6/4/21
2. ऋग्वेद – 10/183/3
3. ऋग्वेद – 10/184/3
4. अथर्ववेद – 3/23/9

बनाये रखने के उद्देश्य से होता था।

गृह्यसूत्रों में गर्भाधान के विधानों का उल्लेख मिलता है मनु के अनुसार–

"तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।

त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः।।"1

अर्थात इच्छानुसार पुत्र प्राप्त करने के लिये व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। व्रत समाप्ति पर पति पत्नी का संयोग होता था। पत्नी के ऋतुकाल की चौथी रात्रि के पश्चात सोलहवीं रात्रि तक का समय गर्भाधान के लिये उपयुक्त माना गया है इन द्वादश रात्रियों में एकादशी और त्रयोदशी की रात्रि सहवास के लिए वर्जित मानी गई हैं। शेष रात्रियां गर्भाधान के लिए उत्तम मानी गयी हैं।

मनु आगे कहते हैं कि–

"युग्मासुपुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।

तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवेस्त्रियम्।।"2

स्त्री–पुरूष के युग्म तिथियों के संयोग के पुत्र तथा अयुग्म तिथियों में संयोग से पुत्री का जन्म होता है।

क्योंकि युग्मतिथियों में पुंबीज की प्रधानता रहती है तथा अयुग्म तिथियों में स्त्रीरज का प्राधान्य होता है।

"पुमान्पुँसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियोः।

समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः।।"

इसलिए पुंबीज की प्रधानता से पुत्र और स्त्रीरज की प्रधानता से पुत्री का जन्म

---

1. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी, पृ0 106
2. मनुस्मृति – 3/48

होता है–

महर्षि आपस्तम्ब अपने धर्म सूत्र में लिखते हैं कि–

"तत्राप्युत्तरोत्तराः.......प्रशस्ताः (2/1)

ऋतुकाल के पश्चात की दशरात्रियों में उत्तरोत्तर पश्चाद्वर्ती रात्रियों में उत्पन्न संतान अपेक्षाकृत अधिक योग्य होती है। तथा पन्द्रहवी रात्रि में उत्पन्न पुत्री, पतिव्रता और अनेक पुत्रों की माँ बनती है, तथा सोलहवीं रात्रि में गर्भस्थ बालक विद्वान और जितेन्द्रिय होता है। रामचरित मानस में महाराजा दशरथ ने भी उत्तम पुत्र प्राप्ति की कामना से पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया था–

"सृंगी रिषिहि वसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा।।" (1/189–3)

2. पुंसवन संस्कार–

गर्भधारण का निश्चय हो जाने पर गर्भस्थ शिशु को पुंसवन नामक संस्कार के द्वारा संस्कृत किया जाता था।[1] पुंसवन का अभिप्राय सामान्यतः उस कर्म से था; जिसके अनुष्ठान से पुं = पुमान (पुरूष) का जन्म हो।

"पुमान् प्रसूयते येन कर्मणातत् पुंसवनमीरितम्।"[2]

अथर्ववेद में ऐसा वर्णन आया है कि–

"शमीभश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।

तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि।।"

यदि पीपल के वृक्ष पर शमी का पेड़ उत्पन्न हुआ हो; तो आयुर्वेद शास्त्रोक्त विधि से उसका सेवन करने पर गर्भ में निश्चित रूप से पुत्र की स्थिति हो जाती है।

---

1. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ० बी०डी० अवस्थी, पृ० 107
2. वीर मित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग 1, पृ० 166

पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार– पुंसवन संस्कार गर्भ धारण के पश्चात तृतीय अथवा चतुर्थ मास में सम्पन्न किया जाता था। गर्भिणी स्त्री को उस दिन उपवास रखना पड़ता था। रात्रि में वृक्ष की छाल (पीपल जिसके ऊपर शमी का पेड़ हो) को कूटकर और उसका रस निकाल कर गर्भिणी स्त्री की नाक के दाहिने रन्ध्र में 'हिरण्य गर्भ' आदि शब्दों से आरम्भ होने वाली वेद की ऋचाओं के पाठ के साथ छोड़ा जाता था। गृह्यसूत्रों के अनुसार उपर्युक्त मंत्रों के साथ छाल में कुश कंटक तथा सोमलता भी कूटी जाती थी; जिसका उद्देश्य संतान तथा गर्भिणी स्त्री की आरोग्यता तथा निर्विघ्नतापूर्वक शिशु जन्म की कामना करना था।

3. सीमन्तोन्नयन संस्कार–

"सीमन्तोन्नयन गर्भ में ही बालक को श्रेष्ठ बनाने का संस्कार है"[1] सीमन्तोन्नयन संस्कार के अवसर पर पढ़े जाने वाले मन्त्रों में सीमन्तोन्नयन के लिए प्रस्तुत स्त्री को संबोधित करते हुए पति कहता है कि–

"अयमूर्जावतो वृक्ष ऊर्जीव फलिनी भव।

पर्ण वनस्पते नुत्वा सूयतां रयिः।।

येनोदितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय।।

तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजानस्यै जरदष्टिं कृणोमि।।"[2]

हे पत्नी! तुम ऊर्जस्वी वृक्ष के समान ऊर्जस्विनी और फलवती हो। जैसे वनस्पति के पत्ते फल रूपी सम्पदा से युक्त रहते हैं; उसी प्रकार तुम भी संतति रूपी संपदा से युक्त हो। जैसे प्रजापति अदिति के सीमन्त को सौभाग्य प्रदान करता है; वैसे ही मैं

---

1. तुलसीदास, जीवनी और विचारधारा – डॉ0 राजाराम रस्तोगी, पृ0 156
2. मन्त्र ब्राह्मण – 1/5/1–2

तुम्हारे सौभाग्य का उन्नयन करता हूँ।

"संस्कार–कर्ता की पत्नी मृगचर्म पर बैठकर पति का हाथ पकड़ लेती है और अथर्ववेद तथा ऋग्वेद के निम्नलिखित मंत्रों का उच्चारण किया जाता है"1–

"धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम्।

वयं देवस्य धीमही सुमतिं विश्वराधसः।।"

"धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे।

तस्मै देवा अमृतं स व्ययन्तु विश्वेदेवा अदितिः सजोषाः।।"2

तथा

"राकामहं सुहवां सुष्टती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतुत्मना।

सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्।।

यास्ते राकेसमुतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।

ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा।।"3

गृह्यसूत्रों के अनुसार इस संस्कार में गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमन्त) को ऊपर उठाया जाता है–

"सीमन्त उन्नीयते यस्मिन कर्मणि तत् सीमन्तोन्नयनमिति कर्मनामधेयम्।"

(वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग 1, पृ0 172)

आश्वलायन स्मृति के अनुसार रूधिराशन में तत्पर कतिपय दुष्टिनी राक्षसियाँ पत्नी के प्रथम गर्भ को भक्षण करने के लिए आती हैं। पति को चाहिए कि उन

---

1. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी, पृ0 117
2. अथर्ववेद – 7/17/2–3
3. ऋग्वेद – 2/32/4–5

दुष्टात्माओं के निरसन के लिए वह श्री का आवाहन करे। श्री द्वारा रक्षित स्त्री को उक्त राक्षसियाँ मुक्त कर देती है। ये अलक्ष्य, क्रूर, माँसभक्षी, दुष्टात्मायें प्रथम गर्भकाल में स्त्री पर अधिकार जमा लेती हैं और उसे पीड़ा पहुँचाती हैं अतः इन बाधाओं की निवृत्ति के लिए सीमन्तोन्नयन संस्कार का विधान किया गया है।" (आश्वालायन स्मृति)

"पत्नयाः प्रथमजं भक्तुकामा सुदुर्भगाः।

आयन्ति काश्चिद्राक्षस्यो रुधिराशनतत्पराः।।

तासां निरसनार्थाय श्रियमावाहयेत् पतिः।

सीमन्तकरणी लक्ष्मीस्तामावहति मन्त्रतः।।"

बोधायन गृह्यसूत्र (1/10/7) के अनुसार इस संस्कार का एक अन्य प्रयोजन भी था, गर्भिणी स्त्री को यथा संभव हर्षित व उल्लसित रखना। पति स्वयं अपने हाथों से पत्नी के केशों को संवारता था। इस संस्कार का समय निर्धारित करते हुए महर्षि बोधायन कहते हैं कि—

"प्रथमगर्भायाश्चतुर्थे मासि सीमन्तोन्नयने।"[1]

यह संस्कार गर्भ धारण से छठे तथा आठवें मास तक हो सकता है।

4. जातकर्म संस्कार—

बच्चे के उत्पन्न होने पर पढ़े जाने वाले (यजुर्वेद 3/62) मंत्र में कहा गया है कि—

"त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।।"[2]

---

1. बोधायन गृह्य सूत्र – 1/10/1
2. वैदिक साहित्य संस्कृति और दर्शन – पृ0 217

जमदग्नि, कश्यप तथा दिव्य शक्तियाँ तिगुनी आयुष्य वाली हैं। उसी प्रकार इस जातक को भी तिगुनी आयु प्राप्त हो।

तैत्तिरीय संहिता में इस संस्कार के संदर्भ में ऐसा कहा गया है कि–

"जब किसी के पुत्र उत्पन्न हो, तब वह वैश्वानर को बारह विभिन्न पात्रों में पकी हुई रोटी की बलि अर्पित करे जिस पुत्र के लिए यह इष्टि की जाती है वह पवित्र और गौरवपूर्ण धन–धान्य से युक्त होता है।"1 (तै0सं0, 2/2/5/3–4)

अन्य धर्म–ग्रन्थों के रचयिता विद्वानों के अनुसार–

"प्राङ्नाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते।

मन्त्रतः प्राशनन्त्रास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम्।।"2

जातकर्म नाभिबन्धन के पूर्व होता है। तथा जातक का मुख देखकर पिता स्नान कर नन्दी श्राद्ध तथा जातकर्म संस्कार सम्पन्न करता था–

"जातं कुमारं दृष्ट्वा स्नात्वानीय गुरून पिता।

नान्दी श्रद्धावसाने तु जातकर्म समाचरेत्।।"3

इस समय का श्राद्ध शुभ तथा मांगलिक माना जाता था, क्योंकि इसमें पितरों के सम्मान का प्रयोजन निहित था।

5. नामकरण संस्कार–

यजुर्वेद में कहा गया है कि शिशु के जन्म के पश्चात् पिता उसकी नासिका से निकलती हुई श्वास–प्रश्वास को हाथ से अनुभव करता है और कहता है कि–

---

1. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – पृ0 218
2. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश भाग 1 – पृ0 187
3. ब्रह्म पुराण

"कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।

यस्य ते नामा मन्महि यं त्वा सोमेनाती तृपाम्।

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां सुवीरो वीरै सुपोषः पोषैः।"1

हे वत्स! तू कौन है, कौन सा है, किसका है और तेरा नाम क्या है? हम तेरे नाम को समझते हैं और तुझको सोम के द्वारा तृप्त करते हैं। सच्चिदानन्द प्रभु हमें प्रजाओं के साथ सुन्दर प्रजा वाला बनायें; वीरों के द्वारा सुन्दर वीरों वाला बनायें और पोषण शक्तियों के साथ सुन्दरतापूर्वक पुष्ट करें।

ऋग्वेद में चार नामों का उल्लेख किया गया है–

"चत्वारि ते असुर्याणि नामाद्राभ्यानि महिषस्य सन्ति।"2

ऋग्वेद में गुप्त नाम की ओर भी संकेत किया गया है–

"गुह्यं नाम गोनाम्।[3] तन्नाम गुह्यम्।[4] महत्तन्नाम गुह्यम्।"5

वैदिक नामों में प्रायः पुत्र के साथ पिता का नाम जुड़ा रहता है। जैसे– **"अर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिः।"** ऋष्टिषेण का पुत्र देवापि, पैजवन सुदास अर्थात् पिजवन का पुत्र सुदास भरत तथा दौःषन्ति अर्थात् दुष्यन्त का पुत्र भरत आदि–

"द्वैनप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः।

अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमिरेभन्।।"6

तथा–**"तेन हैतेन भरतो दौः षन्तिरीजे।"7** कौषीतकि आरण्यक तथा पारस्कर

---

1. शुक्ल यजुर्वेद – 7/29
2. ऋग्वेद – 10/54/4

3, 4, 5 ऋग्वेद – 9/87/3, 10/55/1, 2

6. ऋग्वेद – 7/18/22
7. शतपथ ब्राह्मण – 13/5/4/11

गृह्यसूत्र में कहा गया है कि पिता मंत्रों का उच्चारण करते हुए पुत्र के शिर पर हाथ से स्पर्श करता है और कहता है कि–

"अंगादंगात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे।

आत्मा वै पुत्र नामासि सजीव शरदः शतम्।।"

प्रजापतेष्ट्रा हिंकारेणावजिध्रानि सहस्रा युषोऽसौजीव शरदः शतमृगवाँ त्वा हिंकारेणावजिध्रामि सहस्रा युषाऽसौ जीव शरदः शतम्।।"1

हे पुत्र! तू मेरे अंग–अंग से उत्पन्न हुआ है। तू मेरे हृदय का टुकड़ा है। तू मेरी ही आत्मा है। तू सौ वर्ष तक जीवन धारण कर। तू दीर्घजीवी बन।

वैदिक रीति के अनुसार इस प्रकार बालक का नामकरण संस्कार किया जाता था। नाम के चुनाव के विषय में पारस्कर गृह्यसूत्र कहता है कि "नाम दो अथवा चार अक्षरों का होना चाहिए तथा नाम का अन्त दीर्घस्वर अथवा विसर्ग के साथ होना चाहिए। नाम में कृत प्रत्यय का प्रयोग किया जा सकता है, तद्धित का नहीं।" (पा०गृ०सू० 1/17/1)

वशिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार–

"द्वयक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः।"2

प्रतिष्ठा तथा कीर्ति के इच्छुक व्यक्ति को द्वयक्षर तथा ब्रह्मवर्चस्काम व्यक्ति को चतुरक्षर नाम रखना चाहिए।

मनु के अनुसार ब्राह्मण का नाम मंगलसूचक, क्षत्रिय का बलसूचक, वैश्य का

---

1. पास्कर गृह्यसूत्र (1/18) तथा कौषीतकि आरण्यक 4/11
2. वशिष्ठ धर्मसूत्र – 4

धन सूचक तथा शूद्र का कुत्सा सूचक अथवा जुगुप्सित रखना चाहिए–

"मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम्।

वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्।।"1

वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश में ऐसा वर्णित है कि–

"नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्य हेतुः।

नाम्नैःकीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलुनामकर्म।।"2

नाम अखिल व्यवहार का हेतु है, वह शुभावह है तथा कर्मो में भाग्य का हेतु है। नाम से ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है। अतः नामकरण अति प्रशस्त कर्म है।

मनुस्मृति के अनुसार नामरकण संस्कार दशम अथवा द्वादश दिवस में सम्पन्न करा लेना चाहिए–

"नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्।"3

6. निष्क्रमण संस्कार–

गृहाभिनिष्क्रमण संस्कार में बच्चा सूतिका गृह से बाहर निकाला जाता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार–

"चतुर्थेमासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति।"4

चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो; उस दिन 'तच्चक्षु' इस मंत्र का पाठ करते हुए बालक को सूर्य का दर्शन कराना चाहिए। परन्तु यदि इस अवधि में

---

1. मनुस्मृति – 2/31
2. वी0मि0सं0प्र0 – पृ0 241
3. मनुस्मृति – 2/30
4. आश्वलायन गृह्यसूत्र – हिंदू संस्कार – डॉ0 राजबली पाण्डेय – पृ0 111

यह संस्कार सम्पन्न न हो पाये तो अगले संस्कार (अन्नप्राशन) के साथ इसको भी सम्पन्न कराना चाहिए।

मनुस्मृति के अनुसार–

"चतुर्थे मासि कर्त्तव्य शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्।"1

निष्क्रमण संस्कार को सम्पादित करने का समय जन्म के पश्चात बारहवें दिन से चतुर्थ मास तक है।

यम ने तृतीय और चतुर्थ मास के विकल्प को स्पष्ट करते हुए कहा है कि–

"ततस्तृतीये कर्त्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम्।

चतुर्थमासि कर्त्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम्।।"2

तृतीय मास में शिशु को सूर्य–दर्शन तथा चतुर्थ मास में चन्द्र दर्शन कराना चाहिए।

इस प्रकार "यह संस्कार सांस्कृतिक दृष्टि से बालक को पवित्र वायुमण्डल का सेवन कराता है और उसे दीर्घायुष्य प्रदान कर पवित्र रहने की प्रेरणा प्रदान करता है।"3

7. अन्नप्राशन संस्कार–

अन्नप्राशन का तात्पर्य शिशु को प्रथम बार ठोस अन्नाहार देने से है। आश्वालायन गृह्यसूत्र के अनुसार– छठे मास में अन्नप्राशन संस्कार होना चाहिए। जिन्हें यह कामना हो कि उनके बच्चे तेजस्वी हों, उन्हें घृतयुक्त–भात खिलाना चाहिए–

---

1. मनुस्मृति – 2/34
2. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश – प्रथम भाग – पृ0 250 में उद्धृत
3. वैदिक संस्कृति और सभ्यता – डॉ0 मुंशीराम शर्मा – पृ0 71

"षष्ठेमास्यन्नप्राशनम्– (1)"

"घृतोदनं तेजस्काम– (2)"

बच्चे को घृतयुक्तभात खिलाते समय इस मंत्र का उच्चारण–

"अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।

प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे शम् चतुष्पदे।।"[1]

करना चाहिए तथा अन्नपति से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि–

हे अन्नपते! हमें ऐसा अन्न दो जो नीरोगता देने वाला और बलवान बनाने वाला हो, आप द्विपद और चतुष्पद सभी का कल्याण करें। शांख्ययन गृह्यसूत्र में कहा गया है कि– पिता को भूः भुवः स्वः इन महाव्याहृतियों का उच्चारण करते हुए भात में दही, घृत और मधु मिलाकर बच्चे को खिलाना चाहिए। इसके पश्चात् वह अग्नि में आहुतियाँ डालकर ऋग्वेद के प्रस्तुत निम्नलिखित मंत्रों का उच्चारण करें–

"यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चक्रमा कच्चिदागः।

कृधीष्वस्माँ अदितेरनागन्त्येनांसि शिश्रयो विष्वगग्ने।।

(महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम्।)

मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः।।"[2]

पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार– शिशु को सभी प्रकार का भोजन (विभिन्न स्वादों का सम्मिश्रण करके) खाने को दिया जाता है।[3] यह साधारण जन सामान्य नियम है। सुश्रुत का मत है कि– **"षण्मास्चैतमन्नं प्रणयेल्लघहितं च।"[4]** शिशु को लघु और

---

1. शुक्ल यजुर्वेद – 11/83
2. ऋग्वेद – 4/12/4, 5 – (वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – पृ0 119)
3. पास्कर गृह्यसूत्र – 1/19/4
4. सुश्रुत/शरीर–स्थान/10/64

हितकर अन्न देना चाहिए। मनु ने षष्ठ मास में अन्नप्राशन का समय निर्धारण किया है–

"षष्ठेऽन्न प्राशनंमासि यद्वेष्टं मंगलं कुले।"1

8. चूड़ाकरण अथवा चूड़ा कर्म संस्कार–

यजुर्वेद में मुण्डन द्वारा आयु, अन्नभक्षण की शक्ति, प्रजनन शक्ति, संतति और पराक्रम की वृद्धि की कामना की गई है–

"निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वायसुवीर्याय।"2

डॉ0 राजबली पाण्डेय के मत से चूडा कर्म संस्कार के अवसर पर व्यवहृत होने वाले वैदिक मन्त्रों को देखने से ज्ञात होता है कि उनकी रचना का प्रयोजन केशोच्छेदन संस्कार ही था।[3]

अथर्ववेद में मुण्डन के लिए शिर भिगोने आदि का उल्लेख मिलता है–

"आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदके नेहि।

आदित्या रुद्रावसव उन्दंत सचेतमः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः।।"4

यजुर्वेद कहता है कि–

"शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु चा माहिंसीः।"5

हे छुरे! तू शिशु की हिंसा अथवा क्षति न कर।

सुश्रुत के अनुसार– **"पापोपशमनं केश रोमापमार्जनम्।**

हर्षलाघव सौभाग्यकरमुत्साहवर्धनम्।।"6

---

1. मनुस्मृति – 2/34
2. शुक्ल यजुर्वेद – 3/63
3. हिन्दू संस्कार – डॉ0 राजबली पाण्डेय – पृ0 120
4. अथर्ववेद–6/68/1–वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन–डॉ0 बी0डी0 अवस्थी–पृ0 120
5. शुक्ल यजुर्वेद – 3/63
6. सुश्रुत/चिकित्सास्थान/24/72

केश, नख तथा रोम अथवा केशों के अपमार्जन अथवा छेदन से हर्ष, लाघव, सौभाग्य और उत्साह की वृद्धि होती है और पाप का उपशमन होता है।

चरक संहिता के अनुसार– **"पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपं विराजनम्।**

केशश्मश्रुनखादीनां कर्त्तन सम्प्रसाधनम्।।"1

केश, श्मश्रु और नखों के काटने तथा प्रशाधन से पौष्टिकता, बल, आयुष्य, शुचिता और सौन्दर्य की प्राप्ति होती है। मनु के मत से चूडाकर्म संस्कार प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में होना चाहिए–

"चूडा कर्म द्विजातीनां सर्वणामेव धर्मतः।

प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात्।।"2

विद्वानों के मत से धर्मशास्त्रों ने सूर्य के उत्तरायण होने पर इस संस्कार का विधान किया है। "शिखा रखना चूड़करण संस्कार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया था; जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है। शिखा कालान्तर में द्विजों के लिए भारतीय संस्कृति का एक अनिवार्य चिन्ह बन गई। शिखा तथा यज्ञोपवीत द्विजों का वाह्य संस्कृत चिन्ह है। शिखा से दीर्घायुत्व की प्राप्ति होती है।"3

सुश्रुत के मत से–

"मस्तकाभ्यन्तरत उपरिष्टात् शिरा सन्धिसन्निपातो रामावर्तोऽधिपतिःतत्रापि सद्य एवं (मरणम्)।"

अर्थात् मस्तक के भीतर ऊपर की ओर शिरा–सन्धि का सन्निपात है। इस अंग

---

1. हिन्दू संस्कार – पृ0 120 में उद्‌धृत
2. मनुस्मृति – 2/35
3. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – पृ0 110

में किसी भी प्रकार का आघात लगने पर तत्काल मृत्यु हो जाती है। अतः इस महत्वपूर्ण अवयव की सुरक्षा आवश्यक मानी जाती है उसी संधि पर शिखा रखने से यह प्रयोजन पूरा हो जाता है।

9. कर्णवेध संस्कार–

"य आतृणत्त्यवितथेन कर्णावदुःखं कुर्वन्नमृतंसम्प्रयच्छन्।

तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत् कतमच्चनाह।।"1

निरुक्त के इस मन्त्र के आधार पर यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भी कर्णवेध संस्कार का प्रचलन था तथा इस संस्कार के अवसर पर जब बालक का दाहिना कान छेदा जाता था तब 'भद्रंकर्णेभिः श्रुणुयाम देवाः' यह मन्त्र पढ़ा जाता था तथा जब बायें कान का छेदन होता था तब 'वक्ष्यन्ती वेदागनी' यह मंत्र पढ़ा जाता था।

सुश्रुत का कथन है कि **"रक्षाभूषणं निमित्तं बालस्य कर्णौविध्येत्।"2** रोगादि से रक्षा तथा भूषण या अलंकार के निमित्त बालक के कानों का छेदन करना चाहिए।

कात्यायन सूत्रों के अनुसार कर्णवेध संस्कार शिशु के तृतीय अथवा पंञ्चम वर्ष में होना चाहिए। सुश्रुत के मतानुसार यह संस्कार छठे या सप्तम मास के शुक्ल पक्ष में सम्पन्न होना चाहिए।[3]

10. उपनयन संस्कार–

अथर्व वेद इस संस्कार पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि–

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।

तं रात्रीस्त्रिसु उदरे विभ्रर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।

---

1. निरुक्त – 2/1/7
2. सुश्रुत शरीरस्थान – 16/1
3. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी – पृ0 110

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षंसमिधा प्रणाति।

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति।।"1

उपनयन सम्पन्न कराने वाला आचार्य ब्रह्मचारी को विद्यामय शरीर के गर्भ में स्थापित करता हुआ उसे तीन रात्रि तक अपने उदर में रखता है। चौथे दिन देवगण उस विद्यादेह से उत्पन्न ब्रह्मचारी के सम्मुख आते हैं। पृथिवी इस ब्रह्मचारी की प्रथम समिधा है और आकाश द्वितीय समिधा है। आकाश–पृथिवी के मध्य अग्नि में स्थापित हुई समिधा से ब्रह्मचारी संसार को सन्तुष्ट करता है।

तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि निवीत शब्द मनुष्यों प्राचीनावीत पितरों और उपवीत शब्द देवताओं के सम्बन्ध में प्रयुक्त होता है।

"निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणामुपवीतं देवनाम्।"2

विद्वानों का संबंध यज्ञ से है इस संस्कार में यज्ञभाव निहित होने के कारण इसको यज्ञोपवीत संस्कार भी कहा जाता है। तैत्तितीय ब्राह्मण में ऐसा वर्णित है कि "प्राचीनावीत ढंग से दक्षिण की ओर आहुति देनी चाहिए; क्योंकि पितरों के लिए सभी कृत्य दक्षिण की ओर ही किए जाते है। इसके विपरीत उपवीत ढंग से उत्तर की ओर आहुति देनी चाहिए; क्योंकि देवगण इसी प्रकार पूजित होते हैं।"3

गरूणपुराण के अनुसार गायत्री मन्त्र का उपदेश बालक के द्वितीय जन्म का सूचक है–

---

1. अथर्व वेद – 11/5/3, 4
2. तैत्तिरीय संहिता – 2/5/11/1
3. तैत्तिरीय ब्राह्मण – 1/5/8

"मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनम्।

ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजातयः।।"1

प्राचीन काल में आचार्य, ब्राह्मण के लिये गायत्री मन्त्र छन्द में, राजन्य के लिये त्रिष्टुप में तथा वैश्य के लिये जगती छन्द में सावित्री का उपदेश करता था–[2]

गायत्री मन्त्र–

"ऊँ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य। धीमहिधियो यो नः प्रचोदयात्"3

गायत्री मन्त्र वेदों का पवित्र मन्त्र है। इस मन्त्र के दृष्टा ऋषि विश्वामित्र तथा देवता सविता हैं। इस मन्त्र में तेजस्वी सूर्य का ध्यान करते हुए कहा गया है कि 'हम सविता के देदीप्यमान् तेज का ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धि को सत्प्रेरणा प्रदान करे।

"महर्षि अत्रि का मत है कि आत्मज्ञानी द्विज को प्रतिदिन तीन बार सन्ध्या करनी चाहिए। तथा महर्षि याज्ञवल्क्य के मत से इन तीन सन्ध्याओं को क्रमशः गायत्री (प्रातः कालिक) सावित्री (मध्याह्नकालिक) और सरस्वती (सायंकालिक) कहा जाता है।"4

विद्वानों ने उपनयन संस्कार का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि–

"उपसमीपे आचार्यादीनां वटोर्नीतिनयनं प्रापणमुपनयनम्।

समीपे आचार्यादीनां नीयते बटुर्येन तदुपनयनमिति वा।।"

अर्थात उपनयन का अर्थ है बालक को विद्याध्ययन हेतु आचार्य के समीप ले जाना। इस प्रक्रिया को उपनयन संस्कार कहते हैं।

---

1. गरुण पुराण – 1/94/24
2. हिन्दू संस्कार – डॉ0 राजबली पाण्डेय – पृ0 177
3. ऋग्वेद – 3/62/10, यजुर्वेद – 3/35; 22/9; 30/2; 36/3, सामवेद – 6(3), 10(1), तैत्तिरीय संहिता 1/5/6/4; 4/1/11/1, तैत्तिरीय आरण्यक 1/11/2
4. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी – पृ0 121

बुद्धि के विभिन्न स्तरों के कारण उपनयन का समय भी भिन्न–भिन्न है। गृह्यसूत्रों के अनुसार ब्राह्मण का उपनयन आठवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का ग्यारहवें वर्ष में, वैश्य का बारहवें वर्ष में सम्पन्न करा देना चाहिए। (पारस्कर गृह्यसूत्र 2/2)

मनुस्मृति के अनुसार भी यही समय उत्तम है–

"गभष्टिमे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।

गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भान्तु द्वादशे विशः।। (2/36, मनुस्मृति)

कुछ संशोधन के उपरान्त अन्तिम अवधि का उल्लेख करते हुए मनु ने कहा है कि–

"आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।

अद्वाविशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः।। (मनु0 2/38)

ब्राह्मणों का सोलह वर्ष तक, क्षत्रिय का तेइस वर्ष तक तथा वैश्यों का चौबीस वर्ष तक उपनयन अवश्व हो जाना चाहिए। अन्यथा द्विजत्व प्राप्त नहीं होगा और उनकी व्रात्य संज्ञा हो जायेगी–

"अत ऊर्ध्वं त्रयोऽथेते यथा कालमसंस्कृताः।

सावित्री पतिता व्रात्या भवत्त्यार्यविगर्हिताः।।" (मनु0 2/39)

इसीलिए ब्रह्मवर्चस् की कामनावाले ब्राह्मण बालक का पाँचवे वर्ष में, बल की इच्छा वाले क्षत्रिय बालक का छठे वर्ष में और अलौकिक समृद्धि की कामना वाले वैश्य बालक का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार करा देना चाहिए–

"ब्रह्मवर्चस कामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।

राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।।" (मनु0 2/37)

यज्ञोपवीत संस्कार ऋतुओ के अनुरूप कराने का उल्लेख बोधायन ग्रह्यसूत्र में

मिलता है जैसे

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयति ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यं।

वर्षा सु रथकारमिति। (बोधायन गृह्यसूत्र 11/5/6)

ब्राह्मण का उपनयन वसन्त में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में, वैश्य का शरद ऋतु में तथा रथकार का उपनयन वर्षा ऋतु में होना चाहिए। उपनयन एक ऐसा संस्कार है जो कि अगले संस्कार यानि वेदाध्ययन अथवा ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश के पूर्व की तैयारी स्वरूप सम्पन्न कराया जाता है।

गृह्यसूत्रों नें उपनयन संस्कार की प्रक्रिया बताते हुए कहा है कि "उपनयन संस्कार के उपरान्त तीन रात या बारह रात अथवा एक वर्ष तक लवण का सेवन नहीं करना चाहिए। पृथ्वी पर शयन करना चाहिए। (आश्वलायन गृह्यसूत्र 1/22/17) तथा "तीन दिनों तक अग्नि प्रज्ज्वलित रहनी चाहिए। यह अग्नि उपनयन काल की है उसके बाद साधारण अग्नि में समिधा डाली जाती है। समिधा पलाश, अश्वत्थ, न्यग्रोध, प्लक्ष, वैकंकत, उद्‌म्बर, विल्व, चन्दन, सरल, शाल, देवदारू एवं खदिर की हो सकती है।"1 तत्पश्चात गुरू की आज्ञा से ब्रह्मचारी निम्न लिखित धर्मों का पालन करता है–

1. भिक्षा माँगना
2. सन्ध्या
3. अघमर्षण
4. अर्घ्य।

1. भिक्षा माँगना–

आचार्य पात्र एवं दण्ड देता है, तथा माता से सर्वप्रथम बालक को भिक्षा माँगने का आदेश देता है। उसके बाद अन्य भिक्षा दयालु घरों से माँगकर बालक आचार्य को देता है।

---

1. बोधायन गृह्यसूत्र – 2/5/55

"ब्राह्मण **'भवति भिक्षां देहि'** कहें तथा राजन्य **'भिक्षां भवति देहि'** का उच्चारण करें और वैश्य **'देहि भिक्षां भवति'** कहकर भिक्षा माँगे।"[1]

शूद्रों से भिक्षा नही माँगनी चाहिए।[2] पाराशरमाधवीव 1/2 के अनुसार तो आपत्तिकाल में भी शूद्रों के यहाँ पका भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए।

2. सन्ध्या–

उपनयन के बाद संध्या करना अनिवार्य है जैसा कि पूर्व में मैने उल्लेख किया है कि – गायत्री मंत्र की इसमें प्रधानता रहती है। क्योंकि परमज्ञानी महर्षियों ने अपने ज्ञान से यह अनुभव कर लिया था कि– **"ऊँ स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानां आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यम् दत्त्वा ब्रजत ब्रह्मलोकम्।।"** बुद्धि, आयु, आध्यात्कि शक्तियों और यहाँ तक कि ब्रह्मलोक की प्राप्ति का भी एक सशक्त माध्यम है गायत्री मंत्र। स्नान के बाद शुद्ध होकर स्वच्छ आसान पर बैठकर तथा यज्ञोपवीत धारण कर प्रातः पूर्वाभिमुख एवं सायंकाल को उत्तर–पश्चिम की ओर मुँह करके संध्योपासना करनी चाहिए।

प्राणायाम योगासन आदि भी नित्य करना अनिवार्य है क्योंकि–

"प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।

व्याहृति प्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः।।"[3]

प्राणायाम में भी गायत्री मन्त्र एवं व्याहृतियां दुहराना चाहिए। इस प्रकार

---

1. बोधायन गृह्यसूत्र – 2/5/47
2. याज्ञवल्क्य स्मृति – 2/1/83 तथा मनुस्मृति – 1/85
3. मनुस्मृति – 6/70

प्राणायाम करने से अनेक दोष नष्ट हो जाते हैं–

"...............................तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्"1

3. अघमर्षण –

यह पाप भगाने की क्रिया है। गौ के कान के समान दाहिने हाथ का आकार बनाकर जल लेकर नाक के पास रखकर 'ऋतंच' नामक तीन मन्त्रों का पाठकर बायीं ओर पृथ्वी पर जल गिरा देना चाहिए।[2]

4. अर्घ्य–

बोधायन धर्मसूत्र में अर्घ्य की प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए महर्षि बोधायन कहते हैं कि[3] "गायत्री मंत्र का पाठ कर तीन बार सूर्य को दोनो हाथों से जल अर्पण करना चाहिए। जो व्यक्ति सन्ध्या नहीं करता उससे राजा शूद्र का काम कराने का अधिकारी है।"

(11) वेदारम्भ संस्कार –

उपनयन संस्कार के पश्चात् आचार्य शिष्य को वेदों की साङ्ग और सरहस्य शिक्षा देते थे–

"उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्विजः।

सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।।"4

वेद ज्ञान का आरम्भ गायत्री मन्त्र के उपदेश के साथ होता था। प्राचीन काल में

---

1. मनुस्मृति – 6/71
2. धर्मद्रुम – आचार्य राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय – पृ0 160
3. बोधायन धर्मसूत्र – 2/4/20
4. मनुस्मृति – 2/140

अध्यापन अथवा शिक्षण मौखिक ही होता था। इसी कारण गुरू को सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारक माना जाता था। (आपस्तम्ब धर्मसूत्र) तथा गुरू को साक्षात् परब्रह्म का विग्रह ही मान लिया जाता था– (मनुस्मृति 2/228)

गुरूर्ब्रह्मा गुरू विष्णुः गुरूरेव महेश्वरः।

गुरूः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः।।

ऋग्वेद[1] अथर्ववेद[2], गोपथ ब्राह्मण[3] तथा शतपथ ब्राह्मण[4] में यह स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि–

"यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।

सर्वं तदेषां समृधेव पर्वं यत्सुवाचो वदथनाध्यत्सु।।"

वेद पढ़ने वाला अन्तेवासी गुरू की बातें (उपदेश) उसी प्रकार दुहराता है; जिस प्रकार एक मेढ़क दूसरे मेढ़क की वाणी का अनुवर्तन करता है।

मनुस्मृति के अनुसार शुभ विद्या शूद्र से भी ब्राह्मण तथा अन्य वर्ण सीख सकते हैं। आपत्काल में क्षत्रिय एवं वैश्य को भी गुरू या आचार्य बनाया जा सकता है।

वैदिक शिक्षा पद्धति में शुद्ध उच्चारण का विशेष महत्त्व था। त्वष्टा के उच्चारण में अशुद्धि हो जाने के कारण वृत्तासुर की मृत्यु हो गई थी–

"दुष्टश्शब्दस्स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुस्स्वरतोऽपराधात्।।"[5]

---

1. ऋग्वेद – 7/103/5
2. अथर्ववेद – 11/7/3
3. गोपथ ब्राह्मण – 2/1
4. शतपथ ब्राह्मण – 11/5/4/12
5. महाभाष्य/पस्पशाह्निक

अथर्ववेद में कहा गया है कि जो ब्रह्मचारी तपश्चर्यापूर्वक वेद का स्वाध्याय करता है; वह पूर्ण विद्या से युक्त होकर इस धरा धाम पर प्रकाशित होता है–

"तानिकल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽस्तिष्ठत्तत्यमानः समुद्रे।

सस्नाते ब्रभ्रुः पिंगलः पृथिव्यां बहुरोचते।।"1

प्राचीन काल में शिक्षा का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का ज्ञान प्राप्त करना था।

"सा विद्या या विमुक्तये" वैदिक शिक्षा मौखिक और स्वाध्याय, इन दो रूपों में प्रचलित थी। मौखिक शिक्षा–प्रणाली में मन्त्रों को कण्ठस्थ करने की प्रक्रिया में मन्त्र के छन्दों–पदों, शब्दों, अक्षरों और ध्वनि के उच्चारण को समुचित रूप से स्पष्ट किया जाता था। इन्हीं को पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ और घनपाठ कहते हैं।

वैदिक काल में आचार्य मन्त्रों के उच्चारण–अभ्यास पर अंगुली–संकेतों का यथासम्भव उपयोग करते थे और उच्चारण की शुद्धि पर पूर्ण ध्यान दिया करते थे। ऋग्वेद के भाषासूक्त (10/71) में भी भाषा की शुद्धता पर बल दिया गया है।

वेदों के आधार पर विद्या के दो रूप माने जाते है।

1. पराविद्या
2. अपरा विद्या।

अध्यात्म विद्या परा विद्या कहलाती थी और शेष विषयों से सम्बन्धित विद्या को अपरा विद्या कहते हैं–

"द्वे विद्ये वेदितत्ये इति हस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापराच। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।

---

1. अथर्ववेद – 11/5/26

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।"1

यजुर्वेद में परा और अपरा को क्रमशः विद्या और अविद्या कहा गया है–

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यामृतमश्नुते।।"2

प्राचीन काल में विद्याध्ययन के तीन प्रकार प्रचलित थे–

1. श्रवण
2. मनन
3. निदिध्यासन।

सर्वप्रथम विद्यार्थी वैदिक मन्त्रों को गुरूमुख से श्रवण करते थे। उसके बाद सुने हुए मन्त्रों का मनन करते थे। मनन–चिन्तन के उपरान्त वैदिक मंत्र के तत्त्व को आत्मानुभूत करते थे यही निदिध्यासन है।[3]

वैदिक युग में पाठ का अर्थ समझकर पढ़ने पर बल दिया जाता था। महाभाष्यकार के मतानुसार **'यदधीतमविज्ञातग्निगदेनेव शब्यते।**

"अनग्नाविव शुष्केन्धो न तज्ज्वलति कर्हिचित्।।"4

वेदाध्ययन के समापन पर आचार्य शिष्य को तीन ऋणों का ज्ञान कराता है–

1. देव ऋण 2. पितृ ऋण 3. ऋषि ऋण

---

1. मुण्डकोपनिषद् – 1/1/4–5
2. यजुर्वेद – 40/14
3. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी, पृ0 123
4. महाभाष्य/पस्पशाह्निक

गीता कहती है–

"देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।"1

माता पिता ने हमें जन्म दिया, अतएव हम भी कृती पुत्रों को जनम दें, जिससे प्रभु की यह सृष्टि परम्परा विच्छिन्न न हो, इस प्रकार हम पितृऋण से मुक्त होते हैं।

देव अन्न, जल देकर हमारे प्राणों की रक्षा करते हैं इसलिए यज्ञादि के द्वारा हमें देव ऋण से मुक्त होना चाहिए, तथा "ऋषियों ने वेदों और उपनिषदों के रूप में हमें अपने जीवन की सम्पूर्ण ज्ञान सम्पदा प्रदान की है, अतएव विद्वान बनकर अगली पीढ़ी को विद्वान बनाकर हमें ऋषि ऋण से अनृण होना चाहिए–

"ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।

अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः।।"2

इस संस्कार का कार्यकाल समाप्त होते ही गुरू को गुरूदक्षिणा देकर बालक अगले संस्कार के लिए तैयार हो जाता है।

12. समावर्तन संस्कार –

वेदाध्ययन के पश्चात समावर्तन संस्कार होता था। समावर्तन शब्द का अर्थ है, वेदाध्ययन के अनन्तर गुरूकुल से घर की ओर प्रत्यावर्तन–

"तत्र समावर्तन नाम वेदाध्ययनान्तर गुरूकुलात् स्वगृहागमनम्।"3

समावर्तन संस्कार आधुनिक उपाधि वितरण समारोह (दीक्षान्त समारोह) के

---

1. गीता – 3/11
2. मनुस्मृति – 6/35
3. वीर मित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग 1, पृ0 564

समान था आचार्य कुल में समावर्तन करने का अधिकार केवल उन्हीं ब्रह्मचारियों को था, जो गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के योग्य होते थे।[1] तैत्तिरीय उपनिषद मे समावर्तन संस्कार के समय दी जाने वाली व्यवहारिक शिक्षा का आदर्श रूप दृष्टिगोचर होता है– ....सत्यंवद। धर्मंचर..................आदि।[2]

समावर्तन संस्कार के पश्चात युवक स्नातक (शिक्षित) माना जाता था।

13. विवाह संस्कार–

स्नातक गुरू की आज्ञा से समावर्तन संस्कार सम्पन्न कर अनुरूप कन्या से विवाह संस्कार सम्पन्न कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था–

"गुरूणामनुतः स्नात्वा समावृतो यथाविधि।

उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णा लक्षणान्वितम्।।"3

विवाह संस्कार पति–पत्नी की अद्वैतता का संस्कार है। तैत्तिरीय संहिता (7/2/87), ताण्ड्य ब्राह्मण (7/10/1) और ऐतरेय ब्राह्मण (2/7/5) में विवाह शब्द का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के अनुसार पाणिग्रहण विवाह संस्कार का अत्यधिक महत्वपूर्ण विधान है–

"गृभ्णामिते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्यायदेवाः।।"4

ऋग्वेद (10/85/47) के अनुसार विवाह एक यज्ञ है तथा विवाह मण्डप एक

---

1. वैदिक संस्कृति और सभ्यता – डॉ0 मुंशीराम शर्मा – पृ0 68
2. तैत्तिरीय उपनिषद् – 1/11
3. मनुस्मृति – 3/4
4. ऋग्वेद – 10/25/36

यज्ञशाला है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (2/2/2/6) में ऐसा वर्णित है कि (अज्ञियो व एषयोऽपत्नीकः) विवाह एक यज्ञ है तथा जो व्यक्ति विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश नहीं करता था, उसे यज्ञहीन कहा जाता था।

विवाह के प्रकार— मनुस्मृति में विवाह के निम्नाँकित आठ प्रकार बतलाये गये हैं—

1. ब्राह्म 2. दैव 3. आर्ष 4. प्राजापत्य

5. आसुर 6. गान्धर्व 7. राक्षस 8. पैशाच।

आरम्भ के चार विवाह प्रशस्त और अन्तिम चार विवाह निन्दित कहे गये हैं।

विवाह की आदर्श परम्परा के अन्तर्गत ब्रह्मविवाह में पाणिग्रहण के बाद सप्तपदी का विधान होता है "इसमें वर—वधू को दक्षिण पग उठवाकर चलने का आज्ञा देता हैं इसमें ईशान दिशा की ओर वर—वधू दोनो साथ—साथ सात पग चलते हैं। प्रथम पग चलने पर अन्न, द्वितीय पग में ऊर्जा अथवा बल, तृतीय पग में ऐश्वर्य—वृद्धि, चतुर्थ पग में सुख, पंचम पग में सन्तति, छठें पग में ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार तथा सप्तम पद में सखाभाव के लिए निर्देश किया गया है। दोनो सात पद साथ चलकर यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करते हुए अपने आसन पर विराजमान हो जाते हैं, परन्तु इस बार वधु वर के वामाङ्ग की ओर बैठती है। यह प्रक्रिया ग्रन्थि बंधन के पश्चात होती है जिसका भाव है एकात्मता।"[1]

14. वानप्रस्थ संस्कार—

मनुस्मृति के अनुसार विधिपूर्वक विद्याव्रती द्विज गृहस्थाश्रम में रहने के पश्चात् यती इन्द्रियजयी बनने के लिए वन में निवास करें। जब गृहस्थ के बाल पकने लगें और

---

1. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी, पृ0 114

नाती का जन्म हो जाये, तब उसे वन का आश्रम ग्रहण करना चाहिए–

"एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।

वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः।।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।।

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।

पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा।।"[1]

जाबालोपनिषद् मे वान प्रस्थादि चारों आश्रमों का उल्लेख हुआ है–

"ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेद्, गृही भूत्वा वनी भवेद्, वनीभूत्वा प्रव्रजेद्।"[2]

व्यक्ति "वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करते समय पत्नी की इच्छा होने पर उसे अपने साथ रख सकता है, अन्यथा उसे पुत्रों के संरक्षण में छोड़कर ब्रह्मचर्य धारण करते हुए वानप्रस्थी बनें।"[3]

गृहस्थाश्रम के समस्त भोग विलास की वस्तुएं त्याग देनी चाहिए (सुस्वादुभोजन आरामदायक शैय्या, स्त्री संग आदि)

पञ्चमहायज्ञ प्रतिदिन करना चाहिए। तथा वेद का मौन पाठ **(स्वाध्यायवान्दानशीलः सर्वसत्त्वहितेरतः)**[4] तथा **"स्वध्याये नित्ययुक्तः"**[5]

---

1. मनुस्मृति – 6/1–3
2. जाबालोपनिषद् – 3/1
3. याज्ञवल्क्य स्मृति – 3/45 : एवं मनुस्मृति – 6/3
4. याज्ञवल्क्य स्मृति – 3/48
5. मनुस्मृति – 3/48

15. सन्यास संस्कार–

सन्यास त्याग का आश्रम है। इसमें वर्णसूचक चिन्हों का परित्याग कर देना चाहिए। मनुस्मृति में इस संस्कार से पूर्व की प्रक्रिया का उल्लेख इस प्रकार मिलता है–

"सन्यस्य सर्वं कर्माणि कर्म दोषानपानुदन्।"

अर्थात् गृहस्थ के अग्निहोत्रादि समस्त कर्मों को त्यागकर सन्यास ग्रहण करना चाहिए।

महाभारत तथा वृहत्पराशर स्मृति– (12/165–166) में सन्यासी के चार भेद बतलाये गये हैं– 1. कुटीचर 2. बहूदक 3. हंस 4. परमहंस।

कुटीचक अपने गृह में ही त्याग भाव से पुत्र पौत्रादि से ही भिक्षा माँगकर निर्वाह करता है। योग मार्ग के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का उपाय करता है।

बहूदक सन्यासी सात ब्राह्मणों के यहाँ भिक्षा माँगते हैं तथा त्रिदण्ड, कमण्डलु कषाय वस्त्र धारण करते हैं। हंस संन्यासी जटा धारण करने वाले, त्रिपुण्ड्रोर्ध्व पुण्ड्रधारी होते हैं। परमहंस सबको आत्मवत् समझते हैं। परमहंस सन्यासी संसार के सत्यासत्य एवं द्वैताद्वैत आदि उलझनों से परे होते हैं।

16. अन्त्येष्टि संस्कार–

ऋग्वेद में अन्त्येष्टि संस्कार पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है– (1/2/3/4) तथा (10/14, 16, 18)

ऋग्वेद के (10/18/11) सूक्त के अनुसार–

"उच्छ्वञ्चस्व पृथिवी मानि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवंचना।

माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि।"

अग्निदाह के पश्चात मृतक की अस्थियाँ संगृहीत कर गाड़ दी जाती थीं, तथा

कभी–कभी दिवंगत व्यक्ति की स्मृति में स्मारक खड़ा कर दिया जाता है। (ऋग्वेद 10/18/12) ऋग्वेद (10/16) सूक्त मृतक को अग्नि में समर्पित करने का संकेत करता है, तथा ऋग्वेद (10/18/10–13) मृतक को भूमि में गाड़ने का संकेत देता है। श्री मदभगवद्गीता के अनुसार–

"जातस्य हिध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।"1

संसार में जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मरता है उसका जन्म भी निश्चित है। मृत शरीर का अग्निदाह करना चाहिए। शिशु, संन्यासी और संक्रमित रोगी इसके अपवाद स्वरूप जल में प्रवाहित किए जाते हैं, किन्तु वेद विहित रीति के अनुसार मृत शरीर को सर्वप्रथम स्नान कराकर नवीन वस्त्रों से युक्त कर, चन्दन, तिल, केसर आदि से संयुक्त काष्ठ में घृत द्वारा प्रज्ज्वलित अग्नि के माध्यम से जला दिया जाता है।

मृतक का शिर उत्तर, ईशान या वायव्य कोण में रखना चाहिए चिता को अग्नि शिर से प्रारम्भ कर पैरों तक लगाई जाती है।[2]

वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश में (पृ0 142) में शंख के मत को उदघृत करते हुए कहा गया है कि–

"संस्कारैः संस्कृतः पूर्वैरूत्तरैरनु संस्कृतः।

नित्यमष्टगुणैर्युक्तो ब्राह्मणो ब्रह्म लौकिकः।

ब्राह्मं पदमवाप्नोति यस्मान्न च्यवते पुनः।।"

इन संस्कारों से संस्कृत तथा आठ आत्म गुणों (दया, क्षमा, शौच, अनसूया,

---

1. गीता – 2/27

2. वैदिक संस्कृति और सभ्यता – डॉ0 मुंशीराम शर्मा, पृ0 115

अनायास, मंगल, अकार्पण्य, अस्पृहा) से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक में पहुँचकर ब्रह्म पद प्राप्त कर लेता है, जिससे फिर कभी च्युत नहीं होता।

पात्रों के संस्कार–

डा0 राजाराम रस्तोगी ने अपनी पुस्तक 'तुलसीदास जीवनी और विचारधारा' में लिखा है कि तुलसीदास के मानस में नौ संस्कारों का विवरण उपलब्ध है।' किन्तु मेरे विचार से प्रत्यक्ष रूप से भले ही नौ संस्कारों का वर्णन हो किन्तु परोक्ष रूप से सभी संस्कारों का भाव निरूपित किया गया है। इस तथ्य की सिद्धता पात्रों के संस्कारों के वर्णन से होगी।

1. गर्भाधान संस्कार– पुत्रप्राप्ति की इच्छा से राजा दशरथ गुरू वशिष्ठ के आश्रम जाते हैं–

"एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं।।

गुरू गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला।।"[1]

गुरू द्वारा ऋष्यश्रृंग मुनि से यज्ञ का अनुरोध करना तथा यज्ञ के फलस्वरूप यज्ञफल रूप पायस की प्राप्ति।[2] जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि वेदों मे गर्भाधान के पूर्व यज्ञ का विधान है जिसमें उत्तम पुत्र की कामना की जाती है।

इस प्रकार वेदोक्त रीति से यज्ञ के फलस्वरूप सभी रानियाँ गर्भधारण करती हैं–

"एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भइ हृदय हर्षित सुखमारी।।"[3]

इस चौपाई के दूसरे खण्ड में गर्भाधान के पश्चात होने वाले दोनों संस्कारों के

---

1. रामचरित मानस – 1/189–1, 2
2. रामचरित मानस – 1/189–5, 6
3. रामचरित मानस – 1/190–5

भाव समाहित हैं क्योंकि पुंसवन और सीमन्तोन्नयन दोनो संस्कारों की सम्पन्नता का उद्देश्य माँ और बच्चे की कुशलता और प्रसन्नता से ही पूर्ण होता है।

राजा दशरथ की तीनों रानियों की प्रसन्नता इन तीनों संस्कारों की सम्पन्नता की सूचक है। गोस्वामी तुलसीदास परम विद्वान थे तीन संस्कारों का मूल भाव लेकर ही उन्होने इस चौपाई की रचना की होगी।–

4. जातकर्म संस्कार– इस प्रकार सुखपूर्वक नौ मास व्यतीत हो गये अब यह अवसर आ गया जिसमें प्रभु को प्रकट होना था–

सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ।।

पुत्रों के जन्म के पश्चात राजा दशरथ ने जातकर्म संस्कार सम्पन्न किया

"नंदीमुख सराध करि जात करम सब कीन्ह।

हाटक धेनु बसन मनि नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह।।"1

पुराणों के अनुसार जातकर्म संस्कार में पितरो की प्रसन्नता के लिये श्राद्ध किया जाता था जिसको राजा दशरथ ने भली भाँति सम्पन्न किया और बहुत प्रकार से दान देकर सभी को संतुष्ट किया।

5. नामकरण संस्कार–

महर्षि वशिष्ठ के द्वारा नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ–

नामकरन कर अवसर जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी।।2

नामकरण के अवसर से तुलसी दास जी का तात्पर्य है कि जन्म के कुछ दिन के उपरान्त जैसा कि गृह्यसूत्रों में वर्णित है।

---

1. रामचरित मानस – 1/193
2. रामचरित मानस – 1/197–2

1. श्री राम का नामकरण–

"जो आनंदसिंधु सुख रासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।।

सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा।।"1

2. श्री भरत का नामकरण–

"विस्वभरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।"

3. श्री शत्रुघ्न का नामकरण–

जाके सुमिरन ते रिपुनासा। नाम सत्रुहन वेद प्रकाशा।।

4. श्री लक्ष्मण का नामकरण–

"लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।

गुरू वशिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार।।"2

इस प्रकार गुरू वशिष्ठ द्वारा चारों भाइयों का उनके सहज गुणों को परखकर नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ।

6. चूड़ाकर्म संस्कार–

कुछ समय बीतने के पश्चात् चारों राजकुमारों का चूड़ाकर्म (मुण्डन) संस्कार किया गया तथा इसी उपलक्ष में ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया गया–

"चूड़ाकरन कीन्ह गुरू जाई। विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई।।"3

प्रत्येक संस्कार एक उत्सव के रूप मे मनाया जाता था क्योंकि भारतीय संस्कृति की उत्सव प्रधानता विश्व विख्यात है।

---

1. रामचरित मानस – 1/197–3, 4
2. रामचरित मानस – 1/197–5, 6
3. रामचरित मानस – 1/203–3

7. उपनयन संस्कार–

"भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरू पितु माता।।"1

कुमार अवस्था को प्राप्त होते ही माता पिता और गुरू ने यज्ञोपवीत संस्कार कर चारों भ्राताओ को गुरू वशिष्ठ को दे दिया।

8. वेदारम्भ संस्कार–

"गुरूगृह पढ़न गए रघुराई। अलप काल विद्या सब आई।।"2

यहाँ पर केवल रघुराई अर्थात राम के विद्याध्ययन की बात कही गई है किंतु तुलसीदास जी के 'रघुराई' शब्द मे चारों भाइयों की एकात्मता प्रतीत होती है। इस प्रकार श्री राम अपने भाइयों सहित विद्या, विनय और शील इन सभी सद्‌गुणो के भण्डार बन गये

9. समावर्तन संस्कार–

"विद्या विनय निपुन गुन सीला।।"3

इस विद्याशीलता का उत्कृष्ट प्रमाण उनके आचरण में इस प्रकार दृष्टिगत होता है–

"प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुर नावहिं माथा।।"4

10. विवाह संस्कार–

रामचरित मानस में भगवान शंकर तथा श्री राम दोनो के विवाह का विस्तृत वर्णन है।श्री राम के दो प्रकार के विवाह हुए है 1. आर्ष विवाह 2. ब्राह्म विवाह। समाज शास्त्र के अनुसार– पहले विवाह का नियम यह है कि कन्या से विवाह की कोई शर्त

---

1. रामचरित मानस – 1/204–3
2. रामचरित मानस – 1/204–4
3. रामचरित मानस – 1/204–6
4. रामचरित मानस – 1/205–7

रखी जाती थी जो राजा या राजकुमार उस शर्त को पूराकर लेता था उसी से उस कन्या का विवाह मान्य माना जाता था।

इसके अनुसार श्री राम के धनुषभंग करते ही सीता द्वारा वरमाला पइनाई गई और विवाह सम्पन्न हो गया।

"तेहिछन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।।"1

फिर– गावहिं छवि अवलोक सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली।।2

किंतु वेदरीति से और कुल रीति से विवाह की सम्पन्नता का उद्देश्य पुत्र विवाह में पिता–माता तथा परिजनो और पुरजनों को विशेष आनन्द की अनुभूति होती है, इसी कारण ब्राह्म विवाह सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इसी कारण गुरू की आज्ञानुसार–

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना।।

टूटत ही धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग विदित सब काहू।।3

"तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारू।

बूझि विप्र कुलवृद्ध गुर बेद बिदित आचारू।।"4

श्री राम का ब्राह्म विवाह सम्पन्न हुआ तथा भरत, लक्ष्मण शत्रुघ्न ने भी जनकानुज पुत्रियों का पाणिग्रहण किया।

गोस्वामी तुलसीदास ने उत्तर भारत में प्रचलित विवाह संस्कार की एक–एक रीति को चारों भाइयों के विवाह में बड़ी सुन्दरता के साथ सजाया है– जैसे सर्वप्रथम

---

1. रामचरित मानस – 1/261–8
2. रामचरित मानस – 1/264–8
3. रामचरित मानस – 1/286–7, 8
4. रामचरित मानस – 1/286

बारात का आगमन, स्वागत, द्वारचार, मंगलगान, गौरी गणेश पूजन, कन्यादान, पाँव पखारना, भाँवर, दानदहेज, लहकौर, गोदान तथा विदाई के समय माता का दामाद से विनय करना आदि।

1. बारात का आगमन–

चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता।।

2. स्वागत–

"संख निसान नवन बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे।।

लेन चले सादर एहि भाँती। गए जहाँ जनवास बराती।।

3. द्वारचार–

"परिछनि करहिं मुदित मन रानी।।"

"सजि आरती अनेक विधि मंगल सकल सँवारि।

चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनी बरनारि।।"

4. मंगलगान–

"सकल सुमंगल अंग बनाएँ। करहिं गान कलकंठि लजाएँ।।"

5. न्योछावर–

"नाऊ बारी भाट नट राम निछावर पाइ।

मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदय समाइ।।"

6. बारातियों का सम्मान–

"पूजेभूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती।।"

---

1. रामचरित मानस – बालकाण्ड विवाह संस्कार – दोहा सं0 300 से 323 तक

7. गौरीगणेश पूजन–

आचारू करि गुर गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।

8. पाँव पखारना–

पढहिं वेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरू जानी।।

बरू विलोकि दम्पति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे।।

9. पाणिग्रहण–

"पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हिय हरशे तब सकल सुरेसा।।

"बर कुँअर कर तल जोरि साखोचारू दोउ कुलगुर करैं।

भयो पानिगहनु विलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं।।"

10. कन्यादान–

"करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृप भूषन कियो।।"

11. भाँवरें –

"कुँअरू कुअँरि कल भाँवर देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं।।"

12. भाँवर फेरना–

"प्रभुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी। नेग सहित सब रीति निबेरी।।"

भाँवरी फेरने का तात्पर्य है वर के वामाङ्ग की ओर वधु का स्थान ग्रहण करना।

13. माँग भरना–

"राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जात बिधि केहीं।

14. समधौरा– इस रीति में कन्या का पिता वर के पिता से अपनी कन्या के सुख और अपराध क्षमा की कामना करता है–

"कर जोरि जनकु बहोरी बंधु समेत कोसल राय सों।

ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करूना नई।।"

15. लहकौर–

इस रीति में कुल देवता के समक्ष वर तथा वधु एक दूसरे को दूध–भात का ग्रास देते हैं–

"कोहबरन्हिं आने कुँअर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।

लहकौर गौरि सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहैं।"

16. जेवनार या कलेवा–

पुनि जेवनार भई बहुभाँती। पठए जनक बोलाइ बराती।।

सादर सबके पाय पखारे। जथा जोगु पीढ़न्ह बैठारे।।

17. गारी गाना–

"जेवँत देहि मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरूष अरू नारी।।

इसमें स्त्रियाँ हास परिहास पूर्ण गीत गाकर बारातियों का स्वागत करती है।

18. गौदान–

"चारि लच्छ बर धेनु मँगाई। काम सुरभि सर सील सुहाई।।

सब विधि सकल अलंकृतकीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही।।

जनक जी ने प्रसन्न मन से गायों का दान ब्राह्मणों को दिया।।"

19. दान दहेज–

"दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि।

जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि।।"[1]

---

1. रामचरित मानस – 1/133

20. विदाई–

सादर सकल कुअँरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई।।

बहुरि बहुरि भेंटहिं महतारीं। कहहिं बिरंचि रची कत नारीं।।1

इस प्रथा में माता अपनी पुत्री को भावी जीवन में सुखप्राप्ति की सद्शिक्षा देती है।

21. दामाद से याचना–

"हृदय लगाइ कुअँरि सबलीन्हीं। पतिन्ह सौंपि विनती अति कीन्हीं।।"2

इस प्रकार श्री राम सहित चारों भाइयों का विवाह संस्कार सम्पन्न होता है भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के विवाह का विस्तृत वर्णन नहीं है तुलसीदास जी ने संक्षिप्त रूप से यह स्पष्ट कर दिया है कि जिस प्रकार वेद तथा कुलरीति से श्री राम और सीता का विवाह हुआ उसी प्रकार तीनो भाईयों का भी विवाह हुआ–

"तब जनक पाइ वशिष्ठ आयसु व्याह साजि सँवारि कै।

मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लई हँकारि कै।।"3

इनमें माँडवी का विवाह भरत से श्रुतकीर्ति का शत्रुघ्न से तथा उर्मिला का लक्ष्मण जी के साथ हुआ था।

"जस रघुबीर ब्याह विधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहि करनी।।4

---

1. रामचरित मानस – 1/334/7, 8
2. रामचरित मानस – 336–8
3. रामचरित मानस – 325–छं, 1, 2
4. रामचरित मानस – 326/1

14. वानप्रस्थ संस्कार–

वानप्रस्थ संस्कार का स्पष्ट रूप से रामचरित मानस में दो स्थानों पर उल्लेख मिलता है पहला महाराज मनु और शतरूपा की कथा में–

"होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथ पनु।

हृदय बहुत दुखलाग जनम गयउ हरि भगति बिनु।।

बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।।"1

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि आयु के चतुर्थांश में मनुष्य को संसार के विषयों से अपने को मुक्त कर ईश्वर का ध्यान करना चाहिए और दूसरा उल्लेख राजा सत्यकेतु के प्रसंग में है जो कि कैकय देश का राजा था तथा प्रताप भानु जिसका पुत्र था–

"विस्व विदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू।।

धरम धुरन्धर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना।।"2

राजा सत्यकेतु धर्मज्ञ तथा नीतिज्ञ था इसलिए जीवन का अन्तिम भाग आते ही उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंपकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया–

"जेठे सुतहिं राज नृप दीन्हा। हरिहित आपु गवन बन कीन्हा।।"3

जो मनुष्य धर्म को जानता है वह मोक्षप्राप्ति का प्रयत्न अवश्य करता है क्योंकि– **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'** का सिद्धान्त यहीं से प्रारम्भ होता है।

राजा दशरथ के प्रसंग मे उन्होंने अपना मुख दर्पण में देखा तो कानों के समीप

---

1. रामचरित मानस – 1/142, 143–1
2. रामचरित मानस – 1/153–2, 3
3. रामचरित मानस – 153–8

श्वेत केश दिखलाई पड़े तो उन्होंने बुढापे का संकेत मानकर सोचा कि–

"नृप जुबराज राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू।।"1

युवराज राम को राजा बनाकर अपने जीवन का लाभ (मोक्षप्राप्ति हेतु वनगमन) क्यों न लिया जाए ऐसा विचार किया।

"यह बिचारू उर आनि नृप सुदिन सुअवसर पाइ।

प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ।।"2

15. संन्यासाश्रम संस्कार–

यह संस्कार राजा मनु और शतरूपा के प्रसंग मे प्रकट हुआ है, उन्होंने वानप्रस्थाश्रम के समस्त धर्म निभाकर[3] सन्यास ग्रहण किया तथा घोर तप करने लगे–

"द्वादस अक्षर मन्त्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।

वासुदेव पद पंकरूह दंपति मन अति लाग।।

करहिं अहार साकफल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा।।

पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे।।"4

16. अन्त्येष्टि संस्कार–

इस संस्कार का उल्लेख तीन स्थानों पर किया गया है–

1. दशरथ मरण 2. जटायु मरण 3. रावण मरण। तुलसी दास जी ने वेद, स्मृति तथा पुराण तीनों को आधार मानकर इस संस्कार का उल्लेख किया है।

---

1. रामचरित मानस – 2/2–8
2. रामचरित मानस – 2/2
3. बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा।।
   (रा०च०मा० 1/143–3, 8)
   कृष सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना।।
4. रामचरित मानस – 1/143–144–1, 2

1. राजा दशरथ का अन्त्येष्टि संस्कार–

"राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहर रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुर धाम।।"1

"नृप तनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा।।
चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगन्ध सुहाए।।
सरजुतीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई।।
एहि विधि दाह क्रिया सब कीन्हीं। विधिवत न्हाइ तिलां जुलि दीन्ही।।"2

दाह क्रिया के दस दिनों के पश्चात् दशगात्र करने का विधान स्मृतियों तथा पुराणों में वर्णित है–

"सोधि सुमृति सब वेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधानां।।"
भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना।।"3

इस प्रकार भरत सब प्रकार से गुरु की आज्ञानुसार दान देकर शुद्ध हुए।

2. गिद्ध जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया–

गिद्धराज जटायु का क्रियाकर्म श्री राम ने स्वयं किया था–

"अबिरल भगति मागि बर, गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम।।"

---

1. रामचरित मानस – 2/155
2. रामचरित मानस – 2/170–1–5
3. रामचरित मानस – 2/170–6, 8
4. रामचरित मानस – 3/32

3. रावण का अन्त्येष्टि संस्कार–

रावण की अन्त्येष्टि के भी संकेत मात्र प्राप्त होते है–

"कृपा दृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका

कीन्ह क्रिया प्रभु आयसु मानी। विधि वत देस काल जियँ जानी।।"

विभीषण ने देश और काल का विचार कर रावण का अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया। देश और काल के विचार से गोस्वामी जी का यही तात्पर्य स्पष्ट होता है कि प्रत्येक देश तथा प्रत्येक काल में रीतियाँ भिन्न–भिन्न हो सकती है किन्तु उनमें निहित सनातन भाव कभी नहीं बदलते।

इस प्रकार पात्रों के षोडश संस्कारों का विवेचन रामचरित मानस के आधार पर प्राप्त होता है।

ख. संस्कार द्वारा संस्कृति–

संस्कार संस्कृति को जीवित रखने के सशक्त माध्यम है किसी भी व्यक्ति के संस्कारों को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसके देश की संस्कृति कैसी है।

डा0 इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार "भारतीय संस्कृति के इतिहास की यह विशेषता है कि उसका प्रवाह कभी नहीं टूटा।"1 इसका कारण है हमारे षोडश संस्कारों में छिपे संस्कृति के मूल तत्त्व जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांन्तरित होते रहते हैं।

प्राचीन काल से आज तक जन्म से मृत्युपर्यन्त तक के संस्कारों में उन्हीं वेद मन्त्रों का उच्चारण होता रहा है और जब तक ये संस्कार विधिवत सम्पन्न होते रहेंगे तब तक संस्कृति भी जीवित रहेगी।

जैसा कि A.W.Green का मत है कि–

"Culture is the socially transmitted system of idealized weighs knowledge and practice produce and maintain the change in type."2

संस्कृति ज्ञान, व्यवहार तथा विकास की उन आदर्श पद्धतियों एवं ज्ञान और व्यवहार से उत्पन्न उन साधनों को कहते हैं जो सामाजिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते हैं।

अर्थात् संस्कार और संस्कृति दोनो अन्यान्योश्रित हैं। जैसे– "संस्कृति का प्रतिबिंब धर्मोपासना में झलकता है और वह कला एवं साहित्य के माध्यम से अपनी

---

1. भारतीय संस्कृति का प्रवाह – डॉ0 इन्द्र विद्यावचस्पति, पृ0 5
2. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व – A.W.Green, पृ0 175

अभिव्यक्ति करती है।"[1] वैसे ही संस्कारों का प्रतिबिंब संस्कृति में झलकता है। क्योंकि डा0 देवराज के मत से नृ–विज्ञान में संस्कृति का अर्थ होता है सीखा हुआ व्यवहार; अर्थात् वे सब बातें जो हम समाज का सदस्य होने के नाते सीखते हैं। इस अर्थ में संस्कृति यह शब्द परम्परा का पर्याय है।"[2] और संस्कार ही तो परम्परागत होकर संस्कृति का निर्माण करते हैं।

संस्कारों द्वारा संस्कृत व्यक्ति ही समाज में विशिष्टता प्राप्त करते हैं क्योंकि "संस्कार संस्कृति की वह विशेषता या विशेषताओं का समूह है जो उस व्यक्ति को एक खास अर्थ में महत्त्वपूर्ण बनाता है।"[3]

वैदिक संस्कृति की यह प्रमुख विशेषता है इसमें तीन प्रवाह एक साथ प्रवाहित होते हैं 1. मनुष्य का जीवन 2. संस्कार और 3. संस्कृति। जैसे–जैसे मनुष्य का जीवन आगे बढ़ता है वैसे–वैसे एक–एक संस्कार क्रमशः उसका परिमार्जन करते चलते हैं संस्कारों का यह अविरल प्रवाह मानव के अन्तिम क्षण तक चलता है किंतु मृत्यु के उपरान्त भी यह प्रवाह नहीं रूकता क्योंकि जो चला जाता वह अपने पीछे विरासत में अपने पुत्रों–पुत्रियों को अपने संस्कार दे जाता है वही संस्कार जो उसके माता–पिता ने उसे दिये थे इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कारों का हस्तांतरण ही संस्कृति की धारा को प्रवाहित रखते हैं।

सभ्यता –

सभ्यता संस्कृति का वाह्य स्वरूप है। वैसे प्राचीन काल में सभ्यता का अर्थ था सभा में बैठने की योग्यता। "सभायां साधुरिति सभ्यः, सभ्यस्यभावः सभ्यता, सभ्य + तल्

---

1. ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास – डॉ0 प्रभुदयाल मित्तल, पृ0 83
2. भारतीय संस्कृति – डॉ0 देवराज, पृ0 20
3. भारतीय संस्कृति – डॉ0 देवराज, पृ0 21

+ टाप्। सभ्यता सामाजिक विधि (कर्तव्य) तथा निषेध (प्रतिबंध) पर जोर देती है। सभा में शिष्टाचार के नियमों का पालन किया जाता है। अतएव सभ्यता शब्द शिष्टाचार के निमयों के साथ ही सामाजिक उत्तरदायित्व, सामाजिक प्रतिबन्ध और सामाजिक आचरण का भी निर्देश करता है।"1

जन्म से लेकर वेदारम्भ तक के संस्कार मनुष्य को सभ्य तथा शिष्टाचार युक्त बनाने के लिये होते हैं क्योंकि विद्या प्राप्त करने के बाद मनुष्य विनम्र तथा शिष्ट हो जाता है–

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।

तथा संस्कारों से सुसंस्कृत होकर समाज में पात्रता प्राप्त करता है। प्राचीन ऐतिहासिकों का मत है कि प्रारम्भ में मनुष्य पशुओं के समान जंगल में रहता था तथा प्राकृतिक रूप से उत्पन्न कन्द, मूल–फल तथा शिकार करके जानवरों के माँस आदि का भक्षण कर अपनी क्षुधा मिटाता था। परन्तु धीरे–धीरे उसे यह ज्ञान होने लगा कि प्राकृतिक पदार्थ तो वह स्वयं उत्पन्न कर सकता है इस विचार ने कृषि को जन्म दिया इसी क्रम में जैसे–जैसे वस्तुओं की आवश्यकतायें बढ़ती गईं विकास होता गया क्योंकि सामवेद कहता है– **'मनुः कविः'** अर्थात् भविष्य की योजना करने वाला ही वस्तुतः मानव है।

संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से है और सभ्यता का सम्बन्ध मानवीय कार्य कलापों से है।[2] इस प्रकार संस्कृति शब्द बौद्धिक उन्नति का पर्यायवाची है और सभ्यता भौतिक विकास का समानार्थक है।

---

1. भारतीय संस्कृति और सभ्यता – डॉ0 प्रसन्न कुमार आचार्य – पूर्वाभास, पृ0 3
2. भारतीय संस्कृति और सभ्यता – डॉ0 प्रसन्न कुमार आचार्य – पूर्वाभास, पृ0 3, 4

"श्री रामनाथ जी 'सुमन' के अनुसार जो वृत्तियाँ मानव को विकृति से प्रकृति तथा प्रकृति से संस्कृति की ओर ले जाती हैं वे ही यथार्थ धर्म हैं।"1

मेरे विचार से इस आधार पर यदि देखा जाए तो मनुष्य जन्म से पशु के समान ही होता है ये संस्कार ही हैं जिनके द्वारा उसे पशुत्व से मनुष्यत्व प्राप्त होता है और मनुष्यत्व से देवत्व तक जो संस्कार ले जायें वही संस्कार ब्रह्माण्ड की सनातन संस्कृति हैं।

रामचरित मानस में संस्कार द्वारा संस्कृति का निर्माण–

गोस्वामी तुलसीदास संस्कृति के सनातन तत्त्व से भली भाँति परिचित थे। रामचरित मानस मे उन्होने पात्रों के संस्कारों तथा संस्कारों का पात्रो पर प्रभाव भी दर्शाया है। और यह भी स्पष्ट किया है कि जो मनुष्य सुसंस्कृत नहीं है उसका आचरण किस प्रकार का होता है तथा उसकी वेशभूषा बोल–चाल आदि कैसे होते हैं।

संत तुलसीदास ने वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रबल समर्थन प्रस्तुत करके उसकी वैज्ञानिकता भी सिद्ध की है, किस प्रकार एक मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक यदि इन षोडश संस्कारों से ओतप्रोत वर्णाश्रम व्यवस्था के नियमों का पालन करता है तो अवश्य ही धर्म, अर्थ और काम के साथ–साथ मोक्ष का भी अधिकारी बन जाता है।

सुसंस्कृत पात्र– रामचरित मानस में तीन प्रकार की संस्कृतियों से संस्कृत पात्र दृष्टिगोचर होते हैं। 1. दैवी संस्कृति 2. मानवी संस्कृति 3. आसुरी संस्कृति।

दैवी संस्कृति से संस्कृत प्राणी देवता कहलाता है, इस संस्कृति का मूल तत्त्व है निरन्तर परहित संलग्नता। रामचरित मानस में ब्राह्मण, इन्द्रादि देवता, ऋषि मुनि तथा संत समाज इसी संस्कृति के अनुयायी हैं। स्वयं कष्ट सहकर दूसरों को सुख देना यही

---

1. कल्याण धर्मांक – पृ0 93 – लेख – मानवधर्म, लेखक – श्री रामनाथ जी 'सुमन'

तो दैवी संस्कृति है। मानस में संत तुलसी महर्षि बाल्मीकि के मुख से दैवी संस्कृति का बड़ा सुन्दर विवेचन करवाते हैं–

बाल्मीकि जी के अनुसार जिनके ह्रदय में निम्नलिखित सद्‌गुण होते हैं वही मोक्ष (ह्रदयस्थ परब्रह्मवेत्ता) का अधिकारी है–

"काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।

जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया। तिन्ह के ह्रदय बसहु रघुराया।।

सबके प्रिय सबके हितकारी। सुख दुख सरिस प्रसंसा गारी।।

कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।।

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।।"[1]

सोडष संस्कारों से सम्पन्न व्यक्ति भी यदि इन सद्‌गुणों से युक्त नहीं है तो उसके मोक्ष की कोई सम्भावना नहीं क्योंकि–

"निरमल जन मन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।।"

संस्कृति कोई भी हो चरम लक्ष्य तो परमतत्त्व की विलीनता ही है। रामचरित मानस के आधार पर परब्रह्म परमेश्वर दैवी संस्कृति की रक्षा के लिये ही अवतार धारण करते हैं–

"विप्र धेनु सुर संतहित लीन्ह मनुज अवतार"[2]

अर्थात् ब्राह्मण, धेनु (गौ), देवता और संत ये सभी दैवी संस्कृति के रक्षक हैं क्योंकि ये सभी संत प्रकृति के होते हैं और संत कभी विषयों में लिप्त नहीं होते, शील तथा सद्‌गुणों की खान होते हैं, उन्हें पराया दुख दुखी कर देता है, और पराये सुख में

---

1. रामचरित मानस – 2/130–1, 2, 3, 4 – 131/1
2. रामचरित मानस – 1/192

अपना सुख मानते हैं वे सर्वत्र, सबमें, सदा समता रखते हैं। वैरहीन तथा मदहीन होते है। लोभ, क्रोध, हर्ष और भय से मुक्त होते हैं–

"विषय अलम्पट सील गुनागर। पर दुख दुख, सुख सुख देखें पर।।

सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।।"1

मानवी संस्कृति–

मानव संस्कृति का आधार मानवीय संस्कार हैं। वैदिक साहित्य के आधार पर तो सोडष संस्कार ही परोक्ष रूप से मनुष्य के भीतर मानवीय संस्कारों का उदय कर देते हैं किंतु वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल आते–आते असंख्य संम्प्रदायों ने धर्म का तथा संस्कृतियों का रूप ग्रहण कर लिया, परन्तु सनातन काल से चली आरही सनातन संस्कृति के वे सूक्ष्म तत्त्व आज भी धरातल पर विद्यमान है क्योंकि इसके अनुयायियों नें उन तत्त्वों को परम्परागत रूप से जीवित रखा है।

जैसे कि आज भी भारतवासी माता–पिता, गुरू और अतिथि को देवतुल्य मानते है।

"डा0 फादर कामिल बुल्के के अनुसार भारतीय संस्कृति की समस्त आदर्श भावनायें राम कथा में, विशेषकर मर्यादा पुरूषोत्तम राम तथा पतिव्रता सीता के चरित–चित्रण में केन्द्रीभूत हो गई हैं फलस्वरूप रामकथा भारतीय (सनातन) संस्कृति के आदर्शवाद का उज्ज्वलतम् प्रतीक बन गई है।"2

यदि इस आधार पर देखा जाए तो यह सिद्ध हो जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने ग्रन्थ के नायक और नायिका राम और सीता को भारतीय संस्कृति

---

1. रामचरित मानस – 7/38–1, 2
2. रामकथा – डॉ0 फादर कामिल बुल्के, पृ0 742

के उद्धारक के रूप में क्यों चुना।

मानवी संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट प्रतीक श्री राम और सीता के वे कौन से आचरण थे इसका अवलोकन हम रामचरित मानस के आधार पर करेंगे।

पद्मपुराण के अनुसार रामचरित में पातिव्रत्य, भ्रातृस्नेह, गुरूभक्ति, स्वामिसेवा आदि आदर्श साक्षात प्रस्तुत हैं–

"यस्मिन्धर्म विधिः साक्षात्पातिव्रत्यं तुस्थितम्।

भ्रातृस्नेहो महान्यत्र गुरूभक्तिस्तथैव च।।

स्वामिसेवकयोर्यत्र नीतिमूर्त्तिमती किल

अधर्मकरशास्तिवयत्र साक्षाद्रघूदाहृतात्।।"1

जहाँ धर्म के साधन हैं पातिव्रत्य साक्षात् स्थित है, भ्रातृस्नेह तथा गुरूभक्ति, स्वामिसेवक भाव तथा नीति जहाँ स्वयं मूर्तिमती होकर स्थित है अधर्मी किस प्रकार अनुशासित होते हैं यह श्री राम के उदाहराण से साक्षात् स्पष्ट है।

श्री राम तथा उनके भाइयों की आदर्श दिनचर्या के द्वारा हम क्रम बद्ध रूप से संस्कारों का प्रभाव देखेंगे कि प्रातः जागरण से रात्रि विश्राम तक किस प्रकार अपने उज्ज्वल संस्कारों से युक्त आचारण के द्वारा सभी को सुख पहुँचाते हैं–

"प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरू नावहिं माथा।।

आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषहिं मन राजा।।

अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता आज्ञा अनुसरहिं।।

बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई।।

जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सो संजोगा।।"2

---

1. पद्मपुराण, पाताल खण्ड, अध्याय 66–128, 129

2. रामचरित मानस – 1/205–4–8

गुरूकुल मे जो सीखा उसको आचरण में इस प्रकार उतारा **'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव' 'आचार्य देवो भव'** अतः प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम इन्ही देवों की वन्दना करनी चाहिए।

बाल्मीकि रामायण के अनुसार श्री राम अपनी पत्नी सीता को गुरू तथा माता–पिता की सेवा की महिमा इस प्रकार बतलाते हैं–

"अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते।

स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरूम्।।

यत्र त्रयं त्रयो लोकाः पवित्रं सत्समं भुवि।

नान्यदस्ति शुभापाङ्गे तेनेदमभिराध्यते।।"1

अर्थात् माता–पिता और गुरू ये प्रत्यक्ष देवता हैं; इनकी अवहेलना करके अप्रत्यक्ष देवता की विविध उपचारों से आराधना करना कैसे ठीक हो सकता है जिनकी सेवा से अर्थ, धर्म और काम तीनों की प्राप्ति होती है; तथा जिनकी आराधना से तीनों लोकों की आराधना हो जाती है, उन माता पिता के समान पवित्र इस संसार में कोई दूसरा नहीं है; इसीलिए लोग इन प्रत्यक्ष देवों की आराधना करते हैं।

इस प्रकार गुरूकुल में यह भी शिक्षा दी गई कि–

"केवलाघो भवति केवलाघी।।"2

जो मनुष्य अकेले खाता है वह अकेले पाप का भागी होता है। इसलिए श्री राम सदैव 'अनुज सखा संग भोजन करहीं' तात्पर्य यह है कि अकेले सुखों का भोग करने की इच्छा मनुष्य को स्वार्थी बना देती है किंतु संस्कार हमें स्वार्थी बनने से रोकते हैं।

---

1. बाल्मीकि रामायण – 2/30/33–34
2. ऋग्वेद – 10/117/6

आगे वेदारम्भ संस्कार के अंतर्गत गुरू शिष्य को वेद का उपदेश देते हैं यथा–

"न स सखा यो न ददाति सख्ये।"1

अर्थात् जो मित्र की सहायता नहीं करता वह मित्र नहीं है।

इस उपदेश को श्री राम ने अपने जीवन में जीवन्त कर दिखाया, वे कहते हैं–

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।।"2

श्री राम अपने मित्र सुग्रीव के दुख को दूर करने का प्रण करते हुए कहते हैं –

"सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मैं तोरे।।"3

गुरू द्वारा दिये संस्कारों को श्री राम ने इसी प्रकार जीवन पर्यन्त आचरित किया।

गुरू आगे उपदेश करते हैं–

"न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।"4(क)

अर्थात परिश्रम किये बिना देवता भी सहायक नहीं होते किंतु परिश्रम के लिए भी मार्ग निर्धारित करते हुए वेद का कथन है–

"अग्नये नय सुपथा राये अस्मान्.................।"4(ख)

अर्थात् हे अग्निदेव! हमें धन के लिए सन्मार्ग (धर्म) से ले चलो। राजा राम के राज्य में सभी नर नारी परिश्रमी तथा धर्म परायण थे, यह श्री राम के आचरण का ही प्रभाव था क्योंकि महाभारत के अनुसार जैसा राजा का आचरण होता है उसी का

---

1. ऋग्वेद – 10/117/4
2. रामचरित मानस – 4/7–1
3. रामचरित मानस – 4/7–10
4.(क)(ख)– ऋग्वेद – 1/189/1

अनुकरण प्रजा भी करती है अतः राजा को धर्म परायण होना चाहिए–

"धर्मशीलाः प्रजाः सर्वाः स्वधर्मनिरते नृपे।"1

वेद के उपदेशनुसार–

"उपसर्व मातरं भूमिम्।" मातृभूमि की सेवा सर्वोपरि है। श्री राम का भी यही कथन है तथा यही उनके जीवन का सिद्धान्त भी है–

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी।"2

जननी (माता) और जन्म भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर इसलिए हैं क्योंकि महर्षियों के अनुसार–

'यस्याम् पूर्वे जना विचक्रिरे' अर्थात् हे पृथिवी! तुम हमारे पूर्वजों की भी माता हो तुम्हारी गोद में जन्म लेकर पूर्वजों ने अनेक विक्रम के कार्य किये हैं।

इसलिए प्रत्येक मनुष्य को पृथ्वी माता तथा स्वदेश का आभारी होना चाहिए। श्री राम का मातृभूमि तथा प्रजा प्रेम मानस संस्कृति का स्वर्णिम तत्त्व है। उत्तर रामचरित के अनुसार– श्री राम अपने राष्ट्र तथा प्रजा के हित के लिए स्नेह, दया, सांसारिक सुख तथा जानकी का भी त्याग करने की बात कहते हैं–

"स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

आराधनाय लोकस्य मुञ्चत्तो नास्ति में व्यथा।।"3

ऐसा त्याग और समर्पण कही भी दृष्टिगोचर नहीं होता सनातन संस्कृति के मूल तत्त्वों को श्री राम ने अपने जीवन में साकार कर दिया था।

---

1. महाभारत अनुशासन पर्व – 145
2. बाल्मीकि रामायण
3. उत्तर रामचरित

वेद प्रतिपादित वर्णधर्मो को रामचरित मानस के पात्रों ने संस्कार रूप मे ग्रहण कर संस्कृति के रूप में प्रवाहित किया।

संस्कारों के क्रमानुसार व्यक्ति परिवार से समाज की परिधि में प्रवेश करता है; समाजधर्म के निर्वाहन हेतु स्ववर्णानुसार आचरण करना भी संस्कारों के अंतर्गत आता है। उदाहरणार्थ ब्राह्मण के घर जन्मे बालक में ब्राह्मणोचित संस्कारों की शिक्षा दी जाती है, तथा क्षत्रिय कुल मे जन्मे बालक को उसके माता–पिता तथा गुरू क्षत्रिय धर्म की शिक्षा देते हैं।

इसी प्रकार वैश्य तथा शूद्र भी अपने बालकों को अपने वर्णों के अनुसार ही संस्कार देते है।

रामचरित मानस में श्रीराम क्षत्रिय धर्म के संस्कारो से सुसंस्कृत थे–

"प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई।।

होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी।।"1

क्षत्रियों को यही संस्कार दिये जाते हैं कि तन–मन–धन सभी प्रकार से मानवता की रक्षा करनी चाहिए तथा अपने बाहुबल से अन्याय पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

महर्षि विश्वामित्र तथा अन्य ऋषि मुनि स्वयं राक्षसों के विनाश की क्षमता रखते थे किंतु सन्यासाश्रम में प्रवेश करने के कारण युद्ध करना उनके संस्कारों के विपरीत कार्य था इसलिए उन्होंने क्षत्रिय कुमार श्री राम तथा लक्ष्मण को राक्षसों के विनाश के लिये चुना–

"गाधितनय मन चिंता व्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी।।"2

---

1. रामचरित मानस – 1/210–1, 2
2. रामचरित मानस – 1/206–5

संत जनो का हृदय परपीड़ा से द्रवित हो जाता है; सन्यासी व्यक्ति का प्रत्येक कार्य परमार्थ के लिए होता है, महर्षि विश्वामित्र की चिंता इसी परमार्थ का परिणाम है।

रामचरित मानस में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही नहीं शूद्र भी अपने वर्ण संस्कारों में पूर्णतः निष्ठ हैं।

केवट, निषादराजगुह्य तथा शबरी जैसे पात्र शूद्र वर्ण के उत्कृष्ट संस्कारों के द्योतक हैं।

इन्हीं पात्रो की भक्ति और निश्छल संस्कारों को देखकर श्री राम कहते हैं—

"भक्ति वंत अति नीचहु प्रानी। मोहि प्रानप्रिय सुनु मम बानी।।"1

संत तुलसी के अनुसार यदि मनुष्य संस्कारवान है तथा प्रभु प्रेम से परिपूर्ण है तो उसके हृदय में ऊँच—नीच, ब्राह्मण—शूद्र का कोई भेद नहीं रहता महर्षि वशिष्ठ और निषादराज के मिलन से यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है—

"यहि सम निपटनीच कोउ नाहीं। वह वशिष्ठ सम को जग माहीं।।

राम सखा मुनि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा।।"2

ब्राह्मण ही नही उच्चकुल में उत्पन्न राजपुत्र भरत भी निषादराज से बिना किसी भेद भाव के प्रेम बिह्वल होकर मिले—

"करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।

मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदय समाइ।।"3

शूद्र अपने धर्म का निर्वाहन कर रहा है, क्षत्रिय अपने धर्म का तथा ब्राह्मण अपने

---

1. रामचरित मानस
2. रामचरित मानस – 2
3. रामचरित मानस – 2/193

धर्म का, किन्तु वास्तव में इस मिलन से वेद की यह मर्यादा सिद्ध होती है यथा –

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।"1

अर्थात् जो सब प्राणियों को आत्मा में ही देखता है और अपने को सब प्राणियों में ही देखता है, वह इस सम्यक् दृष्टि के कारण किसी से घृणा नहीं करता।

इन्हीं पवित्र भावनाओं से ओतप्रोत संस्कारों के कारण भारतीय संस्कृति आज तक जीवित है।

नारी संस्कारों द्वारा संस्कृति–

"नारी भी पुरूष की तरह जन्मती है, अतः मनुष्य जातीय प्राणी है इसलिए स्वभावतः उसमें भी वे सभी गुण और अवगुण विद्यमान रहते हैं।"2

चूँकि पुरूष और स्त्री का कार्यक्षेत्र भिन्न है। इसीलिए विधाता ने शारीरिक संरचना में भी स्त्री को स्वाभाविक रूप से आकर्षक और कोमल बनाया है। स्त्री को जननी बनने का गौरव प्राप्त है अतः स्वभाव से ही उसमें वात्सल्य, करुणा और प्रेम का भाव विद्यमान रहता है, किंतु शुभ संस्कारों द्वारा इन भावों को और भी परिष्कृत बनाया गया है।

भारतीय संस्कृति में नारी को गौरवशाली स्थान प्राप्त है। अपनी मर्यादा में रहकर वह जगत वंदनीया माता भगवती के समान पूजनीया बन जाती है। ऋग्वेद में नारि के लिए लज्जा रूपी आभूषण का विधान प्राप्त होता है–

"यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्रा वधूरिव।"3

---

1. ईशावास्योपनिषद् – (6)
2. कल्याण नारी अंक – लेख से उद्धृत (डॉ0 सम्पूर्णानंद जी) पृ0 46
3. ऋग्वेद – 8/4/26

वस्त्र द्वारा आवृत वधू की भाँति जो यज्ञ के द्वारा आवृत है। इस मंत्र में नारी के लिये अपने अंगों को ढककर रखने का अर्थात् लज्जा युक्त रहने का स्पष्ट संकेत मिलता है।

वेद तथा शास्त्रों में कहीं भी स्त्री के लिये गुरूकुल में रहकर वेदाध्ययन की विधि नहीं कही गई है। यद्यपि वैदिक काल में स्त्रियाँ वेद की मंत्रदृष्टा भी रहीं हैं। किंतु उनकी शिक्षा दीक्षा उनके पिता, पति एवं भाई द्वारा ही दिये जाने के संकेत प्राप्त होते हैं।

वेद कहता है–

'यद्वै किञ्चमनुवदत्तद्भेषजम्'1 अर्थात् –

इस वेदवाक्य का अनुमोदन महर्षि मनु इस प्रकार करते हैं–

"पति सेवा गुरौवासः।"2

अर्थात् स्त्रियों के निमित्त पति सेवा ही गुरूकुलवास है।

कुमारियों तथा विधवा स्त्रियों के लिये भी अन्य गुरू का विधान नहीं है; क्योंकि कन्याओं का विवाह उपनयन स्थानीय होने से पतिगृह ही गुरूकुलवास होता है। और विधवा के लिये दो मार्ग निर्धारित थे 1. पति का अनुगमन 2. शील संरक्षण करते हुए त्रिभुवन गुरू परमात्मा को ही गुरू मानकर पति का ध्यान करते हुए धर्माचरण करे।

"पतिमेव समाध्यायेद् विष्णुरूपधरं हरिम्।।"3

रामचरित मानस में भी नारी के पातिव्रत्य का आदर किया गया है। विवाह के

---

1. तैत्तिरीय संहिता – 2/2/10/2
2. मनु स्मृति – 2/67
3. स्कन्द पुराण काशी0 – 4/81

समय सती उमा तथा सीता को उनकी माताओं द्वारा दी जाने वाली पतिव्रत धर्म की शिक्षा नारी संस्कारो के उत्कृष्ट उद्धरण हैं–

माता मैना कहती हैं कि स्त्री के लिए उसका पति ही सबकुछ है–

"करेहुसदा संकर पद पूजा। नारि धरमु पति देउ न दूजा।।"1

तथा माता सुनयना अपनी पुत्री सीता को विदाई के समय यही उपदेश देती हैं कि सास–ससुर तथा गुरूजनों की सेवा करना तथा पति के रूख को देखकर ही प्रत्येक कार्य करना–

"सास ससुर गुर सेवा करेहू। पति रूख लखि आयसु अनुसरेहु।।"2

स्वामी श्रद्धानन्द जी के अनुसार–

"वैदिक आदर्श से गिरकर भी जो सतीत्व धर्म का पालन पौराणिक समय में आर्य महिलाओं ने किया है, उसी के प्रताप से भारत भूमि रसातल को नहीं पहुँची और उसमें पुनुरूत्थान की शक्ति अब तक विद्यमान है– यह मेरा निज का अनुभव है। भारत माता का ही नहीं भारतीय संस्कृति का सच्चा उद्धार भी उसी समय होगा जब आर्यावर्त की सनातन संस्कृति के अनुसार नारियों को उनके उच्चासन पर फिर से बैठाया जाएगा।"**3**

मेरे विचार से स्त्री में यदि उसके स्वाभाविक गुण विद्यमान हों तो वह स्वतः उस उच्चासन पर विद्यमान हो जाती है।

भारतीय वाङ्मय में नारी के जो संस्कार बताए गये हैं वे इस प्रकार हैं–

---

1. रामचरित मानस – 1/102–3
2. रामचरित मानस – 1/334–5
3. नारी अंक (कल्याण) 22 वें वर्ष का विशेषांक – पृ0 302 (लेख से उद्धृत)

सौन्दर्य–

सौन्दर्य दो प्रकार का होता है। 1. वाह्य तथा 2. आन्तरिक।

वाह्य सौन्दर्य के अन्तर्गत सुन्दर वर्ण, सुडौल अंग प्रत्यंग, दृष्टि तथा चाल में शील, वाणी माधुर्य, तथा मर्यादा आदि गुण आते हैं।

आन्तरिक सौन्दर्य हैं– क्षमा, प्रेम, उदारता, निरभिमानता, विनय, सहिष्णुता, समता, शान्ति, धीरता, वीरता, परदुख कातरता, सत्य सेवा, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, लज्जा तथा प्रभुभक्ति आदि सद्‌गुण तथा सद्‌भाव आदि।

ये सभी गुण शुभ संस्कारों के अन्तर्गत आते है। इन सद्‌गुणों से युक्त नारी अपने परिवार को स्वर्ग बना देती है।

ग. रामचरित मानस में सांस्कृतिक निष्ठा–

गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अनन्य समर्थक थे। भारतीय समाज को कुरीतियों और अशिक्षाग्रस्त अंधविश्वासों के जाल में उलझा देखकर उन्होंने सनातन धर्मनिष्ठ आचरण ग्रन्थ के रूप में रामचरित मानस का निर्माण किया। जिसके सतत अध्ययन एवं अनुशीलन से व्यक्ति में व्याप्त स्वार्थ पूर्ण कुप्रथाओं का अंत हो सकता है। उन्होंने अपने काव्य–कौशल से मानवोत्कर्ष के उस पृष्ठ को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसमें सबके ह्रदय में बस एक ही भावना हो–

"सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः"

इस सनातन उद्‌घोष की व्यापकता के साथ रामचरित मानस जन सामान्य तक पहुँचा और सांस्कृतिक निष्ठा का द्योतक सिद्ध हुआ है।

भारतीय सांस्कृतिक निष्ठा के तत्त्व–

जैसा कि पूर्व खण्ड में उल्लेख किया जा चुका है कि भारतीय संस्कृति के मूल

सनातन तत्त्वों को विद्वानों ने अपने-अपने मत के अनुसार प्रकट किया है। यदि सभी तत्त्वों का विश्लेषण किया जाए तो निम्न लिखित आठ तत्त्व प्रकट होते हैं-

1.	संस्कार	2.	अवतारवाद
3.	आचार और धर्म	4.	वर्णाश्रम व्यवस्था
5.	पुनर्जन्म और परलोक	6.	अध्यात्म और दर्शन
7.	नैतिक आदर्श तथा	8.	उत्सव तथा मंगलप्रियता

रामचरित मानस में सांस्कृतिक निष्ठा का निरूपण जानने के लिए इन्हीं तथ्यों का विवेचन करना न्यायसंगत होगा। इन तथ्यों में से दो 1. संस्कार तथा 2. अवतारवाद का विवेचन विस्तृत रूप में किया जा चुका है अतः हम तीसरे तत्त्व से प्रारम्भ करेंगे।

आचार और धर्म-

रामचरित मानस में संस्कृति के इस तत्त्व का अन्वेषण करने पर सनातन धर्म से सम्बन्धित चार प्रकार के आचरण परक धर्म कर्म का उल्लेख मिलता है।

1. सामान्य धर्म-

वैसे तो पूर्व खण्ड में सामान्य धर्मों का विस्तृत विवेचन हो चुका है किन्तु रामचरित मानस के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि प्राणिमात्र के लिए जो कल्याणकारी है वही आचरण धर्म का सामान्य रूप है। अर्थात् जन सामान्य के पालनीय आचार सामान्य धर्म हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने लंका काण्ड में श्री राम के मुख से सामान्य धर्मो का विवेचन एक सुन्दर रूपक के रूप मे कराया है, जो कि नाना पुराण निगमागम सम्मत धर्म के सामान्य लक्षणों के सार को प्रकट करता है-

"सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।

बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिज्ञान कठिन कोदंडा।।

अमल वचन मन त्रोण समाना। सम जप नियम सिलीमुख नाना।।

कवच अभेद विप्रगुरू पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।"1

सनातन संस्कृति के उद्घोष 'असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय' को प्रकट करने वाले यही मानवीय सद्गुण भारतीय संस्कृति की विशेषता प्रकट करते हैं।

2. असाधारण धर्म–

जब धर्म के दो रूपों में विरोध प्रतीत होता है, तब वहाँ काल और परिस्थिति के अनुसार आचरित धर्म असाधारण धर्म कहा जाता है जैसे– श्री राम द्वारा बालि का बध असाधारण धर्म है। बालि ने धर्मावतार राम से पूछा–

"धर्म हेतु अवतरेउ गुसाई। मारेउ मोहिं व्याध की नाई।।"2

तब श्री राम ने उसे धर्म–अधर्म का भेद इस प्रकार समझाया–

"अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।"3

3. आपद्धर्म–

आपत्ति के समय प्राणरक्षा के लिए कभी–कभी मर्यादा का अतिक्रमण करना आवश्यक हो जाता है। ऐसी विषम स्थिति में किए गये कार्य आपद्धर्म कहलाते हैं जैसे कि मर्यादा पुरूषोत्तम राम वन गमन के समय सीता से वार्ता करने में संकोच करते है

---

1. रामचरित मानस – 6/79–3, 4, 5
2. रामचरित मानस – 4/9–5
3. रामचरित मानस – 4/9–7

किंतु आपत्तिकाल जानकर वे कहते है–

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समझ मन माहीं।।

राजकुमारि सिखा वनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहूँ।।1

सीता जी भी उसी समय का ध्यान कर अपनी सासुमाँ से क्षमा माँगती हैं–

"लागि सासु पग कहकर जोरी। छमबि देबि बड़ अबिनय मोरी।।"2

एक अन्य स्थान पर यद्यपि वस्त्राभूषण नारी की शोभा हैं किंतु आपत्ति के समय इनका त्याग भी धर्म है जैसे सीता हरण के समय सीता का अपने उत्तरीय वस्त्र को उतारकर पर्वत पर बैठे वानरों के समीप हरिनाम लेकर फेंकना आपद्धर्म है–

"गिरिपर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरिनाम दीन्ह पट डारी।।"3

4. विशेष धर्म–

साधारतया वर्ण और आश्रम के अनुसार निर्दिष्ट धर्माचारों को विशेष धर्म कहते हैं। रामचरित मानस में इनके अतिरिक्त विशेष धर्म के अन्य उत्कृष्ट उद्धरण मिलते है जैसे–

1. श्री राम की पितृभक्ति
2. लक्ष्मण तथा भरत की भ्रातृ भक्ति
3. हनुमान का सेवक धर्म
4. भगवान शंकर का इष्टदेव के प्रति त्याग धर्म आदि विशेष धर्म के आदर्श द्योतक हैं।

---

1. रामचरित मानस – 2/61–1
2. रामचरित मानस – 2/64–5
3. रामचरित मानस – 3/29–7

4. वर्णाश्रम व्यवस्था–

गोस्वामी तुलसीदास वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे–

"बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।

चलहि सदा पावहिं सुखहिंनहिं भय सोक न रोग।।"

तुलसीदास जी का ऐसा मानना था कि वर्णाश्रम धर्म मानव–मानव के बीच सेतु का काम करता है। सभी वर्ण यदि प्रेम और स्वधर्म निरत भाव से कार्य करते हैं तो उसके परिणाम स्वरूप एक स्वस्थ समाज की स्थापना होती है। गोस्वामी जी ने वर्णाश्रम धर्मों का पालन न करने वाले मनुष्यों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करते हुए कहा है–

वर्ण धर्म– **"सोचिअ विप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरम विषय लयलीना।।**

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।।

सोचिअ सूद्र विप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी।।"1

रामचरित मानस मे वर्ण धर्मों तथा आश्रम धमो के प्रति गहरी निष्ठा भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा को प्रकट करती है

आश्रम धर्म– "सोचिअ बटु निज व्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई।।

सोचिअ गृही जो मोहबस करइ करम पथ त्याग।।

सोचिअ जती प्रपंचरत बिगत बिबेक बिराग।।

बैखानस सोई सोचै जोगू। तप बिहाइ जेहि भावै भोगू।।"2

इस प्रकार भारतीय संस्कृति का यह तत्त्व यह भाव प्रकट करता है कि जीवन

---

1. रामचरित मानस – 2/172–3–6
2. रामचरित मानस – 2/172, 173–1

की गति सदैव आगे की ओर बढती रहे आगे वाला और आगे जाएगा तभी पीछे वाला आगे आयेगा इसी प्रकार क्रम चलता रहता है और सृष्टि का सन्तुलन बना रहता है। अर्थात् अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने का अनवरत क्रम बना रहे यही संस्कृति की सनातनता है।

5. पुनर्जन्म और परलोक–

भारतीय संस्कृति में जीव के पुनर्जन्म का सिद्धान्त दृढ़ता पूर्वक स्वीकार किया गया है– बृहदारण्यक उपनिषद् (4/3/36), (4/4/2), (4/4/3), (4/4/7), (4/4/8) तथा वेदान्त दर्शन (4/4/22) तथा (3/1/13) मे पुनर्जन्म का स्पष्ट उल्लेख मिलता है इन सभी का सार यह गीता का श्लोक है–

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।"1

प्रत्येक जीव आयु समाप्त होने पर अपने संस्कार और प्रारब्ध के अनुरूप अन्य योनियों में जन्म लेता है।

इसी विशेषता का निरूपण तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में निष्ठा पूर्वक किया है जैसे– सती का पार्वती के रूप में पुनर्जन्म–

"बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई।।"2

अदिति और कश्यप तथा शतरूपा और मनु का कौशल्या और दशरथ के रूप में जन्म लेना–

"होइहहु अवध भुवाल तब मैं होब तुम्हार सुत"3

---

1. गीता – 2/22
2. रामचरित मानस – 1/107–4
3. रामचरित मानस – 1/151

एवं प्रताप भानु का वंश सहित राक्षस कुल में जन्म–

"काल पाइ मुनि सुनु सोई राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा।।"1

इसी प्रकार अनेक ऐसे प्रमाण है जिससे मनुष्य तथा अन्य जीवों का पुनर्जन्म सिद्ध होता है।

परलोक–

अथर्ववेद में इस लोक के साथ परलोक का अस्तित्त्व भी स्वीकार किया गया है–

"इमं च लोकं परमं च लोकम्।"2

इन तीन लोकों का वर्णन ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में वर्णित है–

"तिस्रोद्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां एका यमस्य भुवने विराषाट्।

आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु व उतच्चिकेतत्।।"3

अथर्ववेद (10/6/31–32) में भी तीनों लोकों का वर्णन है तथा शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि–

"त्रयो बाव लोकाः। मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति।"4

अतः वेदो के आधार पर तीन लोक निर्धारित हैं 1. मनुष्य लोक 2. पितृलोक तथा 3. देव लोक।

रामचरित मानस में इन तीनों लोकों के साथ नरक लोक की सत्ता को भी स्वीकार किया गया है–

---

1. रामचरित मानस – 1/176–1
2. अथर्ववेद – 19/45/5
3. ऋग्वेद – 1/35/6
4. शतपथ ब्राह्मण – 14/4/3/24

1. मनुष्य लोक–

मनुष्य लोक को मृत्युलोक भी कहते हैं यहाँ जो प्राणी जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित होती है–

"छिति जल पावक गगन समीरा।।

पंचरचित अति अधम सरीरा।।"1

पंचतत्त्वों से निर्मित शरीर अधम तथा नाशवान है किंतु शरीर द्वारा किए गये शुभाशुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप नित्य जीवत्मा भिन्न–भिन्न लोकों में जाती है–

"काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबुभ्राता।।"2

क्योंकि आत्मा अमर है–

"प्रगट सोतन तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा।।"3

2. पितृलोक–

"प्र उपसर्ग पूर्वक 'इण गतौ' धातु से 'क्त' प्रत्यय का योग करने पर प्रेत शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है अच्छी प्रकार से (पूर्ण रूप से) गया हुआ। अर्थात मृत्यु प्राप्त मनुष्य।"4

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 14 वें सूक्त में यमलोक तथा पितृलोक का वर्णन मिलता है– जिसके अनुसार सत्कर्म करने वाले प्राणियों को यमराज सुखमय लोक में

---

1. रामचरित मानस – 4/11/4
2. रामचरित मानस – 2/92–4
3. रामचरित मानस – 4/11–5
4. वैदिक साहित्य संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी, पृ0 184

ले जाते है–

"परेयिवासं प्रवतोमहीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य।।"1

रामचरित मानस मे राजा दशरथ द्वारा श्राद्ध करना तथा तर्पण आदि कार्य पितरों की प्रसन्नता के लिए किये गये–

नंदी मुख सराध करि जात करम सब कीन्ह।।2

आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार **"अग्निमुखो वैदेवाः पाणि मुखो पितरः।"3**

पितर साधारण मानवों से ऊपर हैं, किंतु वे देवताओं से निम्न हैं।

ऋग्वेद (10/15/1) में पितरों की तीन कोटियाँ बतलाई गई है; उत्तम, मध्यम और अधम।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पितृ लोक ही स्वर्ग लोक है तथा देवों का लोक नाक लोक कहलाता है–

"इति स्वर्गो वै लोको नाकस्तमेष।"4

रामचरित मानस में राजा दशरथ तथा मनु शतरूपा, जटायु आदि पात्रों की इसी स्वर्गलोक जाने की बात कही गई है–

राजा दशरथ–

"राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम

तनु परिहरि रघुवर विरह राउ गयउ सुरधाम"

---

1. ऋग्वेद – 10/14/1
2. रामचरित मानस – 1/193
3. आश्वलायन गृह्यसूत्र – 4/8/4
4. शतपथ ब्राह्मण – 6/5/2/4

सीता हरण के पश्चात जब गिद्ध जटायु की मृत्यु होती है तब श्री राम उससे कहते हैं कि—

"सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाई।"1

अर्थात् पितृलोक जाकर मेरे पिता से सीता हरण की बात मत कहना इस तथ्य से अथर्ववेद के इस मन्त्र की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है कि—

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वा स्वायाः।

अश्लोणा अंगर हुता स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्।।"2

स्वर्ग पहुँचकर जीव पितरों से मिलता है।

रावण मरण के पश्चात पितृ लोक से दशरथ जी का आगमन पितृ लोक की सत्यता का उत्कृष्ट प्रमाण है—

"तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए।।"3

देवलोक—

देवताओं के निवास स्थान को देवलोक कहते है। रामचरित मानस में इन्द्र, वायु, वरूण, अग्नि आदि देवताओं तथा उनके लोकों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि देवताओं ने यज्ञ द्वारा यज्ञ पुरुष की स्थापना की थी इसलिए यजन रूप धर्म स्वर्ग में रहते हैं। पुरूषमेधरूपी यज्ञ के कर्ता महात्मा पुरुष उसी स्वर्ग में पहुँचकर देवों के समान दिव्य सुखों का उपभोग करते हैं अथवा नारायण को प्राप्त कर मोक्ष सुख

---

1. रामचरित मानस – 3/31
2. अथर्ववेद – 6/120/3
3. रामचरित मानस – 6/112–1

का अनुभव करते हैं–

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमन्यासन्।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।"1

रामचरित मानस में मनु–शतरूपा को परमेश्वर उनके अगले जन्म तक अमरावती अर्थात् देवलोक में सुखों के उपभोग का आदेश देते हैं–

"अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी।।"2

भारतीय संस्कृति की यही विशेषता है कि वह पशुत्व से मनुष्यत्व, मनुष्यत्व से पितृत्व तथा पितृत्व से देवत्व और देवत्व से ब्रह्मत्व की प्राप्ति की क्षमता रखती है। मनुष्य जीवन को तुलसी दास जी ने समस्त साधनों (सर्वस्व) प्राप्ति का तथा मोक्ष प्राप्ति का द्वार बताया है जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है–

"बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।"3

नरक का वर्णन–

मनुष्य पापों में लिप्त न हो इसलिए नरक का वर्णन भी पुराणों तथा धर्मशास्त्रों के आधार पर गोस्वामी जी ने यत्र–तत्र किया है जैसे– नारी धर्म का वर्णन करते हुए सती अनुसूइया अधर्म निरतनारी के लिये नरक की प्राप्ति निश्चित बताती हैं–

"पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।।"4

तथा **"काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।"**

---

1. ऋग्वेद – 10/90/16
2. रामचरित मानस – 1/151–8
3. रामचरित मानस – 7/42/4
4. रामचरित मानस – 3/5–6

अथर्ववेद में नरक की परिकल्पना इस प्रकार की गयी है–

"सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रद्देषे दुहे।

अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धाननस्य याचिताम्।।"1

यजुर्वेद के अनुसार "जो मनुष्य अग्निहोत्र को त्याग देता है वह नरक जाता है"2 गरूण पुराण में अधर्म करने वालों के लिए भिन्न–भिन्न नरकों का वर्णन है जो कि मृत्यु के उपरान्त सूक्ष्म शरीर मिलने पर भोगना पड़ता है।

रौरव नरक का अर्थ गरूण पुराण के अनुसार खून, मवाद, खौलता तेल, पानी आदि में जीवात्मा को प्रताड़ित किये जाने को कहते हैं।

इस प्रकार रामचरित मानस में पुनर्जन्म तथा परलोक को भारतीय संस्कृति के तत्त्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

6. अध्यात्म और दर्शन–

डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार डी0लिट0 (पेरिस) की पुस्तक 'भारतीय संस्कृति और इतिहास के अनुसार "भारतीय संस्कृति अध्यात्म भावना पर आश्रित है। इसके अनुयायी भौतिकवाद की अपेक्षा अध्यात्मवाद को अधिक महत्त्व देते हैं।

"भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य का सर्वांगीण विकास वांछनीय है। शरीर, मन और आत्मा, इहलोक और परलोक, भौतिक सुख और आध्यात्मिक संतोष सभी क्षेत्रों में एक साथ उन्नति के द्वारा ही मनुष्य अपनी वास्तविक उन्नति कर सकता है।"3

रामचरित मानस में अध्यात्म तथा दर्शन की पूर्ण निष्ठा दृष्टिगोचर होती है। हम

---

1. रामचरित मानस – 5/38
2. अथर्ववेद – 12/4/36
3. डॉ. सत्यकेतु विघालंकार – भारतीय संस्कृति और इतिहास, पृ0 24

यहाँ रामचरित मानस में संस्कृति की निष्ठा दर्शाने के लिये उसका सूक्ष्म विवेचन करेंगे तथा दर्शन ग्रंथो एवं उपनिषदों के उद्धरणों से उसकी प्रमाणिकता भी सिद्ध करेंगे।

एक रूपक के माध्यम से अध्यात्म विद्या का ज्ञान संत तुलसी ने कराया है–

अध्यात्म–

"ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।

जड़ चेतना ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।"1

कठोपनिषद् कहती है कि–

"यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।

अथमृर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्धयनुशासनम्।।"2

यदि इस जीवन में ही विद्वान मनुष्य के हृदय की ग्रन्थियाँ (जीव–जड़–चेतन) टूट जायें तो मरणधर्मा मनुष्य अमृतस्वरूप हो जाता है इतना ही वेद का उपदेश है।

इस ग्रन्थि के टूटने का उपाय गोस्वामी जी उपनिषदों तथा वेदान्त सार को आधार मानकर बताते हैं–

"सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरिकृपा हृदय बस आई।।

जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।

तेई तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाई पेन्हाई।।"3

---

1. रामचरित मानस – 7/117–2, 4
2. कठोपनिषद – 2/3/15
3. रामचरित मानस – 7/117–9–11

"नोई निबृत्ति पात्र बिस्वासा। निरमल मन अहीर निजदासा।।

परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।।

तोष मरूत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै।।

मुदिता मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।।

तब मथि काढ़ि लेई नवनीता। विमल विराग सुभग सुपुनीता।।

जोग अगनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाई।

बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत ममता मल जरि जाई।

तब विज्ञान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ

चित्त दिआ भरि धरैदृढ़ समता दिअटि बनाइ।।

सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।।

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।

तब सोई बुद्धि पाइ उजियारा। उर गृह बैठि ग्रन्थि निरूआरा।।"1

इस प्रकार तुलसी दास जी के कहने का तात्पर्य यही है कि–

"य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः।" 2

आत्मा के भीतर परमात्मदर्शन के बिना समस्त प्रयत्न व्यर्थ हैं।

उपनिषदों में इस आत्म चिंतन, शुद्धैकतत्त्व चिन्तन को विशुद्धतम् धर्म कहा गया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, तप आदि यम, नियम प्राणायामादि योग का सार भी सर्वस्व गूढ़ सुस्थिर ध्यान किंवा समाधि द्वारा नित्य सर्वत्र भगवद्दर्शन या परमात्म

---

1. रामचरित मानस – 7/117–12–16, 118/1, 2, 4
2. वृहदारण्यक उपनिषद – 3/8/10

साक्षात्कार ही चिरकाल से सनातन वेद की संस्कृतिपरक विशेषता रही है–

"ततोभ्यासपाटवात सहस्रशः सदा धर्मामृत धारा।

वर्षति ततो योगोक्तिमाः समाधिं धर्म मेघं प्राहुः।।"1

इसी सनातन संस्कृति के भाव को गोस्वामी जी ने दर्शाया है।

दर्शन–

(Encyclopaedia of humanities) में दर्शन शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि व्युत्पत्ति के अनुसार ज्ञान के प्रति अनुराग का नाम दर्शन है। हलायुध कोश के अनुसार 'दृश्यते यथार्थतत्त्वमनेनेतिदर्शनम्' अर्थात यथार्थ ज्ञान दृष्टि ही दर्शन है।2

भारतीय संस्कृति के इतिहास में दर्शन शास्त्र दो प्रकार के उपलब्ध होते हैं 1. आस्तिक दर्शन 2. नास्तिक दर्शन। इन दोनो प्रकारों के दर्शनों की संख्या छः–छः है। गोस्वामी तुलसी दास आस्तिक थे अतः रामचरित मानस आस्तिक दर्शनों के सिद्धान्तो से ओतप्रोत है। वे षड् आस्तिक दर्शन हैं– 1. न्याय 2. वैशेषिक 3. सांख्य 4. योग 5. पूर्व मीमांसा 6. उत्तरमीमांसा।

विद्वजनों में ऐसी कहावत है कि "प्रत्येक भारतीय जन्मजात दार्शनिक है" इसका कारण है गर्भावस्था के संस्कार तथा माता और पिता के आचरण की पवित्रता अतः दर्शन का क्षेत्र सबके लिये कुछ परिचित सा है।

डा0 गनोरी महतो के अनुसार "चिंतन–प्रसूत विचारों का आकलन और संकलन जिन ग्रन्थों में होता है और जिनके द्वारा ब्रह्म, जीव, माया तथा जगत् के विषय मे हमारी जिज्ञासाओं की तृप्ति होती है उन्हें ही दर्शन ग्रन्थ कहा जाता है।"3

---

1. पैङ्गलोपनिषद – 3/13/14
2. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी – पृ0 191
3. रामचरित मानस, नानापुराण निगमागम – डॉ0 गनौरी महतो, पृ0 153

गोस्वामी जी कहते हैं–

"अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ज्ञान विग्यान विचारी।।"1

अतः अवसर पाकर ब्रह्म, जीव, माया तथा जगत् के विषय में रामचरित मानस में कवि ने नानापुराण निगमागम सम्मत सनातन दार्शनिक संस्कृति को प्रकट किया है जिसका हम क्रमबद्ध सूक्ष्मावलोकन करेंगे।

1. ब्रह्म–

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति,

यत्प्रयत्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति।"2

अर्थात् जिससे सम्पूर्ण जीव उत्पन्न होते हैं; वही ब्रह्म है।

तुलसीदास जी का मत है कि–

"जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू।।"3

तथा–

शान्तं शास्वतमप्रमेयनघं निर्वाण शान्तिप्रदं,

सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।4

उपनिषदों में ब्रह्म को कहीं निर्गुण और निराकार बतलाया गया है, और कहीं उसके विभिन्न मुखों, नेत्रों और पादों का उल्लेख है। अर्थात न तो परब्रह्म केवल निर्गुण और निराकार है और न ही केवल सगुण और साकार है"5 इसी कारण वेद भी उस ब्रह्म

---

1. रामचरित मानस – 1/37/9
2. तैत्तिरीय उपनिषद – 3/1/1
3. रामचरित मानस – 1/117
4. रामचरित मानस – मंगलाचरण – 5/1, 2
5. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी, पृ0 255

की शक्ति तथा सामर्थ्य का बखान नहीं कर सकते और नेतिनेति कहकर नतमस्तक हो जाते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद के अनुसार–

"परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च।" अर्थात् वह परब्रह्म ज्ञान, बल और क्रिया रूप अनेक स्वाभाविक दिव्य शक्तियों से युक्त होता है। संत तुलसीदास ने रामचरित मानस में इन्ही दो ब्रह्म स्वरूपो का वर्णन किया है–

"अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।।"1

यहाँ अकथ, अगाध, अनादि, अनूप आदि विशेषण अगुण और सगुण दोनो रूपों में प्रयुक्त हुए हैं। इन दोनो ही रूपों का आदि और अंत कोई नहीं जानता वेद भी अनुमान के आधार पर ही ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

"अणोरणीयान्महतो महीनात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।"2

वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है तथा महान् से भी महत्तम् है।

ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है–

"ईसावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।"

निर्गुण ब्रह्म– निराकार ब्रह्म उसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त हैं–

"अग जगमय सब रहित बिरागी।"

जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि व्याप्त रहती है–

"प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।"3

---

1. रामचरित मानस – 2/125, 1/118–4
2. कठोपनिषद – 1/2/20
3. रामचरित मानस – 1/185–7

निराकार ब्रह्म सत् चित् तथा आनन्दरूपात्मक है–

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। 1(क)

विज्ञानमानन्दम् ब्रह्म।" 1(ख)

"सोई सच्चिदानंदघन रामा। अज विग्यान रूप बलधामा।।"2

तुलसीदास जी ने सगुण उपासक होते हुए भी निर्गुण मत का खण्डन नहीं किया बल्कि समन्वय की नीति अपनाकर भारतीय संस्कृति के अद्भुत तत्त्व को प्रकट किया है।

सगुण ब्रह्म–

वे कहते हैं कि–

"सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।

अगुन अरूप अलख अज सोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।"3

वह निराकार जो कि अव्यक्त तथा अजन्मा है वही परब्रह्म अपने सगुण रूप में उसी प्रकार प्रकट प्रतीत होता है जैसे–

"जोगुन रहित सगुन सोई कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे।।"4

जल और बर्फ में भेद नहीं होता क्योंकि दोनों ही जल हैं।

रामचरित मानस में जितनी महिमा सगुण रूप में राम की गाई गई है उतनी ही महिमा निर्गुण परब्रह्म राम की गाई गई है मन्दोदरी तथा भगवान शंकर द्वारा निराकार

---

1. तैत्तिरीय उपनिषद (क) – 2/1/2, (ख) वृहदारण्यक उपनिषद – 3/9/28
2. रामचरित मानस – 7/72–3
3. रामचरित मानस – 1/116–1, 2
4. रामचरित मानस – 1/116–3

ब्रह्म का विराटरूप तथा उसके महत्कार्यों का वर्णन किया गया है, एवं ऋषि भरद्वाज, महर्षि अत्रि, बाल्मीकि, मनु:शतरूपा आदि पात्रों ने भी निर्गुण तथा सगुण दोनो रूपों की वन्दना की है, जोकि वेद तथा शास्त्रों का ही अनुमोदन स्वरूप हैं। पूर्व में मैने जो कुछ संक्षिप्त उद्धरण प्रस्तुत किये हैं विषय विस्तार के भय से अधिक उद्धरण देना उचित नहीं होगा।

"ममैवांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः।"1

जीव– रामचरित मानस में कवि ने गीता के इस श्लोक का अनुमोदन करते हुए जीव के संबंध मे कहा है–

"ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।"2

तुलसीदास जी जीव का परिचय देते हुए कहते हैं कि–

"माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।"3

माया, ईश्वर तथा स्वयं के यथार्थ स्वरूप का जिसे ज्ञान नहीं है वही जीव है। द्वंद्वजनित हर्षविषाद, ज्ञान–अज्ञान, अहंकार तथा अभिमान ही जीव के धर्म हैं–

"हरष विषाद ग्यान अग्याना। जीव धरम अहमिति अभिमाना।।"4

ईश्वर और जीव (आत्मा) में वस्तुतः कोई भेद नहीं है। जो भेद दोनो में ज्ञात होता है, वह मिथ्या है और केवल माया जनित है। जीव को यदि अखंड सत्य ज्ञान की

---

1. गीता – 15/7
2. रामचरित मानस – 7/117/2
3. रामचरित मानस – 3/15
4. रामचरित मानस – 1/116

प्राप्ति हो जाये तो ईश्वर और जीव में भेद कैसा–

"ग्यान अखंड एक सीता वर। माया वस्य जीव सचराचर।

जौं सबके रह ग्यान एक रस। ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस।।"1

और यह भेद का भ्रम आत्मानुभव के प्रकाश से मिटता है–

"आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रमनासा।।"2

किंतु जीव तो माया के वशीभूत होकर अपना स्वरूप भूलकर वानर की भाँति स्वतः बंधनयुक्त हो गया है–

"सो माया बस भयउ गुसाईं। बँध्योकीर मरकट की नाई।"

इस प्रकार

"जड़ चेतन ग्रंथि परिगई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।"3

किंतु इस ग्रंथि के छूटने के दो ही उपाय हैं– 1. ज्ञान दीपक का उजाला और 2. भक्ति जिसमें प्रभु की शरणागति मिल जाने पर वह परब्रह्म परमात्मा स्वयं ही अपने स्वरूप में मिला लेता है

1. ज्ञान दीपक– ज्ञान का प्रकाश विद्या से फैलता है तथा अज्ञान के अंधकार को नष्ट कर देता है क्योंकि अनात्मभावना ही अविद्या है और आत्मभाव ही विद्या है। अनात्म से आत्म का दर्शन ही विद्या है।

संत तुलसी दास ने जीव की तीन अवस्थायें (जागृत, स्पप्न और सुषुप्ति) तथा

---

1. रामचरित मानस – 7/78
2. रामचरित मानस – 7/118
3. रामचरित मानस – 7/117–3, 4

तीन गुणों (सत्व, रज और तम) को ज्ञान दीपक की बाती बनाने की बात कही है–

तीनि अवस्था तीनिगुन तेहि कपास ते काढ़ि।

तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि।।

एहि विधि लेसै दीप तेज रासि विज्ञानमय।

जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक शलभ सब।।1

अर्थात्

समस्त काम्य कर्मों के बंधनों को त्यागकर जब मनुष्य जीव योग, जप, तप नियमादि से शुद्ध होकर अपनी तीसरी अवस्था में पहुँचता है तब सत, रज और तम तीनों गुण उसे प्रभावित नहीं करते। इसके पश्चात उसके हृदय में एक ही भाव उठता है–

'सोहमस्मि' अर्थात् 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ' यही जीव की जीवन्मुक्ति कहलाती है। किंतु यह 'अहं ब्रह्मास्मि' भाव भक्ति भाव के अभाव में अहंकार का रूप धारण कर जीव का क्षण भर में पतन करा सकता है– और ज्ञानदीपक बुझा सकता है–

"जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई।।"2

ज्ञान का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है क्षण–क्षण पतन का भय है किंतु भक्ति उतनी ही सरल और निर्मल– **"प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।"3** संत तुलसी ने भगवान् श्री राम के मुख से शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश कराया है, जिसमे **"प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसर रति मम कथा प्रसंगा।।**

---

1. रामचरित मानस – 7/117
2. रामचरित मानस – 7/118–13
3. रामचरित मानस – 7/49

"गुरू पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।

चौथी भगति मम गुन गन करइ कपट तजिगान।।"1

1. सत्संग 2. हरिकथा मे रूचि 3. गुरू भक्ति (सेवा) 4. कीर्तन –

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।

छठी भक्ति है– **छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।**

सातवीं– **सातँव सम मोहि मय जग देखा। मोतें अधिक संत करिलेखा।।**

आठवीं– **आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखहिं पर दोषा।।**

तथा नौवी भक्ति है– **नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।2**

मानस प्रतिपादित इस नवधा भक्ति में समस्त धर्मों का सार निहित है जिस प्रकार धर्म के दस लक्षणों (मनुस्मृति) मे से कोई भी एक मनुष्य मे आ जाए तो सारे लक्षण स्वतः ही आ जाते हैं। उसी प्रकार इन नवधा भक्ति से यदि एक भी लक्षण मनुष्य हृदयस्थ कर ले तो–

"नवमहुँ एकहु जिन्ह के होई। नारि पुरूष सचराचर कोई।।

सोई अतिसय प्रिय भामिनी मोरे।"3

श्री मद्भागवत का भक्तियोग तथा गीता का कर्मयोग भी यही कहता है।

जगत्– वेदों के अनुसार जगत् की उत्पत्ति विराट पुरुष के अंगो से हुई है अथर्ववेद में जगत् (सृष्टि) का क्रमबद्ध विवेचन मिलता है– (15/1/1/1), (15/1/1/2),

---

1. रामचरित मानस – 3/35–8
2. रामचरित मानस – 3/36–1–5
3. रामचरित मानस – 3/36–6, 7

(15/2/15–1,2), (15/2/15/3) तथा (15/2/15, 4–9) तथा (15/2/16/1–7) मे इसी क्रम का उल्लेख है।

जिसका सार यह है कि जगत् के नियमों से अबाधित कारण कार्य भावना से हीन व्रात्य नाम ब्रह्म ने प्रजापति को आत्मदर्शन द्वारा सृष्टि कार्य पृवृत्ति के किए प्रेरित किया। तब प्रजापति ने सात प्राण, सात अपान तथा सात व्यानों से सृष्टि की रचना की व्रात्य के प्राण है (अग्नि, आदित्य, अभ्यूढ़ चन्द्रमा, विभुपावमान, योनि (जलरूप), प्रियनाम वाला (पशुरूप में दृश्यमान) तथा प्रजा) व्रात्य के सात अपान हैं (पूर्णमासी, अष्टका, अमावस्या, श्रद्धा, दीक्षा, यज्ञ और दक्षिणा) तथा सात व्यान क्रमशः इस प्रकार हैं (भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ, नक्षत्र, ऋतु, आर्तव और संवत्सर)। "इस व्रात्य का दक्षिण चक्षु आदित्य और वाम चक्षु चन्द्रमा है इसका दक्षिण श्रोत्र अग्नि तथा वाम श्रोत्र पवमान है। दिवस और रात्रि इसकी नासिका हैं इसके शीर्ष और कपाल क्रमशः दिति और अदिति हैं तथा संवत्सर इसका शिर है।"[1]

"ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में कहा गया है कि आदि पुरूष से विराट की उत्पत्ति हुई। उस विराट से देव, पशु, पक्षी और मनुष्यों तथा भूमि की सृष्टि हुई।"[2]
इसी प्रकार ऋग्वेद (10/90/12), (10/90/13), (10/90/4), (10/82/1) तथा (10/82/7) मे इसी सृष्टि रचना क्रम का उल्लेख मिलता है।[3] तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में जगत की रचना का क्रमोल्लेख मंदोदरी से कराया है जो कि

---

1. अथर्ववेद – 15/2/18/1–5 (वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी – पृ0 273)
2. ऋग्वेद – 10/90/5
3. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी, पृ0 274

विश्वरूप श्री राम के विराट रूप का वर्णन करते हुए कहती है–

"बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।

लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु।। (6/14)

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा।।

भ्रुकुटि विलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला।।

जासु घ्रान अस्विनी कुमारा। निसि अरू दिवस निमेष अपारा।।

श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारूत स्वास निगम निज बानी।।

अधर लोभ जन दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला।।

आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा।।

रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नसजारा।।

उदर उदधि अधगो जातना। जग मय प्रभु का बहु कलपना।।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।"1

ईश्वर की इसी विराट सृष्टि मे जीव की चौरासी लाख योनियाँ निवास करती हैं

"आकर चार लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी।।"

चार का अर्थ है जीव चार प्रकार के होते हैं– 1. अंडज (अंडे से उत्पन्न) 2. जरायुज (झिल्ली से उत्पन्न), स्वेदज (पसीने से उत्पन्न) तथा उद्भिज (पेड़, पौधे) इन चार प्रकार के जीवों की चौरासी लाख योनियाँ हैं–

---

1. रामचरित मानस – 6/15–1–8

"जलजा नव लक्षानि स्वावरा लक्षविंशति।

कृमयो रूद्रलक्षानि पक्षिणा दशलक्षका।।

त्रिशंल्लक्षाणि पश्वश्च चतुर्लक्षाणि मानवा।।"1

अर्थात् नौ लाख जलज, बीस लाख स्थावर, ग्यारह लाख कीड़े, दस लाख पक्षी, तीस लाख पशु और चार लाख मानव योनि– इस प्रकार चौरासी लाख योनियों के भोग अपने कर्मानुसार मनुष्य इसी जगत मे भोगता है–

कर्मप्रधान विस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।।

माया–

वेदों में माया शब्द का प्रयोग अन्य अर्थो मे हुआ है जैसे– ऋग्वेद (9/83/3) में तथा यजुर्वेद (13/44) में माया शब्द प्रज्ञा या बुद्धि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तथा ऋग्वेद (4/30/21, 5/30/6) तथा अथर्ववेद (8/9/5) मे शक्ति और कपट के रूप में वर्णित है।

अन्यत्र आसुरी माया (ऋग्वेद– 10/99/2 तथा यजुर्वेद– 11/69) का भी उल्लेख हैं तथा ऋग्वेद (9/73/9) में कर्म तथा (10/177/1) में माया जीव के हृदय में मोह उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मक शक्ति की द्योतक है। तथा (4/38/3– अथर्ववेद) में इन्द्रजाल और अभिचार के अर्थ में माया शब्द प्रयुक्त है।।"2

"डा0 राधाकृष्णन् का मत है कि ऋग्वेद में जहाँ कहीं भी माया शब्द आया है; वह केवल ईश्वर के सामर्थ्य एवं शक्ति का द्योतक है। तब भी कहीं कहीं मायिन्, मायावन्त शब्द भ्रमजाल (राक्षसी माया) का बोध कराते हैं।"3

---

1. मानस पीयूष, खण्ड 1, पृ0 169 पर उद्धृत
2. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ0 बी0डी0 अवस्थी – पृ0 278
3. भारतीय दर्शन, प्रथम खण्ड – डॉ0 राधाकृष्णन, पृ0 94

रामचरित मानस में माया के पाँच रूप दृष्टि गोचर होते हैं—

1. परब्रह्म परमात्मा की शक्ति माया
2. देवमाया
3. योगियो की योग माया
4. मोह माया
5. राक्षसी अथवा आसुरी माया

1. ब्रह्म माया—

आदिशक्ति ब्रह्म की स्वरूपभूता माया का उल्लेख बालकाण्ड में प्राप्त होता है—

"आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोर यह माया।।"1

तथा— ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया।।

परब्रह्म अपनी माया से अभिन्न हैं—

"गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।"2

2. योगियों की माया—

अथर्ववेद (10/2/31) में योगसाधना की अष्टचक्रा और नव द्वारा अयोध्यापुरी का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार यह मानव शरीर ही अयोध्यापुरी है। इसमें आठ चक्र (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार) तथा आँख, कान, नाक आदि नौ इन्द्रियद्वार हैं। सहस्रार चक्र रूपी हिरण्यमय कोष में स्थित परमात्मा के दर्शन ब्रह्मज्ञानी योगी को ही होते हैं।[3]— ऐसे योगी को अनेक सिद्धियाँ

---

1. रामचरित मानस — (1/152–4) (4–1/192–छ)
2. रामचरित मानस — 1/18
3. अथर्ववेद — (10/2/32) — वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन — डॉ0 बी0डी0 अवस्थी, पृ0 290

प्राप्त हो जाती हैं।[1]

गोस्वामी तुलसी दास ने भरद्वाज ऋषि द्वारा भरत तथा अयोध्यावासियों का स्वागत के माध्यम से इसी माया का प्रकटीकरण किया है–

"सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। आयसु होई सो करहिं गुसाई।।

पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज।।

रितु बसंत वह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी।।

स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा।।"2

ऋषि, मुनि, योगी जन इन सिद्धियों का प्रयोग स्वयं पर नहीं करते थे।

3. देव माया–

देव माया का उल्लेख रामचरित मानस में मुख्य रूप से दो स्थानों पर हुआ हैं–

1. सरस्वती द्वारा मंथरा की बुद्धि हर लेना तथा कामदेव का नारद तथा शिव जी की तपस्या भंग करने का प्रयास करना।

देव माया का उद्देश्य परहित होता हैं। मंथरा की बुद्धि फेरने में भी रावण वध का (गो, द्विज, भूमि, धेनु) हित ही था–

नाम मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।

अजस पेटारी ताहि करि गई गिरामति फेरि।।3

तथा कामदेव का शिव तपस्या भंग करने का उद्देश्य भी तारकासुर वध हेतु शिव पुत्र

---

1. श्वेताश्वतर उपनिषद – 2/13
2. रामचरित मानस – 2/213/214, 2/215–7, 8
3. रामचरित मानस – 2/12

जन्म ही था–

"तब प्रभाउ आपन बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा।।

कोपेउ जबहिं बारिचर केतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू।।"1

4. मोह माया–

यह माया तुलसीदास जी के अनुसार–

"गो गोचर तहँ लग मन जाई।

सो सब माया जानेउ भाई।।"2

यह त्रिगुणात्मक माया किस प्रकार अपना जाल फैलाती है–

मैं अरू मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।।

इस माया के दो भेद हैं–

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अबिद्या दोऊ।।

एक अज्ञान से युक्त है– **एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा।।** तथा दूसरी– **एक रचई जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।।** ज्ञान युक्त है परन्तु उसका अपना कोई बल नहीं क्योंकि–

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं।।

जहाँ विद्या है वहाँ अहंकार नहीं, जहाँ अहंकार नही, वहीं तो परब्रह्म परमेश्वर का आभास जीव को होता है। यही माया का रहस्य है।

4. राक्षसी माया–

छल, कपट से स्वार्थ पूर्ति राक्षसों का स्वभाव है। इसी स्वार्थ पूर्ति के लिए राक्षस

---

1. रामचरित मानस – 1/84–6
2. रामचरित मानस – 3/15/3

प्रत्येक (जप, तप, यज्ञादि) कार्य करते हैं, जिसके फलस्वरूप उन्हें शक्तियाँ प्राप्त होती है, जो आसुरी माया कहलाती है। रामचरित मानस में मारीचि का स्वर्ण मृग बनना, युद्ध भूमि में मेघनाथ तथा रावण द्वारा माया के द्वारा बानरों पर खून, मवाद, मांस, पत्थर आदि का प्रहार तथा माया द्वारा अदृश्य होना और प्रकट होना यही आसुरी माया के प्रमाण हैं।

1. **"तब मारीचि कपट मृग भयउ।।"1**

2. **दहँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन।।"2**

7. नैतिक आदर्श–

भारतीय संस्कृति में नैतिकता एक विशिष्ट महत्त्व रखती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य नीतिगत आदर्शों पर चलता है। नीति का व्युत्पत्तिपरक अर्थ बताते हुए डा0 श्री जयमन्त जी मिश्र कहते हैं कि– **"नीयन्ते प्राप्यन्ते लभ्यन्ते अवगम्यन्ते धर्मार्थ काम मोक्षोपाया अनया अस्यां वा इति नीतिः।** 'णीञ्प्रापणे' इस प्राप्त्यर्थक 'णी' (नी) धातु से करण तथा अधिकरण में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से नीति शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है; धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों को प्राप्त करने का उपाय जिसमे निहित है वह नीति है।"3 नीति से ही नैतिक शब्द बना है जिसका अर्थ है नीति युक्त। भारतीय संस्कृति में विषय की दृष्टि से नीति को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है

1. **राजनीति** – जिसे दण्डनीति भी कहते हैं– अर्थ तथा काम विषयक नीति को

---

1. रामचरित मानस – 3/27–1
2. रामचरित मानस – 6/96–5
3. कल्याण, नीतिसार अंक वर्ष 76 अंक 1 – पृ0 199

राजनीति कहते हैं।

2. धर्म नीति– धर्म तथा मोक्ष विषयक नीति को धर्मनीति कहा गया है।1

भारतीय संस्कृति में इन दोनों की समान प्रधानता है जिसका प्रतिपादन निष्ठापूर्वक रामचरित मानस में किया गया है। किंतु सर्वप्रथम हम वैदिक साहित्य का सूक्ष्मावलोकन करेंगे जो कि भारतीय संस्कृति के मूल उद्गम हैं। इन्हीं के माध्यम से रामचरित मानस मे नैतिक आदर्शों की प्रामाणिकता भी सिद्ध हो जाएगी। नैतिक नियमों का भारतीय वाङ्मय मे इस प्रकार विवरण है– धर्म नीति–

1. वेद–

वेदों का कथन है– **"सत्यं वद। धर्मं चर। मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव।"2** तथा मा गामनागामदितिं वधिष्ठ। इत्यादि वेद के नैतिक उपदेश प्रायः आज्ञासूचक हैं। ये सभी आज्ञायें धर्म तथा मोक्ष विषयक उपलब्धि हेतु हैं।

2. धर्म शास्त्र–

"मानव के प्रातः जागरण से रात्रि विश्राम तक सुषुप्ति और स्वप्न तक के सारे विधान स्मृतियों में निर्दिष्ट है।"3

महर्षियों की स्मृतियाँ तथा धर्म सूत्र, गृह्य सूत्र आदि धर्म शास्त्र के अंतर्गत आते

---

1. कल्याण, नीतिसार अंक वर्ष 76 अंक 1– पृ0 200
2. तैत्तरीय – 1/11
3. नीति वाङ्गमय का संक्षिप्त परिचय – कल्याण नीतिसारांक – पृ0 429

हैं इनके अनुसार–

"जितेन्द्रियः स्यात् सततं वश्यात्माक्रोधनः शुचिः।

प्रयुञ्जति सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम्।।"1

आत्म कल्याणकारी व्यक्ति को चाहिए कि वह निरन्तर इन्द्रियों को अपने वश में रखकर जितेन्द्रिय रहे। मन के वश में न होकर आत्मा के वश मे रहे। क्रोध न करे सदा बाह्याभ्यन्तर पवित्र रहे तथा मधुर और हितकारी वाणी बोले। कठोर तथा अकल्याणकारी वाणी न बोले।

बाल्मीकि रामायण–

बाल्मीकि रामायण के राम तो नीति और धर्म के मूर्तमान रूप हैं **"रामो विग्रहवान् धर्मः"** जिनके संबंध में शुक्राचार्य अपने ग्रंथ में कहते हैं कि– **'न राम सदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्'।**

बाल्मीकि रामायण के राक्षसों के अतिरिक्त सभी पात्र साधरणतः नीतिमान तथा धार्मिक हैं।

पुराण–

महर्षि वेदव्यास ने पुराणों में वेदार्थ का ही उपबृंहण किया है। वेदों मे जो बातें सूत्ररूप में निर्दिष्ट हैं, पुराणों में उन्ही का विस्तार आख्यान शैली में किया गया है– जैसे सत्यं वद। को राजा हरिश्चन्द्र के आख्यान में तथा धर्मंचर। को राजा युधिष्ठिर आदि के माध्यम से समझा दिया।

महाभारत–

एक लाख श्लोकों के माध्यम से महर्षि व्यास ने महाभारत में ज्ञान, भक्ति, कर्म,

---

1. औशनस स्मृति – 3/15

नीति, धर्म, मोक्ष, सारे वेद वाङ्मय को एक समुद्र के रूप में प्रवाहित कर दिया– तभी तो कहा गया है– **"यन्न भारते तन्न भारते तथा धर्मे चार्थे च कामे मोक्षे च भारतवर्ष। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।"**

जो महाभारत मे नही वह कहीं नहीं अर्थात् महाभारत में सब कुछ है।

श्री मद्भगवतगीता– महाभारत के भीष्म पर्व मे समाहित भगवद्गीता साक्षात् भगवान् की वाणी है। "इसमें भगवान ने अपनी विभूतियों में नीति का परिगणन किया है।"

विदुरनीति– विदुरनीति जैसा विलक्षण ग्रंथ भी महाभारत में ही गुम्फित है इसमें नीति के दोनो अंगों का विस्तृत वर्णन है। राजनीति तथा धर्मनीति दोनो के उत्कृष्ट उद्धरण इसी में निहित हैं।

कामन्दकीय नीति–

कामन्दकीय नीतिसार के प्रणेता आचार्य कामन्द ने इसमें राजधर्म तथा राजनीति का वर्णन किया है।

निबन्ध ग्रन्थ–

बारहवीं शताब्दी में पं लक्ष्मीधरभट्ट नामक आचार्य ने 'काव्यकल्पतरू' धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थ की रचना की जिसमें पुराणों तथा स्मृतियों के वचन संग्रहीत हैं। इसी प्रकार चण्डेश्वर का 'राजनीतिरत्नाकर' चौदहवीं शताब्दी का नीति प्रधान ग्रंथ है इसी क्रम में आचार्य नीलकण्ठ का 'भगवन्त भास्कर' या 'स्मृतिभास्कर' तथा पं मित्र मिश्र का 'वीरमित्रोदय' विशाल धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ है जिसमें संस्कारों तथा संस्कृति का विस्तृत विवेचन है।

---

1. नीतिसार अंक वर्ष 76 – पृ0 431

चाणक्य भर्तृहरि –

विष्णुगुप्त, कौटिल्य अथवा चाणक्य नीति तो नीति शास्त्र की तथा धर्मशास्त्र की अमूल्य निधि है। चतुर तथा महान् पण्डित के रूप में ख्यातिप्राप्त चाणक्य के 'चाणक्य नीतिदर्पण', चाणक्य सूत्र तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

भर्तृहरि श्रृंगार, नीति और वैराग्यशतक के प्रणेता हैं। योग ज्ञान, लोक ज्ञान तथा वैराग्य इन तीनों के ज्वलन्त प्रमाण हैं। भर्तृहरि ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया।

पञ्चतन्त्र–हितोपदेश –

पंचतन्त्र नीतियों का सिरमौर है। इसमें मित्र भेद, मित्रसम्प्राप्ति आदि पाँच तन्त्र हैं। आचार्य विष्णु शर्मा द्वारा रचित यह ग्रंथ नैतिक शिक्षा का उत्कृष्ट ग्रंथ है। हितोपदेश श्री नारायन पण्डित द्वारा रचित पञ्चतन्त्र की शैली में ही नीति ज्ञान तथा व्यावहारिक शिक्षा देता है। इसके पश्चात भी अनेक विद्वानों की कृतियाँ प्रकाश में आईं किंतु सोलवहीं शताब्दी में महात्मा तुलसी द्वारा विरचित रामचरित मानस जैसा कोई ग्रंथ आधुनिक युग में दृष्टिगोचर नहीं होता।

रामचरित मानस – रामचरित मानस श्री राम की अनुपम गाथा का गान करता है। किंतु महाभारत की तरह इसमें भी वह सब कुछ है जो भारत के कोने–कोने में है। अर्थात् भारतीय संस्कृति का अंग प्रत्यंग।

समस्त नीति ग्रंथों के सार को लेकर गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में नैतिक आदर्श प्रस्तुत किये।

सत्यंवद। के वेद उपदेश को राजा राम, दशरथ आदि के माध्यम से जीवन्त कर दिया। **"सत्य संध दृढ़व्रत रघुराई।"**

मातृदेवोभव, पितृदेवोभव– का सनातन उपदेश श्रीराम अपने चरित्र के माध्यम से

देते हैं–

"धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहिं प्रमाद चरित सुनि जासू।।

चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें।।"1

आचार्य देवो भव–

"उठे लखन निसि बिगत सुनि अरूनसिखा धुनि कान।

गुर ते पहलेहिं जगत पति जागे राम सुजान।।"2(क)

तथा

"जिन्ह के चरन सरोरूह लागी। करत विविध जप जोग बिरागी।।

तेइ दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते।।"2(ख)

अतिथि देवो भव–

"मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै विप्र समाजा।।

करि दंडवत मुनिहिं सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी।।"3

इस प्रकार अनेक धर्म नीति के ज्वलन्त उद्धरण हैं जिनसे वेद प्रतिपादित धर्म का आचरण सिद्ध होता है

राजनीति विषयक आदर्श रामचरित मानस में अनेक हैं जैसे राजा प्रतापभानु–

"जब प्रताप रबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।

प्रजा पाल अति बेद बिधि नहिं कतहुँ अघ लेस।।"4

---

1. रामचरित मानस – 2/46–1, 2
2. रामचरित मानस – (क) 1/226, (ख) 1/226–4, 5
3. रामचरित मानस – 1/207–1, 2
4. रामचरित मानस – 1/153

राजा दशरथ– प्रजा को अपने पुत्रों की भाँति प्रेम करने वाले थे

"अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। वेद विदित तेहि दसरथ नाऊँ।।

धरम धुरन्धर गुन निधि ग्यानी। ह्रदय भगति मति सारँगपानी"1

राजा राम–

राम का राज्य तो भारतीय इतिहास का स्वर्णिम काल है ऐसा राज्य न कभी हुआ था न कभी होगा क्योंकि जैसा कि शुक्रनीति में कहा गया था कि राम के समान नीतिमान पृथ्वी में न कोई राजा हुआ है न होगा। जिसका अनुमोदन तुलसी दास जी करते है–

"नीति प्रीति परमारथु स्वारथु। कोउ न राम सन जानि जथा रथु।।"

वास्तव में रामचरित मानस समस्त निगमागम, पुराण, उपनिषदादि धर्म ग्रंथो का मंथन कर सार रूप में निकाला गया नवनीत है। जिसमें भारत की सनातन संस्कृति के ज्वलन्त उदाहरण विद्यमान हैं। जिनके सद्आचरण सभी वर्गों के लिये अनुकरणीय हैं।

रामचरित मानस में धर्म नीति, राजनीति के उत्कृष्ट आदर्श हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि रामचरित मानस एक संस्कृति निष्ठ ग्रंथ है।

8. उत्सव और मंगल प्रियता–

भारतीय संस्कृति उत्सव तथा मंगल प्रधान है। जीवन के प्रत्येक क्षण को एक उत्सव की तरह उल्लास पूर्ण ढंग से जीने की मंगल कामना ही सनातन मंगल कामना है। रामचरित मानस में ये दोनो विशेषतायें दृष्टि गोचर होती हैं–

1. उत्सव–

जन्म से लेकर विवाह संस्कार तक प्रत्येक संस्कार उत्सव के रूप में मनाया

---

1. रामचरित मानस – 1/188–7, 8

जाता है क्योंकि यहाँ तक प्राणी अभ्युदय की चरम सीमा पार करता है– **"यतो अभ्युदय निःश्रेययस्सिद्धिः स धर्मः"** इसके पश्चात् मनुष्य निःश्रेयस् की सिद्धि की ओर उन्मुख होता है। जो कि अंतर्जगत के उत्सव की यात्रा है, जिसका अनुभव आत्मा करती है, इसलिए वाह्यउत्सव से उसका कोई संबंध नहीं है। प्राचीन काल से आजतक पुराण प्रतिपादित व्रत, त्यौहारों आदि में होने वाले उत्सव हमारी संस्कृति की 'असत्य पर सत्य की विजय' कामना को दर्शाते हैं।

रामचरित मानस में इसी कामना से परिपूर्ण उत्सव दृष्टिगत होते हैं। लौकिक सुख की अनुभूति व्यक्ति हर्षोल्लास पूर्ण उत्सव में ही करता है। जीवन में उत्सवों के अवसर–

पुत्रजन्मोत्सव–

"गृह गृह बाजत बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।

हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद।।"1

विवाहोत्सव–

"झाँझि मृदंग संग सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई।।

बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए।।"2

"पंच सबद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं विधि नाना।।

करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा।।"3

उत्सवों में पंच शब्द (तन्त्री, ताल, झाँझ, नगाड़ा और तुरही) तथा पंचध्वनि (वेदध्वनि,

---

1. रामचरित मानस – 1
2. रामचरित मानस – 1/263–1, 2
3. रामचरित मानस – 1/319/3, 4

वन्दिध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि तथा हुलूध्वनि) तथा मंगल गान एवं नृत्य मुख्य रूप से होते हैं क्योंकि भारतीय संस्कृति में जितना महत्व साहित्य तथा कला का है उतना ही महत्व संगीत का है जैसा कि कहा गया है–

"साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात नर पशु पुच्छविषाणहीनः।।"

इन सभी उत्सवों में एक बात बहुत महत्त्वपूर्ण है वह है पारस्परिक सौहार्द की भावना एक दूसरे के सुख मे सुखी होने की भावना क्योंकि सामूहिक उत्सव समाज के संगठन की आधार शिला है।

मंगल कामना–

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' तन मन धन किसी भी प्रकार से हो दूसरे का हित ही होना चाहिए यही सनातन धर्म है और यही सनातन संस्कृति है इसी मंगल कामना के भाव से राम चरित मानस का सृजन हुआ।

कीरति भनितिभूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई।।

विप्र वंश की इतनी प्रभुताई क्यों है वह इसलिए कि ब्राह्मण सदैव मंगल कारी कामना करता है– **"तव माया बस जीव जड़ संतति फिरहिं भुलान।**

तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपा सिंधु भगवान।।"1

भारतीय संस्कृति के मूल उद्‌गम वेद की भी तो यही मंगल कामना है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरमयाः।

सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुःख भाग्भवेत्।।

स्वयं दुख सहकर अपमानित होकर भी ब्राह्मण किसी का अहित चिंतन नही करता इसी

---

1. रामचरित मानस – 7/108

लिए भगवान स्वयं कहते हैं–

विप्र वंस की अस प्रभुताई। अभय होय जे तुम्हहिं डेराई।।

प्रत्येक संस्कार उत्सव के समय मंगल गान के अर्थ में भी तो संस्कारित के प्रति कल्याण की भावना ही निहित है।

वैसे तो भारतीय संस्कृति की अनन्त विशेषतायें है किंतु यहाँ पर कुछ प्रमुख विशेषताओं का हमने रामचरित मानस के आधार पर अवलोकन किया। हमने यह भी जाना कि रामचरित मानस में सनातन संस्कृति का निष्ठापूर्वक निरूपण हुआ है।

घ. रामचरित मानस में सनातन धर्म एवं सनातन संस्कृति

कलियुग वर्णन–

रामचरित मानस की जब रचना हुई उस समय भारत में सनातन संस्कृति रूपी शरीर में अनेक रोग प्रकट हो चुके थे। सदाचार का स्थान दुराचार ने ले लिया था सत्य के स्थान पर असत्य तथा उदारता के स्थान पर अनुदारता, संयमःशील के स्थान पर पाखण्ड का साम्राज्य था सर्वत्र मर्यादा–हीनता व्याप्त हो रही थी, कुत्सित प्रवृत्तियों ने जैसे संस्कृति के साथ–साथ मानवता का भी विनाश करने की ठान ली थी। इस पीड़ा को अनुभवकर भारतीय संस्कृति के अनन्य समर्थक तथा उद्धार के लिए प्रेरित गोस्वामी तुलसी दास मनुष्य के स्वेच्छाचार का वर्णन करते हैं–

सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरन अनीति अपारा।।

किस प्रकार वेद प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्मों का ह्रास हो रहा है। सनातन धर्म के स्थान पर विभिन्न मतवादी अपने–अपने मतानुसार सम्प्रदायों की स्थापना कर रहे हैं–

वर्णधर्म का पतन–

"बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।।

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।।

सूद्र द्विजन्ह अदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।।

ते विप्रन्ह सब आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।।"[1]

शूद्रों के इस विधर्म परायणता का कारण क्या है?–

"विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी।।"[2]

---

1. रामचरित मानस – 7/98
2. रामचरित मानस – 7/100–8

इस प्रकार वर्ण धर्म दूषित हो गया परिणाम स्परूप आश्रम धर्म की मर्यादा भी भंग हो गई–

ब्रह्मचर्याश्रम– **गुर सिष बधिर अंधका लेखा। एक न सुनइ एक न देखा।।**[1]

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।।

गृह तथा वानप्रस्थ– सन्यासी धन लोलुप हो गये तथा गृहस्थ ढोंगी सन्यासियों द्वारा फैलाए मायाजाल तथा स्वयं के कारण दरिद्र हो गये।

"बहु दाम सवारहिं धाम जती। विषया हर लीन्हि न रही बिरति।।

तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।।"[2]

सन्यास– **नीच जाति के लोग पत्नी की मृत्यु के पश्चात सन्यासी बन गये।**

"जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।।

नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी।।"[3]

नर–नारी की स्थिति–

"सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव विप्र श्रुति संत विरोधी।।

गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरूष अभागी।।"[4]

सौभाग्यवती तथा विधवा–

"सौभागिनीं विभूषन हीना। विधवन्ह के सिंगार नवीना।।"[5]

समस्त नर नारियों के अधर्मरत होते ही सुसंस्कारों का ह्रास होने लगा जो माता

---

1. रामचरित मानस – 7/101 छं
2. रामचरित मानस – 7/100–9, 10
3. रामचरित मानस – 7/100
4. रामचरित मानस – 7/99–3, 4
5. रामचरित मानस – 7/99–5

पिता स्वयं धर्म नहीं जानते वे अपने बच्चों को क्या धर्म और संस्कार सिखाएंगे? क्योंकि– "अच्छी शिक्षा वाणी से नहीं कर्म से देनी चाहिए। इसलिए माता पिता स्वयं जो हैं वही शिक्षा बालकों को देते हैं–

"माता पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं।।"1

और यदि कोई मनुष्य स्वधर्म निरत है भी तो उसकी स्थिति क्या है देखें–

"कुलवंत निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।।"2

इस प्रकार वेद धर्म की सारी मर्यादायें नष्ट हो गईं–

"सब लोग बिसोक बियोग हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए।।"3

"श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति विवेक।
तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।"4

परिणाम स्वरूप–

"भए बरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रूज सोक वियोग।।"5

दुख, भय, शोक और प्रिय वस्तु के वियोग में दुखी सभी प्राणियों की स्थिति देखकर संत तुलसी का ह्रदय द्रवित हो गया तथा उन्होंने भारतीय वेद प्रतिपादित धर्म तथा संस्कृति के उत्थान का वीड़ा उठाया और रामचरित मानस का सृजन कर जन

---

1. रामचरित मानस – 7/99 – 8
2. रामचरित मानस – 7/101 – छं
3. रामचरित मानस – 7/102 – 6
4. रामचरित मानस – 7/100 (ख)
5. रामचरित मानस – 7/100 (क)

जन तक **"सर्वेभवन्तु सुखिनः"** तथा **"असतो मा सदगमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय।"**1 का सनातन संदेश पहुँचाया।

रामचरित मानस में समस्त मानव तथा वानर पात्रों के माध्यम से (यत्र तत्र राक्षस भी) जन सामान्य को सनातन धर्म तथा सनातन संस्कृति का ज्ञान हुआ, तथा भारतीय समाज परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़कर (इन्द्रियवशता) स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न के लिए उन्मुख हुआ। यह प्रयास अब भी जारी है और तब तक रहेगा जब तक अमृतत्व की प्राप्ति नहीं होती।

रामचरित मानस में सनातन धर्म–

जैसा कि पूर्व सोपानों में स्पष्ट हो चुका है कि वेद ही धर्म तथा संस्कृति के आदि स्रोत है। इसलिए वेद प्रतिपादित धर्म ही सनातन धर्म हैं जिनका अवलोकन हम रामचरित मानस मे करेंगे–

ऋत एवं सत्य– ब्रह्म, सत्य, वेद अर्थात ज्ञान ये सभी अनन्त हैं इनकी पूर्ण समझ तो किसी के लिए सम्भव नहीं है; किंतु मनुष्य जीवन में सत्य धर्म का पालन किस प्रकार करना चाहिए इसके आदर्श पात्र रामचरित मानस में राजा दशरथ, श्रीराम, सीता, अनुसूया आदि पात्रों के रूप में दृष्टिगत होते हैं।

"धर्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।"

वेद की आज्ञा विधि तथा निषेध दो प्रकार की है– विधि का ग्रहण तथा निषेध का त्याग यही धर्म है; उदाहरण के लिए 'सत्यंवद' के मूल में यह भाव छुपा है कि असत्य नहीं सत्य बोलो इसी प्रकार धर्मचर का अर्थ है अधर्म का नहीं, धर्म का आचरण

---

1. वृहदारण्यक उपनिषद – 1/3/28

करो। गोस्वामी जी का भी कथन है–

नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होइ कि कोटिक गुंजा।।

असत्य से बड़ा कोई पाप नहीं फिर वह पर्वत के समान बड़ा हो अथवा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हो।

अहिंसा– वेदों, पुराणों, स्मृतियों एवं महाभारतादि ग्रंथो में अहिंसा को परम धर्म कहा गया है; क्योंकि अहिंसक प्राणी 'आत्मवत सर्वभूतेषु' का भाव रखता है वही दया धर्म का पालन कर सकता है और दया दृष्टि वाला ही क्षमा धर्म का पालन करेगा। क्षमा का भाव हृदय में आते ही प्राणी क्रोध हीन हो जाता है और क्रोध हीन प्राणी के हृदय में प्रेम ही प्रेम रहता है, जिसके हृदय में प्रेम है, वहाँ अहंकार नहीं रहता और जहाँ अहंकार नहीं है वहीं तो ईश्वर है क्योंकि ईश्वर अथवा परमात्मा ही परमधर्म तथा परमात्म प्राप्ति ही परम लक्ष्य है।

किसी ने सच ही कहा है "Heart is the seat of God" हृदय तो प्रभु का निवास स्थान है। इसीलिए महाभारत में वेदव्यास कहते है–

"अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः।

अहिंसा परमं सत्यः यतो धर्मः प्रवर्तते।।"[1]

गोस्वामी तुलसी दास भी इसका अनुमोदन करते हैं–

"परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा"

अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है। भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, गाँधी ईसा, मुहम्मद आदि महापुरूष इसी धर्म के पुजारी थे। ये महापुरूष सनातन धर्म के रक्षक तथ सनातन संस्कृति के प्रणेता थे।

---

1. महाभारत – 15/23

परहित– **"परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।"**

सनातन धर्म का बीज परहित है वह किसी भी प्रकार हो मन, वाणी अथवा कर्म से वेदों की ऋचाओ में शान्ति का पाठ, इसी भाव से ओतप्रोत है–

ऊँ द्यौ शान्तिः अन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः

शार्न्तिविश्वेदेवा शार्न्तिवनस्पतयः शान्तिः; ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव

शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

शांतिगान के इस प्रकार से मन तथा वाणी दोनों से परहित चिंतन हो जाता है। किंतु रामचरित मानस में श्री राम ने इस चिंतन को अपने जीवन में जीकर दिखाया है–

"जासु सुभाउ अरिहु अनुकूला। सो किमि होइ मातु प्रतिकूला।।"[1]

"अस सुभाव कंहु सुनहुं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं।।"[2]

मनुष्य के सत्य भाषण तथा अहिंसा धर्म पालन में भी परहित का भाव समाहित हो, यही सनातन धर्म की अवधारणा है।

अध्यात्म ज्ञान अथवा विद्या (पुरूषार्थ ज्ञान) गोस्वामी के अनुसार जीव ईश्वर का ही अंश है इसलिए उसी की तरह चेतन, मल रहित तथा सुख की राशि है–

आत्म ज्ञान– "ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।"

"आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।"[3]

किंतु आत्म ज्ञान के अभाव में जड़ प्रकृति से आबद्ध है। आत्म ज्ञान होने पर ही बंधन से मुक्ति संभव है।

---

1. रामचरित मानस – 2/7
2. रामचरित मानस – 7/118–2
3. रामचरित मानस – 7/118–2

पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष) ज्ञान–

"धर्मते बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।"1

और धर्म प्राप्ति का उपाय बताते हुए संत कवि कहते हैं–

"श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध की पावइ कोई।।"

क्योंकि श्रद्धा और दृढ़ विश्वास के बिना प्राणी अपने हृदय में स्थित परमशक्ति की अंश रूप में विद्यता को नहीं जान पाता–

"भवानी शंकरौवन्दे श्रद्धा विश्वासरूपिणौ।"2

याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।।"

श्रद्धा और विश्वास हृदय में आते ही धर्म का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है–

"तब मैं हृदय बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।

जा कहुँ करिअ सो पैहऊँ धर्म न एहि सम आन।।"3

सनातन धर्म के उप लक्षण तथा उनके पालन का फल बताते हुए गोस्वामी जी कहते हैं–

"जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा।।

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।"4

इनके अतिरिक्त प्रभुभक्ति का भी रहस्य यही है–

"भगति ग्यान विग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य विभागा।।"5

---

1. रामचरित मानस – 7/48
2. रामचरित मानस – 1/मंगलाचरण
3. रामचरित मानस – 7/48
4. रामचरित मानस – 7/49 – 1, 2
5. रामचरित मानस – 7/85–7, 8

"सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित।।

दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।"1

क्योंकि– श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम ही भक्ति है। प्रेम ही ईश्वर है–

"प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।"2

इस प्रकार सनातन धर्म हमें अंधकार (अज्ञान) से प्रकाश (यथार्थ ज्ञान) की ओर ले जाता है।

संतवाणी कहती है कि– "धर्म सनातन सिद्धान्त हैं धर्म के इन्ही सनातन सिद्धान्तों की परिष्कृत परम्परा का नाम संस्कृति है।
अर्थात् जीवन के सुन्दर परोपकारी सुखदायक आचरणों के समुच्चय को ही संस्कृति कहते हैं।"

"धर्म अंतःकरण का विषय है और वही धर्म जब आचरण बनकर जीवन को सजाने का कार्य करता है तो संस्कृति बन जाता है। संस्कृति जब अपना वहिरंग रूप धारण करती है तो वह सभ्यता के रूप में प्रकट होती है।"3

रामचरित मानस में सनातन संस्कृति–

सनातन संस्कृति के सूक्ष्म तत्त्वों के आधार पर हम रामचरित मानस में सनातन संस्कृति का अवलोकन करेंगे वे सूक्ष्म तत्त्व हैं–

1. परहित

2. प्रेम तथा त्याग भाव

---

1. रामचरित मानस – 7/49–7, 8
2. रामचरित मानस – 7/49–6
3. अमर उजाला – एक लेख से उद्धृत

3. उदारता

4. सहनशीलता

5. शरणागत की रक्षा

6. मित्रता की भावना

7. मर्यादा

8. आदर्श दिनचर्या

9. समानता का भाव।

सनातन संस्कृति के ये तत्त्व मनुष्य के चहुमुखी विकास में सहायक होते हैं। इन शुभ संस्कारो से सम्पन्न मनुष्य इस लोक में सुख भोगकर परलोक के आनन्द को प्राप्त करता है।

1. परहित–

रामचरित मानस की रचना का उद्देश्य भी परहित था। जैसा कि मैंने पूर्व में उल्लेख है किया कि मानस के रचनाकाल मे मनुष्य अपनी सनातन संस्कृति को भूलकर कुसंस्कृति में लिप्त था और तरह–तरह के मानस रोगों से पीड़ित था जिनका वर्णन गोस्वामी जी इस प्रकार करते हैं–

"सुनहुतात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा।।"

1. मोह– "मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहुसूला।।"

2. काम– "काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।"

3. क्रोध– "प्रीति करहिं जो तीनिउ भाई। उपजहिं सन्यपात दुखदाई।।"[1]

---

1. रामचरित मानस – 7/121–1–3

इसके अतिरिक्त अन्य रोग भी हैं–

ममता, ईर्ष्या, हर्ष, विषाद, असूया (डाह), कुटिलता अहंकार, दम्भ, कपट, मद और मान, तृष्णा, इच्छा (पुत्र, धन और मान) प्राप्ति, मत्सर और अविवेक आदि अनेक प्रकार के मानस रोगों से प्राणी ग्रसित है इनमे से कोई एक रोग होने पर आदमी मर जाता है फिर यहाँ तो इतने अधिक असाध्य रोग फैले हैं–

"ममता दादु कंडु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई।।

परसुख देखि जरनि सोई छाई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलाई।।

अहंकार अति दुखद डमरूआ। दंभ कपट मद मान नेहरूआ।।

तृष्ना उदरबृद्धि अतिभारी। त्रिबिध ईषना तरून तिजारी।।

जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।

पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।।"1

इन रोगों से पीड़ित मनुष्य प्रश्न करता हैं कि यदि हम इन असाध्य रोगों से ग्रसित हैं तो फिर इनसे मुक्ति और समाधि (शान्ति) का क्या उपाय है। रामचरित मानस की 'परहित' चिंतन परक भावना में गोस्वामी जी इन असाध्य रोगों का उपचार बताते हुए कहते हैं–

---

1. रामचरित मानस – 7/121–5–9

"पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं

माया मोह मलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरंशुभम्।

श्री मद्रामचरित मानस–मिदं भक्त्यावगाहन्ति ये

ते संसार पतङ्गघोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।।"1

अर्थात यह रामचरित मानस पुण्यरूप, पापों का हरण करने वाला, सदा कल्याणकारी, विज्ञान और भक्ति (प्रेम) को देने वाला, माया (अज्ञान) मोह (अंधकार), और मल (मनोरोग) का नाश करने वाला, परम निर्मल प्रेमरूपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय (परोपकारी ग्रंथ) है जो मनुष्य भक्ति (प्रेम, श्रद्धा, विश्वास) पूर्वक इस मानसरोवर में गोता लगाते हैं अर्थात् इसकी सद्शिक्षा ग्रहण करते हैं, वे मनुष्य संसार रूपी सूर्य (अज्ञानता) की प्रचण्ड किरणों से नहीं जलते।

किंतु इस अज्ञान से मुक्ति किन आचरणों को अपनाने से मिलेगी? तो संत कवि राम राज्य के स्त्री पुरूषों का आदर्श प्रस्तुत करते हैं यथा–

"बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।"2

वेद ने जो नियम 'अभ्युदय' और निःश्रेयस की प्राप्ति हेतु बनाए उन्हीं नियमो पर चलकर अयोध्यावासी अपार सुख का अनुभव करते हैं उन्हें न कोई भय है न शोक है और न ही कोई रोग है। क्योंकि सभी नर नारी धर्म परायण हैं इसलिए उनका धर्म ही उनका रक्षक बना है जो दैहिक (भय) रोग, दैविक (शोक) रोग तथा भौतिक (दरिद्रता) रोग से उनकी रक्षा कर रहा है।

---

1. रामचरित मानस – 7/श्लोक (2)
2. रामचरित मानस – 7/20

"धर्म एव हतोहन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः"

धर्मशास्त्रों के इस कथन की सत्यता यहाँ प्रमाणित होती है–

"दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं व्यापा।।"1

इसका कारण है कि–

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।

सबनिर्दम्भ धर्म रत पुनी। नर अरू नारि चतुर सब गुनी।।

जो अवगुण पूर्व में वर्णित किये गये वे सभी मानस रोगों के कारण हैं इन रोगों का उपचार निम्नलिखित गुणों को अपनाकर हो सकता है गोस्वामी जी की ऐसी मान्यता थी रामराज्य में सभी नर नारी–

"सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।

एक नारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।"2

परोपकारी तथा सच्चरित्र थे इसके फलस्वरूप उन्हें सभी प्रकार की सुख संपदा उपलब्ध थीं। जैसे–

"अल्पमृत्यु नहिं कउ निउ पीरा। सब सुंदर सब बिरूज सरीरा।।

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।"3

अर्थात् यदि सभी स्त्री पुरूष अपने–अपने धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते रहें तथा निरन्तर परहित निरत रहें तो कोई संदेह नहीं कि आज भी रामराज्य बन सकता है।

---

1. रामचरित मानस – 7/21–1
2. रामचरित मानस – 7/22–7, 8
3. रामचरित मानस – 7/21–3, 4

2. प्रेम तथा त्यागभाव–

श्री राम तथा भरत के चरित्र में जो त्याग का आदर्श स्थापित हुआ उसी आदर्श को गोस्वामी तुलसीदास भगीरथ की तरह जन साधारण के लिए मुक्तिदायिनी रामचरित मानस में लेकर चले–

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।"

रामचरित मानस के पात्रों का त्याग भाव इसी भावना को प्रकट करता है अयोध्या के राज सिंहासन के लिए श्री राम और भरत दोनो की त्याग भावना इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्री राम को जब माता कैकई के द्वारा यह ज्ञान हुआ कि वरदान स्वरूप उन्होंने भरत के लिए अयोध्या का राज्य माँगा है तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए–

"भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।।"[1]

भरत श्री राम को अत्यधिक प्रिय थे इसलिए प्राणप्रिय भरत के राजा बनने की कल्पना से ही श्री राम विधाता की अनुकूलता की बात कहते हैं; और माता कैकई को भी ग्लानिमुक्त करने का प्रयास करते हैं कि वन गमन उनके लिए अत्यन्त सुखदायक है।

"जौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहिं मूढ समाजा।।"[2]

इस सरलता का कारण यह है कि श्री राम तो सहज आनंददायक तथा अपने स्वभाव में स्थित हैं किसी भी प्रकार का प्रलोभन अथवा विषय भोग की इच्छा उन्हें स्पर्श

---

1. रामचरित मानस – 2/42–1
2. रामचरित मानस – 2/42–2

नहीं कर सकती इसलिए बिना राजसिंहासन के भी वे सूर्यवंश के सूर्य हैं–

"मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनंद निधानू।।

बोले बचन बिगत सबदूषन। मृदु मंजुल जनु बाग विभूषन।।"1

भरत को जब श्री राम के वन गमन का समाचार मिलता है तो इसका कारण वे स्वयं को मानकर दुख के सागर में डूब जाते है माता द्वारा स्वयं के राज सिंहासन की बात सुनकर उनका हृदय स्वयं के प्रति घृणा से भर जाता है।

भरत अपने अग्रज से इतना अधिक प्रेम करते थे कि उनके वन गमन तथा पितृमरण दोनो समाचार एक साथ मिलने पर वे पिता मरण भूल गये–

"भरतहिं बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन।

हेतु अपनपउ जानजियँ थकित रहे धरि मौन।।"2

परस्पर प्रेम भाव ही त्याग भाव को जन्म देता है भारतीय संस्कृति की यह अनुपम विशेषता है कि इसके तत्त्व को पूर्णतः जानने वाले दूसरों के हित के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं।

त्याग भावना का एक पक्ष और भी रामचरित मानस में दृष्टि गोचर होता है– बुराई का त्याग। इस त्याग के लिए गोस्वामी जी कहते हैं–

"जाके प्रिय न राम बैदेही, तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।।"

जिसके हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेमभाव नहीं, उसको करोड़ो शत्रुओं के समान अहितकर समझकर त्याग कर देना चाहिए।

---

1. रामचरित मानस – 2/41–5, 6
2. रामचरित मानस – 2/160

ऐसा ही त्याग विभीषण ने किया–

"रामु सत्य संकल्प प्रभु सभा काल बस तोर।

मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि।।"1

तात्पर्य यह है कि यद्यपि परिजनों के प्रति निष्ठा रखना धर्म है किंतु अधर्म रत परिजनों के साथ स्वयं अधर्म में संलग्न होना यथार्थ धर्म नहीं है।

भारतीय संस्कृति की त्याग भावना तथा रामचरित मानस की त्याग भावना दोनो का समन्व्यात्मक निष्कर्ष एक यह है कि धर्म स्वरूप प्रेम (ईश्वर) को जानने वाला मनुष्य धर्म के लिये अपना सब कुछ त्याग देता है इस त्याग की जीवन्त प्रतिमा हैं भरत; इनके लिए गोस्वामी जी का कथन है–

"जो न होत जग जनम भरत को।

सकल धरम धुरि धरनि धरत को।।"2

भरत साक्षात प्रेम की मूर्ति हैं प्रेम से परिपूर्ण मनुष्य ही धर्म के तत्त्व का ज्ञाता होता है। रामचरित मानस में यदि भरत जैसा आदर्श प्रेम का पात्र न होता तो राम का चरित्र रूपी मानसरोवर प्रेम रूपी जल से विहीन हो जाता। और दूसरा निष्कर्ष कहता है कि धर्म के लिए बंधु बांधवों का त्याग भी वांछनीय है। दोनो त्याग अपनी जगह श्रेष्ठ हैं।

3. उदारता– **अयं निजः परोवेति गणनां तु लघुचेतसाम्।**

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। (हितोपदेश)

यह है भारतीय संस्कृति की विशेषता। यह मेरा वह तेरा ये तो छोटी बुद्धि वालो

---

1. रामचरित मानस – 5/41
2. रामचरित मानस – 2/23–1

की सोच है किंतु जो उदार दृष्टिकोण वाले हैं उनके लिए तो सारी वसुधा ही अपना कुटुम्ब है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना ही थी जिसका श्री राम के मुख से प्रतिज्ञा स्वरूप प्राकट्य हुआ था–

"निसिचर हीन करौं मही भुज उठाय पनु कीन्ह।"1

अत्याचारियों से पृथ्वी वासियों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा को श्री राम ने अनेक कष्ट सहकर पूर्ण किया।

रामचरित मानस के अनुसार न कोई छोटा है न कोई बड़ा न कोई ऊँचा है न कोई नीच श्री राम के प्रेम रूपी सागर में सभी जीव समान हैं–

"लोक वेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा।

तेहि भरि अंक राम लघुभ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।।"2

गोस्वामी तुलसी दास धर्म तथा संस्कृति के सनातन तत्त्व को जानते थे इसी कारण इस प्रकार की (छुआ–छूत) कुरीतियों का निवारण उन्होंने भरत, श्री राम तथा गुरू वशिष्ठ जैसे धर्म धुरन्धर पात्रों से कराया। जिससे जन साधारण में यह धारणा बन जाए कि जिसका मन प्रेम से निर्मल है वही प्रभु को प्राप्त कर सकता है–

"निर्मल जन मन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।।"

वेद का भी तो यही कथन है– कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये परमात्मा के शरीर से उत्पन्न हैं अतः वास्तव में ये अभिन्न हैं किंतु अज्ञानवश प्राणी इस अभिन्नता

---

1. रामचरित मानस
2. रामचरित मानस – 2/194–3, 4

की अवेहलना कर स्वेच्छाचारी हो जाता है–

"ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीद बाहु राजन्यः कृतः।

उरू तदस्य वैश्यः पद्भ्याम् शूद्रोऽजायत।।"1

ऐसे अज्ञानियों के लिए वेद कहता है कि हे मनुष्य तुम अपना स्वरूप भूलकर निरर्थक प्राण तृप्ति के कार्यों में लगकर आडम्बर युक्त और बहुभाषी हो गये हो–

"न तं विताक्ष य इमा जजान अन्यद्युष्माकं अन्तरंवभूव।

नीहारेण प्रावृता जल्प्या चाऽसुतृप उक्थ शासश्चरन्ति।।"2

4. सहनशीलता–

"सहनशीलता क्षमा की जननी है।" तथा भारतीय संस्कृति की सनातन विशेषता है। धृति धर्म का निर्वाहन इसी विशेषता का परिणाम है। सनातन संस्कृति सर्वग्राह्य संस्कृति है इसके द्वार सभी के लिए खुले हैं ऐसी उदारता का अभ्यास आश्रम धर्मों मे होता है। जब बालक आचार्य के समक्ष शिक्षा प्राप्त करने जाता है तब गुरू शिष्य को जीवन में आने वाली प्रत्येक परिस्थिति के लिए पहले से अभ्यस्त करते हैं जैसे भिक्षा मंगवाकर उनमें समानता का भाव पैदा किया जाता था।

ब्रह्मचर्य के पालन से उनके चरित्र में दृढता तथा स्थिरता आती थी। गुरु वशिष्ठ ने यदि दशरथ कुमारों को कर्तव्य की कठोरता की शिक्षा न दी होती तो राम लक्ष्मण चौदह वर्षों तक वन के कठोर जीवन को न जी पाते। गुरु कुल में प्रारंभ से ही भिक्षा माँगना, लकड़ी काटना, कुशा लाना, गो सेवा जैसे कार्य कराये जाते थे।

राम के जीवन में एक ही दिन में अयोध्या जैसे चक्रवर्ती राज्य की प्राप्ति एवं

---

1. ऋग्वेद – 10/191/2
2. ऋग्वेद – 10/82/7 तथा यजुर्वेद 17/31

चौदह वर्ष के लिए वनवास की आज्ञा होती है जिसे सुनकर उनके मन में हर्ष या क्रोध किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता। तुलसी ने लिखा है–

"प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।"1

राज्याभिषेक के समय वे अपने भाइयों के विषय में चिंतन करते हैं–

"जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरकाई।।

करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा।।

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधू बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।"2

यह राम की ही सहनशीलता है कि पितृ आज्ञा को मान वे वन जाने के लिए बड़े सरल शब्दों में माँ कौसल्या से कहते हैं–

"पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाति मोर बड़ राजू।।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता।।

जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनँदु अम्ब अनुग्रह तोरे।।"3

पिता की मृत्यु की सूचना सुनकर राम को गहरा शोक हुआ किंतु उनकी व्याकुलता देख पुनः अयोध्या के लोग दुखी होंगे या इसके पूर्व लक्ष्मण के क्रोध को शांत करते हुए राम ने सौगंधपूर्वक जिस प्रकार लक्ष्मण को शांत कराया था, भरत के उच्च गुणों का गायन किया था, वनवास के शारीरिक कष्टों, सीताहरण जैसे मानसिक क्लेष सेतु बंधन जैसे असंभव से संभव कार्य करने के पीछे राम की धैर्यशीलता का ही परिचायक है इसीलिए तो राम का चरित्र साक्षात् धर्म का विग्रह स्वरूप है।

---

1. रामचरित मानस – 2/2
2. रामचरित मानस – 2/10
3. रामचरित मानस – 2/53

5. शरणागत की रक्षा–

राम कथा की यह विशेषता है कि इसमें जीवन के विविध द्वन्द्वों सुख–दुख, मान–अपमान, ग्रहण–त्याग, आगत की रक्षा, शत्रु का संहार सभी कुछ आ जाता है। यद्यपि शिवि की कहानी, शरणागत की रक्षा में तुलसी ने स्वयं उद्धृत किया है कि राजा शिवि ने शरण में आए हुए कपोत की रक्षा हेतु अपने शरीर से उसके बराबर मांस का दान किया था। यह शरणागत रक्षा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। श्री कृष्ण ने भी गीता में–

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" जैसा उद्‌घोष करते हैं राम कथा में सुग्रीव, शुक–सारण और विभीषण राम की शरण में आए हुए व्यक्ति हैं जिन्हें राम ने राजा बनाया या अभयदान दिया। विभीषण के आगमन पर अनेक यूथकों ने रावण के भ्राता के आगमन पर संदेह व्यक्त किया था

"भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा।।

सखा नीति तुम्ह नीक बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी।।

जबकि राम स्पष्ट रूप से कहते हैं–

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना।।

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।

ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि।।"[1]

इसी अवसर पर सिद्धान्त रूप में राम का कथन शरणागत की महत्ता को और अधिक बढ़ा देता है। यदि विभीषण दुष्ट हृदय होकर भी यहाँ आया है तो भी लक्ष्मण के बाणों से उसकी कुशल नहीं होगी। शरणागत की धार्मिकता के संबंध में राम

---

1. रामचरित मानस – 6/43

उद्घोषित करते हैं–

"कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू।।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ।।

जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई।।

निरमल मन जन सो मोहिं पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

भेद लेन पठवा दस सीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा।।

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछि मनु हनइ निमिष महुँ तेते।।

जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाई।।"[1]

6. मित्रता की भावना–

राम का जीवन विविध भावों का भंडार है जिसमें भ्रातृ एवं सख्य भाव प्रमुख हैं। मित्रता का उदाहरण इससे अधिक क्या हो सकता है कि भालू, बंदर जैसे राम के मित्र ऊपर पेड़ की डाल पर बैठे हैं, और उनके स्वामी राम पेड़ के नीचे हैं। सख्य भाव का यह चरम आदर्श रूप है। राम ने गुह निषादराज, सुग्रीव, विभीषण, जटायु से मित्रता की। जटायु से मित्रता पितृभाव में बदल गई निषादराज उनके अधीनस्थ करद राज्य शासक है, फिर भी राम ने उससे मैत्री संबंध स्थापित कर उसका मान ही बढ़ाया है।

निर्वासित, निरीह, निर्बल, निराश सुग्रीव को राम ने अग्नि को साक्षी मानकर मित्रता के डोर में इतने दृढ़ बंधन से बाँधा था, वे कहते हैं कि विपत्ति काल में मित्र ही धैर्य बँधाता है। मित्र को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग की ओर प्रेरित करने का कार्य मित्र ही करता है इसलिए सुग्रीव को सभी सोच छोड़ देना चाहिए क्योंकि राम उसके सभी

---

1. रामचरित मानस – 5/44

संकटों को अपना समझकर उसे दूर करने का प्रयास करेंगे तुलसी ने लिखा है–

> **"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।।**
> **निज दुख गिरि सम रज करिजाना। मित्रक दुख रज मेरू समाना।।**
> **जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।।**
> **कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा।।**
> **देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।**
> **बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।**
> **सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।।**
> **सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरे।।"1**

7. मर्यादा– यह भाव बहुआयामी है सामाजिक मर्यादा, धार्मिक मर्यादा, राजनीतिक मर्यादा इसके अंतर्गत समाहित हैं। राम मर्यादा पुरूषोत्तम कहलाते है क्योंकि उन्होंने समाज में व्यवहृत सभी प्रकार की मर्यादाओं का पालन किया है और देव, दनुज, राक्षस, पशु एवं मानव सभी जातियों पर मर्यादा पालन हेतु अपना आग्रह और अनुशासन चलाया है। वैयक्तिक मर्यादाओं का पालन करते हुए राम ने पुष्प वाटिका में सीता के प्रति प्रथम अनुराग को निर्विकार भाव से विश्वामित्र से बताया। इसी प्रकार माँ के सामने सीता को पत्नी मानकर भी उनका संबोधन मर्यादा से युक्त था राम जानते थे कि बनवास–प्रकरण–मूल में कैकेयी प्रमुख है फिर भी उन्होने अपनी मर्यादा का पालन कर चित्रकूट में सर्वप्रथम कैकेयी से ही भेंट की थी।

बालि एवं रावण की मृत्यु के पश्चात राम ने राजकीय बिधि से अन्त्येष्टि करने का परामर्श संबंधित भाइयों को दिया था। राम ही नहीं सीता भी इस भाव के पालन

---

1. रामचरित मानस – 4/7

में पीछे नहीं हैं। तुलसी दास ने इस भाव के वैयक्तिक मर्यादा का अत्यन्त संक्षिप्त रूप वनगमन के समय दिखाया है। जहाँ पृथ्वी में राम के चरण चिन्हों को बचाकर सीता और लक्ष्मण चलते है–

"प्रभुपद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता।।

सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ।।"1

धनुर्भंग प्रकरण में सभी वीरों का दर्प, मद, मान मर्दित हुआ तब विश्वामित्र के स्पष्ट आदेश के बाद ही राम ने धनुर्भंग किया यद्यपि इसके पूर्व जनक का परिताप अत्यन्त उद्वेलित करने वाला था। साहस, शक्ति पराक्रम, दृढ़ विश्वास रखते हुए राम को गुरू आज्ञा की प्रतीक्षा थी मर्यादा का यह सर्वोच्च श्रेष्ठतम रूप है–

"उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा।।

सुनि गुरु वचन चरन सिर नावा। हर्ष विषाद न कछु उर आवा।।

गुरुहिं प्रणाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाधव उठाय धनु लीन्हा।।"2

राजनीतिक मर्यादा का पालन करते हुए अंगद से जिस प्रकार दौत्य कर्म के लिए राम ने आग्रह किया है। समुद्र से मार्ग माँगा है यह उनकी कुल परम्परा के अनुरूप था। राजनीति में युद्ध को अंतिम विकल्प कहा गया है इसलिए राम ने अंगद को अपना दूत बनाकर रावण को समझाने हेतु भेजा था। बुद्धि, बल, तेज, धर्म, गुणज्ञ राम अंगद से कहते हैं–

"बालि तनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा।।

बहुत बुझाइ तुम्हहिं का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ।।"3

---

1. रामचरित मानस – 2/123
2. रामचरित मानस – 1/254 एवं 261
3. रामचरित मानस – 5/17

8. आदर्श दिनचर्या–

नीति शास्त्री, समाजशास्त्री, नृतत्त्वशास्त्री एवं धार्मिक जीवन के व्याख्याता मानव जीवन के दो स्तरों की चर्चा करते हैं। भौतिक या शारीरिक स्तर पर एवं आध्यात्मिक स्तर पर। मनुष्य या तो अपने जीवन का अधिकांश भाग ऐहिक जीवन की प्राप्ति, कामनाओं की पूर्ति पर नष्ट करता है, आध्यात्मिक चिंतन मनन के लिए उसके पास समय का अभाव होता है। मायिक प्रपंच एवं जगत, जगड्वाल में फंसकर आध्यात्मिक जीवन की ओर ध्यान ही नहीं देता परिणाम स्वरूप पुनरपिजन्मम् पुनरपिमरणम् के जाल में बँध जाता है। इस दृष्टि से रामचरितमानस श्रेष्ठ, आदर्श, नीतिबद्ध दैनिन्दिन जीवन व्यतीत करने के लिए आचरण शास्त्र का उल्लेख करता है।

राम के प्रातः काल से लेकर शयन तक की कुछ स्थितियों के संकेत दिए हैं जैसे

1. प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुर नावहिं माथा।।

2. एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता।।

3. एहि बिधि सिसु विनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगर बासिन्ह सुख दीन्हा।।

4. कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहि पराई।।

5. गुरु गृह गये पढ़न रघुराई। अल्पकाल विद्या सब आई।।

6. बंधु सखा सन लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलन जाई।।

7. अनुज सखा सन भोजन करहीं। मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं।।

8. वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजहिं समुझाई।।

9. रिषय संग रघुबंसमनि करि भोजन विश्राम।

बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवस रहा भरि जाम।।

10. तेई दोउ बंधु प्रेम जन जीते। गुरु पद कमल पलोटत प्रीते।।

11. चापत चरन लखन उर लाए। सभय सप्रेम परम सचु पाये।।

12. उठे लखन निसि बिगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।

गुरु ते पहलेहिं जगत पति जागे राम सुजान।।"1

कहना नहीं होगा कि तुलसी ने संस्कार शील से युक्त राजकुमारों की दैननन्दिन चर्चा का उल्लेख कर एक आदर्श दिनचर्या का उल्लेख किया है। इसी प्रकार इन पंक्तियों में ध्वनित है कि शिशु से बढ़ते राम भाइयों के साथ प्रातःकाल माता पिता के चरण स्पर्श एक साथ भोजन मनोरंजन, वेद पुराणों का श्रवण एवं अनुचिंतन गुरु सेवा ये ऐसी क्रियायें हैं जिनसे बालक संस्कारशील होकर आदर्श युवक, आदर्श भ्राता, आदर्श पति बनता है। तुलसीदास ने यद्यपि कलियुग प्रसंग वर्णन में आधुनिक भौतिक वादी चाकचिक्य में फँसे संसारी जीवों की निकृष्टतम दिनचर्या का भी उल्लेख किया है जिसमें काम और उदरपूर्ति हेतु दी गई शिक्षा, सती नारी को घर से निकालकर वार वनिताओं को घर में रखना पत्नी का मुख देखते ही वृद्ध माता पिता को घर से निकाल देना ऐसे कृत्यों का उल्लेख कर तुलनात्मक पद्धति से आदर्श जीवन की परिभाषा और तद्जन्य क्रिया कलापों का चित्रण मानस में किया गया है, इसीलिए आलोचकों और समाजशास्त्रियों ने मानस को आदर्श जीवन व्यतीत करने का काव्य कहा है क्योंकि दिनचर्या के अतिरिक्त मनुष्य जिस समाज में जीवन व्यतीत करता है उसमें किसी से मित्रता और किसी से शत्रुता करनी पड़ती है और इसी प्रकार कर्म बंधन में बंधकर वह अपने आमुष्मिक जीवन के लिए समय ही नहीं निकाल पाता जबकि मोक्ष प्राप्ति जीव का परम पुरुषार्थ एवं चिरकाम्य भाव है।

---

1. मानस – 1/199–225 दोहों के अंतर्गत उद्धृत चौपाइयाँ

9. समानता का भाव–

बंधुत्व और समानता समाजशास्त्र की दृष्टि से समान भाववाची शब्द हैं। लघु बुद्धि वाले व्यक्ति को ही स्व पर का बोध होता है जबकि भारतवर्ष की वैश्विक नीति है– **1. सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**

2. उदार चरितानामृतु वसुधैव कुटुम्बकम्।

ऐसी जीवन दृष्टि जिसमें बन्धुत्व हो समानता हो ऐसी दृष्टि वरेण्य आदर्श दृष्टि है। राज्याभिषेक के पूर्व राम स्वतः कहते हैं कि रघुवंश में यह एक अनुचित परंपरा पड़ी है कि छोटों को छोड़कर बड़ों को राजा बना दिया जाता है जबकि वे चारों भाई साथ जन्मे हैं–

"जनमें एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।।
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू।।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई।।"[1]

इसी प्रकार सौमनस्य और समानता का भाव कौसल्या ने दिखाया है वह आदर्श ही नहीं लोकोत्तर भाव है। राम वनवास प्रकरण की बात सुनकर कौसल्या कहती है कि– यदि मात्र दशरथ ने वनगमन की आज्ञा दी हो तो माता का स्थान श्रेष्ठ समझकर मेरी आज्ञा से तुम वन मत जाओ किंतु यदि इसमें माता कैकई का भी अभिमत है तो राम तेरे लिए वन सौ अयोध्याओं के समान है। जहाँ सापत्नय द्वेष की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है वहाँ कौसल्या की यह समानता, कैकेयी को आदर देने का भाव कितना उदात्त दिव्य और लोकोत्तर है कि मानव मन के गहन पारखी विश्लेषक निरुत्तरित हो जाते हैं।

---

1. रामचरित मानस – 2/10

तुलसी ने लिखा है–

"जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।"1
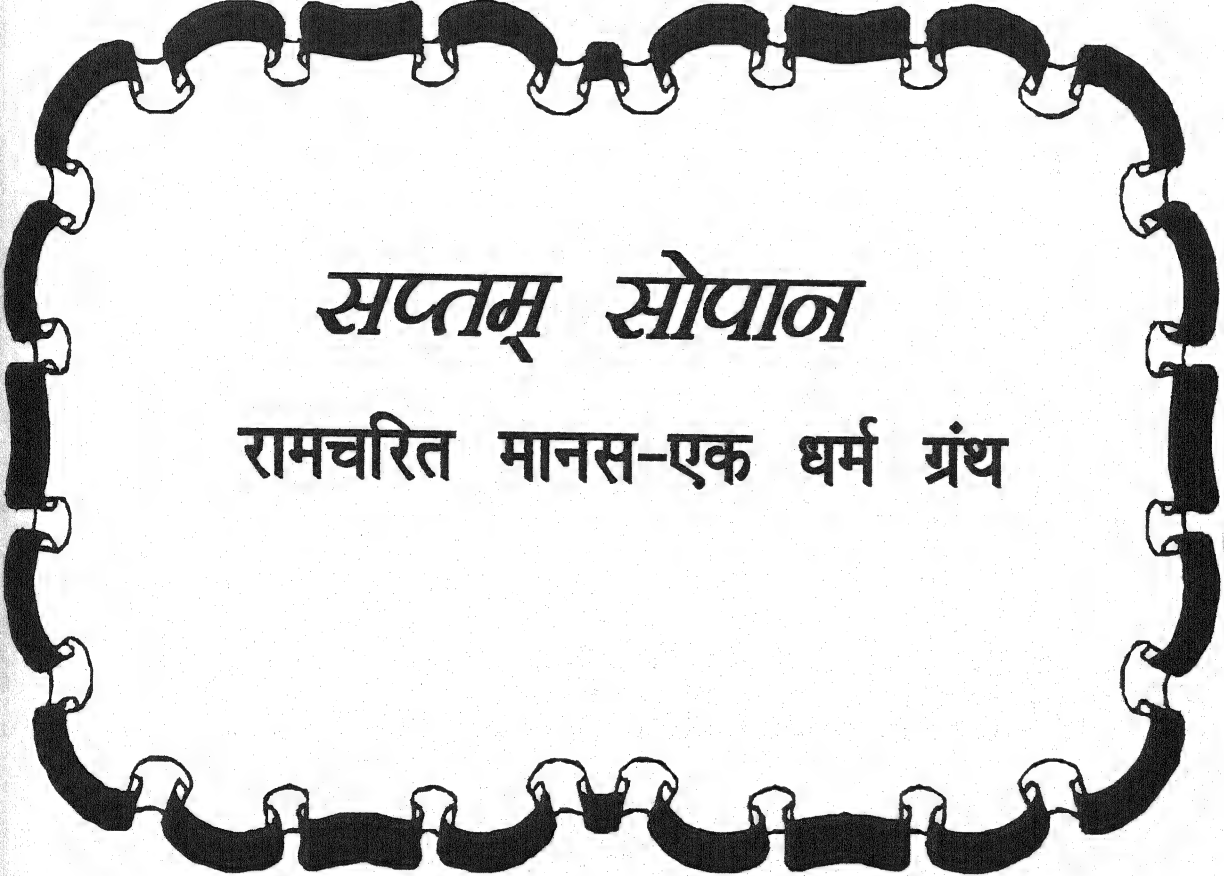
इसी प्रकार राम ने निषादराज को श्रेष्ठ बंधु सुग्रीव को सखा विभीषण को मित्र मानकर उन्होने जिस बंधुत्व भाव की आधारशिला रखी है उस पर श्रेष्ठ अलौकिक जीवन का भव्य प्रसाद खडा हो सकता है।

सारांश यह है कि रामचरितमानस में सनातन धर्म के सांस्कृतिक स्वरूप का सैद्धान्तिक विवेचन ही नहीं है उसके सत् असत्, नर, वानर, यक्ष, देव, गंधर्व आदि पात्रों के जीवन में जो कुछ भी श्रेष्ठ वरेण्य आदर्श तत्त्व हो सकते हैं, उनकी व्यावहारिक व्याख्या करते हुए तुलसीदास ने तन्निविष्ट पात्रों के संस्कार दैहिक आवश्यकताओं भोजन, वस्त्र, शिक्षा, तप, त्याग, शक्ति, वैभव इत्यादि भौतिकता के सत्प्रयास तथा आध्यात्मिक जीवन के लिए आत्मोन्नयन हेतु ब्रह्म, जीव, जगत, माया की परिकल्पना चित्रित कर तुलसीदास ने इसे मात्र साहित्यिक कृति ही नहीं बनाया अपितु यह आदर्श जीवन व्यतीत करने का विश्वकोष है क्योंकि इसमें साधारण मानव से असाधारण महापुरुष और लोकोत्तर महत् दिव्य ईश्वरीय अंश के साथ साक्षात् ब्रह्म बनने या सारुप्य सायुज्य मोक्ष का शास्त्र है।

वैदिक युगीन संस्कृति जो यज्ञ प्रधान थी औपनिषद, पौराणिक जीवन जो ज्ञान प्रधान थे निगम आगम प्रोक्त जीवन जो योग प्रधान संस्कृति थी तुलसी ने इन सबका अंतर्भाव भक्तिशास्त्र में कर रामचरित मानस में सनातन धर्म और संस्कृति की ऐसी व्याख्या की है जिसकी कीर्ति कौमुदी आज भी समाप्त नहीं हुई है। इसमें वैयक्तिक

---

1. मानस – 2/56

जीवन के गुण—त्याग, परोपकार, प्रेम, औदार्य, धैर्य बंधुत्वभाव, श्रेष्ठ संस्कार तथा विरोधी भावों में निंदा, चोरी, कामुकता, पाप परायणता जैसे प्रति निषिद्ध कर्म और तज्जनित फलों का चित्रण कर तुलसीदास ने मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने के उपायों का और उनके योगक्षेम की चर्चा इस महत्काव्य में की है।

सप्तम् सोपान

रामचरित मानस-एक धर्म ग्रंथ

रामचरित मानस – एक धर्म ग्रंथ

(क). सनातन धर्म के विविध ग्रंथ–

प्रथम अध्याय के विवेचन के सन्दर्भ में तुलसी प्रोक्त नाना पुराणनिगमागम की व्याख्या, विभिन्न धर्म ग्रंथों में धर्म के स्वरूप, परिभाषाएँ, तथा उसके कारक तत्त्वों का परिचय देकर उन ग्रंथों में सनातन धर्म के स्वरूप का सार तत्त्व प्रस्तुत किया गया है। अतः आवश्यक एवं समीचीन प्रतीत होता है, कि स्रोत रूप में सनातन धर्म के कुछ प्रमुख ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाय।

धर्म के सनातन स्वरूप की परिकल्पना भारतीय वाङ्मय की विचित्र, अदभुत विशेषता है। बात यह है, कि धर्म का अंग्रेजी पर्याय रिलीजन स्वीकार किया गया है, जो बहुत अंशों में उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि रिलीजन की अवधारणा में एक प्रवर्तक एक ईश्वर एक आचार ग्रन्थ की अवधारणा प्रस्तुत की गई है, जब कि भारतवर्ष में आस्तिक, नास्तिक, ऐकेश्वर एवं बहुदेव पूजक के साथ ही शताधिक ग्रंथ हैं, तथा ईश्वर को ही धर्म का प्रर्वतक माना जाता है। साधारण धर्म, विशिष्ट धर्म, आपद्धर्म, वैयक्तिक सामूहिक, धर्म के तत्त्व सनातन धर्म के अंग–उपांग बन जाते हैं। यह सनातन धर्म कहीं कर्त्तव्य, कहीं आचरण, कहीं साधना के विविध सोपान आदि विविध रूपों में दिखायी पड़ता है। सारतः भारतीय सनातन धर्म की अवधारणा का सतत् विकास हुआ है। यह रूढ़ नहीं, मानव को शृखलाबद्ध नहीं करता; अपितु नहिं मानुषात् श्रेष्ठतरं हिकिंचित् की उद्घोषणा के साथ वह मानव मात्र की मुक्ति का सोपान है, अतः पिष्ट पेषण से बचते हुए सनातन धर्म के प्रमुख ग्रंथों का सामान्य परिचय देकर राम चरित मानस में उनके प्रभाव पक्षों का विश्लेषण किया जाएगा।

वैदिक साहित्य–

वेद शब्द वैदिक युग के समस्त साहित्य या वाङ्मय का प्रतीक है। इसके अन्तर्गत ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों का अन्तर्भाव हुआ है क्योंकि ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, परस्पर सम्बन्धित हैं। कालान्तर में वैदिक साहित्य का विस्तार हुआ इस कारण वेद शब्द मात्र संहिताओं के लिए रूढ हो गया। वेदों को न केवल भारतीय अपितु भारोपीय पारिवारिक जनों का पुरातन साहित्य कहा जाता है। मूलतः वेद का शब्दार्थ ज्ञान है जिसमें भिन्न–भिन्न काल के अनेक ऋषियों ने मंत्रों का दर्शन किया अथवा तपस्या के समय ज्ञान रूप मंत्रों का स्फुरण हुआ इसीलिए ऋषयो मंत्र दृष्टारः की उक्ति प्रचलित है। इन मंत्रों का कर्त्ता ईश्वर को कहा गया है। इन्हें धर्म का मूल माना जाता है। उस समय समाज में गुण कर्म के अनुसार वर्ण संस्था या सामाजिक व्यवस्था चल रही थी, अतः अल्प संख्यक ब्राह्मणों को ही इन्हे सुरक्षित रखना पड़ता था। जीविकोपार्जन हेतु अनेक स्थानों में भ्रमण करने के कारण ऋषियों के गोत्रों का स्वरूप बढ़ने लगा, जिसके फलस्वरूप वेदमंत्र कुछ नष्ट हो जाते थे तथा कुछ नवीन मंत्र बन जाते थे। इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए कृष्ण–द्वैपायन व्यास ने इन उपलब्ध मंत्रों का संग्रह कर इन्हे चार भाग ऋक् यजुष् साम तथा अथर्वण मंत्रों में विभक्त कर प्रत्येक भाग की पृथक–पृथक संहिता तैयार की। इन भागों या संहिताओं को अपने शिष्यों द्वारा सुरक्षित रखने की व्यवस्था की। इन्हें मंत्रों की व्याख्या, हेतु ब्राह्मणादि ग्रंथों के साथ इतिहास एवं पुराणों की रचना तथा पठन–पाठन क्रम भी निश्चित किया गया।

ऊपर कहा जा चुका है, कि वैदिक साहित्य के चार भाग हैं–

1. संहिताएँ
2. ब्राह्मण

3. आरण्यक

4. उपनिषद्।

इनका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

1. संहिता या वेद–

आर्यों के सबसे प्रमुख ग्रंथ वेद हैं। इनकी संख्या चार कही गयी हैं ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद। ऋग्वेद के दस मण्डल हैं इसे सबसे पुराना ग्रंथ कहा जाता है। प्रत्येक मण्डल के प्रायः निश्चित ऋषिकुल हैं। हर मण्डल में अनेक संहितायें या सूक्त हैं त्रिष्टुप, जगती, अनुष्टुप आदि अनेक छंदों में ऋग्वेद लिखा गया है।

सामवेद में 1549 मंत्र हैं इसमें दो काण्ड हैं पहले में छः तथा दूसरे में नौ काण्ड हैं। इसमें प्रायः ऋग्वेद के ही मंत्र हैं, इसमें सोम, अग्नि, इन्द्र, उषा आदि देवताओं का वर्णन है। ऋग्वेद की 21 शाखायें थीं। सामवेद की मुख्य रूप से जैमिनीय, राणायनीय और कौथुम तीन शाखायें उपलब्ध हैं। ऋग्वेद के ऐतरेय और कौशितकि दो ब्राह्मण हैं। यजुर्वेद का शब्दार्थ है यज्ञ संबंधी ज्ञान कुल मिलाकर इसमें चालीस अध्याय हैं। इसमें कुछ गद्य भाग है। यज्ञ संबंधी विधानों की इसमें विस्तृत चर्चा है। इस वेद के दो रूप मिलते हैं शुक्ल यजुर्वेद, कृष्ण यजुर्वेद।

अथर्ववेद में यज्ञों के साथ–साथ जीवन को सुखमय तथा दुःखरहित बनाने के जिन साधनों की आवश्यकता होती है उनकी सिद्धि के लिए नाना अनुष्ठानों के विधानों का समावेश हुआ है। यदि ऋग्वेद में प्रकृति वर्णन के कोमल, सुन्दर, आकर्षक और भयावह रूप हैं तो अथर्ववेद में मानवकृत मानव के लिए जादू, टोना, अभिचार नियमों का परिज्ञान निहित है। अथर्ववेद में 20 काण्ड 760 सूक्त और 6015 मंत्र हैं। इसमें भी सामवेद की तरह ऋग्वेद से 1800 ऋचायें ली गई हैं। इन चारों वेदों में तद्युगीन

जीवन की झलक मिलती है। कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का भी चित्रण इन वेदों में हुआ है। वैदिक सभ्यता एवं दर्शन के मूल में ये चारों वेद हैं।

ब्राह्मण–

ब्राह्मणों में कुछ अंश तो आध्यात्मिक विषय से युक्त हैं किंतु अधिकांश में वेदों की व्याख्या याज्ञिक क्रियाओं को समझाने का प्रयास ब्राह्मण ग्रंथो में हुआ है। मूलतः ये कर्मकांड विषयक ग्रंथ हैं वेदांग मे सबसे पहले इनकी ही गिनती होती है। प्रत्येक वेद के अलग–अलग ब्राह्मण हैं। पहले कहा जा चुका है कि ऋग्वेद के ऐतरेय और कौशितकि दो ब्राह्मण है। कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण है, शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण है। भारतीय इतिहास के मूल में ब्राह्मण ग्रंथों का अध्ययन विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इनमें देवासुर संग्राम का आधारभूत वर्णन है।

आरण्यक एवं उपनिषद्–

ऋग्वेद के ऐतरय और कौशितकि आरण्यक और उपनिषद हैं। सामवेद के केनोपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद के वृहदारण्यक कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय, कठ और श्वेताश्वतर तथा अथर्ववेद के मुण्डक माण्डूक्य एवं प्रश्न उपनिषद् हैं। शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में नानापुराण निगमागम के सन्दर्भ में वैदिक साहित्य का विस्तृत परिचय दिया गया है। यहाँ अधिक लिखना पिष्टपेषण होगा, फिर भी प्रस्तुत अध्याय में सनातन धर्म के विविध ग्रंथ और मानस में उनके प्रभाव एवं दशा दिशा दिखाने के लिए इनका संक्षिप्त वर्णन मुझे समीचीन प्रतीत हुआ। इसी प्रकार रामचरित मानस के कथा स्रोतों तथा उसके विकास की दिशा के विश्लेषण हेतु इन धार्मिक पौराणिक ग्रंथों का उल्लेख विषय के तारतम्य में आवश्यक प्रतीत होता है। तुलसीदास ने रामचरित मानस में ईश्वर और जगत् संबंधी अनेक मान्यताओं का वर्णन उपनिषदों से विशेष रूप से लिया है

जिसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

सनातन धर्म ग्रंथों में वेदांगों की विस्तृत चर्चा है– शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द ये प्रमुख षडंग (वेदांग) कहलाते हैं। इसके साथ ही प्रत्येक वेद से संबंधित कुछ सूत्र साहित्य भी मिलते है। ऋग्वेद से संबद्ध आश्वलायन और सांखायन कल्पसूत्र हैं। शुक्ल यजुर्वेद के कात्यांयन श्रौत सूत्र, पारस्कर गृह्यसूत्र तथा कात्यांयन शूल्व सूत्र। कृष्ण यजुर्वेद की बौधायन और आपस्तंब इन दोनों शाखाओं के श्रौत, गृह्य, धर्म और शूल्व सूत्र, कठ शाखा का काठक गृह्यसूत्र पुनःमैत्रायणी शाखा के मानव श्रौतसूत्र मानव गृह्यसूत्र तथा वाराह गृह्यसूत्र हैं।

सामवेद के लाट्यायन और द्राह्यायन श्रौत सूत्र खदिर गृह्यसूत्र, जैमिनीय श्रौतसूत्र, जैमिनीय गृह्यसूत्र गौतम धर्मसूत्र तथा आर्षेय कल्पसूत्र हैं। अथर्ववेद के वैतान श्रौतसूत्र, कौशिक गृह्यसूत्र तथा वैखानस गृह्यसूत्र हैं। वेदांग ग्रन्थों एवं सूत्र ग्रन्थों में सन्दर्भित ऋषियों के अनुभूत जीवन तथ्य सनातन धर्म के ही परिचायक हैं।

(ख). भारतीय धर्म ग्रंथों में रामचरित मानस की महत्ता–

वैदिक ग्रन्थ एवं रामचरित मानस–

वेदों में कर्मकाण्ड की प्रधानता है। यज्ञ, यागादिक के नियम, उपनियमों, क्रियाओं का विस्तार से वर्णन इनमें है। इसी के परिप्रेक्ष्य में नैतिकता, सदाचार, अनृत असत्य भाषण, व्याभिचार, मद्यपान का निषेध, निर्देश है तथा अनेक नैतिक आचरणों का प्रत्यक्ष परोक्ष वर्णन है। श्रेष्ठ, आदर्श जीवन व्यतीत करने वाले को परमेश्वर ऐश्वर्य से युक्त कर देते हैं जैसे–

(क). पापासः सत्तो अनृता असत्या इदं पद्मजनता गभीरम्। (ऋग्वेद 4/5/5)

(ख). धर्म पुराणमनुपालन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि। (अथर्ववेद 18/3/3/1)

सनातन धर्म परमात्मा श्री कृष्ण के विराटरूप के सदृश है।

पुरूष सूक्त में जिस सहस्रशीर्ष युक्त ब्रह्म का निरूपण है उसका प्रभाव मानस में अनेक स्थानों में मिलता है। विराट् स्वरूप का चित्रण ऋग्वेद के अनेक स्थानों पर उपलब्ध है। मानस में श्री राम के विराट रूप का चित्रण गोस्वामी तुलसी ने इस प्रकार किया है–

"विस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन विस्वासु।

लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु।।"

पद पाताल सीस अज धामा। अपरलोक अँग अँग बिश्रामा।।

भ्रकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला।।

जासु घ्रान अस्विनी कुमारा। निसि अरू दिवस निमेष अपारा।।

श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारूत स्वास निगम निज बानी।।

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला।।

आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा।।

रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।।

उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना।।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।

मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान।।

प्रस्तुत उद्धरण वेद के इस मंत्र का अनुमोदन प्रतीत होता है—

चन्द्रमामनसोजातश्चक्षो सूर्योऽजायत्।

श्रोत्रत्वात्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत्।।

अर्थात् परमात्मा के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, आँखों से सूर्य उत्पन्न हुआ, श्रवण से वायु और प्राण उत्पन्न हुए तथा मुख से अग्नि उत्पन्न हुई।

निगम और मानस—

वैदिक दर्शन के सिद्धान्त अक्षरसः तुलसी को मान्य नहीं है; फिर भी उसके मूल स्वरूप की अभिव्यंजना राम चरित मानस में मिलती है। वेद विहित ब्रह्म एक होने पर भी, उसे अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है— एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।[1] असत्[2] अभय ज्योति[3] परम व्योमिन[4] परम पद[5] अदिति नाम से भी अभिहित किया जाता है। वह निराकार और निराधार होते हुए भी सर्वाकार एवं सर्वाधार है निर्गुण और

---

1. ऋग्वेद 1/164/46
2. ऋग्वेद 10/72/2–3
3. ऋग्वेद 2/27/11
4. ऋग्वेद 1/143/2
5. ऋग्वेद 1/22/21

सगुण भी है।[1] उसमें अनेक विरोधी गुण भी है।[2] उसके विराट रूप[3] का चित्रण कई स्थानों में हैं। संसार की उत्पत्ति उसी से हुई है।[4] वह सबका आधार है।[5] उसे ही जीव का शासक, माता, पिता, सखा माना गया है।[6]

सनातन धर्म में जीव के मोक्ष साधन के रूप में वेदों में कर्म, ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य उपस्थापित किया गया है। ब्रह्म विषयक उपर्युक्त मान्यताएँ तुलसी को मान्य हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1. राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा। (मानस 2/93/4)

2. यन्माया वशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः।

यत्सत्वाद मृषैव भाति सकलं रज्जौ यथा हेर्भ्रमः। (मानस 1/1/6)

तुलसी ने राम का स्वरूप मायातीत, अगाध, अप्रमेय बताया है। वे मन वचन अगोचर, अविगत अनिर्वचनीय, निरंजन हैं–

अयोध्या काण्ड में बाल्मीकि जी राम से मिलने पर उनके अनिर्वचनीय व्यक्तित्व का उल्लेख करते हैं।

"राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।

अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।। (मानस 2/126)

---

1. यजुर्वेद – 40/8
2. ऋग्वेद – 4/1/11 एवं यजुर्वेद 40/7
3. ऋग्वेद – 1/89, 10/90, अथर्ववेद 10/7, यजुर्वेद अध्याय 11
4. ऋग्वेद – 6/49/13, 10/90, 129
5. ऋग्वेद – 10 10/129/7, अथर्ववेद 10/7
6. अथर्ववेद – 4/16/2, यजुर्वेद 23/3, 32/10

ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथ एवं मानस–

ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथों में यज्ञ परक धर्म का विस्तृत वर्णन है। डॉ० कर्णिक के मत से ब्राह्मण ग्रन्थों में तेरह नीति युक्त तत्त्वों की चर्चा है, जो इस प्रकार हैं– अहिंसा, सत्यवादिता, ब्रह्मचर्य, तप, आत्मनियंत्रण, सुचरित, अतिथि सत्कार श्रद्धा, ज्ञान, उदारता, मध्यगामिता, पारमिता, निष्ठा एवं मैत्री।[1]

(क). अमेध्यो वै पुरूषो यदमृतं वदति– (शतपथ ब्राह्मण 1/1/1/1)

(ख). स वै सत्यमेव वदेत्। एतद् ह वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं

तस्मात्ते यशो यशो ह भवति य एव विद्वांतत्सत्वं वदति।

(शतपथ 11/1/1/4–5)

(ग). एतद् वाचश्छिदं यदनृतम्– तांड्य ब्राह्मण 8/6/3

सनातन धर्म अत्यन्त व्यापक है। तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है, कि धर्म से ही जगत् की प्रतिष्ठा है। सभी प्राणी धर्म में ही प्रतिष्ठित हैं। धर्माचरणों से पापों का विनाश होता है। संसार में धर्म से बढ़कर कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। यही धर्म की सनातनता है।

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उप सर्पन्ति।

धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति।

– तै० आर० 10/63/7

---

1. मॉरल्स इन दि ब्राह्मणस् – पृ० 95–127

गोस्वामी तुलसी दास के अनुसार वैदिक वाङ्गमय का एक ही सार है–

सोइ सर्वग्य गुनी सोई ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।

धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जाकर मन राता।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नीक तेहि जाना।।

सोई कवि कोविद सोइ रनधीरा। जो छल छाँडि भजइ रघुवीरा।।

(मानस 7/127)

उपनिषद एवं मानस–

उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म निरूपण है। तुलसी ने भी लिखा है कि संत पुरान उपनिषद् गावा[1] नेति–नेति जेहि वेद निरूपा[2] महिमा निगम नेति कहि कहई[3] निगम नेति सिव ध्यान न पावा[4] इत्यादि कथनों से यह स्पष्ट है कि तुलसी के राम औपनिषद् ब्रह्म हैं। उपनिषदों में ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप, एकमेवाद्वितीयम् निर्गुण और सगुण अगोचर, अज्ञेय और अग्राह्य हैं। वह ज्ञानमय, सर्वविद, सर्वज्ञ और विविध शक्ति सम्पन्न हैं। सत्य संकल्प, सत्यकाम, सर्वकर्मा, सर्वरस, सर्वरूप, सर्व व्यापक, अन्तर्यामी, परात्पर सर्व प्रकाशक, स्वतंत्र, जगत् शासक और कालकर्म स्वभाव आदि का संचालक है। यह जगत् उसी से उत्पन्न होता है, उसी के आश्रय में स्थित रहता है और उसी में लीन हो जाता है। जीवात्मा उसी का अंश है। कामनाश, ईश्वर दर्शन, ब्रह्म ज्ञान और शरण–प्रपत्ति से जीव की मुक्ति होती है। ज्ञान के साधन के रूप में सत्य, अहिंसा,

---

1. रामचरित मानस – 1/46/1
2. रामचरित मानस – 1/144/3
3. रामचरित मानस – 1/341/4
4. रामचरित मानस – 3/27/6

यज्ञ, ज्ञान, दान, दया, सेवा, अतिथि सत्कार, शम, विवेक, वैराग्य इत्यादि पर बल दिया गया है।

मानस में तुलसी ने स्वयं श्री राम के मुख से प्रजा को उपदेश स्वरूप उपनिषद् का ज्ञान कराया है यथा–

"सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू।।
सरल सुभाउ न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई।।
बैर न विग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनद्य अरोष दच्छ बिग्यानी
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम विषय स्वर्ग अपवर्गा
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई।।
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ।।"[1]

आगम और तुलसीकृत मानस–

पूर्व में कहा जा चुका है कि आगम शब्द का अर्थ है– पार्वती के प्रति शिव द्वारा वैष्णव मत का निरूपण। अध्यात्म रामायण की रचना शिव पार्वती संवाद के रूप में हुई है। मानस का प्राक्कथन यह सिद्ध करता है कि इसकी रचना उसी शैली पर है पार्वती राम कथा की प्रथम श्रोत्री हैं और शिव प्रथम वक्ता हैं।

(क). रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमय सिवा सन भाषा।

(मानस 1/35/6)

---

1. रामचरित मानस – 7/45, 46

तुलसी ने शिव पार्वती संवाद का चित्रण कर अपनी आगमानुयायिता का प्रतिज्ञापन किया है–

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा।

सोइ सिव काक भुसंडिहिं दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा।

तेहि सन जाग बलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।।

(मानस 1/30/2)

सन्त तुलसी ने याज्ञवल्क्य भरद्वाज संवाद की योजना करके उक्त मान्यता की पुष्टि की है।

प्रथम अध्याय में आगम ग्रंथों की तीन शाखाओं का विवेचन किया गया है 1. वैष्णवागम 2. शैवागम 3. शाक्तागम। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में इन तीनों आगमों का समन्वय स्थापित किया है। वे एक ओर राम को विष्णु का अवतार मानते हैं और शक्तिस्वरूपा सीता जी को लक्ष्मी–

"श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छवि सोहई"

(मानस 7/12)

गोस्वामी जी राम (परब्रह्म) और सीता (स्वरूपभूता शक्ति) को गिरा और अर्थ के समान अभिन्न मानते हैं। सीता उनके बामभाग में सदा सुशोभित रहती हैं जो जगत् की उत्पत्ति की कारक हैं–

"वाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छविनिधि जगमूला।।

जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छ उमा ब्रह्मानी।।

भ्रकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।।

(मानस 1/148)

जिस प्रकार तुलसी ने वैष्णव और शाक्त का समन्वय किया उसी प्रकार वैष्णव और शैव का भी समन्वय अपनी अलौकिक काव्य प्रतिभा के माध्यम से किया है। उन्होंने भवानी और शंकर के बिना आत्मस्थ राम सीता के दर्शन को असम्भव बताया है। राम स्वयं अपने को शिव से अभिन्न मानते हैं–

"सिव द्रोही मम दास कहावा। ते नर सपनेहुँ मोहिं न पावा।।
संकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।
संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।।"

(मानस 6/2)

श्री मद्भगवद गीता एवं मानस–

श्री मद्भगवद गीता को प्रस्थान त्रयी के अन्तर्गत माना जाता है, इसीलिए कोई भी सम्प्रदाय या पंथ के प्रचलन एवं प्रतिष्ठा हेतु यह आवश्यक होता है कि उसके आचार्य अपने मत के अनुसार गीता का भाष्य/टीका करें। औपनिषद् सार तत्त्व लेकर व्यास ने गीता की रचना की है। रामचरित मानस सनातन धर्म का प्रभविष्णु ग्रन्थ माना जाता है, क्योंकि इसमें ब्रह्म, जीव, जगत् माया, मोक्ष एवं कर्म की ऐसी संयुति है कि धार्मिक, आध्यात्मिक जीवन यापन करने वाले मुमुक्षु ऐहिक एवं आभुष्मिक जीवन व्यतीत करने के सिद्धान्तों के व्यावहारिक रूप मानस–गत पात्रों से सीख सकते हैं। इसे वैष्णव आगम का ग्रंथ कहा जाता है। यह स्मृति के रूप में भी स्वीकृत है। इसमें वेदान्त दर्शन की विशेष प्रतिष्ठा की गयी है। डॉ0 उदयभानु सिंह ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि जिस प्रकार गीता में काव्य और मोक्ष शास्त्र का अध्यात्म ज्ञान और भक्ति रस का साहित्य है, उसी प्रकार तुलसीदास की कृतियाँ भी, तथापि उनमें यह अवेक्षणीय अंतर भी है कि

गीता काव्यात्मक शास्त्र है और राम चरित मानस शास्त्रात्मक काव्य। तुलसी दार्शनिक कवि हैं, दर्शनशास्त्री नही[1] गीतोक्त दार्शनिक विचार एवं अभिव्यंजना शैली/संवादात्मक रूप में तुलसी स्वीकार करते हैं। परब्रह्म परमेश्वर सत ज्ञान स्वरूप, अनादि अनन्त अव्यय अविनाशी सर्वान्तरयामी, सर्व व्यापक और स्वयं प्रकाश हैं। वह निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं और सगुण होकर भी निर्गुण हैं जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का हेतु वह ब्रह्म ही है। असुर संहार धर्म के संस्थापन गो द्विज मख–रक्षण हेतु वह अवतार लेता है। कर्म–अकर्म करणीय अकरणीय अनासक्त कर्म योग, ज्ञान, समर्पण इत्यादि की चर्चा रामचरित मानस में गीता से प्रभावित हैं। जिस धर्म संस्थापनार्थ अवतारवाद की विवेचना गीता में हुई है उसी का अनुमोदन करते हुए तुलसी लिखते हैं–

"जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।

तब तब धरि प्रभु विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।

जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु।।"

(मानस 1/121)

पुराण एवं रामचरित मानस–

पुराण का शाब्दिक अर्थ पुराना है। वैदिक साहित्य के बाद भारतीय जन–मानस एवं उनसे सम्बन्धित ग्रन्थ पुराणों से सर्वाधिक प्रभावित हैं। इनमें वैदिक साहित्य में उल्लिखित नामों की वंशचरित तथा धर्म दर्शन इत्यादि के सैद्धान्तिक नियमों की व्याख्या अनेक आख्यानों द्वारा की गयी है। इस शब्द का प्रयोग अथर्ववेद और ब्राह्मणों में सृष्टि मीमांसा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत में आख्यानों के लिए पुराण का प्रयोग हुआ है। पुराण लक्षणों में मतभेद है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में सृष्टि रचना स्थिति

1. तुलसी दर्शन मीमांसा

पालन, नाश, समस्त कर्म, वासनादिक चित्त वृत्तियों, वंश चरित मोक्ष देवताओं के उत्कीर्तन का उल्लेख है। पुराण पंच लक्षणं के अनुसार सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंश–चरित पुराणों के विषय कहे गये हैं। पुराण रचयिता व्यास ने पुराण रचना के बाद अपने पट्ट शिष्यों सूत एवं लोमहर्षण को प्रचार प्रसार हेतु इन्हें सौंप दिया।

श्री मद्भागवत पुराण में इनके दस लक्षण बता कर उनकी विस्तृत व्याख्या की है। इस दृष्टि से सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था हेतु और अपाश्रय लक्षण हैं। महत्तत्व अहंकार, पंच तन्मात्रा, पंच महाभूत, कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं मन की उत्पत्ति सर्ग है। विसर्ग जीवों से अनुगृहीत सूक्ष्म रचना के वासनामय चर–अचर सृष्टि की रचना है। अच्युत भगवान के अवतार की चेष्टा वृत्ति तथा युग युगान्तरों का कारण रक्षा है। मनु देवता, मनुपुत्र इन्द्र, ऋषि और श्री हरि के अंशावतार ये छह मन्वन्तर कहे जाते हैं। ब्रह्म प्रसूत राजाओं के त्रैकालिक अन्वय को वंश कहा जाता है और वंश को धारण करने वाले प्रधान पुरूषों के चरित वंशानुचरित हैं। नैमित्तिक, प्राकृतिक नित्य और आत्यन्तिक ये चार प्रकार के लय कवियों द्वारा संस्था कहे गये हैं। अविद्या द्वारा सृष्टि आदि का करने वाला जीव हेतु तथा मायामय जीवों की वृत्तियों में और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओं में जिसका व्यतिरेकान्वय हो वह ब्रह्म अपाश्रय कहा जाता है। पुराणों की संख्या 18 मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, भविष्य, शिव, विष्णु, वाराह, वामन, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड ब्रह्मवैवर्त अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरूड़, कूर्म एवं स्कंद हैं। तुलसी ने राम चरित मानस के प्रारम्भ मे ही नाना पुराण कहकर राम कथा के कारक तत्त्वों में से पुराणों को प्रामुख्य दिया है। पुराणों के प्रभाव के सन्दर्भ में डॉ0 उदयभानु सिंह का यह मत्तव्य विशेष महत्त्व रखता है कि तुलसीदास पर पुराणों का प्रभाव दुहरा है– प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से और प्रतिपादन शैली की दृष्टि से पुराणों

में प्रतिपादित किया गया है कि ईश्वर एक है। वह अनिर्वचनीय है। नाम–रूप उसकी उपाधियाँ है।। विष्णु, शिव, देवी, राम, कृष्ण आदि उसी के विभिन्न नाम हैं। स्वेच्छानुसार भक्त उसे किसी भी रूप में भज सकता है। परमात्मा सच्चिदानंद स्वरूप है। निर्गुण और सगुण है। अनादि अनंत अक्षर अकल अनीह निर्विकार, निरूपाधि, निरंजन अगोचर अैर गुणातीत है। ज्ञान बल, बुद्धि, ऐश्वर्य, दया, कृपा भक्तवत्सलता आदि दिव्य गुणों वाला है। सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ सर्वरूप और सर्वशासक है। वह विरोधी गुणों का आश्रय भी है। जगत् का कर्त्ता, पालक और संहर्त्ता है। वही ब्रह्मा रूप से सृष्टा, विष्णु रूप से पालक और शिव रूप से संहारक है। ईश्वर की शक्ति माया है। वही प्रकृति है। उसी से विश्व का विकास हुआ है। उसी से प्रलय होता है। सृष्टि भगवान् का लीला विलास है। विश्व रचना का दूसरा प्रयोजन है जीव का कल्याण।[1]

जीव ईश्वर का अंश, नियाम्य नित्य चेतन और आनन्दमय है। माया के कारण उसका ज्ञान और आनंद तिरोहित हो जाता है। वह कर्त्ता और भोक्ता है। कर्म करने में स्वतंत्र किन्तु फल भोगने में ईश्वराधीन है। कर्म वश अनेक योनियों में भ्रमता हुआ त्रिविध तापों से पीड़ित होता है। भगवान् की अहैतुकी कृपा से उसका मोक्ष होता है। यद्यपि मोक्ष–साधनों में ज्ञान, कर्म, योग एवं भक्ति साधनों की चर्चा पुराणों एवं मानस में समान रूप से मिलती है तथापि ईश–कृपा की महत्ता मानस में विशेष रूप से स्थापित है। तुलसी के मानस में प्रधान उत्तमर्ण पुराण ही हैं। पुराणों से शब्दार्थ, भावानुवाद, अलंकार विधान को निःसंकोच ग्रहण किया है। पुराणों एवं मानस के संबंध में डॉ0 उदयभान सिंह ने लिखा है कि पुराणों का दर्शन सनातन धर्म दर्शन है। वे सनातन विचार धारा की समस्त मान्यताओं के आकर हैं। उनमें स्मार्त धर्म की अखिल विधाओं

---

1. तुलसीदास मीमांसा – पृ0 361

का सांगोपांग निरूपण करते हुए वर्णाश्रम धर्म का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया है। उनकी दृष्टि मानवता वादी रही है। अतः मानवधर्मों (साधारण धर्मों) को भी विशेष गौरव दिया गया है। उन्होंने अनेकता में एकता का दर्शन किया है। स्मार्त पंचदेवोपासना की महत्ता स्वीकार करते हुए एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की है। विचारधारा समन्वयवादी है। इसीलिए उन्होंने वैष्णव, शैव, शाक्त आदि सम्प्रदायों के आराध्य देवों में समन्वय स्थापित करते हुए उन्हें एक ही परमात्मा का स्वरूप माना है। विभिन्न सम्प्रदायों में विहित मोक्ष के विभिन्न साधनों (कर्म, योग, ज्ञान भक्ति) में सामंजस्य दिखाते हुए भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। वैष्णव पुराणों का एक मुख्य प्रतिपाद्य भगवान् के अवतारों और उनकी लीला का वर्णन है। तुलसीदास की रचानाएँ पुराण की इस धार्मिकता, समन्वय भावना, अवतारवादिता और भक्ति निष्ठा से आद्योपान्त अनुप्राणित हैं।[1]

सनातन धर्म की व्यावहारिक व्याख्या विभिन्न आख्यानों के माध्यम से पुराणों में उपन्यस्त है। प्राचीन आख्यानों, सूर्य चन्द्र वंशीय राजाओं के चरित अवतार के प्रभाव, धार्मिक भावना के विकास हेतु इन पुराणों उपपुराणों की रचना हुई है। तुलसी ने स्वतः पुराण महत्ता की स्वीकृति दी है। उनका मानस नाना पुराणोक्त घटनाओं का सामंजस्य है। पुराणों में राम कथा प्रायः विष्णु के अवतार से प्रभावित है।

1. ब्रह्म पुराण[2]–

इस पुराण में राम कथा तीर्थ माहात्म्य एवं अवतार वर्णन प्रकरण में वर्णित है। इसके अध्याय 154, 157, 176, 213 में रामावतार से लेकर रावण वध तक की घटनाओं का उल्लेख है। रामाश्वमेघ एवं लवकुश वृतांत का उल्लेख है।

1. तुलसीदास मीमांसा – पृ0 365
2. ब्रह्म पुराण

2. पद्म पुराण[1]–

इस पुराण के कई खण्डों में राम कथा का विस्तार से वर्णन है। पाताल खण्ड सम्पूर्ण राम कथा के साथ सिय निन्दक रजक का भी वृतांत है।

3. विष्णु पुराण[2]–

इस पुराण में राम कथा दो बार आई है। प्रथम बार भूमिजा सीता की एवं दूसरी बार राम जन्म से लेकर रावण वध तक की घटना का वर्णन है।

4. वायु पुराण[3]–

विष्णु पुराण के अनुसार इसमें भी रामकथा दो बार कही गयी है।

5. शिव पुराण[4]–

इस पुराण में फुटकर रूप में कई स्थानों पर राम कथा के प्रसंग मिलते है। ज्ञान संहिता, धर्म संहिता, रुद्र संहिता के विभिन्न अध्यायों में साम्प्रदायिक तत्त्वों से युक्त राम कथा दी गयी है। रामावतार का भी उल्लेख इस पुराण में है।

6. भागवत पुराण[5]–

इस पुराण के सम्बन्ध में कहा जाता है कि विद्वानों की परीक्षा इस पुराण के व्याख्या से होती है। यह भक्ति, ज्ञान, दर्शन, काव्यकला की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट पुराण है। इसकी महत्ता आज भी कम नहीं हुई है। इस पुराण के नवम स्कन्ध में राम कथा का संक्षेप में वर्णन है जिसमें सीता परित्याग की कथा भी है। इसके अतिरिक्त

---

1. पद्म पुराण – सृष्टि, 32, 36, 38 अध्याय
2. विष्णु पुराण – 4–5
3. वायु पुराण – 28, 191–20 तथा 89, 22
4. शिव पुराण
5. श्रीमद् भागवत – 9/10–12

स्कन्ध 2 एवं 7 में दशावतार वर्णन प्रसंग में भी राम कथा का संकेत है।

7. देवी भागवत्[1]–

इस पुराण में राम कथा नव रात्रि माहात्म्य प्रसंग में आई है। राम यहाँ नवरात्रि व्रत करके ही रावण वध करने मे समर्थ हो सके थे। इस कथा में शाक्त प्रभाव परिलक्षित होता है।

8. नारदीय पुराण[2]–

इस पुराण के पूर्व खण्ड तथा उत्तरखण्ड दोनों की स्थलों पर रामचरित का संक्षिप्त वर्णन हुआ है। इसमें वर्णित उत्तर काण्ड की कथा बाल्मीकि रामायण से अधिक साम्य रखती है।

9. अग्नि पुराण[3]–

इस पुराण में बाल्मीकि रामायण के सातों काण्ड का संक्षिप्त रूप में अनुसरण है।

10. ब्रह्म वैवर्त पुराण[4]–

वेदवती प्रसंग में सीता का वर्णन मिलता है। इसमें अग्नि द्वारा मायामय सीता का उल्लेख है।

11. वाराह पुराण[5]–

दशावतार चरित प्रसंग में रामावतार की चर्चा है।

---

1. देवी भागवत – 3/28–30
2. नारदीय पुराण – अध्याय 79
3. अग्नि पुराण – अध्याय 5–11
4. ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खण्ड – अध्याय 14
5. वाराह पुराण – अध्याय 4

12. स्कन्द पुराण[1]–

यह पुराण मुख्य रूप से शैव सम्प्रदाय से संबंधित है। इसके अनेक खण्डों में राम कथा किसी न किसी रूप में मिलती है।

13. कूर्म पुराण[2]–

इस पुराण के सूर्यवंश प्रसंग में राम जन्म से लेकर रावण वध तक की कथा विन्यस्त है।

14. गरूड पुराण[3]–

विष्णु के अवतार प्रसंग में रामायण का संक्षिप्त उल्लेख है।

15. ब्रह्माण्ड पुराण[4]–

इस पुराण में इक्ष्वाकु एवं मिथिलावंश वर्णन के अन्तर्गत रामावतार एवं सीता की कथा दी गई है।

इन पुराणों के अतिरिक्त हरिवंश, विष्णुधर्मोत्तर नृसिंह, वृहदधर्म और कालिका इत्यादि पुराणों में भी कहीं अवतार प्रसंग, कहीं वंश वर्णन के अन्तर्गत अथवा साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के उदाहरण देने के लिए राम कथा का वर्णन है। डॉ0 कामिल बुल्के ने अपने शोध प्रबन्ध राम कथा उत्पत्ति और विकास में इन पौराणिक प्रसंगों की विस्तृत चर्चा एवं समीक्षा तथा कथा के विकास में इनके महत्त्व का निरूपण किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने पुराणोक्त राम कथा के ग्रहण की चर्चा स्वतः की है। यहाँ यह द्रष्टव्य है

---

1. स्कन्द – महेश्वरी खण्ड 8, वैष्णव खण्ड – 20–25
2. कूर्म – पूर्व विभाग अध्याय 21
3. गरुड़ – पूर्व खण्ड अध्याय 146
4. ब्रह्माण्ड – उपोद्घात – अध्याय 20, 73

कि उन्होंने निगम, आगम की चर्चा के पूर्व पुराणों की कथा को ऋक्थ रूप स्वीकार किया है।

राम को अवतारी, ब्रह्म एवं भक्ति के श्रेष्ठ आदर्श रूप में प्रतिष्ठापित करने में अनेक साम्प्रदायिक रामायणों का योगदान है। जिस प्रकार श्री मद् भागवत में ऐते चांश कला पुसां कृष्णस्तु भगवान स्वयं की उद्घोषणा कर उनकी भक्ति के लिए साधन या वैधी भक्ति से आगे बढ कर सोपान रूप में रागानुगा या प्रेमाभक्ति की महत्ता स्थापित की गयी है, उसी प्रकार इन साम्प्रदायिक रामायणों में योग प्रधान कथा अथवा रामस्तु भगवान स्वयं के अनुरूप राम भक्ति का प्रसार–प्रचार किया गया है। इस महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए अध्यात्म रामायण[1] अग्रगण्य है। वेदान्त दर्शन के अनुरूप राम को ब्रह्म स्वरूप प्रदान कर राम कथा को लीला रूप में प्रस्तुत किया गया हैं। इसमें शंकर पार्वती ब्रह्मा नारद संवाद के माध्यम से राम परब्रह्म, सीता मूल प्रकृति एवं लक्ष्मण शेष के अवतार माने गए है। इसी कथा के अनुरूप अनुसरण कर तुलसीदास ने राम चरित मानस में बाल्यकाल के समय कौसल्या को अपना विष्णु रूप दिखलाया है।

इसी परिप्रेक्ष्य में योग वाशिष्ठ रामायण का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा क्योंकि काकभुशुण्ड गरूड़ के माध्यम से मानस में संक्षिप्त राम कथा का वर्णन तुलसी ने किया है। राम राज्य के पश्चात अयोध्या में वेद पुराणों का नित्य अध्ययन, मनन और चिंतन का होना तुलसी के पुराण प्रतिपादित धर्मों की प्रतिष्ठा का द्योतक है–

"सबके गृहि गृहि होहिं पुराना। रामचरित पावन विधि नाना।

वरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।"[2]

---

1. अध्यात्म रामायण

2. रामचरित मानस – 7/20, 26

धर्म शास्त्र और मानस–

1. स्मृतियाँ–

वैदिक काल में मनुष्य मात्र को एक इकाई मानकर धर्म सूत्रों का प्रणयन किया गया था, जो कालान्तर में सृष्टि विस्तार, विदेशी आक्रमणों एवं शासन व्यवस्था के कारण तथा अनेक जातियों के निर्माण के कारण धर्म सूत्र पर आधारित जीवन यापन कठिन प्रतीत होने लगा समाज में अनेक मतमतान्तर होने लगे। ऐसे समय में स्मृतियों की रचना हुई। प्राचीन धर्म सूत्र किसी न किसी वैदिक शाखा से सम्बन्धित रहते थे। तदनन्तर बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के कारण बदली हुई परिस्थितियों में समाज को सुव्यवस्थित रखने का दायित्व इन स्मृति ग्रंथों पर पड़ा। इन स्मृतियों में सृष्टि की उत्पत्ति विस्तार/विकास तथा मानव मात्र के लिए करणीय अकरणीय कार्यो का विस्तृत वर्णन है। इन स्मृतियों की संख्या पचास से ऊपर है जिनमें प्रमुख निम्न लिखित हैं– मनु, अत्रि, विष्णु, हाटी, याज्ञवल्क्य, उणस अंगिरस, यम, आपस्तंब संवर्त कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, सातातप एवं वशिष्ठ। इन स्मृतियों में मनु स्मृति का उल्लेख बडे आदर से किया जाता है, क्योंकि आज भी उसमें लिखित जीवन बिधान के नियमों का खण्डन मंडन होता रहता है।

इसमें सृष्टि की उत्पत्ति, आचार पद्धति, भक्ष्यामक्ष, विवाह, स्त्रियों के साथ करणीय अकरणीय व्यवहार, वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले मनुष्यों के कार्य, प्रायश्चित विधानों की विस्तृत चर्चा है। तुलसी ने मानस में शास्त्रानुमोदित आचार व्यवहारों का विशद चित्रण किया है यथा–

काम कोह मद मान न मोहा। लोम न छोम न राग न द्रोहा।।

जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया। तिन्ह के ह्रदय बसहु रघुराया।।

सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।।

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।।

जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव विष तें विष भारी।।

(मानस 2/130)

विविध दार्शनिक ग्रन्थ एवं रामचरित मानस–

भारतीय दर्शन अध्यात्म प्रधान है। धर्म और दर्शन का यहाँ जीवन में समन्वित रूप मिलता है। पाश्चात्य जगत् में भौतिक तत्त्व को ही सत्य मानकर उसके विश्लेषण जनित उपलब्धि को दर्शन मान लिया जाता है, जबकि भारतीय दर्शन भौतिक सत्य से परे आध्यात्मिक सत्य को व्यवहारिक रूप देता है, इसी धर्म और दर्शन को वेद या ईश्वर से जोड़कर नास्तिक और आस्तिक दर्शनों की चर्चा की जाती है।

वस्तुतः वेदों को समस्त दर्शनों का आदिस्रोत माना जाता है पहले हम लिख चुके हैं कि वेद में कर्म, ज्ञान एवं भक्ति की पावन् त्रिवेणी प्रवाहित होती है, किंतु उनमें कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड को लेकर अनेक साम्य और वैषम्य वाले मत दृष्टिगोचर होते हैं इन्हीं का सामंजस्य दार्शनिक ग्रन्थों में किया गया है जो निम्न लिखित है–

1. वैशेषिक दर्शन–

यह दर्शन सबसे प्राचीन है इनके प्रवर्तक कणाद ऋषि हैं यह दर्शन मूलतः बाह्यार्थ दर्शन है इसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि सब भौतिक पदार्थ परमाणु समूह से बने हैं इसमें सात पदार्थ नव द्रव्य का उल्लेख है, दुःख की आत्यान्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है जब आत्मा परमात्मा से साम्य हो जाता है तब मोक्ष होता है। परमाणुओं की अपनी–अपनी विशेषताओं को विशेष कहते हैं इसीलिए यह दर्शन वैशेषिक दर्शन कहलाता है।

2. न्याय दर्शन–

इसके प्रणेता गौतम ऋषि हैं। न्याय शास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान और शब्द चार प्रमाण माने जाते हैं न्याय दर्शन का उद्देश्य आत्मा को शरीर इन्द्रियां तथा सांसारिक विषयों के बंधन से मुक्त करना है। आत्मा शरीर और मन से भिन्न है भौतिक अणुओं के सम्मिश्रण से शरीर का निर्माण होता है। मन अणु है अतैव उसका विभाजन सूक्ष्म होने के कारण नहीं होता स्वरूपतः आत्मा अचेतन है। शरीर एवं मन के संयोग से उसमें चैतन्य का गुण आता है। तत्त्वज्ञान के कारण जब समस्त दुखों का अंत हो जाता है तो मुक्ति प्राप्त होती है। नैयायिक इसी को अपवर्ग कहते हैं इस दर्शन में ईश्वर ही संसार का सृष्टि पालक तथा संहारकर्ता है।

सांख्य दर्शन–

सांख्य दर्शन के निर्माता कपिलमुनि माने गये हैं। यह दर्शन मूल रूप में न उपलब्ध होकर ईश्वर कृष्ण की सांख्यकारिका के रूप में प्राप्त होता है। यह दर्शन द्वैतवादी है। वह प्रकृति और पुरूष इन दो प्रकार के तत्त्वों में पारमार्थिक भेद मानता है। पुरुष चेतन है यह शरीर मन तथा इन्द्रियों से भिन्न है अतः वह नित्य है जगत् का मूल कारण प्रकृति है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इसके तीन गुण अथवा उपादान हैं। प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि का आरंभ होता है। सत्त्व के आधिक्य से महत् की उत्पत्ति होती है। पुरुष के चेतन प्रभाव के कारण यही महत् बुद्धि हो जाती है और क्रमशः अहंकार, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, पंच तन्मात्रायें पंच महाभूतो, कुल मिलाकर पच्चीस तत्त्वों की महत्ता यहाँ स्वीकार की गयी है। पुरूष संसार का दृष्टा मात्र रह जाता है यही कैवल्यावस्था है। जीवित रहते हुए भी जब मुक्त पुरुष संसार से अपने ममत्व को हटा लेता है तो जीवन्भुक्त कहलाता है।

योग दर्शन–

इसके प्रवर्तक महर्षि पतंजलि कहे जाते है। सांख्य में ईश्वरवाद का सिद्धान्त जोड़कर पतंजलि ने योगशास्त्र का निर्माण किया है। योग का मुख्य विषय चित्तवृत्तियों का निरोध है। यह योग दर्शन समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिवाद, कैवल्य पाद चार मुख्य अध्यायों और अनेक सूत्रों में विभक्त है। भारत वर्ष में इस शास्त्र और दर्शन की बड़ी प्रतिष्ठा है। चित्तवृत्तियों के निरोध और समाधि प्रमुख आठ अंग कहे गये हैं इसी को अष्टांग योग कहा गया है। संसार दुखमय होने से हेय है। पुरूष और प्रकृति का संयोग संसार का कारण है अतः जब अविद्या का नाश हो जाता है तब आत्मा मुक्त होकर स्वरूप में अवस्थित हो जाती है यही कैवल्य अवस्था है।

मीमांसा दर्शन–

इसके प्रवर्तक जैमिनि हैं इसमें वैदिक कर्मकाण्ड का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन है। मीमांसा के अनुसार वेद विधान धर्म है और जिसका वेद में निषेध है वह अधर्म है। मीमांसकों के अनुसार आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और बुद्धि से भिन्न है वह नित्य है अविनाशी है तथा विभु है, आत्मा की उत्पत्ति एवं विनाश नहीं होता। पूर्व पाप, पुण्यों का क्षय होने पर जब नया शरीर नहीं मिलता है तब यही मोक्षावस्था कही जाती है।

वेदान्त दर्शन–

वेदान्त दर्शन का मूल स्रोत उपनिषद् हैं वादरायण व्यास ने ब्रह्मसूत्रों की रचना कर वेदान्त दर्शन का सूत्रपात किया इस ग्रन्थ की बड़ी महत्ता है इसके अनुसार संसार में एक ईश्वर की सत्ता है यह आत्मा ही ब्रह्म है ब्रह्म ही सत्य है वह अनन्त है यह ब्रह्म ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप है इससे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं जीते है और मरणकाल में उसी में प्रविष्ट होते हैं, इस प्रकार ब्रह्म ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारक है। माया

ब्रह्म की शक्ति है यह नाम रूपात्मक जगत् अविद्या अथवा मायाकृत है त्रिगुणात्मिका माया के कारण ही जीव अपने अन्तरात्मा ब्रह्म को पहचान नहीं पाता। वस्तुतः जीव ब्रह्म से अभिन्न है किंतु उस पर अविद्या का आवरण पड़ा रहता है इस आवरण के हट जाने पर जीव ब्रह्म ही हो जाता है यही मोक्ष की दशा कहलाती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने दर्शन ग्रंथों का अनुमोदन करते हुए मानस में अनेक स्थलों पर ब्रह्म, जीव, जगत और माया का विवेचन किया है–

वैशेषिक–

सम्मुख होइ जीव मोहिं जबहीं। कोटि जनम अघ काटों तबहीं।।

न्याय दर्शन–

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।

(मानस 7/117)

सांख्य दर्शन–

आदि देव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला।।

सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व बिचार निपुर भगवाना।।

(मानस 7/118)

सांख्य दर्शन के अनुसार–

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवभूल भेद भ्रम नासा।।

अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा।।

मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुख रासी।।

(मानस 7/111)

योग दर्शन–

"चित्तवृत्ति निरोधः योगः"

जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।

तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।।

जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।

चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाई।।

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।।

तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि।।

(मानस 7/117)

मीमांसा दर्शन–

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरू गोविंद विप्र पद प्रेमा।।

श्रद्धा क्षमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया।।

तथा–

ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो।।

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देही।।

(मानस 7/112)

वेदान्त दर्शन–

प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहि सकल सलभ समुदाई।।

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं।।

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।।

अस समर्थ रघुनाय कहिं भजहिं जीव ते धन्य ।।"

(मानस – 7/119, 120)

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।

(मानस 7/192)

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास का राम चरित मानस सनातन धर्म सम्मत ग्रंथ प्रतीत होता है।

ग. धर्म तत्त्व वेत्ता गोस्वामी तुलसीदास–

सारतः कहा जा सकता है कि राम चरित मानस सनातन धर्म का प्रस्थान ग्रंथ है। मानस के अनेक स्थलों मे उपदेश या सिद्धान्त निरूपण के परिप्रेक्ष्य में सनातन धर्म तथा उसके विरोधी तत्त्व अधर्म की व्याख्या की गयी है। मानस में धर्म के अनेक अर्थ प्रतिपादित हुए है

1. प्रभाव–

1. नित जुगधर्म होंहि सब केरे। (मानस 7/104)
2. सब विधि सुख त्रेता कर धर्मा– (मानस 7/104)
3. द्वापर धर्म हरष भय मानस– (मानस 7/104)
4. बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। (मानस 7/104)
5. काल धर्म नहिं व्यापाहिं ताही। (मानस 7/104)

2. स्वभाव–

1. जीव धर्म अहमिति अभिमाना। (मानस 1/116)

3. गुण/वृत्ति या विशेषता–

1. कलि मल जैसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ।
2. सुनु हरिजान ग्यान निधि कहेउ कछुक कलि धर्म। (मानस 7/97)

4. आचार के नियम–

1. सखा धरम निबहइ केहिं भाँती। (मानस 5/46)

5. सदाचार–

1. जथा धर्म सीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहि। (मानस 3/39)

6. पुण्य–

1. परम धरम स्रुति विदित अहिंसा।

2. नेम धर्म आचार तप ज्ञान जग्य जप दान। (मानस 7/121)

7. कर्त्तव्य–

1. एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। (मानस 2/6)

2. गुरू स्रुति संमत धरम फलु पाइउ विनहिं कलेस।

8. पुण्यात्मक कर्त्तव्य समूह–

1. बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।

2. चलहि स्वधर्म निरत स्रुति नीती। (मानस 7/21)

9. नीति एवं न्याय–

1. नीति धर्म मैं जानत अहहूँ।

2. बूडि न मरहु धर्म व्रत धारी।

3. छमा कीन्ह तुम्ह धर्म विचारी। (मानस 6/22)

10. वर्ण विशेष के कर्त्तव्य–

1. माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू। (मानस 2/204)

11. अभ्युदय के हेतु–

1. उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं। (मानस 7/99)

12. निःश्रेयस का हेतु–

1. तब मैं हृदय विचारा जोग जग्य व्रतदान।

जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन। (मानस 7/48)

2. नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम जप तप मख आना। (मानस 7/126)

13. समष्टि गत स्वरूप–

1. धरम तें विरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोच्छ प्रद वेद बखाना।

2. प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरति श्रुति रीती।

एहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा। (मानस 3/16)

डॉ0 उदयभानु सिंह का इस सम्बन्ध में यह मंतव्य विचारणीय है कि उनकी दृष्टि में धर्म केवल कर्तव्य कर्म या आचार संहिता का ही वाचक नहीं है, वह सम्पूर्ण जीवन दर्शन के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष का निदर्शक है। लौकिक और पार लौकिक जीवन में जीव के अभ्युत्थान से संबंध रखने वाले सभी विधि–विधान उसकी परिधि के अन्तर्गत हैं। इसीलिए उनके धर्म रथ वर्णन, सज्जन धर्म निरूपण, आदि प्रसंगों में दर्शन, भक्ति, आचार आदि से संबद्ध अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि करने वाले शारीरिक एवं अंतःकरण संम्बन्धी साधनों का उपस्थापन कर दिया गया है। यह सनातन धर्म की महनीय विशेषता है, जो इतिहास, पुराण और धर्म शास्त्र में विशेषतया परिलक्षित होती है। इसी दृष्टि से तुलसी ने धर्म चर्चा के विविध प्रसंगों में सभी कर्तव्य कर्मों की गणना की है। भजन, विज्ञान, ज्ञान, विवेक, बुद्धि, योग, समता, शम, संतोष, दम धैर्य, वैराग्य, यम नियम, जप–तप, व्रत, तीर्थ स्थान, सत्य, शील, शौर्य, बल, क्षमा दया, कृपा, अहिंसा, परोपकार, दान, यज्ञ, सुर गुरू विप्र धेनु सेवा आदि सब धर्म के अंग हैं।[1]

इस सन्दर्भ मेंयह ध्यातव्य है कि धर्म का मूल क्या है, इसे भी तुलसीदास ने परिभाषित किया है। प्रथम अध्याय में लिखा जा चुका है, कि मनु ने धर्म के पाँच प्रमाण वेद, वेदज्ञों की स्मृति, उनका शील, साधुओं का आचार और आत्म तुष्टि माना है। वस्तुतः धर्म के मूल में चार तत्त्व प्रमुख हैं– श्रुति, स्मृति, सदाचार और आत्म तुष्टि।

---

1. तुलसी दर्शनमीमांसा – पृ0 194

इनका विरोध अधर्म है। तुलसी की दृष्टि में उक्त चार तत्त्व, धर्म अधर्म, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य, औचित्य–अनौचित्य के निर्णायक हैं। राम चरित मानस में प्रतिपादित सनातन धर्म भावना श्रुति संमत, स्मार्त धर्म है, जिसकी छह विशेषताएँ कही जाती है– साधारण धर्म, वर्ण–धर्म, आश्रम–धर्म, वर्णाश्रम धर्म, गुण धर्म और निमित्त धर्म। हम अध्ययन सौविध्य की दृष्टि से इन्हें साधारण धर्म तथा वर्णाश्रम धर्म में अन्तर्भुक्त कर सकते हैं–

बडे भाग मानुस तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।

साधनधाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक संवारा।।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।

कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ।।

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदायी।।

नर तुन पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेही।।

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत चह जिव अविनासी।।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।

कबहुँक करि करूना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरूत अनुग्रह मेरो।।

करन धार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।

सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।।

(मानस 7/44)

राम द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त धर्म सभी के लिए पालनीय धर्म हैं।

धर्म रथ–

तुलसी का रामचरित मानस साहित्यिक ग्रन्थ मात्र नहीं है। इसमें स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा ही नहीं है, यह मानव जीवन को श्रेष्ठतम रूप में प्रस्तुत करने हेतु आचार संहिता है। मन के निगूढतम रहस्यों की सैद्धान्तिक व्याख्या है, मानुषिक जीवन के सोपानों का चित्रण है। यह पुराण, दर्शन, नीति धर्म का भी ग्रंथ है। जीवन रथ को आगे बढाने के लिए समतल, सरल राजमार्ग है। लंका काण्ड में विभीषण को सांत्वना देते हुए राम ने धर्म रथरूपक प्रस्तुत किया है।

"सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेंहि जय होइ सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहिं रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।।
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजन सारथी सुजाना। विरति धर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। वर विज्ञान कठिन कोदण्डा।।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद विप्र गुर पूजा। येहि सम विजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्म मय अस रथ जाके। जीत न कहुँ न कतहुँ रिपु ताके।।
महा अजय संसार रिपु जीत सकै सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ सुनहु सखा मति धीर।।"1

इस धार्मिक रथ की कल्पना उपनिषद्[2] पुराण[3] तथा अन्यत्र भी है। जिस प्रकार

---

1. मानस – 6/80
2. कठ – 1/3/3 एवं 9
3. भागवत पुराण – 7/10/66 एवं महाभारत उद्योग 34/59–60

रथ का मूलाधार पहिये/चक्र होते हैं, उसी प्रकार जीवन का मूलाधार शौर्य है। यहाँ शौर्य क्षत्रियोचित शूरता की अपेक्षा स्वभाव विजय[1] का द्योतक है, क्योंकि विषयों में आसक्त जीव कर्मों के कारण पुनरपि जन्मं पुनरपि मरणं के भँवर चक्र में फँस जाता है, अतः आत्मोन्नति हेतु उसे अपनी प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। धर्म का दूसरा आधार धैर्य है, जिसका तात्पर्य संभवतः गीतोक्त वाक्यों के समीपस्थ है–

धृत्या मया धारयते मनः प्राणेन्द्रिय क्रियाः।

योगेनाव्याभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।

(श्री मद् भागवत गीता 18/33)

तुलसी ने व्यक्ति के सम्बन्धों की दृढ़ता हेतु धीरज को एक कसौटी माना है

"धीरज धर्म मित्र अरू नारी। आपद काल परखिअहि चारी।"2

व्यक्ति के जीवन में शील सदाचार परम धर्म हैं– आचार, परमोधर्मः कहा ही गया है। तुलसी ने इस धर्म के चार महत्त्वपूर्ण अंग बताये है– बल, विवेक, दम और परहित। यहाँ बल शारीरिक शक्ति की अपेक्षा आत्मबल का परिचायक है। करणीय अकरणीय का चिन्तक एवं निर्णायक विवेक है। वासनाओं का शमन ही दम है और परहित के समान दूसरा धर्म नहीं ऐसा प्राक्तन ग्रंथों में कहा गया है। उक्त उपांगों का निर्वहन क्षमा, कृपा और समता से ही संभव है। यहाँ यह लिखना असमीचीन न होगा कि निन्दा स्तुति, मानापमान, हानि–लाभ जनित द्वंदो को समान समझना ही तो समत्व योग कहलाता है।

सामान्यतया सांसारिक जनों की सामान्य प्रवृत्ति यही है कि सभी लोग स्वयं से अधिक शक्तिशाली की महत्ता को स्वीकार करते हैं। इस तथ्य को यदि एक सूत्र में रखें तो यह कहना अधिक तर्कसंगत होगा कि संसार शक्ति का अनुगामी होता है।

---

1. भा0पु0 – 11/19/37
2. मानस – 3/5/4

शक्ति की ही भक्ति होती है।

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस में धीरोदात्त नायक राम स्वयं जगत् नियन्ता परब्रह्म परमात्मरूप हैं अतः सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। वे अपराजेय शक्ति के स्वामी हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने इसीलिए उनकी भक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया है। निष्कर्षतः सनातन धर्म में राम सनातन भगवान हैं और उनकी सतत् स्मृति सनातन भक्ति है।यही भगवद्भक्ति सनातन धर्म का प्राणतत्त्व है। गोस्वामी जी रामचरित मानस के अंत मे इसी तथ्य को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

कामिहिं नारिं पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।

तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागेहु मोहि राम।।

(मानस 7 / 130)

उपसंहार

मानव जीवन में सनातन धर्म का कभी उपसंहार नहीं होता क्योंकि सनातन धर्म में कर्म प्रधानता की मूलभूत धारणा है–

"कर्म प्रधान विस्व रचि राखा

जो जस करै सो तस फल चाखा" (रा0च0मा0)

जिस शरीर का जन्म हुआ है मृत्यु भी उसी की होगी और मरण संस्कार के पश्चात स्वर्ग या नरक भ्रमण के अनन्तर पुनर्जन्म भी होगा।

'क्षीणे पुण्ये मृत्युलोके विशन्ति' पुण्य क्षीण हो जाने पर मृत्युलोक में जन्म लेना ही पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदास ने जीवन के उत्तरार्ध मे नाना पुराण निगमागम विविध ग्रंथों का अध्ययन, मनन, अनुशीलन करने के बाद रामचरित मानस के लेखन का संकल्प किया था।

गोस्वामी जी ने राम को केवल दाशरथि राम नहीं माना अपितु उन्हें जगत् नियन्ता परब्रह्म परमात्मा और सर्वशक्ति सम्पन्न ईश्वर रूप में परिकल्पित किया है। मेरी समझ में तो राम शब्द स्वयं में सनातन धर्म है, इसीलिए राम द्वारा प्रस्तुत किया गया सम्पूर्ण आचरण सनातन धर्म का उदाहरण है। 'रामो विग्रहवान धर्मः' (बाल्मीकि रामायण)

पौराणिक कथाओं के अनुसार प्रश्नि और सुतपा को प्रदत्त वरदान के सत्यापन के लिए परमात्मा को स्वयं नृसिंह, राम और कृष्ण रूप में तीन बार प्रमुख रूप से अवतरित होना पड़ा है। नृसिंह का चरित्र अल्पावधि का है इसीलिए नृसिंहावतार को आवेशावतार कहा जाता है।

रामावतार एवं कृष्णावतार में मानव जीवन का सनातन स्वरूप (अवतरण से

तिरोभाव तक) चरितार्थ है। चतुर्भज रूपधारी ईश्वर ने माता कौशल्या की प्रार्थना पर बाल रूप और बाल रूदन किया है। कौशल्या के आँगन में घुटनों के बल चलने वाले राम काक को भी मोहित करते हैं। उनकी बाललीला समस्त जीव जन्तुओं की बाललीला को अनुप्राणित करती है। गुरू वशिष्ठ के आश्रम में राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का पहुँचकर सादर अभिवादन एवं नियमित अध्ययन गुरू शिष्य की परम्परा का सनातन प्रतिष्ठापन ही है।

विश्वामित्र की याचना पर असुरों के संहार के लिए धनुर्विद्या का प्रयोग सनातन मर्यादा के अनुरूप है।........................''परित्राणाय साधूनाम विनाशाय चदुष्कृताम् (गीता) इसी तथ्य की पुष्टि करता है। विस्वामित्र के बताने पर गौतम पत्नी अहल्या का उद्धार इस तथ्य का द्योतक है कि ज्ञात–अज्ञात रूप में भ्रमवश हुआ पापाचरण भी रामचरणरज से निष्प्रभावी जो जाता है। यही तो सनातन धर्म की महत्ता है। अयोध्या काण्ड में बनवासी राम के दर्शन हेतु मन, क्रम, वचन राम अनुरागी और बिरागी वेष तापस का आगमन यही संकेत करता है कि राम स्वयं सनातन परमात्मा है। "आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित श्री रामचरित मानस में इस धारणा की पुष्टि की गई है कि यह तापस स्वयं सनत्कुमार थे।"

"तेहि अवसर एक तापसु आवा। तेजपुंज लघुवयस सुहावा।

कवि अलखित गति वेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी।।"

(मानस 2/110)

गोस्वामी तुलसीदास ने जिस लोक मंगल कामना से रामचरित मानस की रचना की है वह स्वयं प्रभु प्रेरित है तभी गोस्वामी जी रामचरित मानस के समापन में लिखते हैं..........................''जो मनुष्य भक्ति भाव से इस पवित्र, सदाकल्याणकर पुण्य और

पापहरण कर ज्ञान भक्तिप्रद, मायामोह के मल के विनाशक विमल प्रेम जल से परिपूर्ण इस रामचरित मानस में अवगाहन करेंगे वे संसार रूपी सूर्य की प्रखर किरणों से नहीं झुलस पायेंगे।

"पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्ति प्रदं
माया मोह मलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्री मद्रामचरित्र मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसार पतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।।"

(मानस 7/130)

गोस्वामी तुलसीदास के राम शाश्वत और सनातन परम पुरूष हैं, वस्तुतः वे विशेष्य विशेषण से परे हैं, इस तथ्य को गोस्वामी जी स्थान स्थान पर व्यक्त करते रहते हैं–

"जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने।।
अवतार नर संसार भार विभंजि दारून दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे।।"

(मानस 7/13)

सनातन धर्म अपने विविध लक्षणों के माध्यम से चराचर जगत् में व्याप्त है। नकारात्मक आचरणों से मुक्ति हेतु सकारात्मक आचरण की महत्ता एक सनातन विशेषता है, इसीलिए जो सर्वोत्कृष्ट है, सार्वभौमिक है, सार्वलौकिक है और सार्वजनीन है वह सनातन धर्म से अनुस्यूत है। धर्म संस्थापन हेतु शाश्वत सनातन और सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभु किसी न किसी रूप मे अपनी उपस्थिति और महत्ता चरितार्थ करते हैं।

रामचरित मानस के उत्तर काण्ड में गरूण और काकभुशुण्डि संवाद योजना में तीन प्रश्न (सांसारिक दृष्टिकोण से ओत प्रोत) प्रस्तुत हुए हैं सर्वाधिक दुर्लभ शरीर कौन सा है, सबसे बड़ा दुख कौन सा है और सबसे बड़ा सुख कौन सा है। इन तीनों की जानने की इच्छा वास्तव में यही मानस रोग हैं प्रत्येक जीव में यह प्रश्न उठते होंगे।

काकभुशिुडि ने इसी संदर्भ में चराचर जीव जगत मे नर तन (मानव शरीर) को श्रेष्ठ बताया है–

"नरतन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।।

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।।"

(मानस 7/121)

इन प्रश्नों का सम्बन्ध मानव जीवन में करणीय और अकरणीय आचरण से है। सन्त और असन्त में भेद क्या है, वेद विहित सबसे बड़ा पुण्य कौन सा है, और सबसे भयंकर पाप क्या है, मानस रोग कितने प्रकार के होते हैं।

काकभुशुंडि ने यही बताया कि मानव शरीर के समान दूसरा कोई शरीर नहीं है चराचर जगत जीव उसके लिए तरसते रहते हैं। मानव शरीर से ही कर्मानुसार नरक, स्वर्ग और मोक्ष सभी प्राप्त हो सकते हैं तथा मानव शरीर पाकर कल्याण करने वाले तीन तत्त्व ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की प्राप्ति हो सकती है। जो व्यक्ति मानव शरीर पाकर प्रभु हरि का स्मरण नहीं करता वही सांसरिक विविध विषयों में उलझता हैं, और दुखी होता है। इसी संदर्भ में यह भी बताया गया कि दरिद्रता सबसे बड़ा दुख है और हरि विमुख से बढ़कर कोई दूसरा दरिद्र नहीं है और संत समागम से बढ़कर कोई दूसरा सुख नहीं है, यह संत समागम ही हरिपद कथा का पथ प्रशस्त करता है–

"सुत दारा और लक्ष्मी पापी के भी होय।

संत समागम हरि कथा तुलसी दुर्लभ दोय।।"

ज्ञान, वैराग्य और भक्ति सनातन धर्म की त्रिपथगा हैं। सनातन धर्म की अवध ारणा में ऋषियों मुनियों एवं मनीषियों की मान्यताओं का उल्लेख कर गोस्वामी तुलसीदास ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि परमात्मा, ईश्वर सर्वव्यापक है और समस्त प्राणियों में स्वयं विराजमान है–

"जेहि पूँछेउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्व भूत मय अहई।।"

सनातन धर्म परमात्मा की तरह अत्यन्त व्यापक है। कलियुग प्रसंग में काकभुशुण्डि ने गरूड़ को यह समझाया है कि जब कलियुग आता है तो सारे ब्रह्माण्ड में कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर सब आ जाते हैं। मनुष्य केवल तामसी भाव से दिखाने के लिए जप, तप, व्रत, यज्ञ और दान आदि किया करते हैं। इसी संदर्भ में काकभुशुण्डि ने यह धारणा व्यक्त की है, कि सत्य युग में योग से, त्रेता मे यज्ञ से और द्वापर में पूजा करने से जो सिद्धि या मुक्ति प्राप्त होती है, वही कलियुग मे केवल भगवान का नाम स्मरण करने मात्र से मिल जाती है।

सनातन धर्म प्रधान ग्रंथों के अनुसार धर्म के चार चरण प्रसिद्ध हैं– सत्य, दया, तप और दान। इनमें से कलियुग में केवल एक चरण दान को प्रधान माना गया है जैसे भी संभव हो दयापूर्वक दान करने में ही कल्याण होता है–

"प्रगट चारि पद धरम के। कलि मह एक प्रधान।।

जेन केन विधि दीन्हेउ। दान करइ कल्यान।।"

(मानस 7/103 ख)

सनातन धर्म के सारतत्त्व को आत्मसात करने वाले शिव जी उमा से कहते हैं–

"देखो उमा! काम क्रोध और मद से दूर रहकर जो राम के चरणों में प्रेम करने लगते हैं, उन्हें सारे जगत में चारो ओर राम ही राम दिखाई दिया करते हैं फिर वे विरोध किससे करें?

"उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।।"

(मानस 7/112)

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने सनातन धर्म की विविध भूमियों का स्पर्श करते हुए गृहस्थ धर्म, कुल धर्म, समाजधर्म, लोक धर्म, और विश्वधर्म परक चिंतन को भी सनातन धर्म सापेक्ष स्वीकार किया है। गृहस्थ धर्म में दान, दया और अतिथि सत्कार का महत्त्व है तो कुल धर्म में कुल गुरू पूजा और कुल मर्यादा के अनुरूप पारस्परिक संबंधों के निर्वहन की महत्ता है। उत्तरोत्तर व्यक्ति का सर्वहितकारी चिंतन लोक मंगल की कामना बनकर चरितार्थ होता है यही धर्म की सनातनता है।

रामचरित मानस के शिव और पार्वती संवाद में जिस वैष्णव भाव की स्वीकृति है वह देव पात्रों के आचरण में सनातन धर्म की महत्ता को व्यक्त करता है। परिणामतः देवाधिदेव महादेव भी परब्रह्म परमात्मा का ध्यान राम रूप में करते हैं। इसी प्रकार देवेतर पात्रों में भी सनातन धर्म के साक्षात् स्वरूप भगवान राम के प्रति अगाध श्रद्धा से परिपूर्ण हैं निषादराज, केवट आदि। राक्षस कुलीन विभीषण सनातन धर्म, की अवधारणा के सत् पक्ष से ओतप्रोत हैं और मनसा–वाचा कर्मणा राम के शरणागत है। राक्षस् कुल वधु मंदोदरी रावण को बार–बार सन्मार्ग पर लाना चाहती है इसी के लिए वह शिव मंदिर में अनुरोध करती है। मेघनाद द्वारा राम को नागबंधन ग्रस्त करने का संकल्प लेने पर शिवजी गिरिजा पार्वती को यही समझाते हैं कि जिस राम का नाम जप कर मुनिजन

भव बंधन को काट लेते हैं वह व्यापक सम्पूर्ण विश्व का निवास परमात्मा राम किसी बंधन में कैसे बँध सकते हैं। सनातन धर्म की भूमि व्यापक है फिर भी भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन में सद्संस्कारों के समायोजन के उद्देश्य से सोड़ष संस्कारों को वर्णित किया है।

रामचरित मानस में रघुकुल के अनुरूप ही राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न को सनातन धर्म से ओतप्रोत संस्कार दिए जाते हैं। इनके परिणाम स्वरूप अपने आचरण की महत्ता से राम मर्यादा पुरूषोत्त्म की उपाधि से विभूषित हुए और भरत भ्रातृ धर्म के प्रतीक बन गये। लक्ष्मण ने सेवक धर्म का निर्वाह किया तो शत्रुघ्न द्वारा शत्रुनाश का संकल्प चरितार्थ हुआ।

मेरी समझ में रामचरित मानस सनातन धर्ममय ग्रंथ है जैसे संसार में सद्–असद्, पाप–पुण्य, विवेक–अविवेक, ज्ञान–अज्ञान, धर्म–अधर्म आदि परस्पर विरोधाभासी तत्त्व हैं उसी तरह रामचरित मानस में भी राम के भक्त और राम विरोधी रावण के अनुयायी हैं। दोनों ही धर्म की सनातनता से ओतप्रोत हैं। राम रघुकुल रीति का पालन करते हैं और रावण स्वरचित राक्षस धर्म का अनुगमन करता है।

सनतान धर्म अनादि और अनंत है इससे भिन्न अन्य धर्मों के दो भाग हो सकते हैं– वे धर्म जो पूर्व काल में थे किंतु अब नहीं हैं अथवा वे धर्म जो पूर्व काल में नहीं थे परन्तु अब हैं। सनातन धर्म का इन दोनों में ही अन्तर्भाव नहीं होता क्योंकि यह सनातन धर्म परब्रह्म परमात्मा की तरह आदि मध्यान्तहीन है। ब्रह्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, स्कंद पुराण आदि में इसी की आराधना हुई है।—आदि मध्यान्त हीनाय निर्गुणाय गुणात्मने।

गुरुजनों के सत्संग और स्वयं के अनुभव का जो सार मुझे मिला वह यह है कि

बुराई का त्याग और अच्छाई को ग्रहण करने का प्रयत्न दोनों ही द्विविधात्मक हैं। अपने आप में इनकी सत्ता कुछ भी नहीं, ये परिस्थिति जन्य सापेक्ष घटनायें हैं। इसलिए मनुष्य को स्वाभाविक जीवन जीने का प्रयत्न करना चाहिए। स्वाभाविक जीवन जीने से विकृतियाँ स्वतः दूर हो जाती हैं और व्यक्ति अहंकार मुक्त बना रहता है। परिणामतः पिण्डमात्र की प्रतीति के बाद अन्तश्चेतना की बोधवृत्ति का जागरण होता है और यही मनुष्य के द्वारा किया जाने वाला परम पुरुषार्थ है। यही सनातन धर्म है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1). संस्कृत ग्रंथ

1. अमरकोष – (अमर यादव) चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी
2. अष्टाध्यायी – (पाणिनि) श्री रामलाल कपूर ट्रष्ट, गुरु बाजार, अमृतसर
3. अग्निपुराण – (वेदव्यास) नाग पाब्लिशर्स, जवाहर नगर, देहली
4. अध्यात्म रामायण – गीता प्रेस, पो० गीता प्रेस (गोरखपुर)
5. अथर्ववेद – (सायण भाष्य सहित) विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर
6. आश्वलायन गृह्यसूत्र – निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
7. आपस्तम्ब धर्म सूत्र – (आपस्तम्ब) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देलही
8. ईशावास्योपनिषद् – (स्वामी चिन्मयानन्द) विवेक प्रिंटर्स ब्रह्मनगर, कानपुर
9. उत्तर रामचरितम् – (भवभूति) – महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा–2
10. ऐतरेय ब्राह्मण – सम्पादक व अनुवादक डॉ० सुधाकर मालवीय, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी
11. औशनस स्मृति – (अष्टादश स्मृति) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देलही
12. ऋग्वेद संहिता – (सम्पादक आर० राय और डब्ल्यू०डी० ह्विटने बर्लिन)
13. कठोपनिषद् – (स्वामी चिन्मयानन्द) विवेक प्रिंटर्स ब्रह्म नगर, कानपुर
14. कूर्म पुराण – (अष्टादश पुराण दर्पण) (ज्वाला प्रसाद मिश्र) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देहली
15. गोपथ ब्राह्मण – (मूल मात्र) रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, सोनीपत, हरियाणा
16. गौतम धर्म सूत्र – (गौतम ऋषि) वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई
17. गीता – (बाल गंगाधर तिलक) 568/नारायणपेठ/लो० तिलक मन्दिर, पूना

18. गरुण पुराण – (गरुण) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर देलही

19. जाबालोपनिषद् – (उपनिषत्संग्रहः) मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली–वाराणसी–पटना

20. तैत्तिरीय ब्राह्मण – सायण भाष्य सहित आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पूना

21. तैत्तिरीय उपनिषद् – (उपनिषत्संग्रहः) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–पटना–वाराणसी

22. तैत्तिरीय आरण्यक – संपादक हरिनारायण आप्टे, पूना

23. तैत्तिरीय संहिता – अनन्त शास्त्री द्वितीय संस्करण सम्वत् 2013

24. दुर्गा सप्तशती – गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर

25. देवी भागवत् – (कृष्ण द्वैपायन व्यास) पंडित पुस्तकालय, काशी

26. न्याय दर्शन – (षड्दर्शनम्) गौतम ऋषि – सरस्वती मुद्रण प्रतिष्ठान, राधेपुरी, दिल्ली।

27. निरुक्त – मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दरियागंज, दिल्ली

28. पद्मपुरण – (वेदव्यास) (चारुदेव शास्त्री) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देलही

29. पराशर स्मृति – (अष्टादश स्मृति) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देलही

30. पंचतंत्र – (आचार्य विष्णु शर्मा) भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस सिटी

31. पारस्कर गृह्य सूत्र – मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स, प्रा0लि0, द्वितीय संस्करण

32. पैङ्गलोपनिषद् – ईशादिविंशोत्तर शतोपनिषदः, निर्णय सागर मुद्रणालयम्, मुम्बई–2

33. ब्रह्मपुराण – (वेदव्यास) नाग पलिब्लशर्स, जवाहर नगर, देलही

34. ब्रहम वैवर्त पुराण – (वेदव्यास) – अष्टादश पुराण (ज्वाला प्रसाद मिश्र) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देलही

35. बाल्मीकि रामायण (महर्षि बाल्मीकि) – गीता प्रेस पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)

36. बौधायन गृह्य सूत्र – सम्पादक आर0 शर्मा शास्त्री, मैसूर
37. भावार्थ रामायण – ब्रह्मवादिन प्रेस, जार्जटाउन प्रेस, मद्रास 1912
38. मन्त्र ब्राह्मण – आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पूना
39. मत्स्य पुराण – (वेदव्यास) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देलही
40. महाभाष्य – नवाह्निक (पतंजलि) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–पटना–बनाणसी
41. महाभारत – (श्री कृष्ण द्वैपायन) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)
42. मनुस्मृति – (मनु) आचार्य नारायण राम निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई
43. मीमांसा दर्शन – (महर्षि जैमिनि) युधिष्ठिर मीमांसक, बहाल गढ़ (सोनीपत हरियाणा)
44. मुण्डकोपनिषद् – ईशादिविंशोत्तर शतोपनिषदः, निर्णय सागर मुद्रणालयम् मुम्बई–2
45. यजुर्वेद संहिता – अनुवादक ग्रिफिथ बनारस 1899
46. यजुर्वेद का उव्वट भाष्य – (कल्याण धर्मांक) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)
47. यजुर्वेद का महीधर भाष्य – (कल्याण धर्मांक) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)
48. याज्ञवल्क्य स्मृति – (याज्ञवल्क्य) ब्रह्मवादिन प्रेस, जार्ज टाउन प्रेस, मद्रास (1912)
49. योगवाशिष्ठ – (वशिष्ठ) अच्युत ग्रंथ माला – कार्यालय – काशी
50. योग दर्शन – (पतंजलि) (षड्दर्शनम्) सरस्वती मुद्रण प्रतिष्ठान राधेपुरी, दिल्ली
51. रघुवंश – (कालिदास) चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी
52. लक्ष्मीतन्त्रम् (कल्याण नारी अंक) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)

53. वराह पुराण – (वेदव्यास) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस, (गोरखपुर)

54. वायु पुराण – (वेदव्यास) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देलही

55. वशिष्ठ धर्म सूत्र – (कल्याण धर्मांक) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)

56. विष्णु पुराण – (वेदव्यास) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देलही

57. विष्णु सहस्रनाम – रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, सोनीपत (हरियाणा)

58. वेदान्त दर्शन – (कृष्ण द्वैपायन व्यास) विरजानंद वैदिक संस्थान, गाजियाबाद (उ0प्र0)

59. वैशेषिक दर्शन – (कणाद) (षड्दर्शनम्) सरस्वती मुद्रण प्रतिष्ठान राधेपुरी, दिल्ली

60. वैशेषिक धर्म सूत्र – (कल्याण धर्मांक) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)

61. विष्णु धर्मसूत्र – (कल्याण धर्मांक) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)

62. वृहन्नारदीय पुराण – (नारद) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, दिल्ली

63. शतपथ ब्राह्मण – (गंगा प्रसाद उपाध्याय) प्राचीन वैदिक अध्ययन अनुसंधान संस्थान, दिल्ली

64. श्वेताश्वतरोपनिषद् – (एकादशोपनिषद् संग्रहः) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)

65. शाबर भाष्य – (जैमिनीय सूत्र) युधिष्ठिर मीमांसक, बहालगढ़ (सोनीपत) हरियाणा

66. शब्द कल्पद्रुम – (राजा राधाकांत देव) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देहली

67. शिव पुराण – (वेदव्यास) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देहली

68. शुक्ल यजुर्वेद – सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड, दिल्ली

69. शुक्र नीति – (स्वामी जगदीश्वरानंद) रामलाल कपूर ट्रष्ट, रेवली, सोनीपत (हरियाणा)

70. श्रीमद् भागवत महापुराण – (महर्षि वेदव्यास) गीता प्रेस, पो0 गीता प्रेस (गोरखपुर)

71. स्कन्द पुराण – (वेदव्यास) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देलही

72. सांख्य दर्शन – (कपिल मुनि) विज्ञानानंद सरस्वती, विरजानंद वैदिक संस्थान, गाजियाबाद (उ0प्र0)

73. सामवेद – (सायण भाष्य) सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता

74. सुश्रुत संहिता – जयकृष्णदास आयुर्वेद ग्रंथमाला, चौखम्बा ओरिएन्टालिया, वाराणसी

75. हरिवंश पुराण – (वेदव्यास) नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, देहली

76. हितोपदेश – (आचार्य श्री नारायण पंडित) भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी

(2). हिन्दी ग्रन्थ

1. अरुण रामायण – रामवतार पोद्दार 'अरुण' किरण पुंज प्रका0 समस्तीपुर
2. कृत्तिवास रामायण – (कृत्तिवास) आदर्श प्रेस, अलीगढ़
3. कृत्तिवासी बंग्ला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन (डॉ0 रमानाथ त्रिपाठी) (आदर्श प्रेस, अलीगढ़)
4. गोस्वामी तुलसीदास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
5. गोस्वामी तुलसीदास दर्शन और भक्ति (डॉ0 बी0डी0 अवस्थी) सरस्वती प्रकाशन नया बैरहना, इलाहाबाद
6. तुलसीदास – जीवनी और विचारधारा (डॉ0 राजाराम रस्तोगी) अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर
7. तुलसीदास – एक समालोचनात्मक अध्ययन (डॉ0 माता प्रसाद गुप्त) हिन्दी परिषद प्रकाशन, प्रयाग वि0वि0 प्रयाग।
8. तुलसी मानस रत्नाकर (डॉ0 भाग्यवती सिंह) सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
9. तुलसीदास (चन्द्रबली पाण्डेय) नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
10. तुलसी की काव्य कला (डॉ0 भाग्यवती सिंह) सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
11. तुलसी दर्शन मीमांसा (डॉ0 उदयभानु सिंह) विश्व विद्यालय प्रकाशन, लखनऊ
12. धर्मशास्त्र का इतिहास (डॉ0 पी0वी0 काणे)
13. धर्मद्रुम (आचार्य राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय) किशोर विद्या निकेतन भदैनी, वाराणसी
14. पुराण–विमर्श (आचार्य बल्देव उपाध्याय) चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी
15. ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास (डॉ0 प्रभुदयाल मित्तल)
16. बाल्मीकि और तुलसी, साहित्यिक मूल्यांकन (डॉ0 रामप्रकाश अग्रवाल) प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ

17. भारतीय संस्कृति का उत्थान (डॉ0 राम जी उपाध्याय)

18. भारतीय संस्कृति का प्रवाह (डॉ0 इन्द्र विद्या वाचस्पति)

19. भारतीय संस्कृति (डॉ0 देवराज)

20. भारतीय संस्कृति और सभ्यता (डॉ0 प्रसन्न कुमार)

21. भारतीय संस्कृति और इतिहास (डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार)

22. भारतीय दर्शन; प्रथम खण्ड (डॉ0 राधा कृष्णन)

23. भारतीय संस्कृति और कला (डॉ0 राधा कमल मुखर्जी)

24. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा (बाबू गुलाबराय)

25. मानस पीयूष खण्ड 1 (गीता प्रेस गोरखपुर)

26. मानस के गौड़ पात्र (श्री श्रीनिवास गुप्त)

27. रामकथा – उत्पत्ति और विकास (डॉ0 फादर कामिल बुल्के) हिन्दी परिषद प्रकाशन, प्रयाग वि0वि0

28. रामचरित मानस में महाकाव्यत्व, भक्ति और दर्शन (डॉ0 बी0डी अवस्थी) सरस्वती प्रकाशन मंदिर नया बैरहना, इलाहाबाद

29. रामकथा के पात्र (डॉ0 भ0ह0 राजूरकर) ग्रन्थम प्रकाशन रामबाग, कानपुर

30. रामायण के आदर्श पात्र (श्री जयदयाल गोयन्दका) गीता प्रेस, गोरखपुर

31. रामायण के महिला पात्र (डॉ0 पाण्डु रंगराव) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

32. रामायण का आचार दर्शन (डॉ0 अम्बा प्रसाद) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

33. रामचरित मानस, नानापुराण निगमागम (डॉ0 गनौरी महतो) शोध साहित्य प्रकाशन शाहगंज, इलाहाबाद

34. रामचरित मानस (तुलसीदास) गीता प्रेस, गोरखपुर

35. वैदिक संस्कृति और सभ्यता (डॉ0 मुंशीराम शर्मा)

36. वैदिक साहित्य संस्कृति और दर्शन (डॉ0 बी0डी0 अवस्थी) सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद

37. वैदिक विज्ञान और संस्कृति (म0म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी)

38. वीर मित्रोदय संस्कार प्रकाश (प्रथम भाग) (पं0 मित्र मिश्र)

39. समाज शास्त्र के मूल तत्त्व (डॉ0 डब्ल्यू0 ग्रीन)

40. साकेत (डॉ0 मैथिलीशरण गुप्त) साहित्य सदन, चिरगाँव

41. हिन्दू संस्कार (डॉ0 राजबली पाण्डेय) चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी

(3). अंग्रेजी ग्रंथ

1. An Introduction to Civics & Politics (S.V.P. Untan Baker)

2. Morals in the Brahmans (Dr. Karnik) Recised Edition (1962)

3. What India Teaches (Pr. Max Mular)

(4). पत्रिकाएँ

1. अखण्ड ज्योति – सम्पा0 श्रीराम शर्मा – जन जागरण प्रेस, मथुरा

2. कल्याण धर्मांक, नारी अंक, नीतिसार अंक – गीता प्रेस, गोरखपुर